

# दोहा-कोश

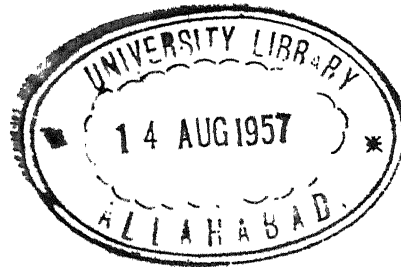
[ हिन्दी-छायानुवाद-सहित ]

ग्रन्थकार

सिद्ध सरहपाद

सम्पादक, पुनरनुवादक

महापंडित राहुल सांकृत्यायन



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

प्रकाशक  
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्  
पटना-३

155673

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित

प्रथम संस्करण, शकाब्द १८७६

विक्रमाब्द २०१४, ख्रीष्टाब्द १९५७

मूल्य बारह रुपये; सजिल्द तेरह रुपये, पच्चीस नये पैसे

430

92

मुद्रक  
मोहन प्रेस  
पटना-३

## वक्तव्य

इस ग्रन्थ के सम्पादक महापण्डित श्रीराहुल सांकृत्यायन के महत्त्वशाली शोधकार्यों से हिन्दी-साहित्य के इतिहास में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं उनसे हिन्दी-जगत् भलीभाँति परिचित है। साहित्यिक गवेषणा के क्षेत्र में उनके अनुसन्धानों ने जो प्रकाश फैलाया है उससे युगों का घनीभूत ग्रन्धकार तिरोहित हुआ है। यह ग्रन्थ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हिन्दी-संसार में साहित्यिक शोध के छोटे-मोटे काम बहुत दिनों से होते आ रहे हैं। परन्तु, जब से काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्राचीन हस्तलिखित पोथियों की खोज करके उसका विवरण प्रकाशित किया और 'सभा' के ही उद्योग से भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी-साहित्य का अध्ययन-अध्यापन तथा अनुसन्धान-अनुशीलन होने लगा, तब से शोध के काम में विद्वानों की दिलचस्पी बढ़ने लग गई। किन्तु, शोध-सामग्री की अपर्याप्तता के कारण इस दिशा में विशेष प्रगति नहीं हुई। सच तो यह कि बहुत-सी शोध-सामग्री पार्श्वात्य जगत् के संग्रहालयों में सुरक्षित है, जिसका उपयोग करने के लिए योरप-यात्रा करना अनिवार्य है। विदेश-यात्रा करना सब शोधकों के लिए संभव नहीं। फिर भी, हमारे कुछ शोधकों ने विदेश जाकर वहाँ की संचित सामग्री से लाभ उठाया, पर उससे प्राचीनतम हिन्दी-सम्बन्धी खोज में कोई उल्लेखनीय सहायता नहीं मिली। जब राहुल जी ने अत्यन्त प्राचीन हिन्दी की प्रचुर शोध-सामग्री का उद्धार ऐसे दुर्गम स्थान से किया, जहाँ आधुनिक युग के शोधकों की पहुँच नहीं हो सकती थी, तब हिन्दी-भाषा के साहित्य की शोध-दिशा बदल गई। अतः इस ग्रन्थ के प्रकाशन से शोधकर्त्ता सज्जनों को नई प्रेरणा मिलने की संभावना है।

श्रीराहुलजी की तरह 'मिशनरी स्परिट' से काम करनेवाले यदि और भी दो-चार व्यक्ति हिन्दी में होते, तो साहित्यिक शोध के क्षेत्र में आज अनेक विस्मयजनक कार्य हुए रहते। यद्यपि हिन्दी के साहित्यसेवियों में अब शोध करने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे जाग रही है, तथापि राहुलजी को सच्चे अनुयायी के रूप में अभी तक निष्ठावान् सहायक नहीं मिले हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी आज

उस स्थिति में पहुँच गई है जब उसको अनेक श्रद्धालु साधकों की आवश्यकता है। हमारी धारणा है कि सच्ची लगन और पक्की धुन के अमायिक व्यक्ति ही खोज के काम के लिए फकीर हो सकते हैं। प्रपञ्च-मुक्त हुए विना शोध-कार्य को निर्विघ्नता के साथ सम्पन्न करना कठिन है। शोध की दिशा में राहुलजी के भगीरथ-प्रयत्नों को देखकर ऐसा अनुभव होता है कि जग-जंजाल से छुटकारा पाकर शोध-तत्पर होने से ही भाषा और साहित्य का वास्तविक उपकार हो सकता है।

इस ग्रन्थ में सिद्ध सरहपाद की कविता भोट-भाषा में रूपान्तरित है, जिसकी अविकल छाया प्राचीन हिन्दी में स्वयं राहुलजी ने प्रस्तुत की है। मूल और छाया के साथ कहीं-कहीं जो पाद-टिप्पणियाँ हैं और ग्रन्थ के अन्त में जो परिशिष्ट है, उनसे राहुलजी के कठोर परिश्रम तथा अथक अध्यवसाय का अनुमान किया जा सकता है। उनकी विस्तृत भूमिका के अध्ययन से भी, प्राचीन हिन्दी के सम्बन्ध में अनुसन्धान करनेवालों को, काफी प्रकाश मिलेगा। आशा है, शोध-संलग्न सज्जनों को ऐसा प्रतीत होगा कि यह ग्रन्थ वस्तुतः हिन्दी को राहुलजी की एक अपूर्व देन है।

वैशाखी पूर्णिमा, बुद्ध-जयन्ती  
शकाब्द १८७६, विक्रमाब्द २०१४

}

शिवपूजन सहाय  
( संचालक )

# विषय-सूची

१ (क) दोहाकोश-गीति

[ हिन्दी-छायाानुवाद-सहित ]

	पृष्ठ
भूमिका	
१ (क) दोहाकोश-गीति	१
१. 'षट्' दर्शन-खंडन	
(१) ब्राह्मण	२
(२) पाशुपत	.. २
(३) जैन	.. २
(४) बौद्ध	.. २
२. करुणा-सहित भावना	.. ४
३. चित्त	.. ६
(१) परमपद	.. ८
(२) सहज, महासुख	.. १०
(३) परमपद	.. १२
४. भावना	.. १४
(१) शून्यता	.. १४
(२) भोग में योग	.. १६
(३) भ्रान्त पथ	.. १८
(४) सहज अवस्था	.. १८
(५) सहज समरस-भाव	.. २२
५. यहीं सब कुछ	.. २२
(१) देह ही तीर्थ	.. २२
(२) जग में ही सुखसार	.. २४

	पृष्ठ
६. सहजयान ..	२६
(१) सहानुभूति ..	२६
(२) चित्त-देवता ..	२६
(३) भव-निर्वाण एक ..	२८
(४) परमपद ..	३०
(क) शून्य निरंजन ..	३१
(ख) ध्येय-धारणादि व्यर्थ ..	३१
(५) परमपद-साधना ..	३२
१ (ख) दोहाकोश-गीति	
(भोट-अनुवाद और मूले,	
	३७
दोहा. म्जोद्. किय. ग्लु	
१ (ख) दोहाकोश-गीति	३८
१. 'षट्' दर्शन-खंडन ..	३८
(१) ब्राह्मण ..	३८
(२) पाशुपत ..	४०
(३) जैन ..	४०
(४) बौद्ध ..	४२
२. कठणा-सहित भावना ..	४२
(१) परमपद ..	४८
३. चित्त ..	५०
(सहज) ..	५४
४. यहीं सब कुछ ..	५६
(१) देह ही तीर्थ ..	५६
(२) भोग में योग ..	५८
(३) सहज भावना ..	६०
(४) ध्येय-धारणादि व्यर्थ ..	६२
५. परमपद साधना ..	६४
(१) इंद्रिय-संयम ..	६४

	पृष्ठ
(२) भोग में योग	.. ६८
(३) सहज महामुख	.. ७४
(४) परमपद	.. ७८
(५) परोपकार	.. ८०
२. दोहाकोश चर्यागीति (भोट और हिन्दी)	.. ८३
३. दोहाकोश उपदेशगीति (भोट और हिन्दी)	.. ९९
४. क. ख. दोहा (भोट और हिन्दी)	.. १२७
५. कायकोश अमृतवज्रगीति (भोट और हिन्दी)	.. १४१
१. नाना मत	.. १४२
२. सहजयोग, महामुद्रा	.. १४२
३. महासुख, अकथ	.. १४६
४. ध्यान, महामुद्रा	.. १५२
५. सहज, महामुद्रा	.. १५८
६. त्रिकाय, त्रिमुद्रा	.. १६४
७. सहज, महासुख	.. १६६
८. मुद्रा, महामुद्रा	.. १६८
९. शून्यता, महामुख	.. १७४
६. वाक्कोश मंजुघोष वज्रगीति (भोट और हिन्दी)	.. १८५
७. चित्तकोश अज वज्रगीति (भोट और हिन्दी)	.. २०३
८. काय-वाक्-चित्त अमनसिकार (भोट और हिन्दी)	.. २१५
९. दोहाकोश महामुद्रोपदेश (भोट और हिन्दी)	.. २४९

१०. द्वादश उपदेशगाथा (भोट और हिन्दी)	..	२६७
११. स्वाधिष्ठान-क्रम (भोट और हिन्दी)	..	२७५
१२. तत्त्वोपदेशशिखर दोहागीति (भोट और हिन्दी)	..	२८५
१३. वसन्ततिलक दोहागीति (भोट और हिन्दी)	..	२९७
१४. महामुद्रोपदेश वज्रगुह्यगीति (भोट और हिन्दी)	..	३०३
१५. चित्तगुह्य दोहा (भोट और हिन्दी)	..	३४७
१६. सरह के पद (मूल और छाया)	..	३५५
(१) राग-गुंजरी (गुर्जरी)	..	३५८
(२) राग-देशाख (देश)	..	३५८
(३) राग-भैरवी	..	३६०
(४) राग मालशी (मालश्री)	..	३६०

## परिशिष्ट

## चित्र-परिचय

१. विनयश्री की गीतियाँ	..	३६३	१. स.स्कय दोहाकोश	..	१-६
२. सरहदोहाकोश-गीति दोहार्थानुक्रमणी	..	३७१	२. विनयश्री-गीति	..	७, ८
३. अपभ्रंशभोट-शब्दानुक्रमणी	..	३८१	३. सुगतश्रीकृतप्रशस्ति	..	९
४. दोहाकोशभोट-शब्दानुक्रमणी	..	४११	४. विविध तालपत्र	..	१०, ११
५. दोहों की तुलना	..	४५६	५. स.स्कय दोहा-वर्णमाला	..	१२
६. पण्डित अद्वयवज्र	..	४६६			
७. पारिभाषिक शब्द	..	४७५			
८. पुस्तक-सूची	..	४८७			



मेरी पत्नी कमला सांकृत्यायन

को

उनकी सहायताओं के लिए

# भूमिका

## §१. सरह की दुनिया

सरहपाद का काल (ईसवी आठवीं सदी), भारतवर्ष के इतिहास में कई दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस महान् विचारक कवि और सन्त-सिद्ध के प्रादुर्भाव से एक नये युग की सूचना मिलती है।

### (१) राजनीतिक स्थिति

पुष्पभूति या वर्धन-वंश के राजा हर्षवर्धन प्राचीन भारत के अन्तिम दिग्विजयी सम्राट् थे। ४२ वर्ष (६०६-६४८ ई०) के सुदीर्घ, शान्त और समृद्ध शासन के बाद जब ६४८ ई० में उनका निधन हुआ, तो उनका साम्राज्य जल्दी ही छिन्न-भिन्न होकर इतना कमजोर हो गया, कि अपने अपमान का बदला लेने के लिए चीनी राजदूत ने थोड़ी-सी तिब्बती और नेपाली सेना की मदद से हर्ष की राजधानी पर अधिकार जमानेवाले अर्जुन को न केवल हराया ही, बल्कि उसे बन्दी बनाकर चीन ले गया। आगे सौ साल का समय टुकड़े-टुकड़े में बँटे कान्यकुब्ज-साम्राज्य के पारस्परिक कलह और पतन का इतिहास हमारे लिए अत्यन्त अपरिचित-सा है। एक शताब्दी बीतने पर हम भारत में तीन महाशक्तियों का उदय होते देखते हैं : (१) पूर्व में यशस्वी पाल-वंश हर्ष के साम्राज्य के पूर्ववाले भू-भाग पर अपना दृढ़ शासन स्थापित करता है, और वहाँ मत्स्य-न्याय का अन्त कर हिन्दूकाल के अन्त तक रहनेवाले एक राजवंश की नींव डालता है। (२) दक्षिणापथ—जिसे जीतने का असफल प्रयत्न हर्ष ने किया था—में और भी प्रचंड राष्ट्रकूटों का शासन देखने में आता है और (३) राजपूताने के भिन्नमाल या श्रीमाल के गुर्जर-प्रतिहार अपनी शक्ति बढ़ाने यमुना और गंगा के किनारे तक पहुँचने की कोशिश करते हैं।

कान्यकुब्ज के भाग्य का फैसला अभी नहीं हो पाया था, जब कि सरहपाद ने

## २. धार्मिक स्थिति

सरहपाद का प्रादुर्भाव जिस आठवीं सदी के पूर्वार्ध में हुआ, वह धर्म की दृष्टि से भी एक नये युग का सन्धिकाल था। इससे एक ही शताब्दी पहले वसुबन्धु, दिङ्नाग और धर्मकीर्त्ति के महायान-धर्म और दर्शन का चरम उत्कर्ष हुआ था। बौद्धधर्म अपने हीनयान और महायान के विकास को चरम सीमा तक पहुँचा कर अब एक नई दिशा लेने की तैयारी कर रहा था, जब उसे मंत्रयान, वज्रयान या सहजयान की संज्ञा मिलनेवाली थी, और जिसके प्रथम प्रणेता स्वयं सरहपाद थे। हीनयान (स्थविरवाद) ने शील-सदाचार तथा वैयक्तिक निर्वाण पर अधिक जोर दिया था। उसने बुद्ध के दर्शन और शिक्षा को यथाशक्ति मूलरूप में रखने की कोशिश की थी। महायान ने भी थेरवाद के शील-सदाचार, भिक्षुचर्या को बहुत-कुछ स्वीकार किया था। वस्तुतः महायानी भिक्षु उन्हीं विनय-नियमों को मानते थे, जो कि सर्वास्तित्वादी हीनयान के विनय-पिटक में हैं। हाँ, महायानी आदर्श और उद्देश्य में वह हीनयान के के वैयक्तिक निर्वाण को हीन, स्वार्थपूर्ण मानते थे, और वैयक्तिक मुक्ति की जगह प्राणिमात्र को दुःख से मुक्त करने के लिए अपने अनंत जन्मों का उत्सर्ग करना एक मात्र परमलक्ष्य मानते थे। बौद्ध क्षणिक और अनात्म-वादी दर्शन को और आगे बढ़ाते हुए उन्होंने नागार्जुन के माध्यमिक या शून्यवाद दर्शन एवं असंग के योगाचार या विज्ञानवादी दर्शन तक पहुँचाया। अब वह समय आ गया था, जब कि शील, समाधि और प्रज्ञा-संबंधी पुरानी परंपराओं और धारणाओं का पुनः मूल्यांकन किया जाय, और उनमें से कितनों को साफ व्यर्थ की रूढ़ि घोषित किया जाय। यह काम हम स्वयं सरह को करते देखते हैं। वह सहज जीवन के पक्षपाती हैं, और भक्ष्य-अभक्ष्य, गम्य-अगम्य की पुरानी धारणाओं पर सीधी चोट करते हैं। हरेक अन्तिकारी या उग्र सुधारक को अपने काम में जनता से ही सहायता लेनी पड़ती है। बुद्ध और महावीर को भी यही करना पड़ा था। जनता को उसकी भाषा द्वारा ही अपनी ओर खींचा जा सकता है, यह उन्हें मालूम था। यही कारण था जो बुद्ध और महावीर ने जन-भाषा का सहारा लिया। पर, उनके समय की भाषा अब स्वयं मृत भाषा

श्री, जिसे साहित्य के रूप में ही पढ़ा-समझा जा सकता था। सरहपाद ने संस्कृत के पंडित होते भी तत्कालीन 'भाषा' को अपना माध्यम बनाया।

बौद्ध ही नहीं, ब्राह्मण-धर्म में भी अब नये धार्मिक और दार्शनिक संप्रदाय उपस्थित होनेवाले थे। पाशुपत-धर्म अब भी उत्तर और दक्षिण में प्रभावशाली था। गुप्तकालीन वैष्णव-धर्म ह्यासोन्मुख था। अब दक्षिण के शंकर का मायावादी अद्वैत विज्ञानवाद दर्शन प्रकट हो रहा था। शंकराचार्य सरहपाद के समकालीन थे। वह असंग के योगाचार दर्शन को नई बोटल में पुरानी शराब डालने की उक्ति के अनुसार एक नया रूप दे रहे थे। यह बात लोगों से छिपी नहीं थी। उनके प्रतिद्वंद्वी शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहा करते थे। शंकर ने यद्यपि इस बात को छिपाना चाहा, कि उनका दर्शन योगाचार की देन है, पर उनके मान्य आचार्य और परंपरा के अनुसार परमगुरु गौडपाद बुद्ध को नमस्कार करते अपनी कारिकाओं में उनके ऋण को स्वीकार करते हैं। शंकर मुँह से न कहते भी आचरण से बौद्ध और ब्राह्मण-दर्शनों के संबंध में समन्वयवादी हैं। धार्मिक मान्यताओं में भी वह समन्वयवादी थे। शिव, विष्णु या शक्ति—सभी को वह परमदेवत और आराध्य मानते थे। यद्यपि यही बात वैष्णव आलवारों के संबंध में नहीं कही जा सकती, पर उनके द्वारा वैष्णव-धर्म भी उस रूप को ले रहा था, जो आज उत्तर और दक्षिण में देखा जाता है, और जिसका सबसे अधिक जोर भक्ति पर है। बौद्धधर्म की तरह ब्राह्मण धर्म के लिए भी यह काल एक नये संदेश का वाहक है। जैन-धर्म के बारे में यह बात उतने जोर से नहीं कही जा सकती, पर वहाँ भी योगीन्दु, रामासह—जैसे सन्तों को हम नया राग अलापते देखते हैं, जिसमें समन्वय की भावना ज्यादा मिलती है।

सरह के साथ एक नये धार्मिक प्रवाह को हम जारी होते देखते हैं, जो आज भी सन्त-परम्परा के रूप में हमारे सामने मौजूद है। इसके बारे में हम आगे कहनेवाले हैं। सन्तों के साथ जिस योग और भावनाओं का संबंध है, वह भी इसी समय अपने नये रूप में प्रकट होते हैं। उनकी भावना या योग वही नहीं है, जिसे पंतजलि के योगदर्शन या पुराने बौद्ध-सूत्रों में देखते हैं। इस ध्यान और भावना के लिए यम-नियमों की उतनी आवश्यकता नहीं मानी जाती थी और न उसके ढंग उतने रूढ़ थे।

इसमें गुरु का वचन सर्वोपरि माना जाता था, जिस पर सरहपाद ने अपने दोहाकोश में जगह-जगह जोर दिया है। यह स्मरण रखना चाहिए, कि तिब्बती शब्द ला.मा गुरु का ही पर्याय है। वहाँ 'बुद्धं शरणं गच्छामि' से भी पहले 'गुरुं शरणं गच्छामि' कहते त्रिशरण की जगह चतुःशरण लिया जाता है। इसके प्रवर्तक सरहपाद हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। तिब्बत का आज का प्रचलित धर्म बुद्ध से अधिक सरहपाद की शिक्षा को मानता है।

### (३) भाषा का संक्रातिकाल

भाषा की दृष्टि से देखने पर भी यह एक नये युग का संधिकाल है। छान्दस (वैदिक भाषा) के बाद ईसा-पूर्व पाँचवीं-छठी सदी में भाषा ने नया रूप लिया, जिसके नमूने बुद्ध-वाणी और अशोक की धर्मलिपियों की भाषा में मिलते हैं, और जिसे आसानी के लिए हम जनपदीय पालियाँ कह सकते हैं। यह सारी एक ही तरह की नहीं थी। पालियों के अवसान के बाद ईसवी-सन् के आरंभ के आस-पास प्राकृत अस्तित्व में आई, जो ईसा की पाँचवी सदी के अन्त तक प्रचलित रही। छान्दम्, पाली और प्राकृत भाषाओं में आपस में काफी भेद थे, पर अब भी उनकी एक विशेषता कायम थी, अर्थात् यह तीनों भाषा-कुल उस रूप में अपनाये हुए थे, जिसे भाषाविद् 'श्लिष्ट' (synthetic) रूप कहते हैं। द्विवचन को हटा देने तथा कुछ विभक्तियों को कम कर देने पर भी अभी सुबन्त और तिङन्त के सैकड़ों और हजारों रूप प्रचलित थे—दसो (विधि और आशीः मिलाकर ग्यारह) लकारों, आत्मनेपद-परस्मैपद रूपों, णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, यङ्लुगन्त आदि स्वरूपों को उन्होंने मान्य रक्खा। अब प्राकृत का स्थान उसकी जिस पुत्री ने लिया, जो विश्लिष्ट नहीं अश्लिष्ट भाषा थी। धातु-रूपों और शब्दरूपों की पुरानी परिपाटी अब बहुत-कुछ खत्म-सी कर दी गई। लकारों की प्रचुरता समाप्त करके भूत-काल के लिए निष्ठा-प्रत्यय का प्रयोग होने लगा। श्लिष्ट से अश्लिष्ट रूप में भाषा का परिवर्तन एक बड़ी क्रान्ति थी, जो कि प्राकृत की उत्तराधिकारिणी भाषा में देखा गया। इस भाषा का स्मरण सबसे पहिले हर्ष के समकालीन (६०६-६४८ ई०) महाकवि वाण के 'हर्षचरित' में मिलता है।

वहाँ इसका आज का रूढ़ नाम 'अपभ्रंश नहीं मिला है, बल्कि केवल 'भाषा' कहकर पुकारा गया है । 'भाषा' से हमेशा वर्तमान भाषा का ही अर्थ लिया जाता रहा है । पाणिनि वैदिक ( छान्दस ) भाषा से भिन्न भाषा को 'भाषा' कहते हैं; यद्यपि पाणिनि के समय—ईसा-पूर्व चौथी सदी में—प्रचलित भाषा वह अवैदिक संस्कृत भाषा नहीं थी, जिसे पाणिनि 'भाषा' कहते हैं । गोस्वामी तुलसीदास जिसे 'भाषा भणिति' कहते हैं, वह निश्चय ही उनके समय की प्रचलित भाषा थी । आज भी उत्तरी भारत में 'भाखा' से अभिप्रेत है, वर्तमान भाषा । वाण ने जिस मित्रमंडली के साथ घुमक्कड़ी की थी, उसमें 'भाषाकविः ईशानः परं मित्रः' भी था । भाषा से वाण का अभिप्राय प्राकृत भाषा नहीं था, क्योंकि 'हर्षचरित' में वहीं अपने साथी—'प्राकृतकृत कुलपुत्रो वायुविकारः' का नाम लिया है । प्राकृत के कवि वायु-विकार से भाषा-कवि ईशान का नाम अलग देना ही बतलाता है, कि वाण के समय प्रचलित भाषा प्राकृत नहीं थी । नई भाषा का नाम अभी अपभ्रंश रूढ़ नहीं हो पाया था, पर वाण का भाषा से मतलब अपभ्रंश से ही है !

अपभ्रंश नाम पतंजलि (ईसा पूर्व १५५) के महाभाष्य में भी आता है, पर वहाँ वह वैदिक और लौकिक संस्कृत से भिन्न तत्कालीन भाषा है, जो कि पालि-समूह की थी । सरहपाद के ग्रंथों में भी अपभ्रंश नाम नहीं मिलता ।

अपभ्रंश संस्कृत-पालि-प्राकृत के श्लिष्ट-भाषा-कुल से उत्पन्न, पर अश्लिष्ट होने से एक नये प्रकार की भाषा है । वह उक्त तीनों भाषाओं से दूर तथा हमारी हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं की माता-मातामही ही नहीं, बल्कि उसी प्रकृति की भाषा है ।

'हर्षचरित' के कथन से सिद्ध है, कि सातवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अपभ्रंश का ईशान कवि हुआ था, जिसकी योग्यता इसीसे सिद्ध है, कि वाण उसे केवल मित्र नहीं, बल्कि 'परं मित्रं' कहता है । दसवीं सदी के अन्त के अपभ्रंश के महाकवि पुष्पदन्त ने अपने काव्य 'महापुराण' में "चौमुह सयम्भू सिरिहरिसु, दोणु । णालोइउ कई ईसाणु वाणु" कहते जिस ईशान कवि का स्मरण किया है, वह वाण का परम मित्र ईशान था, यह डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल का मत ठीक जान पड़ता है । वाण के

परम मित्र ईशान अकेले ही अपभ्रंश के कवि नहीं रहे होंगे, और भी कितनी भाषा-कवि तब तक हो चुके होंगे, इस प्रकार सरहपाद को ही अपभ्रंश का प्रथम कवि नहीं कह सकते । पर सरह से पहिले के कवि कवि की कोई कृति या पद्य हमारे पास तक नहीं पहुँचा, इस प्रकार अपभ्रंश की सर्वप्रथम कृति सरह के दोहों के रूपों में ही आज मौजूद है । इसलिए अपभ्रंश के आदि कवि के तौर पर सरहपाद का ही नाम लिया जा सकता है ।

जिस प्रकार अपभ्रंश के रूप में एक नये प्रकार की अश्लिष्ट भाषा इस समय हमारे सम्मुख उपस्थित होती है, उसी प्रकार दोहा, चौपाई पद्धती के नये छन्द इसी समय हमारे साहित्य में देखे जाते हैं । ये छन्द प्राकृत या दूसरी पूर्ववर्ती भाषाओं में नहीं मिलते । इन नये छन्दों के पहिले-पहिल हम सरह की कृतियों में ही देखते हैं । जिस तरह आर्या-गाथा प्राकृत-साहित्य की अपनी विशेषता है, उसी तरह दोहा-चौपाई-पद्धती अपभ्रंश की अपनी विशेषता है, जो उसके वंश की हिन्दी आदि भाषाओं में अब भी मौजूद है और अपभ्रंश की तरह हिन्दी को भी आज दोहा-चौपाईवाली भाषा कह सकते हैं । अपभ्रंश वैसे केवल हिन्दी की अपनी चीज नहीं है, उसपर उत्तर भारतीय या भारत की हिन्दू-आर्य सभी भाषाओं का एक समान अधिकार है । वह मराठी, गुजराती, पंजाबी, हिन्दी क्षेत्र की भाषाओं—राजस्थानी, मालवी, बुन्देली, हरियानी, कौरवी (मूल हिन्दी), पहाड़ी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, असमिया, बंगला, उड़िया—की अपनी निधि है । इन सभी भाषाओं के क्षेत्र में अपभ्रंश-साहित्य की रचना हुई, उसको अपना समझा गया, और वह सभी को अपने साहित्यिक दाय-भाग के रूप में मिली । आज दोहा-चौपाई का कुछ भाषाओं से उठ जाना एक खटकनेवाली बात है ।

इन सारी बातों को देखने से मालूम होगा, कि सरह जिस भाषा के आदि कवि हैं, वह कई दृष्टियों से एक नये युग की भाषा है । कोई भी नया युग—जो इतने महान् परिवर्तनों का वाहक हो—एकाएक एक निश्चित मास या वर्ष में तो क्या, निश्चित शताब्दी में भी आन उपस्थित नहीं होता । प्राकृत ने किस शताब्दी में अपभ्रंश के लिए अपना स्थान छोड़ा, यह बतलाना बहुत मुश्किल है । वर्तमान शताब्दी के आरंभ तक

तो हमारे बहुत कम ही विद्वान् उसके अस्तित्व को जानते थे । बहुतेरे तो हमारी आधुनिक आर्यभाषाओं को सीधे संस्कृत से जोड़ते थे । उनको यह पता नहीं था, कि संस्कृत को हमारी आधुनिक भाषाओं से मिलानेवाली कड़ी पालियाँ, प्राकृत और अपभ्रंश है । आज इसे माना जाने लगा है, पर अब भी बहुत लोग यह निश्चय नहीं कर पा रहे हैं, कि अपभ्रंश का स्थान आधुनिक भाषाओं के बीच में है या पालि-प्राकृतों में ?

अस्तु, अपभ्रंश के जन्म-दिन का पता लगाना संभव नहीं है । संभवतः यह परिवर्तन कुछ समय तक बहुत धीरे-धीरे होता रहा, फिर एकाएक गुणात्मक परिवर्तन होकर श्लिष्ट की जगह अश्लिष्ट भाषा आन उपस्थित हुई—वह वही (प्राकृत) न होने पर भी किलनी ही बातों में वही (प्राकृत) थी । अपभ्रंश का सारा शब्द-कोश और उच्चारण-क्रम प्राकृत का था, पर व्याकरण की अन्य विशेषताएँ आधुनिक अवधी-ब्रज-भोजपुरी-जैसी । यह घटना छठी शताब्दी के अन्त में किसी समय घटी । इस सारी शताब्दी को हम प्राकृत और अपभ्रंश की सीमा-रेखा मान सकते हैं, उसी तरह, जिस तरह ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी को पालियों और प्राकृतों की सीमा-रेखा, तथा ईसा पूर्व सातवीं सदी को छान्दस और पालियों की सीमा रेखा ।

इस प्रकार सरहपाद नई भाषा और नये छन्दों के युग के आदि-कवि हैं । इतना ही नहीं, सन्त-सिद्ध परम्परा के आदि-सिद्ध होकर वह आध्यात्मिक तौर से भी नई दिशा दिखलानेवाले हैं । शायद उन्हें द्वितीय बुद्ध कहकर लोग अतिशयोक्ति से काम नहीं लेते । प्रमाण-शास्त्र में उनके परम गुरु शान्तरक्षित को, द्वितीय धर्मकीर्त्ति कहा जाता था । सरह की परम्परा में ही सिद्ध शान्तिपा (रत्नाकरशान्ति) हुए, जिन्हें 'कलिकाल-सर्वज्ञ' कहा गया, जो जैन 'कलिकाल-सर्वज्ञ' हेमचन्द्र से एक शताब्दी पहले हुए थे ।

## §२. सरह का व्यक्तित्व

### १. जीवनी

सरहपाद की जीवनी के संबंध में बहुत-थोड़ी-सी सूचना तिब्बती अनुवादित ग्रंथों से मिलती है और वह सबसे प्रामाणिक है, इसमें सन्देह नहीं ।



‘चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्ति’ (स्तन्. ग्युर, ग्युद्, ८६। १) में एक तरह सिद्धों की सूची-भर दी गई है। यद्यपि भारतीय भाषा से अनुवादित यह एक ही पुस्तक है, पर सिद्ध-युग में (आठवीं से ग्यारहवीं सदी तक) तिब्बत और भारत का घनिष्ठ संबंध रहा, वहाँ से अनेक जिज्ञासु भारत में आकर दीक्षा लेते थे। तिब्बत के सबसे बड़े सिद्ध (द्वितीय सरहपा) जे. चुन्. मि. ला. रेस्. पाके गुरु मर्. बा. लो. च. बा. ने विक्रमशिला में तत्कालीन महासिद्ध नारोपा से दीक्षा ली थी। तिब्बती सन्तों और महात्माओं के ग्रंथों में मौखिक गुरु-परम्पराएँ भारतीय सिद्धों के बारे में उद्धृत हैं, जिनसे भी कुछ प्रकाश पड़ सकता है, पर अभी तक उन परम्पराओं को जमा करने की कोशिश नहीं की गई है।

सरहपाद पूर्व दिशा के राज्ञी नामक कस्बे में पैदा हुए थे। पूर्व दिशा से कौन-से प्रदेश का अभिप्रेत है? आमतौर से मगध से पूर्व वाले प्रदेश पूर्व दिशा कहे जाते थे, जिसमें बंगाल—विशेषतः वारेन्द्र—आ सकता है। पर, वारेन्द्र का उल्लेख करते पूर्व-दिशा वारेन्द्र देश एक ही साथ कहा जाता था। इसलिए हम वहाँ वारेन्द्र को नहीं ले सकते। इसके बाद भंगल (भागलपुर) और पुंड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) ही रह जाते हैं, जहाँ सरहपाद की जन्मनगरी राज्ञी रही होगी। कामरूप (असम) का उल्लेख करते पूर्व-दिशा के साथ कामरूप भी जरूर आता है।

राज्ञी बहुत बड़ा नगर नहीं रहा होगा। उसी के एक ब्राह्मण-परिवार में सरह का जन्म हुआ। उनसे एक शताब्दी पूर्व पैदा हुए वाण के राजसी वैभव को हम जानते हैं, जिसके घुमक्कड़ी जीवन में भी कवि, पंडित, कलाकार, संगीत-नृत्यकार, भिक्षु, परिव्राजक, वैद्य, तान्त्रिक, धूर्त, परिचारक आदि ४४ आदमियों की पलटन साथ रहती थी। सरहपाद का कुल वाण की तरह वैभवशाली था, इसे जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है, पर इतना हमें मालूम है, कि सातवीं-आठवीं सदी में अभी सामान्य तौर से ब्राह्मण अच्छी स्थिति में थे। उनमें विद्या का प्रचार था। बौद्ध और जैनधर्म ने ऊँच-नीच जाति (वर्ण)—व्यवस्था पर प्रहार किया था, जिससे नीच कुल में जन्मे होनहार पुरुषों के आगे बढ़ने का रास्ता निकल आया था, पर ब्राह्मणों को समुदाय के तौर पर आर्थिक हानि उठानी पड़ी हो, इसका हमें पता नहीं। पाल-वंश सदा बौद्ध रहा, पर उसके

प्रधान-मंत्री प्रायः ब्राह्म ही होते थे और साथ ही ब्राह्मण-धर्म के अनुयायी भी, जैसा कि एक पाल-महामंत्री के नारायण-मंदिर के निर्माण से मालूम होता था । उस समय, विशेषकर पूर्व (मगध आदि) में आस्तिक ब्राह्मणों के हृदय में भी बुद्ध और उनके शिष्यों, बोधिसत्त्वों के प्रति श्रद्धा थी, यह वाण के वर्णनों से मालूम होता है । यह भी नहीं कहा जा सकता, कि सरह का कुल बौद्ध था या ब्राह्मण-धर्मी । सरहको जहाँ सिद्ध और योगीश्वर कहा जाता है, वहाँ वही एक सन्त हैं, जिन्हें 'महान् ब्राह्मण' (तिब्बती—त्रम्.से.छेन्.पो) की उपाधि से विभूषित किया गया है । यह जातिवाद के खयाल से नहीं, बल्कि 'धर्मपद' में वर्णित ब्राह्मण-गुणों के धनी होने के कारण । अपने प्रसिद्ध 'दोहाकोश' के पहिले ही दोहा में उन्होंने ब्राह्मणवाद पर प्रहार किया है, इसलिए वह उसके पक्षपाती नहीं थे, इसमें सन्देह नहीं ।

उनके बाल्य और नवतारुण्य का भी हमें पता नहीं मिलता । 'होम-हार बिरवान के होत चीकने पात की उक्ति बालक सरह पर ठीक घटित होती रही होगी । वह असाधारण मेधावी थे, इसमें क्या शक हो सकता है ? मेधावी होने के साथ-साथ वह मस्तिष्क से प्रकृतिस्थ नहीं थे, जिसका अर्थ यह नहीं कि वह पागल थे । वह बचपन से ही ऐसे थे, इसे नहीं कहा जा सकता । बाज वक्त प्रतिभाओं में इस तरह के लक्षण पीछे प्रकट होते हैं, जब कि दुनिया को देख लेने पर उसका रोब उनके हृदय से दूर हो जाता है, और वह सभी प्रकार की रूढ़ियों को निस्सार समझ खुल्लमखुल्ला बगावत करने लगते हैं । आगे के जीवन को देखने से भी सरह को आरंभ में प्रकृतिस्थ प्रतिभावान् ही मानना पड़ेगा । संभव है, बाल्य काल में उनकी शिक्षा-दीक्षा अपने नगर में ही हुई । यदि उनका कुल बौद्ध नहीं था, तो उनका अध्ययन ब्राह्मणों की तरह घर पर या किसी ब्राह्मण गुरु के पास हुआ । उन्होंने अपने वेद के साथ व्याकरण, कोश, काव्य का अध्ययन किया होगा । फिर उनकी न तृप्त होनेवाली जिज्ञासा उन्हें किसी बौद्ध विद्वान् के पास ले गई होगी । यदि उनका कुल जन्मना बौद्ध रहा, जो उस समय असंभव नहीं था, तो उनके सीधे बौद्ध-संघ में सम्मिलित होने में कोई दिक्कत नहीं थी । श्रद्धालु माता-पिता अपने पुत्र—कभी-कभी एकलौते पुत्र—को भी प्रव्रजित करके संघ का दायद

बनाना चाहते थे, जैसा कि राजा अशोक ने किया था । जैसे भी हो, नालन्दा में अध्ययन के लिए सरह पीछे पहुँचे होंगे । अत्यन्त कम अपवादों के साथ नालन्दा में उन्हीं छात्रों को प्रवेश मिलता था, जो कि वहाँ की द्वार-परीक्षा में उत्तीर्ण होते थे । यह परीक्षा काफी कठिन होती थी । परीक्षा में उत्तीर्ण होने-भर की योग्यता प्राप्त करके सरह ने नालन्दा की ओर प्रस्थान किया होगा ।

बाल्य-नाम क्या था, यह हमें नहीं मालूम, पर सरह या सरहपा के नाम से प्रख्यात होने से पहिले उनका नाम राहुलभद्र और सरोज (सरोरुह) वज्र भी था । भिक्षु-नाम संभवतः राहुलभद्र ही था, सरोजवज्र वज्रयान से संबंध प्रकट करने के लिए हुआ गया । राहुलभद्र के कौन प्रथम उपाध्याय और आचार्य थे, इसका पता कैसे लग सकता है, जब कि उन्होंने अपने सत्-गुरु को भी नाम लेकर कहीं याद नहीं किया, यद्यपि उनके प्रति सम्मान प्रकट करने में पीछे नहीं हैं । नालन्दा में रहते उनके एक अध्यापक हरिभद्र थे । हरिभद्र धर्मकीर्त्ति (वाण के वृद्धसमकालीन) के समान शान्तरक्षित के शिष्य थे । वह दर्शन और प्रमाणशास्त्र के अपने समय के महा-पंडित थे । शान्तरक्षित भोट. सम्राट् खिस्रोड दे. चन् (७५५-८० ई०) के के बुलाने पर तिब्बत गये और उन्होंने वहाँ के प्रथम संघाराम सम्.ये को ७७६-८० ई० (दूसरी परम्परा के अनुसार ८२३-८३५ ई०) में बनवाया । ७९३ ई० के करीब तिब्बत में ही इस अद्भुत विद्वान् तथा अपने परोपकारमय जीवन के कारण आज भी तिब्बत में बोधिसत्त्व के नाम से प्रसिद्ध पुरुष की मृत्यु सौ वर्ष की आयु में हुई । इस प्रकार शान्तरक्षित का जन्म ६९३ में हुआ था । संभवतः उनके जीवन-काल में ही राहुलभद्र सरहपा बन चुके थे ।

सरहपाद के काल के बारे में यहाँ कुछ कहना जरूरी है । वह शान्तरक्षित-शिष्य हरिभद्र के विद्यार्थी रह चुके थे और हरिभद्र राजा धर्मपाल (७७०-८१५ ई०) के समय मौजूद थे । सरहपा भी धर्मपाल के समकालीन थे, पर साथ ही यह भी मालूम है, कि सरह के शिष्य शबरपा के शिष्य लूइपा राजा धर्मपाल के कायस्थ (सचिव या लेखक) थे । अपने राजा के साथ वह वारेन्द्र (पूर्वी बंगाल) में थे, जब लुई सिद्ध शबरपा के घनिष्ठ संपर्क में आ राजा से आज्ञा ले गृहत्यागी बने । इससे मालम होता है,

उस समय सरहपा का देहान्त हो चुका था, जिसके कारण उनके शिष्य शबर को सर्वोपरि सिद्ध माना जाने लगा था। लुईपा—भूतपूर्व राज-कायस्थ-असाधारण पुरुष थे, यह इसीसे मालूम होगा, कि गणना में तृतीय (सरह 7 शबर 7 लुई) होने पर भी सिद्धों की सूची में वह सिद्ध नम्बर एक हैं। यदि लुईपा धर्मपाल के अन्तिम समय ८०० ई० के करीब मौजूद थे, तो सरहपा की मृत्यु ७८० के करीब शायद हो चुकी थी।

राहुलभद्र कितने ही सालों तक नालन्दा में पहले विद्यार्थी पीछे अध्यापक के तौर पर रहे। वह बौद्ध-शास्त्रों को पढ़ाते रहे होंगे। कविता की ओर उनकी स्वाभाविक रुचि जरूर रही होगी, पर बौद्धधर्म ने अस्वधोष (ईसा की प्रथम शताब्दी) और उनके समकालीन मातृचेत, तथा कुछ पीछे के आर्यशूर को पैदा करने के बाद कविता के क्षेत्र को छोड़कर प्रमाणपटुता को अपना लक्ष्य बना उसमें ही परम सफलता प्राप्त की। तो भी जो थोड़े-से संस्कृत श्लोक सरहपाद के मिलते हैं, उनमें कवित्व का अभाव नहीं है। उदाहरणार्थ—

“या सा संसारचक्रं विरचयति मनःसन्नियोगात्महेतोः

सा धीर्यस्य प्रसादाद् दिशति निजभुवं स्वामिनो निष्प्रपञ्चः ।

तच्च प्रत्यात्मवेद्यं समुदयति सुखं कल्पनाजालमुक्तं,

कुर्यात् तस्यांघ्रियुमं शिरसि सविनयं सदगुरोः सर्वकालम् ॥”

—बौद्ध गान ओ दोहा, पृष्ठ ३

और भी मधुर यह पद्य—

“तनुतरचित्ताङ्कुरको विषयरसैर्यदि न सिच्यते शुद्धैः ।

गगनव्यापी फलदः कल्पतरुत्वं कथं लभते ॥”

—वही, पृष्ठ ४

इसमें सरहपाद ने शुद्ध विषय-रस के सेवन पर जोर दिया है। इसी भाव को और स्पष्ट करते वह कहते हैं—

“येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः ।

तेनैव विषतत्त्वज्ञो विषेण स्फुटयेद् विषं ॥”

—वही, पृष्ठ, ७५

सिद्धचर्या की ओर पैर बढ़ाने से पहले राहुलभद्र ने शास्त्रों के अध्ययन के साथ काव्यों का अवगाहन किया होगा। यद्यपि कवि पैदा करने की प्रवृत्ति बौद्ध-विद्यापीठों में नहीं देखी जाती थी, बल्कि उनकी उसकी

और कुछ उपेक्षा ही थी, यह इससे स्पष्ट है, कि चन्द्रगोमी अपने चान्द्र व्याकरण के लिए जितने प्रसिद्ध हैं, उतने अपने काव्य-ग्रंथों के लिए नहीं। उनका 'लोकानन्द' नाटक तिब्बती में अनुवादित होने के कारण बच रहा है, नहीं तो वह उनकी और काव्य-कृतियों के साथ लुप्त हो गया होता। यह नहीं माना जा सकता, कि 'लोकानन्द' ही चन्द्रगोमी की आदिम और अन्तिम कृति रही होगी। सामान्य शास्त्रों के अध्ययन में बौद्ध सांप्रदायिक नहीं थे। पाणिनि का वह बहुत सम्मान करते थे, और एक समय बौद्ध ही पाणिनि-व्याकरण के महान् आचार्य माने जाते थे। 'काशिका' (पाणिनि-वृत्ति) को बौद्ध-कृति माना जाता है। पतंजलि के 'महाभाष्य' के बाद पाणिनि-वैयाकरण का सबसे प्रौढ़ प्राचीन ग्रंथ 'न्यास' तो महान् नैयायिक और, महावैयाकरण जिनेन्द्रबुद्धि आचार्य की कृति है, जो बौद्ध थे। जिनेन्द्रबुद्धि ने न्यास की तरह ही दिङ्नाग के महान् ग्रंथ 'प्रमाणसमुच्चय' पर एक सुन्दर टीका लिखी है, जो अब तिब्बती-अनुवाद में ही प्राप्य है।

सरहपाद के सामने अश्वघोष के काव्य 'बुद्धचरित' और 'सौन्दर-नन्द', नाटक 'सारिपुत्रप्रकरण' और 'राष्ट्रपाल' मौजूद थे। गुणादय की 'बृहत्कथा', भास के नाटक, कालिदास की अमर कृतियाँ, प्रवरसेन के नाम से प्रसिद्ध पर कालिदास की प्राकृत-कृति 'सेतुबन्ध', दंडी भवंभूति के सुभाषितों का अवगाहन करना राहुलभद्र के लिए सुलभ और आवश्यक भी था, क्योंकि उनके बिना शिक्षा पूरी नहीं सम्झी जा सकती थी।

राहुलभद्र को ही सरहपाद के नाम से वज्रयान के प्रथम सिद्ध होने का गौरव प्राप्त है, पर उसका यह अर्थ नहीं कि मंत्रयान या वज्रयान का आरंभ उन्हीं से हुआ था। सिद्ध चौरासी सिद्धों से पहिले भी होते रहे। 'मृच्छकटिक' में (पाँचवीं सदी) मंत्रसिद्धि की बात ही नहीं, आश्चर्यवार्त्ता-सहस्रवाले श्रीपर्वत का भी उल्लेख है। सरहपाद से सौ साल पहिले हुए वाण हर्ष को सकल प्रणयिमनोरथसिद्धिः श्रीपर्वत कहते हैं। श्रीपर्वत नागार्जुन का निवास-स्थान रह चुका था। नागार्जुनीकोण्डा (जिला गुण्टूर, आन्ध्र) में प्राप्य विशाल ध्वंसावशेष बतलाते हैं, कि श्रीपर्वत किसी समय एक महान् बौद्ध-केन्द्र था। वहाँ से मिले अभिलेखों से निश्चित ही है, कि वर्त्तमान नागार्जुनी कोण्डा का ही पुराना नाम श्रीपर्वत था। सरह के समय से

पहिले ही श्रीपर्वत प्रसिद्धि पा चुका था । सरहपाद को भी उसने अपनी ओर आकृष्ट किया, और वह अक्सर वहाँ जाकर रहा करते थे । उनको सद्गुरु वहाँ मिले या और कहीं, इसका पता नहीं । वस्तुतः सिद्धचर्या का बौद्ध-इतिहास सरह तक जाकर अतीत के अन्धकार में विलुप्त हो जाता है ।

जैसे भी हो, एक दिन राहुलभद्र नालन्दा छोड़ बैठते हैं, और उसके साथ और बहुत-सी बातों को भी तिलांजलि दे देते हैं, जिसके लिए नालन्दा अस्तित्व रखता था । महायानी होते हुए भी नालन्दा में अशोक के समय से चली आती विनय-परंपरा मानी जाती थी । भिक्षु स्त्री-विरत रहते थे, बह मद्यपान नहीं कर सकते थे । उनके शरीर पर भिक्षुओं के चीवर अनिवार्यतया सदा बने रहते थे । राहुलभद्र को यह सारा बेकार का ढोंग मालूम हुआ । ढोंग समझ लेने पर वह अपने सम्मान-सत्कार की भी परवाह करने के लिए तैयार नहीं थे । कितने लोगों ने इसे सनक समझा होगा, पर सरह को उसकी भी परवाह थी नहीं । जैसा मैंने पहिले कहा, वह असाधारण मस्तिष्क के पुरुष थे । जिस समय उन्होंने यह महान् निर्णय किया, उस समय वह दूसरी भूमिका में पहुँच गये थे । उनकी जाग्रत और स्वप्न की अवस्थाओं की सीमा-विभाजक रेखा मिट गई । असाधारण प्रतिभा के साथ-साथ यह मानसिक स्थिति सरह ने पाई थी ।

अपनी खुली बगावत को और स्पष्ट करने के लिए उन्होंने शर-कार (वाण बनानेवाले) की एक लड़की अपने साथ रख ली और स्वयं भी सरकंडों का शर बनाने लगे, जिससे उनका नाम सरहा पड़ा । फिर भक्त लोगों ने अपनी श्रद्धा के प्रतीक शब्द 'पाद' को जोड़कर उन्हें सरहपाद कहना शुरू किया । आरंभ क्या, बाद में भी सनातनी बौद्ध और सुधारक बौद्ध उनका विरोध करते रहे, पर विरोधियों से उनके भगतों की संख्या और अधिक हो गई । उनके जैसे अन्तर और बाह्य से बिल्कुल खुले और निष्कपट पुरुष की नीयत पर तो कोई आक्षेप नहीं कर सकता था । छल और प्रपंच के लिए जिन उपायों का इस्तेमाल किया जाता है, वह उन्हें इस्तेमाल करने में असमर्थ थे । वह जमात से करामात नहीं करते थे, बल्कि अपनी महामुद्रा—शरकार-कन्या—के साथ अकेले विचारा करते थे । विचरण-भूमि में नालन्दा से श्रीपर्वत तक की भूमि तो अवश्य थी, हो सकता है, वह उत्तरी भारत के सारे भूभाग में विचरते हों ।

वह अपने विचारों का प्रचार करना चाहते थे । ध्यान के साथ करुणा पर भी उनका बहुत जोर है और करुणा विना ध्यान या शून्यता-योग को वह व्यर्थ समझते हैं। इस करुणा से ही प्रेरित होकर लोगों को अन्धेरे से बाहर निकालना चाहते थे । अपने दोहों के रचने में उनका केवल यही उद्देश्य रहा होगा, यह नहीं कहा जा सकता । उनके कितने ही पद्य मौज में निकले सहज उद्गार-से मालूम होते हैं। संस्कृत को नहीं, बल्कि साहित्यिक भाषा के तौर पर अभी अस्वीकृत अपभ्रंश को अपने भावों का माध्यम बनाना बतलाता है, कि अपने दूर के अनुयायी कबीर की तरह वह पंडितों से नहीं, बल्कि जन-साधारण से संबंध रखना चाहते थे ।

### §३. सरह की कृतियाँ

सरहरा केवल अपभ्रंश-पद्यों के ही रचयिता नहीं हैं, बल्कि कई संस्कृत-ग्रंथ—विशेषकर तंत्रों की टीकाएँ—उनके नाम की तिब्बती स्तन्-ग्युर में हैं । इन्हें उन्होंने अपनी किस स्थिति में लिखा था, यह कहना मुश्किल है, संभवतः वह आरंभिक अवस्था की कृतियाँ हों । ऐसी कृतियों की संख्या सात है—

नाम	स्तन्.ग्युर् के तंत्रों में स्थानपृष्ठ-पंक्ति अनुवादक
१. बुद्धकपालतंत्रपंजिका 'ज्ञानवती'	<u>१०४ख१-१५०क२</u> गयाधर/गि.य.जो.स्ल बडि
२. बुद्धकपालसाधन	<u>२२५ख३-२२६ख३</u> " "
३. बुद्धकपालमण्डलविधि	<u>२३०ख२-२४३ख५</u> " "
४. त्रैलोक्यवशंकरलोकेश्वरसाधन	<u>फु १६२ख२-१६३क६</u> अभयाकर/छल्.खिम्. ग्यल्. म्छन्
५. " "	<u>फु १६४क६-१६४क६</u> रत्नाकर/ "
६. त्रैलोक्यवशंकरावलोकितेश्वर-साधन	<u>मु ४६ख२-४७क७</u> अमोधवज्र/ब.रि.लो.च.ब
७. त्रैलोक्यवशंकरलोकेश्वरसाधन	<u>मु ८८क१-८८ख३</u> अग्रस.प.ग्यल्.म्छन्.

इनके अतिरिक्त यहाँ अनुवादित १६ अपभ्रंश की कविताएँ स्तम्भयुक्त संग्रह के तंत्र (ग्यद्) विभाग में संगृहीत हैं, जिनके सरह की कृति होने की बहुत संभावना है, विशेषकर वे, जिनमें सरह के स्वतन्त्र और फक्कड़ विचारों की छाप दीख पड़ती है। यह कृतियाँ निम्नलिखित हैं :

पद्य-संख्या

- |   |                 |  |
|---|-----------------|--|
| १. दोहाकोश गीति १३५-२०                  | वि. ७०ख५-७७क३   | ०  |
| २. दोहाकोश नाम चर्यागीति ३८-२           | शि. २६ख६-२८ख६   | ०  |
| ३. दोहाकोशोपदेश गीति ८०-१               | शि. २६ख६-३३ख४   | वज्रपाणि                                 |
| ४. क.ख.दोहा नाम ३३-०                    | शि. ५५ख३-५७ख२   | श्री वैरोचनरक्षित                        |
| ५. क.ख.दोहाटिप्पण ०                     | शि. ५७ख२-६५ख७   | श्री वैरोचनवज्र                          |
| ६. कायकोशामृतवज्रगीति १२४-०             | शि. १०६क२-११५ख४ | ०  |
| ७. वाक्कोशरुचिस्वरवज्रगीति ४७-२         | शि. ११३क२-११५ख४ | कृष्ण (नग्.पो.प)                         |
| ८. चित्तकोशाजवज्रगीति २५-२              | शि. ११५ख४-११७क२ | ”  |
| ९. कायवाक्चित्तामनसिकार ६०-०            | शि. ११७क३-१२२क३ | ”  |
| १०. दोहाकोश महामुद्रोपदेश ४३-२          | शि. १२क३-१२४क३  | वैरोचनरक्षित                             |
| ११. द्वादशोपदेशगाथा १६-३                | शि. १२४क७-१२५क३ | ०  |
| १२. स्वाधिष्ठानक्रम १६-०                | शि. १२५क३-१२६क६ | शान्तभद्र/<br>मं.वन्.छोस्.वर्            |
| १३. तत्वोपदेशशिखरदोहागीति का<br>२५-१    | शि. १२६ख-१२७ख१  | कृष्णपंडित                               |
| १४. भावनादृष्टिचर्याफलदोहागीति          | सि. ३क५-४क२     | ०  |
| १५. वसन्ततिलकदोहाकोश-<br>गीतिका ६-३०    | सि. ५ख२-६ख६     | ०  |
| १६. महामुद्रोपदेशवज्रगुह्यगीति<br>१३४-१ | सि. ५५ख७-६२क६   | कमलशील/स्तोन्. प.<br>सेङ्. गो. ग्यल्. पो |



सरह की अपभ्रंश की कृतियाँ दोहाकोश वा दोहा-गीति के नाम से प्रसिद्ध हैं। पर हम देखते हैं, कि उनकी सबसे अधिक प्रसिद्ध कृति “दोहा-कोश नाम चर्यागीति” में दोहों की अपेक्षा चौपाइयाँ अधिक हैं। इससे यही मालूम होता है, कि दोहा शब्द अभी अपने आज के अर्थ में रूढ़ नहीं हुआ था और उसका अर्थ दोहरी पंक्ति वाले छन्द से था। इसी तरह अभी अमरकोश के रहते भी ‘कोश’ शब्द केवल शब्दकोश के लिये इस्तेमाल नहीं होता था, इसीलिए यहाँ ‘दोहाकोश’ का अर्थ दोहासंग्रह मात्र था। प्राकृत की महान् कृति ‘गाथासप्तशती’ को पहिले ‘गाथा-कोश’ ही के नाम से पुकारा जाता था। इसमें शक नहीं कि दोहाकोश नाम का प्रचार सरह की इसी कृति द्वारा हुआ। उनकी चार कृतियाँ भिन्न-भिन्न नाम के दोहा-कोश हैं। तिब्बत में अब भी प्रचलित परंपरा के अनुसार सात दोहाकोश (दोहा. म्जोद्. बुदुन्) सिद्धचर्या और वज्रयानी योग के प्रेमियों के वेद माने जाते हैं। इनमें सरहपा, लुईपा, विरूपा, कण्हपा, तिलोपा आदि के कोश सम्मिलित हैं। तिब्बती भाषा में सप्तकोश पर बहुत बड़ा साहित्य है जिसके अध्ययन से सिद्धों के विचारों पर काफी प्रकाश पड़ सकता है।

## §४. सरह की परम्परा

जैसा कि ऊपर बतलाया गया, शबरपा सरह के प्रधान शिष्य थे, जिन्हें आदर से शबरेस्वर भी कहते हैं। शबर कहने से उन्हें आदिवासियों की सन्तान नहीं समझना चाहिए। सरहपा के दूसरे शिष्यों में जोगी, नागार्जुन और सर्वभक्ष भी थे। यह नागार्जुन यदि कोई ऐतिहासिक व्यक्ति थे, तो द्वितीय शताब्दी के माध्यमिक आचार्य नागार्जुन नहीं हो सकते, यद्यपि ऐसा करने के लिए उन्हें कई सदियों की आयु देने की कोशिश की गई है और इसीलिए उनकी ऐतिहासिकता—जहाँ तक सरहपाद के शिष्यत्व का सम्बन्ध है—संदिग्ध हो गई है। तिब्बती परंपरा ने आदि-सिद्ध सरहपाद को छठा सिद्ध नहीं बनाया, बल्कि जान पड़ता है, किसी पक्षपात के कारण प्रथम सिद्ध बनने का सौभाग्य सरह के प्रशिष्य भूतपूर्व राज-कायस्थ लूईपा को प्राप्त हुआ। बिहार-बंगाल के नालन्दा, विक्रमशिला और जगत्तला के महान् विहारों के तुर्कों द्वारा ध्वस्त कर दिये जाने पर

भारतीय संघराज शाक्यश्रीभद्र के साथ शरणार्थियों की जो मंडली तिब्बत पहुँची थी, उसमें शाक्यश्रीभद्र के शिष्य तथा अपनी भाषा (पूर्वी मैथिली) के कवि विनयश्री भी थे । विनयश्री तिब्बत के स.स्वय बिहार में बहुत समय तक रहे । शायद वह फिर लौटकर भारत नहीं आये । वहाँ एक बंडल से जो मूल्यवान् हस्तलेख मिले थे, उनमें विनयश्री के कितने ही स्वरचित गीतों के साथ सिद्धों का नामानुस्मरण भी था, जिसका शायद आज ही तरह गुरुपरम्परा के तौर पर पाठ किया जाता था । पाठ कुछ अधिक भ्रष्ट मालूम होता है, जिससे विनयश्री के हाथ का लिखा होने में सन्देह होता है । इस परम्परा में भी पहिला नाम लूईपा का मिलता है, जैसे :—

“लुइ (१) लीला (२) बिस्रमा (३) कमल (३०) कलक्कल (६८) चलणा ।  
कांकण (२६) कन्हदेव (१८) तं डोम्बि (४) वीणा (११) नाग (७६)  
हरणा । (१)

सिद्ध (च) लणो भावि रपभास र बान्दइ । धु ।

भाट (२४) भादे (३५) भुसुकु (४१) कोकिल (८०) जोगी (५३) बाज-  
पाचे । (२)

नीलप (४०) माथ विसुधो डेडकिपा (३१) असिष<sup>२</sup> धरि ।

मेखला (६६) सरह (६) सबर (५) तैलोत्रे (२२) कुक्कुरिपा (३४)  
अप सिद्धा । (३)

चन्द्रकिति भुअ-भुअ कि अन्ता पुण सरहे निबधा ।

चन्दण<sup>३</sup> किष्णपा (१७) आ माहिल (३७) वीर सम्बरा । (४)

सुगतभूषण धोकडि (४६) तान्ति (३३) धामधुम (३६) अवतारा ।

सहजो स कपिल थाकलि (१६) सब्बभक्ख (७५) विसेसे<sup>१</sup> । (५)

सान्ति (१२) चाटपा (५६) लक्षिम (८२) अनतिन (५८) सनल विसेसे ।

महिधर (५०) सुखमदेव कन्हपा (१७) जउडि (६४) विरड (३)

तीनी । (६)

चन्द्रभूति दुदुआ चन्द<sup>५</sup> राउल कोडकलं (६८) आहि ना ।

विर अचिन्त (३८) अधार्थी बज्ज-आड्ढकर कराली । (७)

दारिक (७७) गुडरि (५५) गगना (१६) डाक पभाकर काम्बलि (३०)

उडिआणावर घंटा (५२) कमलसिल निरासु । (८)

श्री जलन्धर (४६) नाग (?७६) बुद्ध भल दिलाहुं सुप्रसिद्ध ।

उडबिसि दास पभासर धारता सिद्ध । (९)

आर्यदेव (१८) नागार्जुन (२६) राउलें (४७) सिद्ध मेखला (६६) निवधा ॥

इस सूची में कुछ नाम ऐसे भी हैं, जो ८४ सिद्धों की प्रामाणिक सूची में नहीं मिलते । पर वह किसी की गुरु-परम्परा में हो सकते हैं, जैसे चन्द्रराहुल की पूरी सूची हम अन्यत्र (पुरातत्त्वनिबंधावली) में दे चुके हैं । यहाँ हम सिद्ध सरहपाद के शिष्य वंशवृक्ष को देते हैं, जिससे पता लगेगा कि आठवीं से ग्यारहवीं सदी ईसवी तक कौन-कौन-सी आध्यात्मिक विभूतियाँ पैदा हुई थीं—



इस वंश-वृक्ष के देखने से मालूम होगा कि गोरखनाथ—जिनका पंथ अब भी सारे भारत में फैला हुआ है—सरह>शबर>लुई>दारिक>घंटा जलंधर>मत्स्येन्द्र की शिष्य-परम्परा में थे। महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर भी सरह की परम्परा के ही थे, जैसे :

आदिनाथ ( जलंधर )> मत्स्येन्द्र> गोरख>गहनी> निवृत्ति नाथ> ज्ञानेश्वर। ज्ञानेश्वर और गोरखनाथ के बीच की कुछ पीढ़ियाँ छूटी मालूम होती हैं; क्योंकि गोरखनाथ राजा देवपाल (८१५-५४ ई०) के समकालीन थे और ज्ञानेश्वर १४ वीं सदी के।

## §५. कवित्व

सरह के समय में पहुँचते-पहुँचते संस्कृत और प्राकृत दोनों साहित्यों का मध्याह्न बीत चुका था। अश्वघोष, भास, कालिदास के काव्य नाटक अब तक प्रसिद्ध हो साहित्यानुरागियों के प्रेम-भाजन बन चुके थे। सुबन्धु, दंडी और वाण—जैसे महान् गद्यकार कवि भी हो चुके थे। भामह और दंडी—जैसे उद्भट साहित्य-मीमांसक भी उस समय तक प्रसिद्धि पा चुके थे। प्रवरसेन की “कीर्त्ति” भी सागरस्य परं पार चली गई थी। सरहपाद पहिले संस्कृत के महापंडित के तौर पर नालन्दा में प्रसिद्ध हुए थे। उन्होंने इन काव्यनिधियों का अच्छी तरह अवगाहन किया था। वह चाहते तो अपने समय की शिष्ट सरणी का अनुसरण करते, उच्च समाज में एक सफल कवि के तौर पर ख्याति प्राप्त कर सकते थे। पर उन्होंने शिष्ट साहित्य की जगह लोक-साहित्य का अनुसरण करना पसन्द किया, और अपने मन से यह भाव निकाल दिया, कि कभी मैंने उन ग्रंथों का अध्ययन किया था। उनकी कविता में शास्त्र-सम्मत गुणों का अभाव नहीं है। उपमा का वह अक्सर सुन्दर प्रयोग करते हैं। उनके दोहाकोश ‘चर्या-गीति’ (२) के तो एक-एक पद में उपमाएँ भरी-पड़ी हैं। अफसोस है, सरह की इस अनमोल कृति को अभी मूल-भाषा में नहीं पाया गया, और उसके तिब्बती अनुवाद से ही हमें सन्तोष करना पड़ेगा। इसमें उन्होंने जो उपमाएँ दी हैं, उनमें से कुछ हैं :

(१) जैसे जलधर सागर से जल लेकर पृथिवी पर फैलाता है। (५)

- (७) जैसे सागर का खारा जल जलधर के मुख में पड़ मीठा हो जाता है (११)
- (३) बिजली के घोष को छोड़ पानी बरसता जाता है। (१२)
- (४) जैसे फूल के भीतर की मधु को मधुमक्खी ही जानती है। (१४)
- (५) जैसे दर्पण के रूप को अन्धा नहीं समझता। (१५)
- (६) फूल की गंध का रूप नहीं होता, तोभी वह प्रत्यक्ष सर्वत्र व्याप्त है। (१६)
- (७) कीचड़ में पड़ा उत्तम रत्न अपनी चमक को प्रकाशित नहीं करता। (२८)
- (८) जैसे बीज से अंकुर होता है, अंकुर के कारण टहनियाँ होती हैं।
- (१०) जैसे ब्राह्मण घृत और तंडुल से प्रज्वलित अग्नि में होम करता है। (२३)

यद्यपि इच्छा होने पर उन्होंने उपमाओं का इतना सुन्दर प्रयोग किया है, पर वह बहुत कम और एकाध ही कृतियों में। सरह ने अपनी कविता में कुछ नई मान्यताएँ स्थापित कीं, जिनका पता उनसे पहिले नहीं मिलता, यद्यपि उनका अस्तित्व लोक-काव्य में रहा होगा। यही मान्यताएँ गोरख, कबीर, नान्हक, दादू आदि सभी सन्तों में पाई जाती हैं। यही आगे चलकर सन्त-काव्य की कसौटी बन गई। इनमें व्यंग्योक्तियाँ, उलटवासियाँ भी शामिल हैं। सरह कविता करना अपना ध्येय नहीं समझते थे। वह नया संदेश देना चाहते थे, जिसका जिक्र हम आगे करेंगे। स्मरण करने की सुविधा के लिए जिस तरह उस समय नाना शास्त्रों पर ग्रंथ श्लोक या कारिका में लिखे जाते थे, उसी तरह उन्होंने भी अपने विचारों को लौकिक छन्दों में गूँथा। वल्कि सरह के बारे में यह भी कहना ठीक नहीं प्रतीत होता। सरह आज की भाषा में अब्नार्मल प्रतिभा के धनी थे। मूड आने पर वह कुछ गुनगुनाने लगते। शायद उन्होंने स्वयं इन पदों को लेखबद्ध नहीं किया। यह काम साथ रहनेवाले सरह के भक्तों ने किया। यही कारण है, जो दोहाकोश के छन्दों के क्रम और संख्या में इतना अन्तर मिलता है। सरह जैसे पुरुष से यह आशा नहीं रखनी चाहिए, कि वह अपनी धर्म की दूकान चलायेगा, पर, आगे वह चली, और खूब चली, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। ८०० से कुछ ऊपर के 'दोहों' के मूल-रूप

में आये बिना हम उनकी कविता का पूरा मूल्यांकन नहीं कर सकते । वह मूल में अब न मिल सकेंगे, ऐसा मैं नहीं समझता, अब भी उनमें म कितने ही तिब्बत में मिलेंगे, यह मेरी धारणा है ।

दोहा कोश-गीति में भी उपमाओं का प्रयोग सरह ने किया है, यद्यपि चर्यागीति जितना नहीं:—

- (११) अप्पा परहि ण मेलविउ, गमणागमण ण भोग्ग ।  
तुस कुट्टन्ते काल गउ, चाउल हत्थ ण लाग्ग । (५४)
- (१२) अण्ण तरंग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरूअ ॥ (७६)
- (१३) जत्तइ पइसइ जलहिं जलु, तत्तइ समरसु होइ ॥ (७८)
- (१४) सुअणं जिम वरकामिणि माणिउ । रइ-सुह तहिं पच्चक्खहिं समाणिउ ।  
(१०७)
- (१५) जिम-जल-मज्झें चन्दडा, णउ सो साच्च ण मिच्छ ।  
तिम सो मण्डल-चक्कडा, णउ हेडइ णउ खित्त ॥ (११८)
- (१६) जिम जलेहिं ससि दीसइ च्छाआ । तिम भवे पडिहासइ सअलवि माआ  
(१३०)

कबीर की उलटवासियाँ मशहूर हैं, पर इसका भी आरंभ हम सरह में पाते हैं । 'दोहाकोशगीति' के कुछ उदाहरण देखिये—

- (१) वद्धो धावइ दस दिसाहि, मुक्को णिच्चल ट्ठाअ ।  
एमड करहा पेक्ख सहि, विवरिअ मह पडिहाअ ॥ (२६)
- (२) आग्गे आच्छअ बाहिरे आच्छअ । पइ देक्खअ पडवेसी पुच्छअ (६९)

रहस्योक्तियाँ तो सरह की होनी ही चाहिए; क्योंकि वह मूलतः रहस्यवादी विचारक हैं । इनके श्लेष परमपद-परक होने पर भी साधारण क.मुकताओं को भी प्रकट करते हैं, जिसके कारण पीछे वह घोर वामाचार के सहायक बन गये । उनका निम्न गीत बहुत सुन्दर है, भाव में और काव्य-गुण में भी—

ऊँचा-ऊँचा पाबत तहिं वसइ सबरी बाली ।  
मोरङ्गी पिच्छि प(हि)रहि सबरी गीवत गुजरी माला ।  
ऊमत सबरो पागल सबरो, मा कर गुली-गुहाडा ।  
तोहारि णिअ धरिणी सहज सुन्दरी । ध्रु.।

पाणा तरुवर मौलिल रे, गअणत लागेलि डाली ।  
 एकली सबरी ए वन हिण्डइ, कर्णकुंडल वज्रधारी ।  
 तिअ धाउ खाट पडिला सबरो, महःसुह सेज्जि छाइली ।  
 सबरो भुजंग णइरामणि दारी, पेक्ख(त) राति पोहाइली ।  
 हिए ताबोला महासुहे कापुर खाई ।  
 सून निरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाई ।  
 गुरु वाक पुंछआ बिन्ध णिअ मणे वाणें ।  
 एके शर-सन्धानें बिन्धह, बिन्धह परम णिवाणें ।  
 उमत सबरो गरेआ रोषे,

गिरिवर सिहर सन्धि पइसन्ते, सबरो लोडिब कइसं ।

ऊँचे-ऊँचे पर्वत पर शबर-बालिका बैठी है, जिसके सिर पर मोर-पाँख और ग्रीवा में गुंजा की माला है । उसका प्रिय शबर प्रेम में उन्मत्त पागल है । “ओ शबर, तू हल्ला-गुल्ला मत कर । तेरी अपनी (निज) गृहिणी सहज सुन्दरी है । उस पर्वत पर नाना प्रकार के तरुवर फूले हुए हैं, जिनकी डालियाँ गगन से लगी हुई हैं । कान में कुंडल-वज्र धारे शबरी अकेली इस वन में घूम रही है । दौड़कर खाट पर महासुख-सेज पर शबर पड़ गया । शबर भुजंग (विट) और नैरात्म्य (शून्यता) वैश्या (दारी) को देखते रात बीत गई । हृदय तांबूल को महासुख-रूपी कपूर (के साथ) खा, शून्य नैरात्मा को कंठे लगा महासुख में रात बीत गई । गुरु-वचन पूछकर निज मन-रूपी बाण से वेध—एक ही शर-सन्धान से वेध-वेध परम निर्वाण को ।

इसके अधिक भाग में शबरी बालिका उसके तरुण प्रेमी शबर तथा उनके मनोहर पर्वत-वन-निवास का सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन है । यदि कुछ विशेष सांकेतिक शब्दों पर ध्यान न दिया जाय, तो यह एक शृंगारी कविता है । हरेक पाठक उन सांकेतिक शब्दों की ओर ध्यान देने के लिए मजबूर भी नहीं है । यहाँ शबरी से सन्तों और सरह के यहाँ भी सुरति (तल्लीनता) अभिप्रेत है । उसका प्रेमी शबर साधक है । बुद्ध के मुख्य सिद्धान्त—जो है, वह सब क्षणिक है—के अनुसार जगत् और उसके किसी पदार्थ के अन्तस्तल में भी कोई नित्य पदार्थ—आत्मा या ब्रह्म—निहित नहीं है । सभी आत्म-रहित निरात्मा या नैरात्म्य, नइ-रामणि है । उसी नैरात्म्य तत्त्व-शून्यता को साक्षात् करना है । उसी



‘णइरामणि दारी’ का भुजंग हरेक साधक विलासी को बनना है। उसका साक्षात्कार महासुख की अनुभूति है, जिसे योगी ध्यानमग्न हो प्राप्त करता है।

### § ३. सरह के विचार

#### १. धर्म

सरह विद्रोही थे। राजनीतिक विद्रोही नहीं, विचारों की दुनिया के विद्रोही और कितने ही अंगों में सामाजिक विद्रोही भी। उन्होंने अपने ‘दोहाकोश-चर्यागीति’ के पहिले १२ दोहों में अपने समय के धार्मिक संप्रदायों और उनके विचारों का खंडन किया है। “अदि नग्न रहने से मुक्ति हों, तो कुत्ते और सियार भी मुक्त हो जायेंगे। मोर-पंख ग्रहण करने से यदि मोक्ष हो, तो मोर और चमर भी मुक्त हो जायेंगे। शिला चुगकर खाने से यदि ज्ञान हो जाये, तो करि और तुरंग भी ज्ञानी हो जायेंगे। इन्हीं भावों को और करीब-करीब सरह के शब्दों में ही, छ शताब्दियों बाद कबीर ने कहा—

का नांगे का बाधे चांम । जौ नहि चीन्हसि आतम राम ।  
नागें फिरे जोग जे होई । वनका मृग मुकति गया कोई ।  
मुंड-मूंडाये जौ सिधि होई । स्वर्गहि भीड़ न पहुँची कोई ।

(कबीर-ग्रंथावली, पृष्ठ १३०)

अपने समय के कितने ही मूढ़ विश्वासों का—जिनमें से बहुतेरे बारह सदियों बाद आज भी उसी तरह प्रबल हैं—खंडन सरह ने जैसे किया है, उसके नमूने लीजिए—

मंत्र-तंत्र खंडन—

किन्तहि दीपे किं णेवेज्जे । किन्तइ किज्जइ मन्तह भावें । (१२)

मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण । सब्बवि रे बढ, विबुभमकारण । (३४)

शास्त्र को सरह ने मरुस्थल कहा है, जिसकी भूल-भूलैया में पड़कर आदमी निकल नहीं सकता—

गुरु-वअण-अमिअ-रस, धवडि ण पिबिअउ जेहिं ।

बहुसात्ताथ-मरुत्थलेहिं, तिसिअ मरिबुबो तेहिं ॥ (४४)

और पंडितों की खबर लेते कहते हैं—

पंडिअ सअल सत्थ वक्खाणअ । देहि बुद्ध वसन्त ण जाणअ । (७४)  
छूत-छात और भक्षाभक्षय के कठोर नियमों की निस्सारता बतलाते कहते हैं ।

जइ चण्डाल-घरें भुंजइ, तअवि ण लग्गई लेउ । (११२)

## (१) साधु होना बेकार

घरहि म थक्कु म जाहि वणे, जहि तहि मण परिआण ।

सअलु णिरन्तर बोहि—ठिअ, कहि भव कहि णिबवाण ।

णउ धरे णउ वणें बोहि ठिउ, एहु परिआणहु भेउ ।

णिम्मल चित्त-सहावता, करहु अविकल सेउ । (बाग० १०३, १०४)

घर में न रहो न वन में, सब जगह तो निरन्तर बोधि (परमज्ञान) स्थित है, फिर कहाँ भव (संसार) और कहाँ निर्वाण ? न घर में बोधि (परमज्ञान) है न वन में । इस भेद को अच्छी तरह समझ लो । चित्त का निर्मल होना असली बात है, उसका बराबर सेवन करो ।

इन्द्रिय-संयम के सरह पक्षपाती हैं, पर उसके चरम रूप को नहीं पसन्द करते । उन्होंने कहा है—

विसआसत्ति म बन्ध करु, अरे वढ सरहें वुत्त ।

मीण-पअङ्गम करि भमर, पेक्खह हरिणह जुत्त । (बाग० ७१)

रस-रूप-स्पर्श-गंध-शब्द के लोभ में पड़कर मीन, पतंग, भ्रमर, हाथी, और हरिन नष्ट होते हैं, इस प्रमिद्ध उपमा को देकर वह संयम का पाठ पढ़ाते हैं ।

## (२) सहज जीवन

सरह की सबसे बड़ी देन जो है, वह है, सहज या नैसर्गिक जीवन पर जोर देना । सहजवाद के वह प्रथम आचार्य हैं, इसलिए उनके पन्थ को सहजयान भी कहते हैं । यह उल्लेखनीय बात है, कि अन्य कितनी बातों की तरह यह वाद कबीर के पास भी पहुँचा, यद्यपि तब कबीर के जन्म-देश में एक भी बौद्ध या सहजयानी नहीं रह गया था । कबीर कहते हैं—

अब मैं पाइबो रे पाइबो ब्रह्मगियान ।

सहज समाधें सुख में रहिबो, कोटि कलप विश्राम ।

कबीर साहेब चौरासी सिद्ध शब्द से अपरिचित नहीं थे। उन्होंने कहा है—

धरती अरु असमान विचि, दोइ तूबडा अबध ।

षट दरसन संसै पड़्या, अरु चौरासी सिद्ध ॥ ५३६

वही, पृष्ठ ५४

पर उन्हें नहीं मालूम था, कि चौरासी सिद्धों में प्रथम सरहपा थे, जिनके बीसियों भावों को कबीर ने ले लिया है। सरह कहते हैं—

ज्ञाण-हीण पबबज्जें रहिअउ । गही वसन्तें भाज्जें सहिअउ ॥ (१८)  
ऐसे ध्यान और साधुवेष से रहित भार्या-सहित घर में रहते ज्ञानी कबीर स्वयं थे ।

सरह फिर कहते हैं—

खाअन्तें पीवन्तें सुरअ रमन्तें । आलिउल बहलहो चक्क फरन्तें ॥

एवहि सिद्धि जाइ परलोकह । माथे पाअ देइ भुअलोक (४८)

सहज-जीवनका निर्देश करते वह कहते हैं—

देखउ सुणउ पईसउ सादूदउ । जिग्घउ भभउ वईसउ उट्ठउ ॥

आलमाल बवहारें बोल्लउ । मण च्छुडु एकाआरें मम चलउ ॥

चिन्ताचित्तवि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बाल ॥ (६३, ६४)

स्पष्ट है, कि सरह जीवन के भोगों को त्याज्य नहीं मानते। हाँ, उनमें आसक्ति त्याज्य है। उपनिषद् के सन्तों ने उनसे डेढ़ हजार वर्ष पहिले ज्ञानी को 'बाल्येन तिष्ठासेद्' का उपदेश दिया था। सरह भी कहते हैं, 'वैसे रहो जैसे बालक रहता है'। आसक्ति और छल-पात्रांड के जीवन के वह विरोधी थे। इमे उन्होंने आजकल के कितने ही महात्माओं की तरह दूकान चलाने के लिए नहीं इस्तेमाल किया, बल्कि वह स्वयं वैसे जीवन बिताते थे। उनके साथ शर बनानेवाले की कन्या रहती थी, यह पहिले बतला आये हैं। भिक्षुओं के चीवर के साथ उनके नियमों का उन्होंने प्रत्याख्यान कर दिया था। उनका कहना था—

विसअ रमन्त ण विसअहिं लिप्पइ । उअअ हरन्त ण पाणी च्छुप्पइ । (७१)

विषयों में रमण करते विषयों में लिप्त न हो। पानी निकालते हुए पानी को न छूये।

जइ जग पूरिअ सहजाणन्दे । णाच्चहु गाअहु विलसहु चंगे ॥ (१३६)

जगत् सहज आनन्द से भरा हुआ है । नाचो, गाओ, अच्छी तरह विलास करो ।

आज के लिए भी सरह के ये विचार विद्रोही मालम होंगे, फिर आज से बारह सौ वर्ष पहिले के आचार और निवृत्ति-प्रधान भारतीय भद्र समाज के लिए यह कितनी कड़वी घूँट साबित हुई होगी, इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है ।

## २. योग (समाधि)

आज भी योग-ध्यान के पीछे लोग पागल दीखते हैं । सरह के समय भी—  
‘ज्ञानं मोहिम्न सञ्जलवि लोम्न ।’ (ध्यान पर सभी लोग मोहित) थे । सरह स्वयं योगी नहीं योगीश्वर थे । उन्होंने ध्यान-समाधि का बहुत अभ्यास किया था, और उसके संबंध में फैले हुए भ्रमों को जानते थे । उन्होंने मूढ़ योगियों के योग को काष्ठयोग कहते सावधान किया है—

“पवण धरिम्न अप्पाण म भिन्दह । कट्टु जोइ णासग्ग म वंदह ॥” (९३)  
श्वास रोककर या नासाग्र में चित्त को लगाकर योगी चमत्कार दिखलाता है । पर, चित्त की एकाग्रता से आदमी ऐसी चीजों को भी देखने लगता है, जो उसके चित्त की सृष्टि है ? इस प्रकार वह आत्म और पर-बंधना करता है । चित्त, मन और विज्ञान बौद्ध परिभाषा में एक ही चीज के नाम हैं । चित्त की अपार शक्ति को सरह मानते थे और उसके स्वरूप को समझ लेना परम पुरुषार्थ मानते थे । चित्त के संबंध में उन्होंने कहा है—

चित्तेक सञ्जल बीम्न भव-णिब्बाणा जम्म विफुरन्ति ।

तं चिन्तामणिरुम्भं, पणमह इच्छाफलं देइ । (२३)

संसार और उसका निरोध निर्वाण दोनों चित्त से ही स्फुरित होते हैं । चित्त सबका बीज है । वह चिन्तामणि-रूप है । उसकी सेवा करो, वह इच्छा फल प्रदान करेगा ।

मन या चित्त को मुक्त करना ही परम कर्तव्य है—

वज्झइ कम्मेण जणो, कम्म-विमुक्केण होइ मण मुक्को ।

मण-मोक्खेण अणुअरं, पाविज्जइ परमणिब्बाणं ॥ (२४)

आदमी कर्म से बंधन में पड़ता है । कर्म से मुक्त होने पर मन मुक्त

हो जाता है, और फिर तुरन्त ही परमनिर्वाण पा जाता है । फिर कहते हैं—

चित्ते बद्धे बज्जइ मुक्के मुक्कइ णत्थि सन्देहो । (६१)  
जबर्दस्ती चित्त को कावू में नहीं रखा जा सकता ।

एहु णिअ मण तुरंग सुचंचल । मेलहिं सहाव ट्ठाअ दो-णिम्मल ॥ (६४)  
इस चंचल तुरंग-मन को उसके स्वभाव पर छोड़ देने में वह निर्मल हो स्थिर हो जाता है ।

चित्तिहिं चित्त जइ लक्खण जाइ । चंचल मण पवण थिर होइ (जाइ) ॥  
( १२० )

सरह ने अपने योग और आचार का अत्यन्त संक्षेप करते करुणा और शून्यता (नैरात्म्य, नैरामणि) पर जोर दिया है । यह दोनों वस्तुएँ अलग-अलग नहीं अभ्यास में लाई जा सकतीं । दोनों एक-दूसरे से घनिष्ठतया संबद्ध (युगनद्ध) होनी चाहिए, तभी वह कार्यकर होती हैं ।

करुणारहिअ जो सुण्णणिं लग्गा । णउ सो प वई उत्तिम मग्गा ॥ (६६)

अहवा केवल करुणा साहअ । (जम्मसहस्सहिं मोक्ख ण पावअ) ।

जइ पुणु वेण्णवि जोडण सक्कअ । णउ भव णउ णिब्बाणें थाक्कअ ॥ (१६, १७)

सुण्ण तरुवर फुल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त ॥

अण्णा भोअ परत्त फलु, एहु सोक्ख परु चित्त ॥ (बाग० १०८)

सरहपाद अद्वय तत्त्वशून्यता के अभ्यासी थे, साथ ही सबके ऊपर अपार करुणा रखनेवाले थे । हिन्दी के आधुनिक सरह निराला सहज योगी हैं, शून्यता और नैरात्मा के वाद से उन्हें कोई मतलब नहीं, पर उनमें भी अपार करुणा है । किसी को दुःखी देखना उनकी सहन-शक्ति से बाहर की बात है । जाड़ों में अपने चाहे ठिठुरते रह जायें, पर दूसरे को देख वह अपनी रजाई उसे उड़ा आर्येंगे । ऐसे बेबसी के जीवन को सरह पसन्द नहीं करते, जिसमें किसी दुखिया की सहायता न की जा सके । वह कहते हैं—

जो अत्थीअण ठीअउ, सो जइ जाइ णिरास ।

खण्डसरावें भिक्ख वरु, च्छ(१)डहु ऐ गिहवास ॥

परउअर ण कीअउ, अत्थि ण दीअउ दाण ।

एहु संसारे कवण फलु, वरु छड्डहु अप्पाण । (बाग० १११, ११२)

यदि अर्थी जन निराश चला गया, तो ऐसे गृहवास से टूटा मृत्पात्र ले भीख माँगना अच्छा । दान और पर-उपकार के विना इस संसार में रहने का क्या फल ? इससे तो जीवन छोड़ देना बेहतर है ।

### (१) अपने पराये का भेद छोड़ना

जाव ण अप्पउं पर परिआणसि । ताव कि देहाणुत्तुर पावसि । (६७)  
आत्म और पर का भेद मिटाना साधक का परम कर्तव्य है ।

### (२) सहज योग

ऋद्धि, सिद्धि का लोभ छोड़ सहज भावना कल्याणकारिणी है ।

सहजें, सहज वि बुज्झइ जब्बें । अन्तराल गइ तुट्टइ तब्बें ।

रिद्धि-सिद्धि हलें वेण्णि न काज्ज । पाप-पुण्य तर्हि पाइहु बाज्ज ॥ (८२, ८३)

जगतको 'जगु सहात्रें सुद्ध' (१०१) मानते, कहते थे—

जग उपपाअणे दुक्ख बहु, उप्पण्णउ तर्हि सुह-सार । (१०३)

जग में उत्पन्न होने से यदि दुःख बहुत है, तो सुख का सार भी वही है । जग को सहजानन्द से पूरित बतला उन्होंने कहा—नाचो, गाओ, विलसो (१३६) और यह भी कि—

मुक्कउ चित्तगेएन्द करु, एत्थ विअप्प ण पुच्छ ।

गअण गिरि णइ -जल पिअउ, तर्हि तड वसउ सइच्छ । (बाग. १००)  
चित्त-रूपी गजेन्द्र को मुक्त कर दो । इसमें पूछ-पाछ न करो । गगन (शून्य)-रूपा गिरि नदी के जल को पीके उसके तट पर उसे स्वच्छन्द बैठने दो ।

ऋजुमार्ग यही सहज मार्ग है, जिसमें जीवन को अपने नैसर्गिक रूप में बिताना पड़ता है ।

उजु रे उजु छाड्डी मा लेहु रे बंक । णिअहि वोहि मा जाहु रे लाडक ॥

वाम दाहिण जो खाल-विखाला । सरह भणइ वपा उजु बाट भाइला ॥

—'बौद्ध गान ग्रो दोहा' (पृष्ठ ४८)

सरह अपने मार्ग को दोनों चरम-पंथ से भिन्न मध्य का बतलाते हैं । सहज शब्द उन्होंने बुद्ध की मध्यमा प्रतिपद् के लिए ही इस्तेमाल किया है, हाँ, उससे कुछ अन्तर रखते ।

## ( ३ ) चन्द्र-सूर्य-साधना

सन्तों के भावना-मार्ग में चन्द्र-सूर्य या इडा-पिंगला की साधना आती है। सरह से पहिले की योग-क्रियाओं में इसका जिक्र नहीं आता, संभवतः यह सरह की ही सूझ और अभ्यास के परिणाम हैं। वह कहते थे—

चन्द-सुज्ज घसि घालइ घोट्टइ । सो आणुत्तर एत्थु पइट्टइ ॥ ( ३५ )

अध-उद्ध माग्गवरें पइसरेइ । चन्द सुज्ज बेइ पडिहरेइ ॥

वञ्चिज्जइ कालहुतणअ गइ । वे विअार समरस करेइ ॥ ( ५७ )

चन्द्र और सूर्य भावना-रंघ्रों को वह बाधक समझते हैं। उन दोनों को छोड़-ऊपर अनुत्तर सर्वोत्तम मार्ग पर पहुँचना है। सरह की बताई इस भावना के अभ्यास करनेवाले योगी तिब्बत में आज भी मौजूद हैं। हमारे आज के भारत में सरह का नाम हाल में ही कुछ सुनाई पड़ने लगा है, पर तिब्बत में वह आज भी अतिपरिचित और पूज्य मार्गदर्शक हैं।

## ३. दर्शन ( प्रज्ञा )

सरह का यान सहजयान या वज्रयान महायान का आगे क विकास है—जहाँ तक कि उसके दर्शन का संबंध है। इसलिए, असंग के योगाचार और नागार्जुन के माध्यमिक (शून्यवाद) से उसका संबंध होना स्वाभाविक है। शून्यता—सभी भौतिक अभौतिक पदार्थों का किसी भी नित्य सार से रहित होना—को उन्होंने अपनी योग-भावना का पर्याय माना है। करुणा तथा शून्यता भावना के युगनद्ध रूप में ही परम पुरुषार्थ की प्राप्ति मानी है। योगाचार (क्षणिक विज्ञानवाद)-दर्शन का आलय-विज्ञान मूल तत्त्व है। वैभाषिक, सौत्रान्तिक दोनों हीनयानी बौद्ध-दर्शन द्वैतवादी हैं। वैभाषिक या सर्वास्तित्वादी (और स्थविरवादी भी) रूप (भूत) और विज्ञान (चेतना) दोनों तत्त्वों को मानते हैं। सौत्रान्तिक बाह्य पदार्थ (रूप) पर अधिक जोर देते हुए भी विज्ञान का अपलाप नहीं करते, इस लिए दोनों ही द्वैतवादी हैं। माध्यमिक अन्तर और बाह्य सभी पदार्थों को सार(नित्यतत्त्व)-शून्य मानते हैं, और एक कदम और आगे बढ़कर रूप और विज्ञान के अस्तित्व के परस्पर सापेक्ष होने से उनके स्वतन्त्र अस्तित्व को क्षणिक भी मानने के लिए तैयार नहीं हैं, इसलिए उन्हें न द्वैतवादी कहा

जा सकता, न अद्वैती ही। योगाचार एक ही विज्ञान (चेतना) तत्त्व के वास्तविक होने को स्वीकार करते हैं, हाँ, वह नित्य नहीं बल्कि क्षणिक प्रवाह रूपेण सनातन है। इस प्रकार वह अद्वैतवादी हैं। सरह स्वयं अद्वैत तत्त्व की महिमा गाते हैं, इससे मालूम होता है, कि उनका झुकाव योगाचार-दर्शन की ओर अधिक है। मायावादियों के घटाकाश और महाकाश की तरह योगाचार-दर्शन भी विज्ञान को वैयक्तिक विज्ञान और महाविज्ञान के रूप में विभाजित करता है। वैयक्तिक विज्ञान को वह प्रवृत्ति-विज्ञान कहते हैं, तथा महाविज्ञान को आलय-विज्ञान। विश्व के सभी दृश्यादृश्य पदार्थ जिसके परिणाम हैं, वह सर्वत्र-व्यापी अ-भौतिक तत्त्व आलय-विज्ञान है। वह समुद्र की तरह है, जो अपने क्षणिकता के स्वभाव के कारण हर वक्त तरंगित रहता है। यही तरंगें प्रवृत्ति-विज्ञान हैं, जिन्हें रूप या अरूप स्थिति में हम देखते या प्रत्यक्ष करते हैं। योगाचार-दर्शन के प्रवर्तक असंग के अनुज वसुबन्धु ने “धीची-तरंग-न्यायेन तदुत्पत्तिः” भी आलय-विज्ञान से कही है। सरह कहते हैं—

“आलय तर उमलइ, हिण्डइ जग च्छाच्छन्द ।” (१३५)

वसुबन्धु ने आलय-विज्ञान को समुद्र बतलाया और सरह ने उसे स्वच्छन्द हिलने-डोलनेवाला तरुवर। स्वच्छन्द विशेषण उन्होंने यों ही नहीं दिया है, उससे उनका अभिप्राय है, आलय या संसार के मूल तत्त्व को चालित करनेवाली कोई दूसरी शक्ति (ईश्वर) नहीं है, बल्कि उसकी गति स्वच्छन्द—औटोमेटिक—है। शुरु से आज तक बौद्ध अनीश्वरवादी और अनात्मवादी हैं, यह सभी जानते हैं।

## (१) मूल तत्त्व

मूल तत्त्व आलय-विज्ञान को योगाचार-दर्शन की तरह ही सरह मानते हैं। पर, वह उसे एक रहस्यमय रूप देना चाहते हैं, जिसमें निर्वाण-तत्त्व की पुरानी कल्पना सहायक हुई है। कर्म के बन्धन से छूटा मुक्त मन निर्वाण-प्राप्त माना जाता है। निर्वाण मन की ऐसी स्थिति है, जिसमें वह भव (संसार)-बन्धन—कर्मपाश—से छूट गया रहता है। इसी निर्वाण की स्थिति को वह और रहस्यमय बनाते हैं। तत्त्व या वास्तविकता उनके यहाँ मूल-रहित है—

मूल-रहिअ जो चिन्तइ तात्त । गुरु आएसह एत्त वियात्त ॥ (२८)



इसीको दूसरे शब्दों में कहा—

सुण्णवि अप्पा सुण्ण जगु, घरे-घरें एहु अक्खाण ।

तरुवर-मूल ण जाणिआ, सरहेहि किअ बक्खाण ॥ (५६)

शून्य और आलय दोनों के प्रतिपादन करनेवाले सरह योगाचार-माध्यमिक ही हो सकते हैं, जिनमें उनका अधिक जोर शून्य-निरंजन पर है, यह हम आगे देखेंगे ।

## (२) माया

परमपद को उन्होंने मायामय बतलाया है, जिससे माया उनके सामने सुतुच्छ नहीं मालूम होती ।

बुद्धि विणासइ मण मरइ, तुट्टइ जहं अहिमाण ।

सो माआमअ परमपउ, तहि कि बज्जइ ज्ञाण ॥ (६१)

बुद्धि-मन की पहुँच से बाहर वह परमपद मायामय है ।

## (३) भाव या अभाव नहीं

भावाभावे वेणि न काज्ज । अन्तराल ट्ठिअ पाडहु बाज्ज ।

तत्त्व को न सद् कह सकते हैं, न सत्तारहित । बीच की स्थिति भी वह छोड़ डालने को कहते हैं । और भी—

भावाभावे जो परिच्छिण्णउ । त(हिं) जगतिअ सहाव विलीणउ । (६६)

परिच्छिन्न की जगह 'परिहीण' पाठ ठीक जान पड़ता है । भाव और अभाव से जो परिहीन या परिच्छिन्न है, उसी तत्त्व में सारी दुनिया विलीन है ।

भव (संसार) और निर्वाण को एक बतला सरह ने निर्वाण के आकर्षण को कम कर ऐहिक जीवन के मूल्य को बढ़ाया, इसीलिए भोगों को त्याज्य नहीं, ग्राह्य ठहराया तथा जगत् को सहजानन्द-पूरित मानने पर जोर दिया—“भव-णिब्बाणे किम्पि ण दूरा” (१६१) अथवा ‘मुक्कावधि जं सअल जगु, णाहि णिबद्धो कोवि’ (८०) । बंधन का भय दिखला आतंकित कर निर्वाण के पीछे पागल करने की जो प्रवृत्ति धर्मनायकों में देखी जाती थी, उसकी व्यर्थता को बतलाकर सरह ने लोगों को निडर करना चाहा । न जगत् को, न देह को उन्होंने गन्दा कहा, बल्कि ऐसे विचरों का विरोध करते कहा—“जगु सहावहिं सुद्ध” (१०१) और—

एथु से सरसइ सोबणाह, एथु से गंगासाअरह ।  
 वाराणसि पआग एथु, सो चान्द-दिवाअरह ।  
 खेत पिट्ठ उअपिट्ठ एथु, मइ भमिअ समिट्ठउ ।  
 देहा-सरिस तित्थ, मइ सुणउ ण दिट्ठउ ॥ (६६? ६७)

वह परस्पर-विरोधी बात नहीं कहते—कभी देह को गन्दगी का पनाला और कभी कुछ दूसरा । उनके विचार में देह सबसे बड़ा पवित्र तीर्थ है । इसीके भीतर सरस्वती, सोमनाथ, गंगासागर, बनारस, प्रयाग, क्षेत्र, पीठ, उपपीठ हैं । सरह के समय में भारत के जो पवित्र तीर्थ थे, उनके नाम यहां गिनाये गये हैं । सोमनाथ को अभी महमूद गजनवी ने नष्ट-भ्रष्ट नहीं किया था, और वह एक प्रमुख तीर्थ था । पीछे चार धामों की महिमा बढ़ी, जिन में से सोमनाथ को निकाल दिया गया—महमूद के प्रहार का यहाँ तक प्रभाव पड़ा ।

#### (४) मुक्ति और परमपद

मुक्ति सरह की दृष्टि में स्वतः सिद्ध वस्तु है । शंकराचार्य ने भी परमार्थ में यही माना है; क्योंकि जीव की कल्पना मिथ्या है, परमार्थ में एक-मात्र ब्रह्म ही सत्य है । सरह ने ब्रह्म या किसी सनातन एकरस तत्व को नहीं माना, न जगत् के भोगों को झूठा और त्याज्य कहा । जगत् की क्षणिक, किन्तु मूल्यवान् स्थिति को स्वीकार करते उन्होंने जगत् के महत्त्व को कहा और नकद को छोड़ उधार या प्रत्यक्ष को छोड़ परोक्ष के पीछे दौड़ने को मूर्खता बतलाया । उनकी दृष्टि में परमपद मन की एक विशेष अवस्था है—

जहि मण मरइ, पवणहो तहि लग्न जाइ ।

एहु सो परम महासुह, सरह कहिहउ जाइ । (३०)

मन की शंकायुक्त स्थिति हट जाने पर उसकी चंचलताओं के मिट जाने पर परम महामुख की स्थिति आती है । उस स्थिति को और स्पष्ट करते कहते हैं :—

जहि मण पवण ण संचरइ, रवि-ससि णाहि पवेस ।

तहि बढ चित्त विसाम कर, सरहें कहिअ उऐस ॥ (४६)

आइ ण अन्त ण मज्झ तहि, णउ भव णउ णिव्वाण ।

एहु सो परम महासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥ (५१)

अगुणों पच्छें दस दिसें, जं जं जोअमि सोवि । (५२)

परमपद—परम महासुख आदि-अन्त-मध्य-रहित है । न उसे संसार कहा जा सकता, न निर्वाण । उसमें अपना और पर का भेद नहीं । आगे-पीछे दसो दिशाओं में जहाँ देखें, वहीं-वही है । इस वर्णन में शंकर-वेदान्त में प्रतिपादित मोक्ष का आभास मिलता है । यद्यपि सरह शंकर के सम-सामयिक हैं, पर उनका अद्वैतवाद नागार्जुन (ईसवी दूसरी सदी) और असंग (ई० चौथी सदी) से चला आता था । सरह से दो-तीन सदियों पहिले हुए गौडपाद बौद्ध विचारों से प्रभावित हैं । गौडपाद शंकर के गुरु गोविन्दपाद के गुरु बतलाये जाते हैं, पर गौडपाद कारिका के सुयोग्य संपादक महामहोपाध्याय श्री विभुशेखर भट्टाचार्य ने इसे अमान्य ठहराते गौडपाद को शंकर से दो शताब्दी पहिले का माना है । एक ही स्रोत से निकले सरह और शंकर के निर्वाण-मोक्ष में इतनी समानता स्वाभाविक है ।

### (५) शून्य-निरंजन

परमपद को सरह ने पहिले-पल लोकभाषा में शून्य निरंजन कहा । वह शून्यवाद के माननेवाला थे, इसलिए उनका ऐसा कहना ठीक था आश्चर्य तो यह है, कि पीछे के सन्त शून्यवाद से बिल्कुल अपरिचित थे, तो भी सरह का धुमाया धर्मचक्र इतना प्रबल था, कि सन्त लोग उसके प्रवाह में बहे बिना नहीं रहे । सरह ने कहा—

सुण्ण णिरंजण परमपउ, सुइणो(अ)माअ सहाव ।

भावहु चित्त-सहावता, णउ णासिज्जइ जाव ॥ (१३८)

परमपद शून्य और निरंजन है —उपनिषद् ने भी 'निरंजनं परमसाम्यमुपैति' से ब्रह्म (परमपद) का निरंजन होना स्वीकार किया है । सरह ने उते स्वप्नोपम स्वभाव का माना है, जब कि ब्रह्मवादी उते वैसा नहीं मानते । मन की चंचलता जबतक नष्ट न हो जाये, तबतक चित्त के इस स्वभाव की भावना करने को कहा, और बतलाया ।

अक्षर-वण्ण-विवज्जिअ, णउ सो विन्दु ण चित्त ।

एहु सो परम महासुह, णउ फेडिय णउ खित्त ॥ (१४१)

चित्त (नाद) और विन्दु से जो नहीं है, जो अक्षर-वर्ण-विवर्जित है, वह परम महासुख है, जो न त्याज्य है, न ग्राह्य । परमपद के समझाने के

लिए सरह ने बहुत कहा है, पर उसका समझना अपार श्रद्धा रखनेवाले व्यक्ति के लिए ही साध्य है। सौभाग्य से ऐसे श्रद्धालुओं से हमारी भारत-मही विहीन नहीं है।

### (६) सरह की अन्तिम विचार-परंपरा

सरह के अनुयायी आज भी तिब्बत में भारी संख्या में मौजूद हैं। सन्तों ने बहुत-सी सरह की बातें ले ली हैं, यह भी सत्य है। इसलिए, कहा जा सकता है, कि सरह की परम्परा भारत से अब भी उन्च्छिन्न नहीं हुई है। पर, जो अपने आद्य-मार्गदर्शक का नाम भी नहीं जानते, उन्हें सरह का अनुयायी कैसे कहा जा सकता है? सरह के वंश में ८४ सिद्ध हुए, यह हम बतला आये हैं। अन्तिम सिद्ध कालपा (२७) और कुठालिपा (४४) ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुए। इसका अर्थ यही हुआ, कि चौरासी की संख्या कालपा पर पूरी हो जाने से आगे सूची बन्द कर दी गई। सिद्ध बाद में भी होते रहे, यह काशि-कन्नौज के स्वामी गहड़वार जयचन्द्र के गुरु जगन्मित्रानन्द के होने से सिद्ध है। भारत से बौद्धधर्म—जो कम-से-कम विचारों में सरहका अनुसरण करता था—जिस समय नष्ट होने जा रहा था, उस समय भी सिद्धों की तरह के लोक-कवि होते थे। विनयश्री का नाम हम पहिले ले चुके हैं। वह विज्रमशिला, जगत्तला के तुर्कों द्वारा नष्ट कर दिये जाने पर अपने गुरु तथा भारत के संघराज शाक्यश्रीभद्र के साथ १२०३ ई० में तिब्बत पहुँचे। यदि शेष जीवन वहीं नहीं रहे, तो कितने ही वर्षों तक वह वहाँ जरूर रहे। उन्होंने कितने ही भारतीय ग्रंथों के तिब्बती भाषा में अनुवाद करने में सहायता की। वह अपने साथियों और गुरुभाइयों—विभूतिचन्द्र, दानशील, सुगतश्री आदि—के साथ कितने ही वर्षों तक स.स्क्य विहार में रहे, जहाँ उनके हाथ के लिखे कितने ही पत्रे लेखक को मिले। सुगतश्री ने अपने आश्रयदाता अग्स्. प. ग्यल्. म्छन् (कीर्तिध्वज) की श्लोकों में स्तुति की थी, जिसकी मूल संस्कृत प्रति वहाँ मुझे मिली। विभूतिचन्द्र और दानशील की पोथियों की तरह वहीं विनयश्री के कितने ही गीतों को—जो उनके ही हाथों से लिखे गये मालूम होते हैं—पाया। यह गीत इसीलिए अपना महत्त्व नहीं रखते, कि यह सिद्धों की टक्साल के हैं, बल्कि इनकी भाषा वही मालूम होती है, जो १२ वीं-

१३वीं सदी में विक्रमशिलावाले प्रदेश (भागलपुर जिले) में बोली जाती थी। विनयश्री के एक पद में आया—‘गेल्लिअहुं’ शब्द आज भी वहाँ इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

विनयश्री १२०३ ई० में तिब्बत में जब पहुँचे, तो उनकी आयु ३५ साल से कम की नहीं होगी। भारत में रहते ही उन्होंने कविता करने का अच्छा अभ्यास कर लिया था। तिब्बत में पहुँचने पर उनका कोई महत्त्व न था, यह इसीसे मालूम होगा, कि जहाँ सुगतश्री—रचित कीर्त्ति-ध्वज-यशोवर्णन तिब्बती में अनुवादित हो आज भी ‘स्तन्.ग्धुर्’ संग्रह में मौजूद है, वहाँ विनयश्री के गीत यदि तालपत्र पर लिखे मुझे न मिलते, तो शायद ही वह आज प्रकाश में आते—पुजारी ने उन्हें काटकर प्रसाद बाँटने के लिए रख छोड़ा था। गीतों की संख्या १४ से अधिक नहीं है, जिन्हें परिशिष्ट में दिया गया है। यह तो निश्चित ही है, कि विनयश्री जैसे प्रौढ़ कवि ने इतने ही गीत नहीं बनाये होंगे। सरह की रहस्यवादी भाषा में वह परमतत्त्व का वर्णन करते हैं—

निमूल तरुवर डाल न पाती ।

निभर फुल्लिल्ल पेडु विआती ॥

भणइ विनयश्री नोखौ तरुवर । फुल्लेए करुणा फलइ अणुत्तर ।

करुणा मोदें सएलवि तोसए । फल-सर्पा(र)तएँ से भव नासए ॥

से चिन्तामणि जे जइ सबासए । से फल मेलए नहिए सांसए ।

वरगुरु भत्तिएँ चित्त पवोही । तहि फल लेहू अणुत्तर बोही ॥३॥

गेल्लिअहुं गिरिसिहर रि जानें । तहि झंपाविल्ल कलि के अन्ते । ध्रु.।

हल कि करमि सहिएँ एकेल्लि । बिसरे राउ लेल्लइ पेल्ली ।

तहि झंपइ ट्ठेल्लि हेरुअ मेले । विमअ सिलइल्लि मा छाडिअ हेले ।

भणइ विनयश्री वरासु-वएणे । नाह न मेल्लअ रे गमणे ॥४॥

सरह ने तत्त्व को मूल-रहित कहा है, उसी को विनयश्री ने निमूल तरुवर कहा है। करुणा का फूल फूलना और अनुत्तर (सर्वोत्तम निर्वाण) का फल लगाना भी सरह की बातों का ही शब्दान्तर है। गिरिशिखर में गया या गई (गेल्लिअहुं) की सरह के गीत ‘ऊँचा-ऊँचा पावत’ में छाया मिलती है। सरह या सिद्ध-परंपरा के ये पद हैं, इसे कहने की अवश्यकता

नहीं है । विनयश्री की भाषा १२ वीं सदी के उत्तरार्द्ध की भाषा है, जो अपभ्रंश होते भी अब अधिक आधुनिक भाषा की ओर झुकी थी । सरह की तथा दूसरी भी पुरानी अपभ्रंश कृतियों में भूतकाल के लिए इल प्रत्यय का प्रयोग नहीं मिलता । जहाँ उसका प्रयोग देखा जाता है, वह पीछे लिखे हस्तलेखों में लेखकों द्वारा किये गये परिवर्तन के कारण ही । पर, यहाँ विनयश्री के अपने हस्तलेख में फुल्लिल्ल, गेल्लिल्ल, झंपाविल्ल-जैसे इल-प्रत्ययान्त शब्द मौजूद हैं, जिनका इस्तेमाल आज भी भोजपुरी, मगही, मैथिली, बँगला में प्रायः वैसा ही होता है । पाली के बाद प्राकृत के काल में व्यंजनों का स्वरों में जो परिवर्तन हुआ, वह अपभ्रंश-काल में भी वैसा ही रहा । और तरुवर की जगह तरुअर को ही हम सरह के दोहाकोश की अपनी पुरानी प्रति में पाते हैं । पर यहाँ विनयश्री तरुवर लिखकर प्राकृत-अपभ्रंश की चरम विकारवाली व्यंजन स्थाने स्वर की परम्परा को छोड़ तत्सम रूप की ओर लौटते देखते हैं । शायद यह इस तरह का सबसे पुराना प्रथम उदाहरण है । यही नहीं, अपने नाम में कवि इस बात का और भी अनुसरण करता है । प्राकृत-अपभ्रंश के नियम के अनुसार उसे अपना नाम विनअसिरि लिखना चाहिए था, पर वह उसकी जगह शुद्ध तत्सम-रूप विनयश्री को इस्तेमाल करता है । सभी गीतों में विनयश्री ही लिखा गया है, इसलिए यह जान-बूझकर किया गया है । परन्तु, सभी जगह संस्कृत-तत्सम या पालि-तत्सम (जिसमें भी व्यञ्जन स्थाने स्वर नहीं होता) का प्रयोग नहीं किया गया है, जिससे पता लगता है, अभी बारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इस प्रवृत्ति का आरंभ ही हुआ था ।

## १४. सरह की भाषा

### शब्द-कोश-व्याकरण

दोहाकोश की भाषा में लिपिकों ने समयानुसार सुधार करने की कोशिश की । इसके कारण भिन्न-भिन्न हस्तलेखों में अन्तर आता गया । यह हमें डाक्टर बागची-संपादित दोहाकोश और हमारे इस स.सक्य के हस्तलेख के मिलाने से मालूम होगा । वैसे जान पड़ता है, तत्कालीन अपभ्रंश में

देश-भेद से शायद ही कहीं अन्तर आता था । दोहाकोश में व्याकरण के सारे प्रयोग नहीं आये हैं ।

## १. उच्चारण-प्रक्रिया

### (१) वर्णमाला

उस समय की भाषा की वर्णमाला में हमारी आज की वर्णमाला के कुछ अक्षर नहीं थे, साथ ही कुछ उच्चारणों के लिए हमारी नागरी में आज अक्षर मौजूद नहीं हैं । स्वरों में ऋ, लृ, ऐ, औ का अभाव था, और व्यंजनों में श, ष का । उस समय और आज की हमारी भाषा—विशेषकर लोक-भाषा—में ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ थे, पर उसके लिए कोई अक्षर नहीं थे । द्रविड़ भाषाएँ इस विषय में ज्यादा सौभाग्यशाली हैं । अपभ्रंश में निम्न स्वरों और व्यंजनों का प्रयोग होता था, जिसमें स जान पड़ता है, श का भी काम देता था—

### स्वर

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ओ

### व्यञ्जन

क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ । ट ठ ड ढ ण ।

त थ द ध न । प फ ब भ म । य र ल व स ह ।

य का उच्चारण भी ज की तरह किया जाता, और व तथा ब में भेद नहीं रक्खा जाता था, जैसा बँगला में आज भी होता है ।

ह्रस्व स्वर को भी छन्दोभंग न होने के लिए दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व बोला जा सकता था ।

### (२) परिवर्तन

संस्कृत की तुलना से अपभ्रंश में जिस प्रकार लोप, आगम, विकार होते थे, उन्हें आगे दिया जाता है । लोप-आगम-विकार अपभ्रंश और प्राकृत में प्रायः एक-से ही होते हैं, इसीलिए कितने ही लोग व्याकरण में इसके नवीन-भारतीय आर्य-भाषाओं के वर्ग में होने पर भी इस प्राकृत-

बाले मध्य-भारतीय आर्य-भाषा-वर्ग में गिनते हैं।

संस्कृत की तुलना में हमारे स.स्कय हस्तलेख के अपभ्रंश में निम्नलिखित भेद मिलते हैं—

(क) लोप—

अ. अहम् > हउं (७५)

इ. इच्छ > चाह (८७)

ः निःसार > निसार (७२)

त. जगत् > जग (२५)

स्. स्नेह > जेह (८९)

(ख) आगम—

क्. लिख > लिक्ख (१५), एक > एक्क

च्. छेद > च्छेअ (७४), च्छुवद् (७१), च्छाडाहु (९७)

ट्. ठाकी जगह ट्ठाइ (३१), ट्ठाअ (७४)

ड. चित्त > वित्तडा (७८)

ण्. विहीन > विहून > विहुण्ण (७४), अन्य न > अण्ण ण > अण्णण (१४)

ब्. ब्. एव > एब्ब (३५), मोक्ष-वास > मोक्ख-ब्वास (६०)

(ग) विकार—

अ > आ, अन्तर > आन्तर (१३५)

अन > आण, अनुत्तर > आणुत्तर (३५)

अपि > उ, अद्द्य अपि > अज्ज अउ > अज्जउ (५८), तद् अपि > तउ

अपि > वि, अन्योपि > अण्यवि (५)

आ > अ, आगमन > अमण (३८)

अव > ओ, लवण > लोण (४६)

अय > ऐ, अयं हि > ऐहु (५९)

इय > इज्, ईअ, क्रियते कीअइ

ईय > इज्ज, दीय > दिज्ज (७२)



- उ>वु, उक्त>वुत्त (१६), उच्यते वुच्चञ् (३८)  
 ऋ>रि, ऋद्धि>रिद्ध (८३)  
 एय>इजूज, विलेय>विलिज्ज (४६)  
 ओ>उ, नो>णउ (१६)  
 „>अत्र, कोनु>कवणु (१०३)  
 क>अ, सकल>सअल (२३)  
 „>ह ख क शुक>सुनह (८५)  
 का>आ, आकाश>आआस (३३)  
 का>ऐ, चित्रकर>चित्तएर (८१)  
 „>ल, उदक>उअल (७१)  
 कु>उ, अरिकुल>अरिउल (४५)  
 कु>अ, कुरु>करु (६४)  
 क्त>त्त, उक्त>वुत्त (१६), अनुरक्त>अनुरत्त (७३), मुक्त>मुक्क (६१)  
 क्ष>क्ख, यक्ष>जक्ख (८१), राक्षस>राक्खस (७३), मोक्ष>मोक्ख (८)  
 क्षे>ख, क्षेपण>खबन, क्षय>खअ (६२)  
 कद>के, कदली>केलि (१४६)  
 क्ष>छ, क्षोर>छार (३)  
 क्त>त्ति, प्रसक्ति>पसत्ति  
 क्षे>खे, क्षेत्र>खेत्त (६६)  
 ग>अ, भगवा>भअवा (२) गगने>गअणे (७०)  
 गृ>घे, गृह्णाति>घेप्पइ (१२३)  
 गी>ई, योगी>जोइ (७१)  
 गन्>ग्ग, नान्>णागल (५), लग्न>लाग् (१७)  
 ग्र>ग, ग्रहण>गहण (८)  
 घृ>घो, घृष्ट>वेट्ठ (३५)  
 ध>ध्ध, जिघ्र>जिःव (६३)  
 ख्या>क्खा, व्याख्यान>क्खाण (११)  
 ख>ह, सुख>सुह (२०)

चं>अ, अनुचर>अणुअर(२४), लोचन>लोअण(३१), वचन>बअण(४४)  
कृष्य>कख, उद्दीकष्यते>उअकेखइ (६२)

चि>इ, अचिन्त>अइन्त (१२१)

च्य>च्च, अवाच्य>अवाच्च (४२), उच्यते>वुच्चअ (३८)

ज>अ, बीज>बीअ (२३), भोजन>भोअण (८) निज>णिअ (१६),

जा>आजाल>आल (८४)

जे>ए, गजेन्द्र> गएन्द्र (१३२)

जे>उ राजा>राजो>राउ (१२१)

ज>ण्ण, विज्ञान>विण्णाण (१३१), आज्ञप्त>आणत्त (७६)

ज्ञ>ज, ज्ञान>जाण (८)

ज्ञ>ञ्ज, प्रज्ञ>पञ्ज (१०६)

ट>ड, जटा>जड (३)

टि>ड, कोटि>कोडि (१३१)

ट्य>ड्ट, ऋट्यति>तुड्टइ (६१)

ण>न, कोण>कोन (४)

त>अ, रहित>रहिअ(६), सुरत>सुरअ(४८), रसातल>रसाअल(६०)  
उत्पद्य>उअज्ज (६२)

त>ड, पात>पाड (३६),

ति>इ, लाति>लेइ (५३), आनयति>आणेइ (५३), युवती>जुबइ(७)

ति>डि, प्रति>पडि (२६)

तु>उ, चतुर्थ>चउत्थ (१)

तो>उ, ग्राहितो>गाहिउ (४२), कथितो>कहिउ (६७)

तु>उ, सेतु>सेउ (६६)

तू>ति, तूषित>तिसिअ (४४)

त्त>ण्ण, दत्त>दिण्ण (३७)

त्ति>त्त, उत्तम>उत्तिम (१७)

न>अण, रत्न>रअण (८५)

त्प>प्प, उत्पादन>उप्पाअण (१०२)

त्प>अ, उत्पद्य>उअज्ज (६२)

त्प>व, उत्पद्य>उबज्ज (२०)

त्म> प्प, आत्मा>अप्प (६,२८)

त्य>च्च, प्रत्यक्ष>पच्चक्ख (१०६), मृत्यु.मिच्चु (१५४), सत्य.सच्च (१४)

त्र>त्थु, यत्र>जत्थु (१०४), अत्र>एत्थ (२७,६५), यत्र>जेत्थु (४०),

”

यत्र>जत्थु (१०४)

त्र> थ, अत्र> एत्थु (६५)

त्र>त, स्वतन्त्र>स्वतंत (११), मंत्र> मत्त (१३)

त्र>ह, तत्र>तंह (१३)

त्र>त, त्रय>तइ (१२३)

त्रि>ति, त्रिभुवन>तिहुअण (५०)

त्रु>तु, त्रुद्यति>तुट्ठइ (६१)

त्व>त्त, तत्त्व>तत्त (६) तात्त (२८), सत्त्व>सत्त (७३)

”> तु, त्वं हि>तुहु (१४८)

थ>ह, अथवा>अहवा (१७)? (१६०), कथानक>कहाण (१३१), कथ्य,

कहिज्ज>(६२)

”>ठ, प्रथम>पढम (३३)

थि>हि, कथि>कहि (६७)

थ्य>च्छ, मिथ्या> मिच्छा (११६)

द>अ, पाद>पाअ (१५), उदक>उअल (७१) खादति>खाअ (६०)

खादति>खाअत्ते (४८)

द>उ, भेद>भेउ (१) परमपद>परमपउ (१३६)

द>व, उद्देश>उवेस (२)

द>बुब, तदा>तबुब (३२) यदा>जबुब

दय>अ, हृदय>हिअ (३६) छेद>छेअ (७४)

द>दि, दत्त>दिण्ण (३७)

दपि>बिभ्र, तदपि>तबिभ्र (११०)

दि>इ, आदि>आइ (१४६),

दू>ई, कीदृश>कीस (३७, १२२)

दू>दि, दृष्टि>दिट्ठि (८) दृढ>दिढ (६४)

दू>दी, दृष्ट>दीस (३७)

दू>रि, सदृश>सरिस (६६)

दे> ऐ, पादे>पाअे (३७), आदेश>आएस (२८)

दध>ज्झ, सिद्ध>सिज्झ (२०), बुद्ध>बुज्झ (२०), शोद्ध>सोज्झ

(५६) बाध्य>बाज्झ (७१), सिद्ध>सिज्झ (१२६)

द्व्य>ज्ज, वाद्य>बाज्ज (२४), उत्पद>उवज्ज (२०), अद्यपि>अज्जउ

(५८), अद्य>अज्ज (६२)

द्वा>हु, द्वा>हुई (७४)

द्व>बे, द्वावपि>बेणवि (१७), वेवि (१३१),

द्वि>द्द, शूद्र>सुद्द (६४)

द्र>दि, इन्द्रिय>इन्दी (२६)

ध>ह, साध>साह (६), विविध>विविह (३६)

ध्य>झ, ध्यान>झाण (१६) मध्य>मज्झ (५१)

ध्ये>घे, ध्येय>घेअ (४३)

न>ण, नग्गल>णग्गल (५),

ध>द, निबन्धन>णिबन्दण (१४४)

न्य>ण्ण, अन्यो>अण्णु (१०), शून्य>सुण्ण (१७),

न्म>म्म, जन्म>जम्म (१६)

नि>णि, निश्चल>णिच्चल (३१), निर्वाण>णिब्बाण (१२, १७)

ना>णु, विना>विणु (३६)

प>अ, रूप>रूअ (२३, ८१)

प>फ, पाश>फान्द (१३४)

प>इ, स्वप>सुइ (१२४)

- प > व, दीप > दीवा (४), अपरे > अवर (११), प्राप > पाव (१७)  
अपर > अवर (४७)  
पा > आ, उपाय > उआय (३२)  
पि > इ, कोपि > कोइ (११)  
पु > उ, निपुणत्व > णिउत्त (२८)  
पृ > पु, पृच्छ > पुच्छ (२६)  
 „ > प, पृष्ठे > पच्छे (५२)  
प्य > प्य, लिप्य > लिप्प (७१)  
प्त > त्त, आणप्त > आणत्त (७६)  
प्न > अण, स्वप्ने > सुअणे (१०६)  
प्त > त्त, समाप्तं > समत्तं (१०६)  
फ > ह  
फु > खु, फुसफुसाइ > खुसखुसाइ (४)  
ब्भ > द्भ, लब्भ > लद्ध (६०)  
ब्भ > व, ब्रह्मा > बम्हा (४७)  
ब्रा > वा, ब्राह्मण > बाम्हण (६४)  
भ > ह, भवन्ति > होन्ति (११२) स्वभाव > सहाव (२६)  
भ > हि, अभिमान > अहिमाण (३४), शोभित > सोहिअ (३६)  
भु > हु, त्रिभुवन > तिहुअण (५०),  
भ्य > भिअ, अभ्यन्तरे > अभिअन्तरे (५३)  
य > अ, निरय > णिरअ (२२), प्रयाग > पआग (६५) काया > काआ (६)  
य > ज, युवति > जुवई (७), महायान > महजाण (१०), यस्य > जसु (१२)  
य > इ,  
यथा > जिम (११६)  
या > आ, माया > माआ (६१)  
यो > जोव, (३८)  
यं > अं, स्वयं > सअं (४०)

य > जे, यत्र > जेत्यु (४०)

र > ल

र > ग्, मार्ग > मग्ग (१६)

र्थ > क्तु, चतुर्थ > चउक्तु (११३)

रध > दध, अर्ध > अद्ध (३१)

रध्व > दध, उर्ध्व > उद्ध (५७)

र्थ > त्थ, परमार्थ > मरमत्थ (१२), तीर्थ > तित्थ (१४)

र्ष > प्प, दर्पण > दाप्पण (८६)

र्ष > ज्ज, कार्य > कज्ज (१), सूर्य > सुज्ज (३५)

र्व > ब्व, निर्वणि > णिव्वाण (१२), १७), सर्व > सब्व (४३),

र्श > न्स, दर्शन > दन्सण (५८)

ल्प > प्प, संकल्प > संकप्प (१००)

व > अ, तरुवर तरुअर (५९)

वि > अ, प्रविष्ट > पअट्ट (३५)

वि > वइ, विशा बइस (६३).

॥ > इ, प्रविश > पइस (३६)

व्य > व, व्यवहारे > ववहारें (६३)

श > स, दश > दस (२६), शक्य > सक्क (३२), विशेष > विसेस (४५)

शू > सु, शृणु > सुणउ (६३)

शू > सि, शृगाल > सिअाल (८५)

श्च > च्च, निश्चल > णिच्चल (३०)

श्च > च्छ, निश्चित > णिच्चिअ (१६)

श्च > स्स, विश्राम > विस्साम (३१)

श्री > सिरि (३७),

श्च > स, महेश्वर > महेसर > महेशुर (५५), आश्वास > असास (१२६)

ष > स, विषय > विस : (१८), दोष > दोस (३३), विशेष > विसेस (४५)

तुष > तुस (५४)

- ष्ट > दृठ, दृष्टि < दिदृठि (३३), अविष्ट > पअदृठ (३५)  
ठु > तु, सुष्टु > सुठु (१२१)  
ष्णु > दृठु, विष्णु > विदृठु (५५)  
स > छ, आसन्त > अच्छन्त (४३)  
स्त > त्य, मस्ते > मत्थे (४२) अस्त > अत्थ (६४)  
स्त्र > त्त, शास्त्र > सात्त (४४)  
स्थ > त्थ, स्थल > त्यल (४४)  
” ठ, स्थित > टिअ (३६)  
स्थि > थि, स्थितैः > थियैरि (१४१)  
स्न > ह्न, स्ना > ह्नाइ (१३)  
स्प > व, निष्पद्य > णिबज्ज (६२)  
स्प् > छु, स्पृशति > छुपइ (७१)  
स्म > म्ह, अस्मा > अम्हा (४७)  
स्य > सु, यस्य > जसु (१२), तस्य तसु (११)  
स्फु > हु, स्फुट > हुड (२७),  
स्व > स, स्वरूप > सरुअ (३७)  
स्व > सु, स्वप्न > सुअण (१०६), स्वप्न > सुइण (१२४)  
स्वप > सिवि, स्वप्न > सिविण (१४४)  
हम् > हंउ (७५)  
ही > ह्, विहीन > विहूण (७४)  
हि > हु, त्वं हि > तुहु (१४८)  
ह् > हि, हृदय > हिअ (३६)  
ह्य > म्ह, ब्रह्मा > बम्हा (४७)  
ह्य > हिर, बाह्य > बाहिर (६६)  
ह्यं > हं, मह्यं > महं (३८)

सुवन्त और तिङन्त प्रत्यय अपभ्रंश को आज की भाषाओं की पाँती में बैठा देते हैं। उच्चारण के परिवर्तन यहाँ करीब-करीब वहीं मिलते हैं, जो प्राकृत में और इसी भ्रम के कारण जैन भांडारों में अक्सर अपभ्रंश ग्रंथों को प्राकृत ग्रंथों के वेष्टनों में रख दिया जाता है। सुवन्त विभक्तियों के रूपों को पालियों ने और उससे भी अधिक प्राकृतों ने कम कर दिया था। अपभ्रंश ने इस प्रवृत्ति को और आगे बढ़ाया। इसमें द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठी तीनों विभक्तियाँ एक-सी होती हैं। उसी तरह तृतीया, चतुर्थी और कभी-कभी पंचमी को भी एक बना जाता दिया है। प्रथमा के एक वचन में संस्कृत-पाली-प्राकृत में प्रयुक्त अकारान्त शब्दों के ओ को छोटा करके उ कर दिया जाना है, जिसे मागधी क्षेत्र के हस्तलेखों में बहुधा छोड़ दिया जाता है। प्रथमा एकवचन का यह उकार गोस्वामी तुलसी दास के 'रामचरित मानस' की पुरानी प्रतियों में काफी मिलता है, और रहेलखंड में अब भी बहुत से कवि और वक्ता उमका प्रयोग करते हैं। प्रथमा बहुवचन में कोई विभक्ति-सूचक प्रत्यय नहीं लगाया जाता, और शब्द का अपना रूप ही पर्याप्त समझा जाता है। तृतीया में अपने प्रत्ययों के अतिरिक्त कितनी ही बार प्राकृत-पाली और संस्कृत के प्रत्यय एण को इस्तेमाल किया जाता है, और ऐसी जगहों पर पालि-प्राकृत प्रथमान्त ओकार का प्रयोग बतलाता है, कि शायद ऐसा करने में पुरानी भाषा के अनुकरण की प्रवृत्ति कारण हो, तुलसीदास ने भी ऐसा कभी-कभी किया है। सरहने "कम्मविमुक्केण होइ मण मुक्को" (२४) कहा।

## २. संज्ञा, सर्वनाम

### (१) लिंगभेद

संस्कृत-पाली-प्राकृत तक चला आता नपुंसक लिंग अब खतम हो गया था तथा पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दो ही लिंग रह गये थे।

पुल्लिङ्ग—

अकारान्त—कोण (व.४), खवण (व.६), चेल्ल > चेला (व.६), तड > तट (१००)



आकारान्त—घण्टा (व.४)

इकारान्त—अइरि<अर्यं (व.३), अग्नि<आग (व.१), हन्ति<हाथी (व.७१),  
गिरि (व. १००) जोड़ (स. ४४), मणि मनि (ज. ४१), मुण्डी  
(व. ५), रवि (स. १६),

ईकारान्त—अर्थी<अर्थी (व. १११), जोड़ी योगी (स. ८८), दण्डी (स. २),  
पाणी (स. ६६),

उकारान्त—अणु (स. ६७), गुरु (स. ३४, ६२), पशु पशु (स. २०)

स्त्रीलिंग—

आकारान्त—इच्छा (स. २३), वाग्ना<काया (व. ६), जडा<जदा (व. ३), दीवा  
(व. ४), पब्वजूजा<प्रवजूया (स. १८), भाजूजा भाषी (स. १८),  
मुद्दा<मुद्रा (व. २२), मुरुंगा<मुरंग (व. ७२)

इकारान्त—अक्खि<अंख (व. २), इन्द्र<इन्द्रिय (स. ८४, ९४), ज्वर<युवनी  
(व. २७), जोड़िणि<योगिनी (व. ८६), बोटि बोटि व (१०३),  
मट्टि (व. १), मणि (व. ६७) माद भाई (व. ८४), गहि गम्बी  
(स. ४५, ६२), सिरि<श्री (व. ६६)

ईकारान्त—कुमारी (स. ६५), णई<नदी (पव. १००), वाराणसी (स. ६६),  
रण्डी (व. ५)

## (२) सर्वनाम

अण्ण (स. ६६), एहु (स. ३०), को (व. ६३), जो (स. १६), मड  
(स. २२) मव्व (स. १४), मो (स. १६)

## (३) संख्या

एक (व. १३), एक्क (स. ५०),

विण्णि (व. ५४), वैण्णि (स. ५०), वेड (स. ५७, ६०), वुड (स. १५६)

तिण्ण (स. २७)

चार (व. १), चउ (स. १०६), चउदुठ (व. ६६),

पंच (स. १४३)

दस (स. ५२)

चउजह<चउदह (स. ६१, व. ८६)

सम्प्राद्विशतानि (स. २१)

### ३. सुवन्त

प्रथमा और सप्तमी (अधिकरण) विभक्तियों के अतिरिक्त बाकी विभक्तियों के रूप प्रायः एक से होते हैं। हमारे कोश में आये रूपों के साथ यहाँ कविराज स्वयंभू के “पटमचरित” (रामायण), बारहवीं सदी के पूर्वार्ध के गहड़वार गोविन्दचन्द्र के दरवारी दामोदर पंडित की पुस्तक “उक्ति-व्यक्तिप्रकरण” तथा बारहवीं सदी के अन्त के कवि विनयश्री की गीतियों के प्रयोगों को हम देते हैं—

एक वचन के रूप—

विभक्ति	सरह	स्वयंभू	दामोदर
प्रथमा	उ (मणु व. ८६) ओ (कहाणो, ठाणोस १२८)	(कवन्धु, १ पृष्ठ ७१)	(पूतु)
द्वितीया	चिह्न नहीं	उ (पूतु),	न्ह (पूतन्ह)
तृतीया	ए (वज्जे व. ४२), (कज्जे व. २) ए (च्छारें व. ३, सहावें व. १०६) एहि (खवणेहि व. ५) एहि (अइरियेहि व. ३) एण (कम्मेण स. २४)		पूतें (पूतेहि)
चतुर्थी	०	पूतहि, पूतकिहं, पूतें कर	
पंचमी	एँ (दोसैं स. ३३, ३४) लइ (तालइ स. २०) ह (आयेसह स. २८) हि (भवणिव्वाणाहि मुक्कअ स. ३२)		
षष्ठी	केरो (राक्खस केरो स. ७३) केर (जणकेर स. १११, माआकेर स. ११६) तणअ (कालहु तणअ स. ५७)	तौ, हुँत, हुत, पास, हंति, आँ (पूत तौ, पूतहितौ, पूतहँत, पूतहुति, पूतपास कर, किअ, हिँ, करें, करिँ, केर, केरि पूतकर, ० किअ...)	

सप्तमी (हृत्थे स. ५४)

ए (घरे व. १२७)

ए, ऐं, हि, मज्झ

एँ (कोलें व. ८६, बअणें श. ६४, परमत्थें स. ४७)

एहि, एहिं (जलेहि स. ८८, पाणिअेहिं स. ४६)

हि, हिं (काणहि व. ४, धरहि व. ४, देहहिं स. ७४, मरुत्थलहिं स. ४४)

सु (सीससु व. ३)

संबोधन अरे, रे (स. २३)

अरे, अहो

ये (माइ ये व. ८४)

हले (त. ६२)

हे (श. ३८)

### बहुवचन

इसका बहुत कम प्रयोग दीखता है ।

प्रथमा आ (वुधा, स. ६१, जडा स ६१)

एँ (वालें स. १६)

(पूते)

द्वितीया

न्ह (पूतन्ह), अ (पूते)

तृतीया

ईं, ऐं, हि, हुपास (पूतिं, पूतें, पूतहि,)

चतुर्थी

न्ह (पूतन्ह)

पंचमी ० (अप्पण व. ६)

न्हतौ (पूतन्हतौ)

षष्ठी एआण (खवणाण व. ८)

न्हकर (पूतन्हकर)

सप्तमी

न्ह मज्झ (पूतन्हमज्झ)

### (२) सर्वनामों के सुबन्त रूप

(क) मैं—एकवचन—

प्रथमा मइ (स. २२)

हउ (स. ७५, १४४)

हउँ

द्वितीया महु (स. ८८, महुं. स. ३४) मैं

तृतीया मइ (स. २२) मइ

चतुर्थी द्वितीयावत्

पंचमी

महु, मज्झु

षष्ठी द्वितीयावत्

महु, मज्झु

मोर

सप्तमी मद् (स. ४३, ४६)

बहुवचन

प्रथमा अम्हे, अम्हे

द्वितीया अम्हा (स. ४७) अम्हेहिं

तृतीया म (स. २२)

चतुर्थी

पंचमी

अम्हेहुम् अम्हेहँ

षष्ठी

अम्हेहुम् अम्हेहँ

सप्तमी

(ख) तू—सरह में नहीं है, स्वप्रभू और दामोदर के रूप हैं—

एकवचन

बहुवचन

प्रथमा तुहं (स्व.), तूँ (दाम)

तुम्हे, तुम्हे (स्व.)

द्वितीया मैं (स्व.), तोहि (दाम.)

तुम्हे (स्व.)

तृतीया तै (दाम)

चतुर्थी तुहु, तुव, तुज्झु (स्व.), तोर (दाम.) तुम्ह, तुम्हहँ, तुम्हहँ, तुम्हें (स्व. द)

पंचमी

षष्ठी

सप्तमी

(ग) सो—

एकवचन

बहुवचन

प्रथमा सा (व. ४५), से. (स. ६५), ता (स. २०), सो (स. ६६)

सु, सा (सव)

द्वितीया सो (स. १४), तं (स. २३, ७७), तहि (स. ४२)

तृतीया तेण (स. )

तेण, तिए (स्व)

षष्ठी तसु (स. १४)

तासु, ताहे (स्व.)

(घ) अण्ण (अन्य)—

प्रथमा अण्ण (स. ७६)

( ङ ) एहु—

प्रथमा एहु (स. ३०), एहु (स्व.)

( च ) को—

प्रथमा को (व. ६२), कवण  
कवण (स्व.), को (स्व.)

तृतीया केण (स. २२)

षष्ठी कसु (स. ५८), कासु (स. ६५)

( छ ) जो—

प्रथमा जो (स. १६), जे (स. ८०)

द्वितीया जे (स. ५२)

तृतीया जेण (स. ६१)

षष्ठी जसु (स. १२)

जसु, जासु (स्व.)

सप्तमी जहि (स. ४६)

## ४. अव्यय, उपसर्ग

( १ ) अव्यय—

अग्गे (स. ५२), अग्गे (स. ६६), अध (स. ५७), अरे (व. ४४),  
इ<हि(श. ३७,७६), इअ<इति(श. ८६), उ>अौर(श. २०), उणो<पुनः  
(श. ४२), ए<हे(श. ६२), एम<एवं(स. ४३), एहिं>यहाँ(व. ४), कमणे>  
कौन(स. १०५), कहिं>कहाँ(स. २७), काइं>क्यों(श. २४), कि(व. ८), किअ  
(स. ४२), की>क्यों(स. २०), खलु (श. १०४), जइ<यदि (स. ६६)  
जत<यद्(श. २३), जत्तइ>जेतना(स. ७६), जत्थ<यत्र(स. २६), जब्वे>जव  
(स. ३६), जाउ<यावत् (स. ६७), जाव>यावत् (स. ६६) जिम>जिमि,  
यथा (व. ७६, ८६), जेत्तइ>जेत्ता (स. ७७), णं<ननु ( ? ), णउ>  
नहि (स. १७, १६), णाहिं>नहीं (स. ४६), णु<नु (व. ११२), तउ>तो  
(स. ७५), तत्तइ>तेत्ता (स. ७२), तत्थ<तत्र (स. ४०), तब्वे>तव  
(स. ३६), तह्वि<तथापि (स. ७२), तहा<तथा (व. १०१), ताव<तावत्  
(स. २५), तावइ (स. ७६), तिम>तिमि (स. ४६, व. ८६), न (व. १),

पच्छे>पीछे (स. ५२), पुण>पुनि (स. १७), पुणु>पुनि (स. ३६),  
फुड>फुर (स. २७), वाजूज<वादि (स. १४०), वाहिर (स. ६६), वि>भी  
(स. ६६) विणु<विना (स. ७२), म>न (स. ४३), मा>ना (स. १७), रे  
(स. ८६), सट्ट<स्वयं (श. ४६), सुठु>सुठि (स. १२३), हु (श. ६०), हो  
(स. ३०),

## (२) उपसर्ग

अ-निषेधार्थ (घ. १००), अ>आ (अमण<आगमन श. ७०), अच्चेअण-  
अको<अवचेतन (श. १८), अद्भ<अभि (अव्भन्तर व. ८६), अह<अथ (श. २२)  
अहि<अभि (अहिमाण स. ६०), आ (आअेस<आदेश (स. २८), उअ<उप  
(उअपिट्ठ<उपपीठ, स. ६६), उज<उत् (उज्जोअ व. ६७), उड<उत् (उड्डी व.  
७०), उव<उद् (उवाहरण<उदाहरण श. ६८) कु (व. ६६), णि<निस् (णिक्करुण  
व. १०६), णिच्चल (स. ६६), णि<नि (णिवेसी व. ४), णिर<निर् (णिरक्खर  
स. २५), दु<दुर् (श. ८८), पडि<प्रति (पडिवेसी<प्रतिवेशी स. ६८), वि<वि  
(विअप्प<विकल्प व. १००), सम (समरसु स. ७७, ६५), सु (सुगति स. ८८)

## ५. समास

चार समासों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. कर्मधारय—घोरान्धार (व. ६७)
२. तत्पुरुष—जोइणिचार (व. ८४), जोइणिमाअ>जोगिनी-माया (व. ८६)
३. द्वन्द्व—चित्ताचित्त (स. १२३)
४. बहुव्रीहि—अभिण्णमइ<अभिन्नमति (श. ८६)

## ६. तद्धित

तद्धित का प्रयोग बहुत कम होता था। कुछ उदाहरण हैं—  
तणअ<तन (कालहु तणअ स. ५७), केर<कीय, (राक्खस केरो (स. ७३)।

## ७. क्रिया

### क. तिङन्त

सहायक क्रिया-सहित वर्तमान क्रिया का यहाँ कोई प्रयोग नहीं दीख पड़ा।  
वर्तमान, भविष्य, अतीत (भूत) और आज्ञा की क्रियाएँ निम्न प्रकार हैं :

(१) वर्त्तमान—

प्रथम पुरुष एकवचन में ०, अ, इ, प्रत्यय आते हैं, जैसे जाण (व. ६६), जाअ (स. २७), जाणअ (व. ६५),

जाइ (स. १३), जाणइ (व. ६५), ठाइ (स. ४३), णासइ (स. ६०), तुट्टइ (स. ७२), देइ (स. २३), देक्खइ (स. १५), धायइ (स. ४३), पइसइ (स. ३६), पईसइ (स. १५), वज्झइ (स. ६१) । प्रथमपुरुष, बहुवचन का प्रयोग शायद इ को अनुनासिक करके होता था । मध्यमपुरुष के लिए संस्कृत की तरह सि प्रत्यय का इस्तेमाल होता था—जाणसि (स. २२), पावसि (स. ६७), परिआणिसि (स. ६७) ।

उत्तमपुरुष में मि एक वचन के लिए आता था—कहमि (श. ६५), जाणमि (व. ६०), जोअमि (स. ५२), पुच्छमि (स. ५२) ।

स्वयंभू रामायण में प्रथम पुरुष के लिए इ, मध्यम के लिए हि, हो और उत्तम के लिए एकवचन में मि और हुं आता है ।

प्रथमपुरुष बहुवचन में सरह न्ति, न्ते का प्रयोग करते हैं।—वज्झन्ति (स. ६१), होन्ति (स. ११४), रमन्ते (स. ४८) ।

(२) भविष्य—

इसका प्रयोग अलग से बहुत कम देखा जाता है ।

कुछ प्रत्यय हैं—

इहइ (होइहइ स. ६४) प्रथम पुरुष

इ (बुज्झइ स. ८२)

ईहसि मध्यमपुरुष में—करीहसि, गमीहसि, ठवीहसि (स. १५५)

स्वयंभू एकवचन में सइ और बहुवचन में सन्ति का प्रयोग करते हैं—होसइ, होसन्ति ।

(३) अतीत—

अतीत काल के लिए पुराने रास्ते को छोड़ निष्ठा प्रत्यय से काम लिया जाता है, जैसा कि हिन्दी, अवधी, व्रज, भोजपुरी आदि करती हैं । ये प्रत्यय हैं—

अ (चाहिअ श. ४१, हुअ श. १०१, ठविअ स. १५)

अउ (ठविअउ स. १५, ठिअउ व. ८६, ठीअउ व. १११, दीअउ व. ११२, वसिअउ श. ३८), इअउ (कहिअउ स. ६४, पढिअउ व. ६०) ।

इउ (गहिउ स. ६६, गाहिउ स. १२७, चाहिउ व. ३६, जाणिउ स. ५१, घाविउ स. १०, वाहिउ स. १२८, साहिउ स. २२)

उ(गउ स. २६, ठिउ स. २६) ।

अपभ्रंश का भूतकालिक प्रयोग अवधी के सबसे नजदीक हैं। इसके लिए इल-अल प्रत्यय का प्रयोग भोजपुरी आदि में पीछे होने लगा। पर विनयश्री—जो विन्मशिला (भागलपुर) के थे—ने बारहवीं सदी के अन्त में इल, अल का बहुत प्रयोग किया है, जैसे—फुल्लिल्ल (गीति १), गेल्लिअहँ (वहीं) झंपाविल्ल (वहीं), भइल्ल (गी. २), गइल्ल (वहीं), लाम्वल (गी. ६),

सरह की भाषा और स्वयंभू आदि की अपभ्रंश ने अतीतकाल के संबंध में प्राकृत आदि से अपना संबंध विल्कुल तोड़ लिया, और उसका अनुसरण आज भी हमारी भाषाएँ कर रही हैं। भेद इतना है, कि जहाँ भोजपुरी, बँगला, मैथिली आदि ने इउ का इल, अल कर दिया, वहाँ अवधी ने पहिले ही की तरह अउ, इउ, एउ को कायम रक्खा। ब्रज ने ओ और यो किया, जिसको कौरवी या हिन्दी तथा उसकी सहोदरा पूर्वी पंजाबी ने आ, ए (बहुवचन) बना के रक्खा। इस प्रकार अपभ्रंश जाणिउ, अवधी में जानेउ, ब्रज जानो, हिन्दी-पंजाबी में जाणा (जान लिया) या जाना बन गया।

#### (४) आज्ञा—

आज्ञा का प्रयोग मध्यमपुरुष में ही प्रायः देखा जाता है, करेइ (व. ६६) खरडह (श. २५), पडिहाउ<प्रतिभानु (व. १०१) जैसे कुछ ही सन्दिग्ध प्रथम पुरुष के प्रयोग देखने में आते हैं। मध्यम पुरुष के एकवचन के प्रत्यय हैं—

इ (पडेइ व. ०७),

० वस (स. २७)

उ (थक्कु व. १०३, थाक्कु श. १०५, देक्खउ स. ६२, वसउ व. १००, भमउ (स. ६३)

ह (पडिपज्जह स. ४४, पणमह स. २३, माणह स. ३८)



हि (जाहि व. १०३),

हु (मण्णहु व. १०२, लग्णहु न. ५१, अच्छहु न. ६२)

### (५) समस्त क्रिया

आजकल हिन्दी में जिस तरह है आदि सहायक क्रिया के भाग लियाकर एक धातु के स्थान में दो धातु के प्रयोग द्वारा उनी अर्थ को प्रकट किया जाता है, जो संस्कृत, पालि, प्राकृत में एक धातु के रूप में बल जाता था, जैसे—पठति के लिए हिन्दी में पढ़ता है। लेकिन, यह परिपाटी अर्थात् कृदन्त के एक शब्द के साथ सहायक क्रिया द्वारा अर्थ को प्रकट करना हिन्दी की मूल भाषा कौरवी तथा हमारी दूसरी भाषाओं में भी अनिवार्य नहीं है। कौरवी में पढ़ै, जाइ-जैमे प्रयोग नेत्रे प्रयोग हैं, और है को अनिवार्य रूप से प्रयुक्त भी नहीं किया जाता। पुरानी उर्दू कविताओं में—पढ़े है, जावे है—जैसे प्रयोग कभी थे, लेकिन उन्हें त्याग्य कर दिया गया। जिसके कारण लाठी के जोरां से पढ़ता है, जाता है का प्रयोग कराया गया। उस लाठी को हिन्दीवालों ने भी मान लिया। उस क्रिया-रूप में एक और भी लाभ था, कि क्रिया में स्त्रीलिंग-पुंलिंग के भेद की आवश्यकता नहीं थी। समस्त क्रियाओं का तरह की भाषा उपभ्रंज में भी प्रयोग अधिक नहीं देखा जाता, और यदि होता भी है, तो यह संस्कृत की तरह शायद ही कहीं। ये सहायक क्रियाएँ निम्नलिखित हैं—

गउ<गनो, (विलीण गउ स. ३९)

जाइ<याति, (खअ जाइ क्षय हो जा, न. ३०, सिद्धि जाइ स. ४८  
भणइ ण जाइ न. ३१, कहिही जाइ न. ३०)

थाक्कैइ<स्थगति—(गिच्चल थाक्कइ दिक्कै नइ, न. ६९)

सक्कइ<गक्तोति, (कहण ण सक्कइ कह ए सके, स. १०४)

होइ<भवति, (बंध होइ>बधता है, न. ११३)

होवि<भवति, (होवि न खीण>क्षीण नहीं होता, न. ४१)

### (६) नामधातु क्रिया

नाम से क्रिया बनाने का रिवाज संस्कृत और भोजपुरी, अवधी आदि



## ख. कृदन्त

कृदन्त रूपों का अधिक प्रयोग अपभ्रंशकाल से ही होने लगा, जिसे आज भी देखा जाता है। खासकर त या निष्ठा प्रत्यय जैसे हिन्दी में भूतकालिक क्रिया की अपनी विशेषता बन गई है, वैसे ही अपभ्रंश में भी देखी जाती है।

### १. निष्ठा प्रत्यय क्रिया

अउ-सूणउ>सुना, डिट्ठउ>देखा, स. ६७

आ-लग्गा>लगा स. १६

इअ-कड्ढिअ>काढ़ा, निकाला स. १६, कहिअ>कहा, स. २२, सोहिअ>

शोभित हुआ, स. ३६ इअ-किया स. ५६

इअउ-कहि कहिअउ<कथितः कहा स. ६७

इआ-रंजिया<रंजित, रंग्या>रंगा स. ५०, जाणिया>जान्या>जाना स. ५६

इउ-धाविउ>दौड़ा स. १०, रहिअउ<रहित स. १८, जाणिउ>जाना स. ४१

इव-गाइव>गाया स. ३६

उ-गउ>गया स. २६, दिनु>दिया स. ३७

ओ-णट्ठो>नष्ट हुआ स. २६, वड्ढट्ठो>बैठा स. ६७, डिट्ठो>देखा स. १०

हमें भूतकाल के वतलानेवाले आ और ओ या उ तीनों प्रकार के प्रत्यय मिलने हैं, जिनमें आज की भाषाओं में आ खड़ी हिन्दी के लिए रह गया है और उ, ओ अवधी तथा ब्रज में प्रयुक्त होता है। लग्गा लगा यह खड़ी हिन्दी के जैसा है। कहिअउ>कहेउ के रूप में अवधी में बोला जाता है। गउ>गया का भी प्रयोग अवधी में देखा जाता है। नट्ठो गओ की तरह ब्रज के अनुरूप है।

२. न्त—इसके प्रयोग अपभ्रंश में मिलते हैं, यद्यपि आजकल की भाषाएँ उनको उतना इस्तेमाल नहीं करतीं। इसके रूप में—पडन्त व. १ हुणन्त>होमता व. १, कुट्टन्त>कूटता स. ५४, रमन्ते>रमता स. ७१, हरन्ते>हरता स. ७१।

३. वत्वा के लिए आजकल कर अलग से धातु में जोड़ा जाता है, जैसे लेकर, बैठकर। इसके लिए यहाँ दो प्रत्यय प्रयुक्त होते देखे जाते हैं—

इअ-इइ-लेकर स. १२२, वइसी-वैठकर व. १, च्छाड़ी-छोड़कर स. ११,  
धरि-धरकर स. ६३।

वी-मुणेवि-मननकर स. ३३

४. धातु-अर्थ-इसके लिए संस्कृत आदि का अतः प्रत्यय इसमें भी  
अण के रूप में आता है, जिसके आकारान्त और उकारान्त दोनों रूप देखे  
जाते हैं, अर्थात् गड़ी बोली और ब्रज-बघड़ी दोनों का पूर्व-रूप यहाँ मिलता  
है, जैसे अत्यपण-अत्यपनम् स. ६५. कहाणां-कथन-कहना स. १२७।

वी प्रत्यय का इस अर्थ में प्रयोग भोजपुरी, अवधी आदि में देखा जाता  
है, जो हिन्दी में नहीं मिलता। अपभ्रंश में यह मिलना है-कहवि-कहना  
स. ११३।

सरह की मूल भाषा में ग्रंथ एकाग्र ही मिले, इसलिए कृदन्त के सारे  
प्रयोगों के वाच्य में नहीं कहा जा सकता। लेकिन, स्वयम्भू, पुष्पदन्त आदि  
अपभ्रंश के महाकवियों ने महाकाव्य लिखे हैं, जिनमें अनेक रूप देखे  
जा सकते हैं।

## द. विशेष

हम वतना चुके हैं, कि सरह की भाषा अपभ्रंश अपनी  
शब्दावली और उच्चारण में यद्यपि पूरी तौर से प्राकृत की अनुयायिनी  
नहीं है, लेकिन बहुत-सी बातों में वह आधुनिक भाषाओं का पथ-  
प्रदर्शन करती है। इसमें प्रयुक्त संस्कृत-व्रंश से भिन्न भाषा के देशी (द्रविड़  
आदि) शब्द बहुत-से आज भी प्रयुक्त होते हैं। और कितने ही शब्दों  
के रूप इसे आधुनिक भाषाओं से एक करने हैं। यहाँ उनके उदाहरण  
दिये जाते हैं।—

### (१) देशी शब्द

करहा (४३, करभ), कवडिआर (वाग. १०१, हाथीवान्),  
खुसखुसाइ (वाग. ४, फुसफुसाइ), चाउल (५४, चावल),  
चांगो (१२०, चंगा), च्छाड़हु (१५७), चेल्लु (वाग. ६, चेला), छुड  
(६३), जगड (४३, झगडा), धान्ध (८८, पाली धन्धा), फुड (२६,  
२७, ११६), वप्पडा (१५७), वाजूज (१३८, विना), युल्ल (१२१),  
लड (१०६), फेडिअ (१३६), सुसंगा (वाग. ७६), हने (८३)

(२) आधुनिक भाषाओं से एकता

जहाँ तक संस्कृत के तद्भव शब्द-रूपों का संबंध है, अपभ्रंश प्राकृत के शब्दकोष को बहुत अंशों में स्वीकार करती है। हाँ, वही वात सुव्रन्त और तिङन्त रूपों के वारे में नहीं कही जा सकती, जहाँ कि वह आधुनिक अश्लिष्ट भाषाओं की पंक्ति में आ बैठती है। इसके अतिरिक्त भी ऐसे बहुत-से शब्द मिलते हैं, जो उसे आधुनिक भाषाओं का बताते हैं, जैसे:

आवड़-गाइ (वाग. ८२), उरित्त (१६), कड्डिअ (१६), करिहउ जाइ (३०), कहण प सक्कइ (वाग ५०), कहिज्जइ (६२), कोल (वाग. ८६), गुणिज्जइ (१४), चलउ (६३), चाली (वाग) ४, चाहन्ते-चाहन्ते (३४), व्हारै (वाग. ३, राज), च्छुप्पइ (६६, छुवइ), धरिणी (वाग. ८४), जसु (१२, जासु), जोअमि (५२, जोहूँ), जोडण (१७, जोड़ना), जत्तइ-तत्तइ (७८), जगड (वाग. २३, जगड़ा), जग्गाविअ (वाग. ६), तत्त्वे (३६, तत्र), तरुअर (वाग. १०७), थाक्कु (६६, बैंगला), दिक्खिज्जइ (वाग. ५), पिविअ (४४, पीअउ), पुडअणि (६७, पुरइत, कमल), परमेसुरु (वाग. ८१), फुइ (वाग. ७६), फुर (अवधी), बक्खाणु (१०, बखान), विलअ जाइ. (२७, ४१), विलअ गउ (२६), भणइ ण जाइ (६४), भुल्ले (वाग. ३, भूले), रंडी-मुंडी (वाग. ५), लुक्को (वाग. ८६, छिपा), लोडइ (वाग. ८०, पंजाबी), मुक्कावथि (८०, मगही), हव्वास (६६, अभ्यास)

(३) धातु-सूची

दोहाकोश में निम्न धातुओं का प्रयोग हुआ है—

अज्, उ-(६१, उ-उ-उ), अच्छ(२३, वाग. ६२) है, अत्थ(वाग. ६७), आ, आव (वाग. ३४), आस>आ (७२, या-आस्), सन्था-(वाग. ४), आण (१४, ०), अत्त, वि-(२८, अक्त, वि-), वआर, उ-(वाग १०७, उप-कृ), इच्छ (२३), इज, पति-(८६ ? पतियाइ), इस, प-(वाग. ६७), इक्व, प-(६५), कड्ठ (१६?, निकाल), वर (४४, ५० कृ), कह (३०, ६४, ३८, ६६), खंड (२३), खाज (४८ खाद्,) गह (६६, ग्रह), गा (३६, गया), गाह (३६ दृग्, वाग. ६१ ज्ञा, १२७ अवगाह), घस २५ (२५ धृब्), वोल (२५), ग (वाग. १०१), चर (४६), चल (वाग. ४५), चाह (३४),

स्वीण (४१), चिन्त (२८) च्छुप (६६), च्छुड (वाग. ८०, -  
फ-६. १११), छिषण (६५), जल (जलन्त, वाग. ८१), जल (२३), जा  
(१३, ४८), जाल (वाग. ४), जिग्घ (६२), जाण (६. ६६, १०३, १२७),  
जूड (१७), जोअ (५२), जा (१२, ध्या), ठि (२६, ४३), डह (वाग. ८६),  
डा (वाग. ७० उड़ना), णिहाल (वाग. ६६), देस (वाग. २, दिग्), नभ (१३),  
तिम (८८, वाग. ६१ तृप्), नुट्ट (७२, ६४), नुट्ट (१२), दा (३५, ७१),  
दिम (१५, वाग. ८१), दिह (६१), दी (२३, वाग. ११०), धाव (१०, ४३, ६१),  
धर (वाग. ७७), धा (वाग. ८६, ध्या), पट्ट (वाग. ७०), पट्ट (वाग. १, १४,  
वाग. ६०), पड (वाग. ७०), पाड (३५ वाग. ५), पाट (१६, १७, ६६),  
पुल्ल (५२, ६८), पुज्ज (७१), पीव (४४, ४८), पुत्त (वाग. १०) पूर (६४),  
पुर (२३), वअ (८६), वड (३. वाग. ६८), वइम (१०, वाग. ४०), वज्ज (१८,  
५४, वाग. ८४), वज्ज (२४, ६४, ६१), वन्ध (वाग. ४) वन्ध  
(वाग. ४, १०५), वह (वाग. ३, ८६, १२८), वस (२७), वाज्ज (७१),  
वास (वाग. १११), विम (वाग. ४), वृज्ज (३०, ७७), वेअ (६६,  
वाग. ७५), फर (४८), भण (वाग. ८), भम (६३, ७६), भाव (१११, वाग. ८,  
वाग. १०५), भेज्ज (वाग. ८३), भोअ (वाग. ८), भान्त (६७), मण (८५),  
मण्ण (वाग. १०२), मर (३०, ६०), मिल (८८), मुण (३६, वाग. ८१),  
मुसार (४१), न्ह (३४), न्ह (१३), वक्ख (वाग. १०७४), न्वक (६६),  
रज (५०), रम (वाग. ७०), रस (५१), रह (६४), हघ (३४), मुच्च  
(१३), लग (१६), लक्ख (२७, ३४, ३५), लड (२०), लज्ज (७५),  
लभ (१२), लिप (६६), लीण (६५, ६६), लुड (वाग. ८०), लुक (वाग. ८६),  
लक्क (१७, फाग. ५०), सत्त (वाग. ७१), साय (१७), सा (सार, साल.  
७२, वाग. १०१), सर (७१), साह (वाग. ६, १७), सिज्ज (२०), सुण (६२),  
सुअ (वाग. १०६), सुह (वाग. ६५), अयेअ (वाग. १०५), सोह (३३), हर (वाग.  
६४, वाग. ६७), हा, पडि- (वाग. ८७), हार, वव- (६३), हुण (वाग. १ हवन),  
होइ (१०).

#### (४) छन्द

जिम प्रकार प्राकृत का अपना विशेष छन्द गाथा या ग्रार्था है, जिसका बहुत सन्दर्भ प्रयोग गाथा-सप्तशती के सूक्तकों में देखा जाता है, उसी

तरह अपभ्रंश के दोहा-चौपाई अपने विशेष छन्द हैं। वल्कि हम कह सकते हैं, कि आर्या या गाथा को केवल प्राकृत का छन्द नहीं कहा जा सकता, पर दोहा-चौपाई का प्रारम्भ तो अपभ्रंश से ही शुरू होगा है। इनके मद्रमं पुगने नमूने हमें सरह की कविताओं में ही मिलते हैं। जवतक और पुगना उदाहरण नहीं मिलता, तवतक के लिये हम कह सकते हैं, कि सरह ही साहित्य में इसके विधाता हैं। चौपाई और पढरिया एक ही प्रकार के छन्द हैं। दोनों में चार पद होते हैं, हरेक पाद में १६ मात्राएँ होती हैं। अन्तर इतना ही है, कि चौपाई के अन्त में गुरु आता है, और पढरिया में लघु। यह भी स्मरण रखने की बात है, कि दोहाकोश के नाम ने ही सरह की अनेक कविताएँ विख्यात हैं, लेकिन दोहा छन्दों के अधिक होने पर भी उनमें केवल दोहे ही नहीं हैं, वल्कि पढरिया आदि हमारे छन्द भी देखे जाते हैं। शायद उस समय अभी दोहा शब्द अपने आज के अर्थ में रूढ़ नहीं हुआ था। कोश भी यहाँ डिक्शनरी या शब्दकोश के लिए नहीं इस्तेमाल किया गया। कोश का अर्थ है संग्रह या संचय। दोहाकोशसे दोहों का संचय या दोहावली अभिप्रेत है। “शाथामप्लवती” को पहले गाथाकोश या आर्याकोश भी कहा जाना था, जिमका भी अर्थ गाथावलि ही है। सरह के “दोहाकोश गीति” में गाथा या आर्या छन्दों का भी प्रयोग देखा जाता है, जिनकी संख्या छ है। इनकी भाषा सभी जगह प्राकृत है, जिससे मालूम होता है, कि उस समय आर्या छन्द को प्राकृत का छन्द माना जाता था, और उसे देशी भाषा में इस्तेमाल नहीं किया जाता था। हो सकता है, दोहा-चौपाई आदि जिन छन्दों का पहले-पहल प्रयोग हम सरह को करते देखते हैं, वह लोकभाषा के छन्द थे।

दुवहय दोहा के रूप में ही प्रचलित था; क्योंकि इसी तरह सरह के ग्रंथों में उसका प्रयोग देखा जाता है। इस छन्द के बारे में किन्हीं-किन्हीं विद्वानों का मत है, कि यह ग्रीक छन्द से लिया गया है। इसमें शक नहीं, ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दी से ईसा की पाँचवीं सदी तक यवन, ग्रीक, हूण (हेप्टाल) आदि जातियाँ भारी संख्या में भारत में आकर सदा के लिए बस गईं। यद्यपि कुछ ही पीढ़ियों में वह अपनी भाषा खो बैठी, लेकिन उनके गीतों की ध्वनियाँ और छन्द इतनी जल्दी भुलाये नहीं जा सकते थे।

हिन्दी ने मुस्लिम-काल में अरबी और फारसी-विशेषकर अरबी—के कितने ही छन्दों को ले लिया, जिनका प्रयोग आज भी होता है। एसे ही यदि उपरोक्त घुमन्तू जातियों के गीतों और छन्दों के बारे में किया गया हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यदि दोहा को इस तरह अपनाया गया हो, तो अधिक सम्भव है, वह यवनों से नहीं, बल्कि शकों से लिया गया होगा। शक सामन्त हमारे यहाँ के संभ्रान्त राजपूतों, जाटों, अहीरों, गूजरों के रूप में आज भी मौजूद हैं। जिस तरह वह भारतीय जाति के अभिन्न अंग हो गये, वैसे ही उनके कुछ छन्द और लय भी यदि जनप्रिय होकर हमारे हो गये हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। यहाँ एक उल्लेखनीय बात यह है, कि इन पंक्तियों के लेखक ने रियाजिन (रूस) और ताजिक लोकगीतों को उसी लय और छन्द में गाये जाने सुना, जिसमें भोजपुरी विरहे—जिसे हज़ारीबाग जिले में चाचर (चच्चरी) कहते हैं—गाये जाते हैं।

डा० शहीदुल्ला ने “दोहाकोशगीति” में निम्न छन्दों को पाया है—

१. दोहा—हमारी पुस्तक में ६० के करीब दोहे मिलते हैं, अर्थात् आधे से कुछ ही कम। दोहा इसी रूप में वहाँ बोला जाना था, दुबहय नहीं। जैसा कि इस तालपत्र के १११ वें पद्य के इस वाक्य से मालूम होता है—“तहि भासिय दोहाकोपं तत्थ चित्रकन्धग्रं समत्तं॥” सरहपाद ने अपनी इस प्राकृत गाथा में भी दुबहयकोम नहीं बल्कि दोहाकोश का प्रयोग किया है, जो १३ और १५ मात्राओंवाली दो पंक्तियों का होता है।

२. सोरठा—सोरठा का प्रयोग सरह ने बहुत कम किया है। वैसे सोरठा दोहे को उलटकर ही बनाया जाता है।

३. पादाकुलक के भी कितने ही उदाहरण मिलते हैं, जो १७ मात्राओं का छन्द है।

४. अडिल्ल वदनक—इस पञ्चटिका के काफी प्रयोग यहाँ देखे जाते हैं। इसके चारों पदों में से प्रत्येक में १६-१६ मात्राएँ होती हैं, और जैसा कि ऊपर बतलाया, पञ्चटिका <पञ्चटिका>पञ्चटिका के अन्त में दो गुरु और एक लघु अवश्य आता है।

५. गाथा (आर्या)—इसका प्रयोग सरह ने केवल प्राकृत में लिखे छः पद्यों में किया है।



६. रोला—इसका भी दो-एक ही जगह उपयोग सरहपा ने किया ।
७. उल्लाला—२८ मात्राओं की दो पंक्तियों का यह छन्द बहुत कम प्रयुक्त हुआ है ।
८. महानुभाव—१२ मात्राओं के ४ पादों का यह छन्द एक जगह ही प्रयुक्त हुआ है ।
९. मरहट्ट—२६ मात्राओं के इस छन्द को डा० शहीदुल्ला ने एक ही जगह पाया है ।

### §५. हस्तलेख

जिन हस्तलेखों के आधार पर मैंने मूल पुस्तक का सम्पादन किया है, उसके वारे में कुछ कहने के पहले यह बतला देना आवश्यक है, कि सरह जैसे भाषा, विचार, छन्द आदि में युग-प्रवर्तक पुरुष की एक ही कृति को हिन्दीभाषी पाठकों के सामने रखकर सन्तोष कर लेना मैंने अच्छा नहीं समझा । इसीलिए उनके जो अन्य अपभ्रंश ग्रंथ तिब्बती (भोट) भाषा में अनुवाद के रूप में मौजूद हैं, उनको भी हिन्दी में ला देने की मैंने कोशिश की । इस प्रयत्न में मैं अपने को सफल नहीं कह सकता, लेकिन इससे सरह के भावों को जानने में सहायता मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं । यह भी हो सकता है, कि तिब्बत के पुराने विहारों के हस्तलेखों की अच्छी तरह छानबीन करने पर शायद उनमें कुछ और मूल भाषा में मिल जायें, उस वक्त इन अनुवादों की आवश्यकता नहीं रहेगी । यदि ऐसा न भी हो, तो भी आनेवाले विद्वान् अधिक साधन-सम्पन्न होकर अच्छा अनुवाद कर सकेंगे । सरह की भाषा अन्य सिद्धों की भाषा की तरह सन्ध्या-भाषा के नाम से अभिहित की जाती है । उसमें दूसरे रहस्यवादी कवियों की तरह अनेक भाव निहित हैं, इसलिए भी उनका हिन्दी में अनुवाद करना आसान काम नहीं । दुर्भाग्य से मुझे कोई ऐसे तिब्बती विद्वान् की सहायता नहीं मिल सकी, जो सिद्धों की भाषा और भाव का ज्ञाता हो ।

### १. 'दोहाकोश-गीति' की तालपोथी

शायद दोहाकोश की सबसे पुरानी प्रति यही सिद्ध होगी, जो कि सन्

१९३४ ई० में मुझे तिब्बत के ऐतिहासिक मठ स.स्क्य में मिली थी, और जिसके अनुसार मैंने कोश को संपादित किया। इसकी प्राप्ति वड़े विचित्र ढंग से हुई। मैं भारत में गई तालपत्र की पोथियों की खोज में अपनी दूसरी यात्रा में स.स्क्य पहुँचा। वहाँ तालपत्र की पोथियाँ थीं। खोज करने पर किमी ने कहा, वहाँ के एक मन्दिर के पुजारी के पास तालपत्रों का बंडल है। मेरे चिरस्मरणीय मित्र और अब दिवंगत गेशे संघ-धर्मवर्धन (गेंदुन् छोम्फेल्) जाकर किसी तरह बंडल को ले आये।

तिब्बत में भारत से गई ताल-पोथियों को बहुत पवित्र माना जाता है। मरणोन्मुख व्यक्ति के मुँह में यदि तालपोथी का धुला एक बूँद जल पड़ जाय, तो उसके पाप धुल जाने में कोई सन्देह नहीं। यह उसी तरह का विश्वास है, जैसा हमारे यहाँ मरणासन्न के लिए गंगाजल को समझा जाता है। ऐसी पवित्र वस्तु को वहाँ का हरेक सद्गृहस्थ अपने घर में रखना चाहे, तो इसमें आश्चर्य क्या? अधिक चढ़ावा चढ़ानेवाले भक्त को पुजारी तालपोथी का एक टुकड़ा काटकर प्रसाद के रूप में दे दिया करता था, और इसी उद्देश्य से नाना पुस्तकों के पत्रों का यह बंडल उसके पास था। कौन-कौन-से ग्रंथों के कितने पत्रे इस प्रकार बँटे, इसे कौन बतला सकता है। महत्त्वपूर्ण पत्रों को फिर पुजारी को सपुर्द करना मेरे वस की बात नहीं थी। पुजारी को भी कुछ दक्षिणा मिल गई, इसलिए उसने आपत्ति नहीं की। यद्यपि हस्तलेख में सन्-संवत् नहीं दिया हुआ है, पर लिपि दसवीं-ग्यारहवीं सदी की कुटिला है। इस हस्तलेख का इतना ही महत्त्व नहीं है, वल्कि अभीतक सरहपा के इस दोहाकोश की जितनी प्रतियाँ मिली हैं, उनमें यह सबसे पुरानी होने दोहों की संख्या में भी सबसे बड़ी है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने जिस प्रति को “बौद्ध गान ओ दोहा” में आज से ४० वर्ष पूर्व संपादित किया था, उसमें ५० के करीब दोहे थे। महाप्रस्थान के पथिक डाक्टर प्रबोधचन्द्र वागची ने आज से १५ साल पहिले जिम ‘दोहाकोश’ को प्रकाशित कराया था, उसमें दोहों की संख्या ११२ थी। स्वयं तिब्बती में जो इसका अनुवाद (तेर्.गी स्तन्. गयुर्. र्ग्युद्. पोथी वि. पृष्ठ ७०ख५—७७क३,) में मिलता है, उसमें दोहों की संख्या १३५ है, जब कि स.स्क्य की इस तालपोथी में वह १६४ हैं। तिब्बती-अनुवाद इस प्रति से नहीं किया गया। वह उस प्रति का

अनुवाद है, जिससे मिलती-जुलती प्रति की कापी डाक्टर वागची द्वारा संपादित हुई। हमारी इस प्रति में ८० के करीब नये दोहे हैं, उधर डाक्टर वागची के प्रति में भी ५० से अधिक नये दोहे और हैं।

## २. खण्डित पत्रे

तालपत्र—

तालपत्र ११" X २" पृष्ठांक १३

१३ वें पत्र की दोनों ओर ८ दोहे हैं। इससे पहिले के १२ पत्रों या २३ पृष्ठों में ७५ दोहे रहे होंगे, अर्थात् प्रतिपृष्ठ ३ दोहे। दोहों पर संख्या का अंक दिया हुआ है।

लिपि कुटिला (वर्तुल) के वाव की संभवतः १२ वीं सदी की मागधी है। पांतियों के बीच में छोटे अक्षरों में कहीं-कहीं भ्रष्ट संस्कृत में टिप्पणी-है। ग्रंथकर्ता का नाम नहीं है, पर जान पड़ता है, यह भी सरह-पाद की कृति है और प्रकाशित "दाहाकोश" से भिन्न। ये पत्रे भी स.स्वय के मन्दिर के पुजारी में काटकर प्रसाद बनने से बचाये गये बंडल के हैं। तालपत्र के ८ दोहे निम्नलिखित हैं :

कमलकुलिश बेवि मज्झ ठिउ, जो सो सुरअ विलास ।

को तं रम्मइ ण तिहुवणहि, कामु ण पूरिअ आस ॥ (७६)

(टि.) वज्रपदमसंयोगात् बोधि चैत्तद् स्थितः सहजानन्दरूपी सुप्रपा...यत्किंचित् त्रिभुवने सहजमयं सर्वाशापरिपूरकः ।

क्वणउ वाअ सुह अहवा, अहवा वेण्णिवि सोवि ।

गुरुअ पसाअे पुण्ण जइ, विरला जाण (इ) कोवि ॥ (७७)

तत्क्षणगभीरतत्त्वदेसनातः तत्क्षणसरसविरससहजदृष्टाणे स्त्रीप्रसायेन पुण्यधामतो नद्ययेन कोटीनासप्य—

गंभीर भिड आर फले, णउ पर णउ अप्पाण ।

सहजानन्द चउक्कण, णिअ संवेअ ण जाण ॥ ७८

हे सधे, निरक्तरस्त्रस्वपरविभागं तु लौकिकं त्वजाः (ठउ) परसविरस-सुसुप्तता सहजाः निजस्वभावेन संवेदतः

घोरें अंधारें चन्दमणि, जिम उज्जोअ करेइ ।

परममहामुह अक्क वक्कणे, दुरिआ एस हरेइ ॥ ७९

वन्द्यकान्तिवत् अन्धकारापनयने गुरुरिव संसारिकः ।

दुःखदिवान्तर अन्धविड, उवड तारावड सुवक ।

ठिअउ गिम्माणें गिम्मिअउ,तेण दिमण्डलचक्क । (८०)

संवृत परमसार्थः अस्तङ्गते सति विम्बब्रुधबोधितस्थिरै सति. संवृतको -  
यत्रवस्था धर्मसंस्वोगः अदृष्टः निर्मनिः वाह्या आस्य सकः सवमण्डल  
चक्रः नानामण्डलानाम्

चिन्तहि चित्त णि ण वट्ट, मअलउ मुच्च कुदिट्ठि ।

परममहासुहमोक्ख परु, तहि आअन्ता सिद्धि ॥ (८१)

सहजअद्वेषेति सुज अदिन सव धर्म न नानात्मा कुदृष्टिछडह सहजात्म कु.  
सकलं परमसुखेन तस्योपरि परमोत्तम सिद्धिर् नस्तीति ।

मुक्कउ चित्त गएन्द करु, एत्थवि अप्पा म पुच्छ ।

मअण गिरी णइ जल पिअउ, तहि भडु वसिउ सइच्छ ॥ (८२)

योगो हस्तिवत् भवदु (:) खात् आत्मानं पृच्छ मा कुरु आ महासुखम.  
वेद्यती. आकाशे पवन न पी अथवागतः स्वतन्त्रं कुरु आभासे ।

दिसअ गअदें करे गहिअ, जिम मारइ पडिहाइ ।

जोइ कवडिअर जिम, तहि पुणु णिप्परि जाइ ॥ ८३

यत्किञ्चिद्रूपः हस्तिवत् हस्तिखिलिकवत्. विषयेन केन चित् लिप्यते  
चमरी हस्तिवत् ।

### §६. 'चर्चा' (चर्या) पोथियाँ

सिद्धां के गोत ८ वी से १२ वी गताव्दी तक—जब तक कि  
बौद्ध-धर्म उत्तरी भारत में रहा—उसी तरह गायें और पढ़े जाते थे, जैसे  
आजकल कवीर साहब और दूसरे सन्तों की वानियाँ । आजकल के कुछ सन्त  
मतों में भी गुप्त पूजा-पाठ होती है, जिसमें सन्त की बानी को गाया जाता है—  
उदाहरणार्थ शिवनारायण साहब की बानी । इस तरह के गुप्त पूजा-पाठ को चर्या,  
अनुष्ठान या आचरण कहा जाता था । सरह के समय और बाद में भी उत्तरी  
भारत का बौद्धधर्म महायान नहीं, वज्रयान (तांत्रिक बौद्धधर्म) तब  
गया था । सरह वज्रयानी चर्याओं के प्रवर्तक थे, यह कहना मुश्किल है । उन्होंने  
अपने “दोहाकोगगीति” के आरम्भ ही में इस तरह के अनुष्ठानों और विश्वासों  
का खण्डन किया, जिसमें स्थविरों और महायानियों को भी नहीं छोड़ा है ।  
यदि वह स्वयं चर्याओं के प्रवर्तक या समर्थक होते, तो यह वदतोव्याघात होता ।

जो भी हो, सरह के बाद चर्याओं का प्रचार बहुत जोर से हुआ, जिनमें पंचमकार का प्रयोग आवश्यक था। भारत में बौद्ध-धर्म के साथ चर्या के लुप्त होने के बाद भी यह नेपाल से नहीं उठी।

इसी चर्या शब्द का विगड़ा रूप नेवारी में 'चचा' है। चर्या-पद्धति की अवश्यकता वहाँ अनुभूत हुई; क्योंकि उसके अनुष्ठान दो-एक सरल कामो या बातों तक ही सीमित नहीं, बल्कि घंटों तक चलते अनेक विधि-विधानों पर अवलम्बित। इसके लिए बहुत सी पुस्तिकाएँ भिन्न-भिन्न आचार्यों ने तैयार कीं, जिन्हें भी "चचा" कहते हैं। नेपाल के बौद्धों में जो नवजागृति हुई है, उसके कारण वज्रयान के क्रिया-कलापों से शिक्षितों की आस्था उठती जा रही है। इन अनुष्ठानों के पुरोहित बांड़ा (बन्ध, वज्राचार्य) लोग भी अपने प्रभाव को खोते जा रहे हैं। उसके कारण डर है, कि कुछ दिनों में "चचा" की पद्धति बिल्कुल लुप्त न हो जाय, और उसके साथ "चचा" की पुस्तिकाएँ भी नष्ट हो जायें। यद्यपि यह वज्रयानी चर्याएँ मिथ्या विश्वास और मिथ्या आचार को फैलाती हैं, लेकिन इतिहास के लिए उनके अध्ययन की आवश्यकता है। इन गोष्ठियों में आज भी महासिद्धों और दूसरों के गीत एक खास लय में गाये जाते हैं। इनके अध्ययन से पुराने चर्यागीत के स्वरों का पता लग सकता है। शायद इसी लय में सिद्धों के गीत अपभ्रंश-काल में मध्यदेश, (उत्तर-प्रदेश, बिहार) में गाये जाते थे। यह बड़ी हानि होगी, यदि अध्ययन और संरक्षण के पहले ही वह नेपाल से लुप्त हो गये।

यद्यपि "चचा" के गीत अपभ्रंश के हैं, लेकिन उनके गानेवाले आर्य-भिन्न एक दूसरी भाषा नेवारी के बोलनेवाले हैं। वह गीतों के अर्थको नहीं समझते, यही नहीं, बल्कि उनके मुँह में पड़कर शब्दों का उच्चारण भी दूसरा हो जाता है। नेवार लोग बोलने में त और ट का भेद नहीं करते, उसी तरह र की जगह ल के प्रयोग को भी अति तक पहुँचा देते हैं। जैसा कि चचा पोथी १०, पृष्ठ १० में "सतगुहचरणे" के स्थान पर "सतगुलु चलने", आया है। कण्ठपा की बहुत पुनीत वज्रगीति को अनेक चचा पुस्तकों में देखा जाता है, लेकिन उसका सबसे अधिक शुद्ध रूप वही है, जो तन्-जुर, तन्त्र, पोथी यु, पृष्ठ १६३ में है।

मैंने नेपाल की एक यात्रा में "चचा" की डेढ़ दर्जन के करीब पोथियाँ जमा कीं, जिनमें अधिकांश सौ वर्ष से अधिक पुरानी हैं। कुछ और भी

पुरानी हो सकती हैं। खोज करने पर नेपाल में तीन-चार सौ वर्ष पुरानी पोथियाँ भी मिल सकती हैं, जिनका महत्त्व अधिक होगा, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। इनके विकृत उच्चारणों के लिए कण्ह (कर्ण) पाकी वज्रगीति: (तन्-जुर् यु १६३, प्रजा) को देखिये—

कोल्लड रे ठिअ वोल्ल, मुम्मणि रे कक्कोला ।

घणइ किपीटह वज्जइ, करुणे किअइ ण रोला ॥ ध्रु ॥

तहिं पल खाजइ गाढे मअ ण पिज्जइ ।

हले कलिजर पाणिअइ, दुन्दुरु तहं वज्जिअइ ॥ २ ॥

चउसम कत्थुरिसिहल कप्पुर लाइअइ ।

मलअइ घणसालिअइ तहि भलु खाइअइ ॥ ३ ॥

पेण्ण खेट करन्त मुद्धामुद्ध ण मणिअइ ।

निरंशु एइ ग चडाविअइ, तहि जस राव पणिअइ ॥ ४ ॥

मलअज कुंदुरु वापइ, डिण्डिम तहि ण वज्जिअइ ॥ ५ ॥

१. कोलयि रे थिया बोला मूमनि रे कंकोला ।

घन किया थी होयि वज्जायि, करुणे क्रियायि न लोरा ॥ (I)

० मुमुरनि ले कनकोला घने कीथि होयि, करुण क्रियायि न लोला (II)  
शेष III, वत्)

कोरयि रे थिया बोरा, मुमुनि रे कंकोरा ।

घने कापि थिया बोरोरुणे क्रिया वीन लोला (IV)

० थियं. ०० थिउ बोरा ० यी न बोरा (IX शेष IV वत्)

२. तहि भरु खाज गाध्य, मय ना पीवयि यायी ।

हले कालिजर पन यायी, दूंदुरु वजायिले (I)

० तहि वा नु खाजयी यायिया, गाथें मय ना पिज ।

न यायीया हले कलिजल सानि जल (III)

० तहि वरु खाजयि गद्धे मय ना पिजययायिया ।

कलिजर सारि जारे दुदुरु वाज न यायिया (IX)

३. चवूमम कस्तुरीं सिल्हा कपूर,

लावन यायी मलया जइ घनसो लिजरे (I)

० चउसम कस्तुरि सिल्हा कपूर लाव न यायि ।

मलयज कपूर वजयि तहि भरु खाज (III)

—चउमम कस्तुरी शीलकर्पूर राव न यायियामारिय ।

इन्दु ने सालिजलतहि वः नु खाजयीयायिा (IV)

० तहि वा नु खा जयीयायिया, गाधे मय ना पिज न यायिया (IV)

० चउमम कस्तुरी शिह्ला कर्पूर राव न यायिया ।

शरयि इन्धन शारि जलतहि वरु खा जयियायिया (IX)

४. प्रेषु न क्षेत्र कगत सोद्धामुद्ध न मूनयि ।

तिलसुह अंग च वा दयीया तहि जसए पन यायी । (II)

प्रेष-क्षेत्र कनेवतकशुद्धाशुद्धा नियेयायि ।

मलयज कुणरु वजयि, डिडिमा ता नहि वयि (III)

प्रेषून क्षेत्र करंत शुद्धाशुद्ध न ययि ।

० प्रेषण क्षेत्र कलंत शुद्धाशुद्ध न मानियायीया ।

नीलसुह अंग सदा ययीयातहि जसु राव न प्रक्षमामिया (IV)

० प्रेखन कत करन्ते शद्धाशुद्ध न मुणियायिया

निल सुह अंग चद्दात्रियिया, तहि जगु राव न पणसासिथा (IX)

५. मलयज कुंदुरु वजायि ले, डिडिम डिडिम तहि ना बाजयी । (II)

० मलयज कुणरु वजयि डिडिमा ता नहि बजायि । (III)

० मलयज कुंदुरु वाजयिया डिन्डि वाजयि न वाजयिया । (IX)

गुडरीपा (सिद्ध ५५) का गीत—

(राग कर्नाडि, ताल झप)

त्रिहंडा चापयि जोगिनी देह कवारि ।

कमलकुलिस घन करहु वियाले ॥ ध्रु० ॥१॥

जोगिनी तुह्य बिनू खनहु न जिवयि ।

तोला मूह चूविले कमल संपिवहि ॥२॥

क्षेपहु गोगिनी रेप न जायि ।

मनि कुल वहिया रे, वदिया ने समायि ॥३॥

रासू घले घल क्रोचिया रे चन्द्र सूर्य दूयी यक्षेन भण्डो ।

भनयि गोदावरी हमे कूदूरू वीअे ।

नरय तालि माझे उभय वूविरा ॥

त्रिहडा चापयि जोगिनी हे हकवारि कमरकुरिस घन करहु न विरा ।  
जोगिनि तुम्ह विणु खनहन जिवंयिनोरा मुह चु वियाने, कमरसं पिवयि ॥२  
कंयहूँ मा जिनि रे पन जायि मनि करे वहि पार जो दिया न मुमान ॥३

सामु घरे घम कुचिकुभारि चन्द्रसूर्य दूयि पक्ष सं डारि

भनयि गूडालि हर कूडरू रानर मारि माइ उभय नविरा ४—(८)

—त्रिहण्डा चापयि योगिनी देह क वादि कमलकुलिश करहु वियार ॥१  
योगिनी तुज्झ विनू पणहु न जीवयि तोरा मुह चु विया रे कमल पीवयि ॥२  
क्षेपहु योगिनी लेप न जायि, मणि कूल वहिया रे कमल सं पिवयि ॥३  
शाशु घरे कुचिया रे, चन्द्रसूर्य दूयि पक्ष न न भनतो ॥४

भनयि गोडारि हमे कूगुरु बीना, नरय नारी भाइ उभय नउ बीना ॥५

लकारवहुलता—चचा-पुस्तक १० (पृष्ठ १०)

“सतगूलूचलने पनमामि”

हमारे पास की “चचा” (चर्या) पुस्तकों में निम्न पुरुषों के गीत मिलते हैं—

“चचा” पुस्तक १ : परमवज्र (१), वाक्वज्र (१०), कर्णपा (१५),

लीलावज्र (१९)

गोदावरि (गुंडली) (२०)

प्रवनपवि (२२)

कुलदत्त (२३)

सुरतवज्र (२४, ३४, ७६, १०५, १०७)

वाक्वज्र (१०, ३४, ४०)

दारक (३७)

कान्ह (४४)

कर्मादिवज्र (४६)

कर्णपा (१५, १८, ५३, ७१, ९८, ११४, १२०)

अनुपम (पद्म) वज्र (५४)

रत्नवज्र (५९, ७३, १०३)

नीरावज्र (६४)

श्रीकुलिश (७७, १०९)



- परमवज्र (१, ७८)  
जालंधरि (७९)  
अमोघवज्र (८४, ११२)  
: समसमवज्र (८६)  
प्रवनकुलिस, प्रवनपवि (९८) ]  
नीलवज्र (९७) : ]

“वचा” पुस्तक २ :

- तथागतवज्र (३)  
वाक्वज्र (६)  
सुरत (सुलत) वज्र (८)  
अमोघवज्र (१५)  
परमादिवज्र, परमवज्र (१९)  
कर्णपा (२०)  
लीलावज्र (२४)

“वचा” ३ :

- परमादिवज्र (३ क)  
कर्णपा (१० क, १८ क)  
: वाग्वज्र (११ क)  
कण्हपा (१४ क)  
लीलावज्र (१६ क, २१ क)  
गुंडली, गोडारी (१७ क)  
सुरतवज्र (१९ ख)  
श्रीवज्रकुलिश (२५ क)  
समरसवज्र (२६ क)  
अमोघवज्र (३५ क)  
प्रजकुलिश (३५ क)

“वचा” ४

- विरास, विलासवज्र (३ क)  
परमादिवज्र (१०)

- संघसया (११)  
गोडारि (२४)  
वाक्वञ्ज (२५, ३४)  
कण्ठपा वञ्जगीति (३२)  
सुरतवञ्ज (३५)  
लीलावञ्ज (३६)  
गोस्वामी (४०)

“वञ्जा” ५:

- परमादिवञ्ज (११, ६८)  
अनुपमवञ्ज (२१)  
हासकुलिश (२३)  
सुरतवञ्ज (२५, ७४, ८६)  
कर्णपा (३१, ८०)  
पवनपवि (४३)  
नागार्जुन (६०)  
सुधाहर्ष (६४)  
लीलावञ्ज (७६)  
संघसयरा (८४)

“वञ्जा” ६:

- लीलावञ्ज (७)  
समरसवञ्ज (९)  
कर्णपा (४३, ४०)

“वञ्जा” ७ :

- तथा (गत) वञ्ज (४)  
भास्करवञ्ज (७)  
परमाद्यवञ्ज (८)  
सिद्धिवञ्ज (११)  
लीलावञ्ज (१६)  
परमाद्यवञ्ज (२२)

सुरतवज्र (२८, ३०)

विरूपा (३३)

कण्हपा (३४, ४४)

“वचा” ८ :

अमोघवज्र (२ वज्रवज्र)

चन्द्रवज्र (५, ७, ८)

वज्रवज्र (५)

चन्द्रवज्र (७, ८, ९)

अनुप्रद्वमवज्र, अनुपमवज्र (१०)

कर्णपा (१२)

सुरतवज्र (१४)

विरासवज्र (१७)

गुडालि (१९)

“वचा” ९ :

परमादेवज्र, परमादिवज्र (३, १२)

सुरतवज्र (१५, १६)

कण्हपा वज्रगीति (२४)

“वचा” १० :

तथागतवज्र (७)

वाक्यवज्र (११)

सिद्धिवज्र (१२)

अनुपमवज्र (१३)

विलासवज्र (१८)

संघसयना (२९)

अवधूत्रपवि (३३)

अमोघवज्र (५५)

परमादिवज्र (६४)

नागार्जुन (७७)

जारंधर, जालंधर (७९)

“चचा” ११ :

- लिलासवज्र (३६)
- सिद्धिवज्र (५३)
- सुरतवज्र (६१)
- पलमद्यवज्र, परमाद्यवज्र (७३)
- संघसयना आचार्य (७५)

“चचा” १७ :

वाक्वज्र (१)

कण्हपा का दोहाकोश—सरहपा की तरह कण्हपा के भी अनेक दोहाकोश हैं, जिनमें से एक को महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने अपने “बौद्ध गान ओ दोहा” में संपादित किया है। वही, जान पड़ता है, अधिक प्रचलित था, तभी तो स.स्वय के मंदिर के पुजारी से काट-काटकर प्रसाद बनने से वचाये तालपत्रों के बंडल में सरह के कोश के साथ यह खण्डित कोश भी मिला। जिसके के पहिले तीन पन्ने प्रसाद में वूट चुके मालूम होते हैं। किसी अनाम ग्रंथकर्ता की टीका भी इसके साथ है, जो महा-महोपाध्याय द्वारा संपादित टीका का ही लघु संस्करण मालूम होती है। इस प्रति में दोहों की प्रतीक-भर ही दी हुई है।

चौरासी सिद्धों में निम्नलिखित १० अधिक प्रभावशाली माने जाते हैं—

१. सरह (६), २. शवर (५), ३. लुई (१), ४. विरूपा (३), ५. दारिकपा (७७), ६. घंटापा (५), ७. जलंधरपा (५२), ८. डोंबिपा (४), ९. कण्हपा (१७), १०. तेलोपा (२२)। पर इन सबमें कण्हपा सबसे अधिक प्रतापी थे। आज भी नेपाली वज्रयानी बौद्ध अपनी रहस्यपूजा के समय जो “चचा” (चर्या) के गीत गाते हैं, उनमें चौरासी सिद्धों में सबसे अधिक कण्हपा (कणपा) के ही गीत मिलते हैं, यह मेरे पास मौजूद “चचा” (चर्या)-पुस्तकों (१-१७) के निम्न विवरण से मालूम होगा—

सिद्ध या कवि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१७	कुल संख्या
अनुपमवज्र	१				१			१			१		३
अमोघवज्र	२	१	१	०	०	०	०	१	०	१	०	०	६
अवधू पवि	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	०	१



मुरतवज्ज	५	१	१	१	३	०	२	१	२	०	१	०	१७
हामकुलिश	०	०	०	०	१	०	०	०	०	०	०	०	१

जिस सामग्री का इम ग्रंथ में उपयोग किया गया है, वह प्रायः सारी तिब्बत में प्राप्त हुई है। तिब्बत हमारी सांस्कृतिक निधियों का महान् संरक्षक रहा है। हमारे अधिकारी विद्वानों को उनको देखने का बहुत कम अवसर मिला है, और जो कुछ दूसरों के लेख और कथन के रूप में उनके सामने आया है, उसमें उसके बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। तिब्बत में भी बहुत-सी ऐसी निधियाँ वहाँ के विद्वानों की भी पहुँच से बाहर की है। उदाहरणार्थ जिन सैकड़ों ताल-पोथियों को मैंने स.स्क्य, डोर और श्लु में देखा, उनका पता तिब्बत के और जगहों के विद्वानों को ही नहीं, बल्कि खुद उन विहारों के विद्वानों को भी नहीं या बहुत कम था। स.स्क्य विहार में ऐसी पुस्तकों का कभी बहुत बड़ा संग्रह था, और वस्तुतः उपरोक्त दोनों दूसरे विहारों में संरक्षित तालपोथियाँ भी मूलतः स.स्क्य विहार की थीं। वहाँ के महन्तराजों में से एक को तो त्रिक्कुल पता नहीं था, कि उनके यहाँ इतनी ताल-पोथियाँ किसी पुस्तकागार में रक्खी हुई हैं। दूसरे महन्तराज—जो उनके बाद गद्दी पर बैठे और अब इस संसार में नहीं हैं—अपने पुरखों की बात सुनकर ही जोर देकर कह रहे थे, कि पोथियाँ जरूर हैं। वह अन्त में मिलीं भी। अब इन अज्ञात अन्धेरी कोठरियों में वन्द अथवा तिब्बती हस्तलेखों के जंगल में सूई की तरह छिपी ताल-पोथियों के अतिरिक्त उन पोथियों के भी प्रकाश में आने की सम्भावना है, जो कि किसी मूर्ति या स्तूप के उदर में हमेशा के लिए बन्द कर दी गईं। जब वह सब बाहर आ जायँगी, तो सिद्धों की कविता के रूप में अपभ्रंश-भाषा का बौद्ध-साहित्य प्रचुर मात्रा में हमारे सामने आयेगा।



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ११११

सिद्ध सरहपाद

१(क.) दोहाकोश-गीति  
(हिन्दी छाया-सहित)



## १(क). दोहाकोश-गीति (मूल)

### १. 'षट्' दर्शन-खंडन

#### (१) ब्राह्मण-

१. [ब्रम्हणैहि म जानन्तहि भेउ । एवइ पढिअउ ए च्चउवेउ ॥  
मट्टि (पाणि कुस लई पढन्तं । घरहि बइसी अग्गि हुणन्तं ॥
२. कज्जे विरहिअ हुअवह होमैं । अक्खि उहाविअ कडुअैं धूमैं ॥  
एकदण्डि त्रिदण्डी भअवँ(१) बेसैं । विणुआ होइअइ हंस उएस ॥
३. मिच्छैहि जग वाहिअ भुल्लैं । धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्ले ॥

#### (२) पाशुपत-

- अइरिएहि उट्टुलिअ च्छारैं । सीससु वाहिअ ए जड-भारैं ॥
४. घरही बइसी दीवा जाली । कोणहि बइसी घण्टा चाली ॥  
अक्खि णिवेसी आसण बन्धी । कण्णोहि खुसखुसाइ जण धन्धी ॥
५. रण्डी-मुण्डी अण्णवि बेसैं । दिक्खिज्जइ दक्खिण-उट्टेसैं ॥

#### (३) जैन-

- दीहणक्ख जइ मलिणैं बेसैं । । णग्गल होइ उपाडिअ केसैं ॥
६. खबणेहिं जाण विडंविअ बेसैं । अप्पण वाहिअ मोक्ख उबेसैं ॥  
जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह ॥
७. लोमुपाडणैं अत्थि सिद्धि, ता जुबइ णिअम्बह ।  
पिच्छीगहणे दिट्ठ मोक्ख (ता मोरह चमरह) ॥

स.स्वय को तालपोथी का पाठ ।

इस तालपोथी का प्रथम पत्र लुप्त है, जिसे यहाँ डाक्टर बागची संपादित 'दोहाकोश' से (Calcutta Sanskrit Series 1938 pp. 14-16) दिया गया है ।

१. भोट. अत्रुवाद (तेर्गी से स्तन्. ऽग्युर्. गंयुद्. वि, पृष्ठ ७० ख ५-७७ क ३) में एक दोहा अधिक है, । वूसरा दोहा—हरप्रसाद शास्त्री-संपादित 'बौद्ध गान ओ दोहा' में है । ब्रह्मगहि, भोट-पाठ ग्धि=मूल ब्धि=चार का प्रसाद-पाठ है ।

# १(क). दोहाकोश-गीति (झाया)

## १. 'षट्' दर्शन खंडन

### (१) ब्राह्मण-

१. ब्राह्मण न जानते भद्र । यों ही पढे ये चारो वेद ॥  
मट्टी पानी कुश लेइ पढन्त । घरही वैठी अग्नि होमन्त ॥
२. काज विना ही हुतवह होमें । आंख जलावें कडुये धूएँ ।  
एकदंडी त्रिदंडी भगवा भेसे । ज्ञानी होके हंस उपदेसैं ॥
३. मिथ्येही जग वहा भूलैं । धर्म-अधर्म न जाना तुल्यैं ॥

### (२) पाशुपत-

- शैव साधु लपेटे राखी । ढोते जटा भार ये माथी ॥
४. घरमे बैठे दीवा वालें । कोने बैठे घंटा चालें ।  
आंख लगाये आसन बांधे । कानहिं खुसखुसाय जन मूढे ॥
५. रंडी-मुंडी अन्य हु भेसे । दीख पडत दक्षिणा उदेसे ।

### (३) जैन-

- दीर्घनखी यति मलिन भेसे । नंगे होइ उपाडे केसे ॥
६. क्षपणक ज्ञान-विडंबित भेसे । आतम वाहर मोक्ष उदेसे ।  
यदि नंगे इन होइ मुक्ति, तो शुनक-शृगालहु ॥
७. लोम उपाडे अस्ति सिद्धि, तो युवति-नितम्बहु ।  
पिच्छि गहे (जो) दीख मोक्ष, तो मोरहु चमरहु ॥

२. (भोट ३) ।

३. (भोट ४ । अइरिर्एहिःएरइ) ।

४. (भोट ५) कोणहिं = म्खम्स्.सु एकान्त. खुसखुसाइ  
= शुब्. शुब्, धन्धी = स्लुब्. (मन्द) ।

५. (भोट ६) दक्षिणा, बल.मडि.योन् = गु गुण

६. (भोट ७) खबणेहि = नम्.म्खडि.यिद्.चन् गगनमना = दिगंबर

७. (भोट ८) सिद्धि । ग्रील् = मुक्ति ।

८. उञ्छे भोअणें होइ जाण, ता करिह तुरङ्गह ।  
सरह भणइ खबणाण ] मोक्ख, महु किम्पि न भावइ ॥

2a९ तत्त-रहिअ काअ(र) न ताव, पर केवल साहइ ।

(४) बौद्ध—

चेल्लु भिक्खु जे त्थविर उएसें । (वन्देहिअ पब्बज्जिउ बेसैं ॥

१०. कोइ सुत्तंत बक्खाण बइट्ठो । कोवि) चित्त करुअ मइ दिट्ठो ॥

अण्णु तहि महाजाणे धाविउ । मण्डल चक्क..मवि नाधेउ ॥

११. (तसु परि<sup>१</sup>आणें अण्ण न कोई । अवरे (ग)अणे सज्जइ सोई ॥

सहज च्छाडी णिव्वाणेंहि धाविउ । णउ परमत्थ एकवि साहिउ ॥

१२. जो जसु जेण होइ सन्तुट्ठ । मोक्ख कि लब्भइ ज्ञाण-पविट्ठ ॥

किन्तह दीपे किन्तह णेवेज्जे । कि<sup>३</sup>न्तह किज्जइ मन्तह भावें ॥

१३. किन्तहि न्तित्थ तपोवण जाइ । मोक्ख कि लब्भइ (पाणी न्हाइ ॥

च्चड्डहु रे आलीका बन्धा) । सो मुञ्चहु जो (अच्छहु धन्धा) ॥

१४. तसु परिआणहु अण्ण ण कोवि । अवरे गाण्णे सब्बइ सोवि ॥

सोवि पढिज्जइ सोवि गुणिज्जइ । सत्थ-पुराणे बक्खाणिज्जइ ॥

१५. नाहि सो (दिट्ठि जो ताउ ण ल (क्खइ) । एत्तवि वरगुरुपाआ पेक्खइ ॥

जइ(गुरु-वुत्त)हो (हिअहि पईसइ । णिच्चिअ हत्थे ठवि)अउ दीसइ ॥

2b१६. सरह भणइ जग-वाहिअ आलें । णिअ<sup>६</sup> सहाव ण लक्खिअ बालें ॥

## २. करुणा-सहित भावना

करुण-रहिअ ज्जो सुण्णहि लगा । णउ सो पावइ उत्तिम मग्गा ॥

८. (भोट ९)

९. (भोट १०) बद्. वडि. (सुख) अधिक पाठ. वन्देहिअ=‘वन्दें. नंम्स् (वन्दनीय लोग,

१०. (भोट ११) ग्गु.ड्. लग्. छद्.मडि. ब्स्तन्.चोस्.यि (ग्रंथ प्रमाणशास्त्र) अधिक ।  
बाग. ११ महजाणहि धा(वइ) । तहिं सुत्तन्त तक्कसत्थ होइ) । कोइ मण्डल-चक्क  
भावइ । अण्ण चउत्थ तत्त दीसइ ।

११. कख (भोट. नहीं) । ११गघ (भोट. १३ खगघ, १४ क) धाविउ=सगोम्.ब्येद्  
=भाविउ ।

१२. (भोट. १४ खगघ, १५ क) । १३. (भोट. १३कख १५ खगघ) तपोवण=

## १(क). दोहाकोश-गीति (छाया)

८. उच्छ-भोजने होइ ज्ञान, तो करिहु तुरंगहु ।  
सरह भणइ क्षपणों का मोक्ष, मोहिं तनिक न भावै ॥
९. तत्त्वरहित काया न ताव, पर केवल साधै ॥

(८) बौद्ध-

चेला भिक्षु जे स्थविर-उदसे । वंच होहिं प्रव्रजिते-भेसे ॥

१०. कोइ सूत्रांत बखानै बैठो । कोई चित्ते करि मैं दृष्टो ॥  
अन्य तहां महायाने धावइ । (अन्ये) मंडल चक्रहु भावइ ॥
११. तामु परिज्ञाने अन्य न कोई । अपर गगने आसक्त सोई ॥  
सहज छ्वाडि निर्वाणे धायेउ । नहि परमार्थ एकउ साधेउ ॥
१२. जो जामु जेन होइ मन्तुष्ट । मोक्ष कि लब्धै ध्यान-प्रविष्ट ॥  
क्या तंह दीपे क्या नैवेद्ये । क्या तंह कीजै मंत्रहि भावै ॥
१३. क्या तंह तीर्थ तपोवन जाये । मोक्ष कि लब्धै पानि नहाये ॥  
छाडहु रे अलीका बन्धा । सो मुंचहु जो है मूढत्ता ॥
१४. तमु परिजानहु अन्य न कोई । अपरे गान सर्वहि सोई ॥  
सोई पठीजै सोई गुनीजै । शास्त्र-पुराणे बखानीजै ॥
१५. नहिं सो दृष्टि जो ना लखै । एतउ वरगुरुपादा पेखै ॥  
यदि गुरु-उक्तहु हृदये पइसै । निश्चित हस्ते स्थापित दीसै ॥
१६. सरह भनै जग बहा भूल में । निज स्वभाव नहिं लखा बालने ॥

## २. करुणा-सहित भावना

करुणारहित जो शून्यहिं लागी । नहिं सो पावै उत्तम मार्गी ॥

दकऽथुब् (तपस्या) ।

१३. गघ (भोट नहीं) ।
१४. क (भोट. १८ क) । १४ ख (भोट. १७घ) अवरै गाण्णे=तौर्गस्त्. पर्. ज्युर. न.  
(गणने) । १४ ग घ (भोट. १८ खग) ।
१५. (भोट. १८ घ, १९ कखग) । १६. खक (भोट १९घ, २०क), १६ गघ  
(भोट. १५घ, १६क) ।
१६. बाग-करुणा छुडि जो सुण्णिहिं लग्गु । ०भग्गु।० केवल भावइ । जम्मसहस्सहिं सीक्ख  
ण पावइः— (पूठ ४८) ।

१७. अहवा करुणा केवल साहअ । सो जंमन्तरे मोकख ण पावअ<sup>१</sup> ॥  
जइ पुण वेणवि जोडण साक्कअ । णउ भव णउ णिव्वारणे थाक्कअ ॥
१८. ज्ञाण-हीण पव्वज्जे र ह(अ)उ । गही वसन्ते भाज्जे सहि(अ)उ ॥  
(जइ) भिडि विसअ रमन्ते ण मुच्चअ । सरह<sup>२</sup> भणइ परिआण कि रुच्चअ ॥
१९. जइ पच्चक्ख कि ज्ञाणे कीअइ । अहवा ज्ञाण अन्धार साधिअअ ॥  
सरह भणइ मइ कड्ढिअ राव । सहज सहाउ णउ भावाभाव ॥
२०. जा ल्लइ उवज्जइ ता ल्लइ बाज्जइ । ता लइ परममहासुह सिज्जइ ॥  
सरह भणइ महु (कि) ककरमि । पसू लोअ ण बुज्जइ की करमि ॥
२१. एक्के साञ्चिअ धणअ पउरु, अवरं न्दिणण सआइ ॥  
काल गच्छन्ते वेणिण गउ, भणत्तो भणो काइ ॥
२२. पाणि चलणि रअ गइ, जीव दरे ण सग्गु ।  
वेणवि<sup>३</sup> पन्था कहिअ मइ, जिहि जाणसि तिहि लग्गु ॥

### ३. चित्त

२३. चित्तेक चित्त सअल बीअ भव-णिव्वाणा जम्म विफुरंति ।  
तं चिन्तामणिरुअं पणमह इच्छाफलन्देइ ॥
- 3a २४. बज्जइ कम्मणेण जणो कम्मविमुक्केण होइ मणमुक्को ।  
मणमोक्खेण अणुअरं पाविज्जइ परम (णि)व्वाणं ॥
२५. अक्खर वाडा सअल जगु, नाहि णिरक्खर कोइ ।  
ताव से अक्खर घोलिअइ, जाव णिरक्खर होइ ॥
२६. वद्धो धावइ दस दिसहि, म्मुक्को णिच्चल ट्ठाअ ।  
एमइ करहा पेक्ख सहि, विवरिअ महु पडिहाअ ॥
- 
१७. कख (भोट. १६ खग) जंमन्तरे=ऽखोर. ब दिर्. ग्नस्. (एहि जग ठिअ), १७ गघ. (भोट. १६ घ, १७ क) ।
१८. ( भोट. २० खगघ, २१ क ) जइ भिडि=गङ्.शि. (जो) । दे. जिद्. शेस् धिन्. शस्. सन्न=सो जाणइ च्चअ ।
१९. (भोट. २१ खगघ. २२ कख) ।
२०. ( भोट. २२गघ.; २३ कख ) जल्लइ=गङ्.शिग्. बलइ.नस्. ; बाज्जइ । ग्नस्.ऽग्युर. (वसइ) ।

१७. अथवा करुणा केवल साधा । सो जन्मांतरे मोक्ष न पावा ॥  
यदि पुनि दोनों जोडन मक्कै । ना भव ना निर्वाण रहै ॥
१८. ध्यानहीन प्रव्रज्यहिं रहितउ । गृही वसन्ते भार्या-सहितउ ॥  
यदि भिडि विषय रमन्ते न मुंचै । सरह भनै परिज्ञान कि रुच्चै ॥
१९. यदि प्रत्यक्ष क्या ध्यानेहिं कीजै । अथवा ध्यान अंधार साधिजै ॥  
सरह भनै में करी पुकार । सहज स्वभाव न भावाभाव ॥
२०. जे ले उपजै सो ले नाशै । सो ले परममहासुख सिद्ध्यै ॥  
सरह भनै में का करऊँ । पगू लोक बूझै न का करऊँ ॥
२१. एकने संचा धन प्रवर, और ने दिया गताइ ।  
काल दीतते दोनों गये, कहते कहा न जाइ ॥
२२. पाणि चरण रज गति, जीव दरे न स्वर्ग ।  
दोनों पन्था कहेउ में, जहं जानहु तंह लग ॥

### ३. चित्त

२३. चित्त एक चित्त सकल वीज भव-निर्वाण जहिं विस्फुरै ।  
सो चित्तामणि-रूप प्रणमहु इच्छा-फल देवै ॥
२४. बंधै कर्ममे जना कर्मविमुक्त होइ मन मुक्त ।  
मन-मोक्ष के पाछे ही पावै परम निर्वाण ॥
२५. अक्षर बाढा सकल जग, नाहिं निरक्षर कोइ ।  
तबलों अक्षर घोलिये, जबलों निरक्षर होइ ॥
२६. बद्धो धावै दस दिसहिं, मुक्तो निश्चल स्थाय ।  
ऐसइ करा पेखि सखि, विवरिय मोहिं प्रतिभाय ॥

२१-२२. (भोट नहीं) ।

२३. (भोट. ४१ गघ, ४२ कख), जम्म=गङ्ग ल. (जहिं) । हर. तं चित्तामणि० ।  
एवं चित्त बज्ज्जे बज्ज्जे मुक्कइ मुक्के नत्थि सन्देहो । बज्ज्जंति जेणवि  
जडा लघु परिमुच्चंति तेनवि बुधा (पृ. ६८) ।

२४. (भोट. ४० ग घ, ४१ क.ख.) मण-मोक्खेण=रङ्ग्युद्.श्रोत्. न. (स्वस्तानमोक्षेण) ।

२५-२६. (भोट नहीं), बाग. अक्खर बाढा० णाहिं० घोलिआ० (८८), हर. अक्खर  
बाढा० घोलिजा० (पृ० ११४) ।

२७. चित्तह मूल ण<sup>२</sup> लक्खिअइ, सहजें तिण्णवि तत्थ ।  
 कर्हि उअज्जअ विलअ जाअ, कर्हि वसअ फुड एत्थु ॥
२८. मूल-रहिअ जो चिन्तइ तात्त । गुरु-आएसह एत्त विआत्त ॥  
 सरह भणइ णिउ(ण)त्तणें जाणहु । एव्वर्हि पर(म) महासुह माणहु ॥
- (१) परमपद--
२९. इन्दी जत्थ विलीअ गउ, णट्ठो अप्प सहाव ।  
 सो हलें सहजानन्द तणु, फुड पुच्छह गुरुपा<sup>१</sup>व ॥
३०. जहि म्मण मरइ, पवणहो तहि खअ जाइ ।  
 एहु सो परममहासुह, सरह कहिहउ जाइ ॥
- 3b३१. जर्हि इच्छइ तहि जाउ मण, अहवा णिच्चल ट्ठाइ<sup>४</sup> ।  
 अद्धुग्घाटी लोअणें, दिट्ठीविसामे कोइ ॥
३२. जइउआअ उआएँ धाहअ । अहवा करुणा केवल साहअ ॥  
 जइ पुणु वेण्णिवि जोडण सक्कअ । तव्वें भव-णिग्घाणहि मुक्क<sup>५</sup>अ ॥
३३. पढमें जइ आआस विमुद्ध । चाहन्तें-चाहन्तें दिट्ठि णिरुद्ध ॥  
 ऐसे जइ आआम वि कालो । णिअ मण दोसैं ण बाजइ बालो ॥
३४. अहिमाण दोसैं ण लक्खिअ तात्त<sup>२</sup> । दूसइ सअल जाण सो देत्त ॥  
 ज्ञाणें मोहिअ सअलवि लोअ । णिअ सहाव न लक्खिअ कोवि ॥

२७. ( भोट. ३६ ग घ, ३७ क ख ) बाग. ०लक्खिअउ० तर्हि जीवइ विलअ जाइ वसिअउ तहि फुड एत्थ । (३६) हर. ०लक्खिअउ० तर्हि जीव विलअ जाइ वसिअउ तहि हत्त ग्रन्थ । (पृ. ९५) ।

२८. (भोट. ३७ ग घ, ३८ क ख), २८ ग के स्थान पर है--खो. वडि. रड. बडिन्-सेमस्. किय. डो- बी. जिद्. यिन्. श्से । (सहाव चित्तहि भाव) । बाग. तत्त ०गुरु-उवएसे एत्त विआत्त । ०ब जाणहु चंगे । चित्ररुअ संसारह भङ्गो (३७) हर. भणइ बट जानहु चंगे । चित्त रुअ संसारह भगे (पृ० ९६) ।

२९. (भोट. ३० ) बाग. इन्दिअ जत्थु विलअ गउ ण-ठिउ अप्प सहावा । सो हल्ले सहज तणु०पुच्छहि० पावा (२९) ।

३०. (भोट. ३१ ), भोट ३१ घ, ३२क ख अधिक पाठ । बाग. जहि मण ।

२७. चित्तको मूल न लखिअइ, सहजे तीनउ तथ्य ।  
कहूं उपजै विलय जाय, कहूं बसै फुरि अत्र ॥
२८. मूलरहित जो चिन्तै तत्त्व, गुरु-उपदेशे एतउ व्यक्त ।  
सरह भनै निपुणत्वे जानहु, एवं परममहासुख मानहु ॥

(१) परमपद-

२९. इन्द्रिय यत्र विलीन गउ, नष्टो आत्मस्वभाव ।  
सो री सहजानन्द तनु, फुर पूछहु गुरुपाद ॥
३०. जहं मन मरै पवनहु, तहं लय जाइ ।  
एहु सो परममहासुख, सरह कहिअउ जाइ ॥
३१. जहं इच्छै तहं जाउ मन, अथवा निश्चल स्थाइ ।  
अर्थ-उद्घाटित लोचने, दृष्टि विश्रामै काइ ॥
३२. यदि उपाय उपाये धावै । अथवा करुणा केवल साथै ॥  
यदि पुनि दोनों जोडन सककै । तव्वे भव-निर्वाणहिं मुंचै ॥
३३. प्रथमे यदि आकाश विशद्व । देखन-देखत दृष्टि निरुद्ध ॥  
ऐसे यदि आयासउ काल । निज मन दोषे न बूझइ बाल ॥
३४. अहिमान दोषे न लगिअै तत्त्व । दूषै मकल ज्ञान सो दत्त ॥  
ध्याने मोहित सकलउ लोय । निज स्वभाव न लखै कोय ॥

---

पवणहो कखअ जाइ । ०सो० रहिअ कहिम्पि ण जाइ (३०-३१) । हर. ०मन मरन  
पवनहि कखअ जाइ (पृ०६३) ।

३१-३२. (भोट नहीं) ।

३३. (भोट. ३४ ग घ, ३५ क ख) मणदीसें=जिद्. ल. स्वयोन्. गियस्. (यिद् चाहिए) ।  
बाग. ०विमुद्धो. ०णिरुद्धो० ऐसे० ण बुज्झइ बालो (३४) । हर. पउमै जइ०  
विशुद्धो० निरुद्धो० ऐसे जइ० दोष ण बुज्झइ बाला (६४) ।

३४. (भोट. ३५ ग घ, ३६ क ख) स्वये. बो. म. लुस्=सम्रल जण । बाग. लखिउ तत्त ।  
तुण०जाणु सो दत्त । ०णउ लक्खइ कोअ (३५), लखिउ तत्त ०तेन दूसइ सम्रल  
ज्ञान इ सो दत्त । ०णउ लक्खई कोइ (६७) ।



३५. चन्द-सुज्ज घसि घालइ घोट्टइ । सो आणुत्तर एत्थु<sup>३</sup> पअट्टइ ॥  
एव्वहिं सअल जाण णिगूढो । सहज सहावे ण जाणिअ मूढो ॥
३६. णिअ मण साच्चें सोहिअ जब्बें । गुरु-गुण हिअहि म्पइसइ तब्बें ॥  
एव मुणेवि णु सरहें गाइव । मन्त ण तन्त ण एककवि गाहिव ॥
३७. सो गुण-हीणो अहवा णिरक्खर । सिरिगुरुपाए न्दिण्णु मो वाक्खर ॥  
तसु चाहेन्तेउ हमि ण दीस । सरुअ चाहेन्तेउ हमि ण कीस ॥
३८. सअलहि तत्तसार सो वुच्चअ । सरह भणइ महुं सोवि ण रुच्चअ ॥

२ सहज, महासुख—

- 4a जइ पुणु अह-णिसि सहज पइट्टइ । अमणागमण जें तहि णेवाट्टइ ॥
३९. भावाभावें वेणिण न काज्ज । अन्तराल द्ठिअ पाडहु बाज्ज ॥  
विविह पआरें चित्तवि अपिव । सोवि चित्त ण केणवि अपिव ॥
४०. इन्दी विसअ उ असंठाउ, सएं सम्बित्तिए जत्था ।  
णिअ चित्तन्ते काल गउ, ज्ञाण महासुह तत्थ ॥
४१. पत्त मुसारिउ मसि मिलिउ, होवि लिहे<sup>२</sup> ना खीणु ।  
जाणिउ तें विस परमपउ, कहि(अइ कहि) लीएणु ॥
४२. ज्ञाण-रहिअ कि कीअइ ज्ञाणें । जो अवाच्च तर्हि किअ वक्खाणे ॥  
भुअ मु(द्)दे सअल जग वाहिउ<sup>३</sup> । णिअ सहाव ण केणवि णाहिउ ॥
४३. मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण । सब्बवि रे बढ वि(ब्)भम-कारणं ॥  
असमल चीअ म ज्ञाणें खरडह । सुह अच्छन्ते म अप्पण\* ज्ञगडह ॥

३५. (भोट नहीं), बाग. पाव-पुण्ण तबें ता खणे तुट्टइ । अइसो करण काह चिवरीर । तें अजरामर होइ सरीर (पृ० ४८) ।

३६. (भोट. ३६ ग घ, ४० क ख) बाग. ०सब्बें. ०हिअए पइसइ० एवं मुण मुणि सरहें गाहिउ । तन्त मन्त णउ एककवि चाहिउ (३६); हर. ०सबे० जबे० गुण हियए पइसइ एवम मणे सरहें० चाहिव (६७) ।

३७.-४०. (भोट नहीं) ।

४१. (भोट. १०८) । स. का पाठ खंडित ह, भोटानुवाद है—स्तग्. छ्. म्. ओस्. पस्. बलग्. तु.

३५. चन्द्र-सूर्य घसि घालै घोट्टै । सोइ अनुत्तर इहां पईठै ॥  
 एवं सकल ज्ञान निगूढा । सहज स्वभाव न जानै मूढा ॥
३६. निज मन साचै शोधित जबबैं । गुरु-गुण हृदयहि पइसै तब्बैं ॥  
 एवं मने करि सरहे गाइउ । मंत्र न तंत्र न एकउ ग्राहेउ ॥
३७. सो गुणहीन अथवा निरक्षर । श्रीगुरुपादा दीनु मोहि अक्षर ॥  
 तासु देखतेउ हम न दीख । स्वरूप देखतेउ हम न कईस ॥
३८. सकलहि तत्त्वसार सो उच्यै । सरह भनै मोहि सोउ न रुच्यै ।

(२) सहज, महासुख-

- यदि पुनि अह्निसि सहज पईसै । अवनगवन जे तंह निवर्तै ॥
३९. भाव अभाव न दोनेहु कार्य । अन्तराल स्थित पातहु वाज ॥  
 विविध प्रकारे चित्तउ अर्पिय । सोउ चित्त न काहुअ अर्पिय ॥
४०. इन्द्रिय विषयउ न स्थाय, स्वसंवित्तिये यत्र ।  
 निज चित्तान्तर काल गउ, ध्यान महासुख तत्र ॥
४१. पात्र मुसारिय मसि मिलिउ, होइ लिखे न क्षीण ।  
 जानेउतैं विष परमपद, कहिये करुं (सो) लीन ॥
४२. ध्यान-रहित क्या कीजै ध्यानें । जो अ-वाच्य ताहि क्यो बखानै ॥  
 भुवसमुद्रे सकल जग बहेउ । निज स्वभाव न केहूहि गहेउ ॥
४३. मंत्र न तंत्र न ध्येय न धारण । सर्व इ रे मूर्ख विभ्रम-कारण ॥  
 अ-समल चित्त न ध्याने खरडहु । सुख रहते ना अपने झगडहु ॥

मद् । रिग्. ब्येद्. दोन्. मे. जाम्स्. दम्. प। सेम्स्. दङ्. चिग्. शोस्. मि. शोस्. न।  
 गङ्. नस्. शर्-चिङ्. गङ्. दु. नुब् ।

४२. (भोट. २३) भुअ-मुदे=ल्लिददपडि. फ्य. ग्यस् (भव-मुद्रे); बाग, ज्ञाण  
 वाहिअं अ-वाअ तहि काहि बखाणे । भवमुदे सअलहिं णउं साहिउ  
 (२२)। हर. भवमुद्रे (६२) ।

४३. (भोट. २४) रे बढ, रङ्. यि. (स्व मन), बाग. ० बढं चित्तं अच्यन्त  
 म अण्वणुं । हरं चित्तं म ज्ञाणइ खरतहं अण्यनु जगतहं ।

४४. गुरु-वअण-अमिअ-रस, धवहिं ण पिविअउ जहिं ।  
बहु सात्थात्थ-मरुत्थलिहिं, तिसिअ मरिब्बो तेहिं ॥
४५. मण निम्मल सहजावत्थे गउ, अरिउल नाहिं म्पवेस<sup>१</sup> ।  
ए तें चीएहु फुड सथाविअउ, सो जिण नाहिं विसेस ॥
४६. जिम लोण विलिज्जइ पाणिएहिं, तिम जइ चित्तवि ट्ठाइ ।
- 4b अप्पा दीसइ परहिं सम, तत्थ समाहिए<sup>६</sup> काइ ॥
४७. जोवइ चित्त ण आणइ बम्हा । अवर को विज्जइ पुच्छइ अम्हा ॥  
णामेहिं सण्ण अ-(स)ण्ण पआरा । पुणु परमत्थे एकाआरा ॥
४८. खाअन्ते-पीवन्ते सुरअ<sup>७</sup> रमन्ते । आलि-उल वहलहो चक्क फरन्ते ॥  
एवहिं सिद्धि जाइ परलोअह । माथे पाअ देइ भुअलोअह ॥

## ३. परमपद--

४९. जहि मण पवण ण संचरइ, रवि-ससि णाहिं पवेस<sup>२</sup> ॥  
तहिं बढ चित्त विमाम कर, सरहें कहिअ उएस ॥
५०. एकक कर मा वेण्णि कर, मा कर विण्णि विसेस ।  
एकके रंगे रज्जिआ, तिहुअण सअलासेस ॥
५१. आइ<sup>३</sup> ण अन्त ण मज्ज तहिं, णउ भव णउ णिवाण ।  
एहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥
५२. अगें पच्छें दस दिसें, जं जं जोअमि सोवि ।  
ऐव्वें तु दीठन्त डी, णाह ण पुच्छमि कोवि ॥

४४. (भोट. ६६ क ख ) बाग. ० गुरु-उवएसें० धावहिं ण पीअउ जेहि । ०सत्थत्थ०  
तिसिअ मरिअउ तेहि (५६) । हर० ०उवअसो अमिअ-रसु हवहिं ण पीअउ जहि ।  
०सत्थत्थ-मरुत्थलिहिं तिसिअ मरिखउ तेहि (१०२) ।

४५.-४८. (भोट नहीं) ।

४८. बाग. ० (पिवन्ते ०सुह० णित्त पुणु-पुणु चक्कवि भरन्ते । अइस धम्मे सिज्जइ पर-  
लोअह । णाहं पाएं दलि उ भअलोअह (२४) । हर. ०भअलोअह (६२) ।

४९. (भोट. २६) ब = मि. शेस्. प. दग्. (मर्ल) ; बाग. ०णाह०: बढ० (२५),  
हर. ०नाह० उवेश (६३) ।

४४. गुरु के वचन अमियरस, धाइ न पीयेउ जेहि ।  
बहु शास्त्रार्थ-मरुस्थले, तृषिते मरिवो तेहि ॥
४५. मन निर्मल सहजावस्थे गउ, अरिकुल नाहि प्रवेश ।  
एते चेतैउ फुर स्थापिय, सो जिन नाहि विशेष ॥
४६. जिमि लवण विलीजै पानियै, तिमि यदि चित्त विलाइ ।  
आपहि दीखै परहि सम, तत्र समाधिये काह ॥
४७. युवती चित्त न आनै ब्रह्मा । और को है (जो) पूछै हम्मा ॥  
नामे सत्त असत्त प्रकारा । पुनि परमार्थे एकाकारा ॥
४८. खाते पीते सुरत रमन्ते । आलिकुल बहुलहु चक्र फिरन्ते ॥  
एवं सिद्धि जाइ परलोकिहि । माथे पाद देइ भवलोकिह ॥

३. परमपद--

४९. जंह मन पवन न संचरै, रवि शशि नाहि प्रवेश ।  
तहँ मूढ, चित्त विश्राम कर, सरह कहेउ उपदेश ॥
५०. एक कर ना दोउ कर, ना कर द्वैत विशेष ।  
एकहि रंगे रंगिया, त्रिभुवन सकल अशेष ॥
५१. आदि न अन्त न मध्य तंह, ना भव ना निर्वाण ।  
एहु सो परम महासुख, ना पर ना अप्पान ॥
५२. आगे पाछे दसदिसहि, जो जो जोऊं सोइ ।  
एवं तो दीठंतडी, नाहि न पूछउँ कोय ॥

५०. ( भोट. २७ ) मा कर विण्ण विसेस=रिग्स्. ल. ब्ये. ब्रग्. दग्. तु. म. ब्येद्. पर्. (मा कर विज्जे विसेस) । बाग. एकक कर (रे मा वणिण जाणे ण करह भिण्ण । एहु. तिहुअण सअले महाराअ एक्क-एक्कु वण्ण) (२६) ।

५१. ( भोट. २८ ) बाग. मज्झ णउ णउ० (२७) ।

५२. ( भोट. २९ ) एव्वे तु दीठन्तडी=दे. रिड. जिद्. दु. म्गान्. पो. द्ल्त्. श्युल्. प. छद्. ( अब्ब हि णाहभान्ति तुट्ठिअ ) । बाग. (दह दिहहि जो जो वीसइ तत्त सो । अज्जहि तइसो भन्ति सुक्क एव्वे मा पुच्छ कोइ) (२८) ।

५३. बाहरें साद को देइ, अभिन्तरे को आलवइ ।  
साद्धह साद्ध को मेलवइ, को आणइ को लेइ ॥
५४. अप्पा परहिं ण मेलविउ<sup>५</sup>, गमणागमण ण भाग्ग ।  
तुम कुट्टंते काल गउ, चाउल हत्थ ण लाग्ग ॥

#### ४. भावना

५५. रवि-ससि वेण्णवि मा कर भान्ती । बम्हा-विट्ठु महेसर भान्ती ॥  
5a गाढालिङ्गमाण सो राज्ज व<sup>६</sup>रु, जग उप्पज्जइ तत्थु ॥
५६. अरे पुत्त तोज्झ (तत्त), रसु सुसंठिउ भोज्ज ।  
वक्खाणन्त पढन्तानिअ, जर्गाहिं णिआ-णिअ सोज्झ ॥
५७. अध-उद्ध माग्गवरें पइसरइ । चन्द-सुज्ज वेइ<sup>७</sup> पडिहरेइ ॥  
वच्चिज्जइ कालहुतणअ गइ । वे विआर समरस करेइ ॥
५८. को पत्तिज्जइ कसु कहमि, अज्जउ किअउ अराउ ।  
पिअ-दन्सणें हले णट्ठ णिसि<sup>८</sup>, संझासं हुड जाउ ॥

#### १. शून्यता —

५९. सुण्णवि अप्पा सुण्ण जग्गु, घरे-घरें एहु अक्खाण ।  
तरुअर-मूल ण जाणिआ, सरहे हिं किअ वक्खाण ॥
६०. जइ रसाअलु पइसरहु, अह दुग्गमहु आआस ।  
भिण्णाआर मुण तुह, कह मोक्ख-हब्बामु ॥
६१. बुद्धि विणासइ मण मरइ, तुट्ठइ जर्हि अहिमाण ।  
सो माआमअ परमपउ,<sup>९</sup> तर्हि कि वज्जइ ज्ञाण ॥
६२. भव उएक्खड खएहि णिवज्जइ । भाव-रहिअ पुणु कर्हि उअज्जइ ॥  
वेइ-विवज्जिअ जो उअज्जइ । अच्छहु सिरिगुरुणाहें कहिज्जइ<sup>१०</sup> ॥

५३-५५. (भोट नहीं) ।

५६. (भोट. ६० ग घ, ६१ क ख) स. का पाठ संदिग्ध । अनुवाद हः कथे. हो. बु. . . . ब्रिन्. नो. (अरे पुत्त तत्त नाना रस न सुसंठिअउ भोज्ज । सुहपरमठाण. . . तज्जिअ जर्गाहि उवज्जइ जिमि । हर. ० बोज्जु रसरसण सुसंठिअ अज्ज । वक्खण पढन्तेहि जर्गाहि ण जाणउ० (१०१) ।

५७.-६०. (भोट नहीं) ।

५३. वाहरे स्वाद को देख, आभ्यंतरे को आलपइ ।  
स्वादहि स्वाद को मेलै, को आनै को लेइ ॥
५४. आपा परहि न मेलवै, गमनागमन न भाग ।  
तुष कूटन्ते काल गउ, चावल हाथ न लाग ॥

#### ४. भावना

५५. रवि शशि दोनों ना कर मान्ती । ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर भ्रान्ती ॥  
गाढालिगमान सो राज, बरु जग उपजै तत्र ॥
५६. अरे पुत्र तू (तत्त्व) रस, सुसंस्थित भोगु ।  
बखानते पढते निज, जगहिं निजानिज सोझु ॥
५७. अध-ऊर्ध्व मार्गवरे पइसइ । चन्द्र सूर्य दोनों परिहरेइ ॥  
वंचि जाये कालहुसे । दो विकार समरस करेइ ॥
५८. को पतियाये कासु कहउँ, आजउ कियउ अराव ।  
प्रिय दर्शन री नष्ट, निशि संध्या संफुर जाव ॥

#### १. शून्यता—

५९. शून्य उ आत्मा शून्य, जग, धरे-धरे एहु आख्यान ।  
१० तरुवरमलु ने जानिया, साधहि क्या व्याख्यान ॥
६०. यदि रसातल पइसर, अथ दुर्गम आकाश ।  
भिन्नीचार मान तोहु, कह मोक्ष अभ्यास ॥
६१. बुद्धि विनाश मन मर, टटै जह अभिमान ।  
सो मायामय परमपद, तह का बाधि ध्यान ॥
६२. भव उदाक्ष क्षयहि निपज्ज । भावरहित पुनि कहाँ उपजै ॥  
द्वैतविवीजत जो उपजै । अच्छहु श्रीगुरुनाथ कहिजै ॥

६१. (भोट. ६१ ग घ, ६२ क ख) परमपउ = म्छोग्. तु. तोग्स्. प. स्ते (परमकलु). बाग. ० जहि (तुट्टइ) ० परमकलु तहि किम्बज्जइ ० (५३) हर. ० मरइ जहि अहिमाण । सो माश्रामअ परमकलु तह किम्बज्जइ (१०१) ।
६२. (भोट. ६३ ग घ, ६४ क ख) भव उएकखइ खएहि णिवज्जइ = द्. डोस्. पोर. स्क्येस् म्खऽ एत्. र. ड. ब्शिन् न. (भाव उबज्जइ ०) । बाग. भवहि उअज्जइ खअहि ० कहि उवज्जइ । विष्णु ० जो उवज्ज । अच्छहु ० गाहे ।

## (२) भोग में योग—

६३. देखखउ सुणउ पईसउ साद्दउ । जिघघउ भमउ बईसउ उट्ठउ ॥  
आलमाल बवहारें बोल्लउ । मण च्छड्डु एकाआरे म्म चलउ ॥
- 5b६४. चित्ताचित्त वि परिहरहु<sup>६</sup>, तिम अच्छहु जिम बाल ।  
गुरु-वअणें दिठ भत्ति कर, होइहइ सहज उल्लाल ॥
६५. अक्खरवाणो परमगुणें रहिअउ । भणइ णं जाइ सो मइ कहिअउ ॥  
सो परमेसर कासु कहिज्जइ । सुअ कुमारी<sup>७</sup> जिम उअज्जइ ॥
६६. भावाभावें जो परिच्छिणउ । त(हिं) जग तिअ सहाव विलीणउ ॥  
जव्वें तहि मण णिच्चल थाक्कइ । तव्वें भव-णिग्वाणेहि मुक्कइ ॥
६७. जाव ण अप्पउं पर<sup>८</sup> परिआणसि । ताव कि देहाणुत्तर पावसि ॥  
एमइ कहिउ भान्ति ण भावा । अप्पउ अप्पा बुज्झहि तावा ॥
६८. अणु-परमाणु ण रूअ विचित्तउ । अणवर<sup>९</sup> भावहु फुरइ सरइउ ॥  
सरह भणइ भिडि एत्तवि मान्तउ । अरे णिकोल्ली बुज्झहु मित्तउ ॥
६९. आगो आच्छअ बाहिरे आच्छअ । पइ देखअ पडवेसी पुच्छअ<sup>१०</sup> ॥  
सरह भणइ बढ जाणहु अप्पा । णउ सो धेअ ण धारणं जापा ॥
७०. जइ गुरु कहइ सब्ब वि जाणी । मोक्ख कि च्छड्डइ अप्पणु बाणी ॥  
देस भमइ हाब्बासे लइउ । सहज ण बुज्झइ पावें गहिउ ॥

६३. (भोट. ६४ गव, ६५ कख) पईसउ साद्दअ = रिग् दड्. । द्रन्. प. दड्.; बाग. देखहु सुणहु परीसहु खाहु । जिघहु भमहु बईद् उट्ठाहु । ०व्यवहारे गेल्लइ । मण च्छड्ड एकाकार म चत्तलह (५५) हर. व्यवहारे पेल्लहु । मण च्छड्डु एकाकार म चत्तलह (१०२) ।

६४. (भोट. ७०) चित्ताचित्त = ब्. थ्सम्. दड्. त्सम्. व्य. (चित्तचैतस) उल्लाल, थे. छोम्. मेद् (निसंदेह) । बाग. ०बालु : ०होइ जइ० उलालु (५७), हर. ०बालु : ०हइह इ (१०३) ।

६५. (भोट. ७१), बाग. अक्खरवणो पर (स) गु(ण) रहिओ : ०जाण ए मइ कहिओ । ०परमेसर० जिम पडिवज्ज (५८). हर. वर्णो० रहिजे । भमइण जाणइ सो मइ कहिजे ।

६६. (भोट. ७२) तहिं जग तिअ० विलीणउ-देर्. नि अओ. व. म-लुस्... तहिं.. जगसअल), भव-णिग्वाणेहि: अओर्. बडि. दड्डोस्पो. (भवभावहि) बाग.०

(२) भोग में योग—

६३. देखहु सुनहु परईसहु स्वादउ । सू घउ भ्रमहु वईठहु उठुउ ॥  
आलमाल व्यवहार बालिहु । मन छोडि एकाकार न चलिउ ॥
६४. चित्त अचित्तहु परिहरहु, तिमि रहहु जिमि वाव ।  
गुरुवचने दूहु भक्ति कर, होइहै सहज उलाम ॥
६५. अक्षर-वर्ण परमगुण रहितउ । भन्यो न जाइ सो म कहिउ ॥  
सो परमेश्वर कामु कहैजि । सुरत कुमारी जिमि ऊपज ॥
६६. भाव-अभावे जो परिछिन्नउ । तहँ जगत स्वभावे विलीनउ ॥  
जववै तहँ मन निश्चल थाकै । तव्वै भवनिर्वाणहिँ मुचै ॥
६७. जीलों न आपहु पर परिजातमि । तीलों कि देहु अनुत्तर पावमि ॥  
यहँ में कहैउ भ्रानि न भावै । आप अपन बूझहि तववै ॥
६८. अणु परमाणु न रूप विचित्तहु । अनव भावहु स्फुरै सर उ ॥  
सरहँ भनै भिडि एतउ मानतउ । अरे निष्कुली बूझहु मित्रउ ॥
६९. आगे रहै बाहिरे रहै । पति देखै पढोसी पुछै ॥  
सरहँ भनै मूढ जानहु आपा । नहिँ सो ध्यय न धारण जापा ॥
७०. यदि गुरु कहै सर्ववै जानी । मोक्ष का मिल आपन वाणी ॥  
देश भ्रम अ भ्यासे लेइउ । सहज न बूझ पाप गहिअउ ॥

परिहीणो । तहिँ जगे सअलासेस विलीणो । ०थक्कइ । भवसंसारह० (५६); हर. ०जो परि- हीणो । तहिँ जग सअलासेस विलीनो । ०जबबयाँह मण णिचचल थक्कइ । तब्य भवसंसारह मुक्क (१०३) :

६७. (भोट. ७३) बाग. अर्पहि० । हर. जाव ण अर्पहि० अमेइ कहिजे भतिण कद्वा ।  
अर्पहि अर्प्या बूझसि तब्बा ।
६८. (भोट. ७४) अणवर भावहु फुरइ सरइउ=दुडोस्. पो. दे. दग्. ग्दोद्. नस्. ज्ञे. न. प. मेद्. बाग. णउ अणु णउ परमाणु विचित्तजे । अणवर (अ) भावहि फुरइ सुरतजे । भणइ सरह मन्ति एत विमत्तजे । अरे णिक्कोली बुझहु परमत्यजे (६१), हर. अणवर भावहि स्फुरहि सुरतजे । भणइ सरह भिति एत विमत्तजे (१०४) ।
६९. (भोट. ७५) अर्ग=ख्यिम्. न (घरे); बाग. पडिबेसी पुच्छ ।
७०. (भोट. ७६) हब्बासे लइअइ=गुड्ड. बस. ज्ञे. न. ब्यस् । बाग. सअल विणुं जाणी ।



७१. विसअ रमन्ते ण विसअहिं लिप्पइ । उअल हरन्ते ण पाणी च्छप्पइ ॥

6a एमइ जोइ मूल सगत्तो । विसअ<sup>३</sup> ण वाज्जइ विसअ रमन्तो ॥

(३) भ्रान्त पथ--

७२. देव पुदिज्जअ लक्खवि दिज्जअ । अप्पउं मारी कीस करिज्जअ ॥

तहवि ण तुट्ठइ एहु संसारू । विणु आभासें णाहि निसारू ॥

७३. भावाभावह भावणुरत्तो । पसुअ मज्जे ते गणिअन्ति सत्तो ॥

ज्ञाणे जा किअ मोकवावास । सो भव-राक्खसकेरो दास ॥

७४. धरिअउ हंस मइ कहिअउ भेअ । अध-उद्ध दुइ<sup>३</sup> पक्खां च्छेअ ॥

पक्खविहुण्णे कहवि जाअ । देह मढ जइ णिच्चल ट्ठाअ ॥

७५. पंडिअ सअल सत्थ वक्खाणअ । देहहिं बुद्ध वसन्त ण जाणअ ॥

अमणागमण ण एकक वि खण्डिअ । तउ णिलज्ज भणइ हंडं पण्डिअ ॥

(४) सहज अवस्था--

७६. जत्तइ चित्तहु विफुरइ, तत्तइ णाहु सरूअ ।

अण्ण तरंग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरूअ ॥

७७. ण तं वाएं गुरु कहइ, णउ तं बुज्जइ सीस ।

सहज सहावा हलें अमिअरस, कासु कहिज्जइ कीस ॥

७८. जत्तइ पइसइ जलेंहि जलु, तत्तइ समरसु<sup>१</sup> होइ ।

दोसगुणाअर चित्तता, वढ पडिवक्ख ण होइ ॥

७९. च्छड्डुह जे सहजे सहज बुद्धिए लइउ । विविह पआर पवञ्चा सहिउ ॥

6b एकक कहवि ण<sup>३</sup> कीअई वासण । एहु आणत्त सअल जिण-सासण ॥

८०. मुक्कावथि जे सअल जगु, णाहि णिवद्धो कोवि ।

मूढहि मोहे पमत्तिअइ, सत्थावत्थ जे सोवि ॥

७१. (भोट. ७७) उअल हरन्ते=उत्पल. 5दब्. म. (उत्पल पत्र) । बाग. उअर सरन्तो । विसाह ण वाहइ विसअ रमन्तो ।

७२. (भोट. ७८) देव विज्जइ (१०७) ।

७३-७४. (भोट नहीं) ।

७५. (भोट. ८१ ग घ, ८२ क ख) । बाग.० वक्खाणइ । ० ण तेण विखण्डिअ । तोवि० ड्डु (६८) । हर. तो वि णिलज्ज० (१०७) ।

७१. विषय रमन्त न विषयहिं लिप्यै । उत्पल हरन्त न पानी छुवै ॥

एवं योगी मूल सगात्रो । विषय न बंधै विषय रमन्तो ॥

(३) भ्रान्त पथ—

७२. देव पूजियै लक्षउ दीजि । आपा मारिय कइस करीज ॥

तथापि न टटइ एहु ससाखु । बिन आभास नाहि निसाखु ॥

७३. भाव-अभावाहि, भाव अनुरक्त । पशु-मध्य त गणियत सत्त्व ॥

ध्यान जा करि मोक्षावास । सो भवराक्षसकरा दास ॥

७४. धरियउ हंस मैं कहिअउ भेद । अधः उर्ध्वं दोउ पक्षहँ छेदि ॥

पक्ष विहूने कहबो जाय । देह मढ जो निश्चल स्थाय ॥

७५. पंडित सकल शास्त्र बख्खानै । देहहि बुद्ध वसंत न जान ॥

अवनागवन न एकउ खंडित । तरु निलज्ज भनै हम पंडित ॥

(४) सहज अवस्था—

७६. जेतइ चित्तउ विस्फुरै, तेतइ नाथस्वरूप ॥

अन्य तरंग कि अन्य जल, भव-सम ख-सम स्वरूप ॥

७७. ना तेहि वोचहि गुरु कहै, ना तेहि वूझै शिष्य ॥

सहज स्वभाव रो अमियरस, कासु कहीजै कैस ॥

७८. जेतइ पइस जलाहि जल, तेतइ समरस हाइ ।

दोषगुणाकर चित्तता, मूढ प्रतिपक्ष न होइ ॥

७९. छाडहु जे सहजे सहज बुद्धिइ लेइअउ । विविध प्रकार वंचना सहिअउ ॥

एक कहिव न कीजै वासना । एहु आज्ञप्त सकल जिन-शासना ॥

८०. मुचाव जे सकल जग, नाहि निवद्धा कोइ ।

मूढा मोह प्रमत्तिया, शास्त्रावस्थ जे सोइ ॥

७६. (भोट. ८७), बाग. जत्तवि चित्तहि विस्फुरइ तत्तवि गहं हर. जत्तवि

चित्तह विस्फुरइ, तत्तवि गाह सरूप (१०६) ।

७७. (भोट. ६६ ग घ, ६७ क ख) ।

७८. (भोट. ८६) बढ = मंगोन्. पो. (नाथ); हर. दोषगुणाअर चित्तता बढ परिवक्खा  
ण कोइ ।

७९.-८७ (भोट नहीं) ।

८१. चित्तह पसर गिरन्तर देकखी । लोह मोह जे कहिउ(उ)एकखी ।  
जकख-रुअ जिम चित्तएर विभाअ । मायाजाल जे तिम पडिहाअ ॥
८२. सअलद्रो एहु साहाञ्चिअ देकखहु । तहि<sup>२</sup>म्बि लीण चित्त उएकखहु ॥  
सहजें सहज वि वुज्झइ जव्वें । अन्तराल गइ तुट्टइ तव्वें ॥
८३. रिद्धि-सिद्धि हलें वेण्णि न काज्ज । पाप-पुण्ण तहि पाडहु बाज्ज ॥  
सो<sup>३</sup> अ(१)णुत्तर वुज्झहि जव्वें । सरह भणइ जग सिज्झइ तव्वें ॥
८४. गुरुअ वअण संसिद्धउ जव्वें । इन्दिआल सब्ब तुट्टइ तव्वें ॥  
सरह भणइ अ(१)णुत्तर धाम्म । हरि-हर-बुद्ध एहुवि काम्म ॥
८५. सब्बाआरवरोत्तम कोवि । सुणह सिआल ब सत्तु लें सोवि ॥  
सुद्धिए (?) जाणिअ जव्वें । जिण-गुण-रअण पाविअ तव्वें ॥
८६. अहवा मोहे सो<sup>४</sup> परिआणिउ । मोक्खह बुद्धिए जाइ सम्माणिअउ ॥  
हत्थहि कडकण ट्ठिअउ ण्णाइ । गुण-दोस-विअकंखण दप्पणहि ण जाणइ ॥
- ८७ बद्धह सअल मणे देइ<sup>५</sup> मुक्का मल्ल माण सो वाज्झइ ।
- 7a जाणह परमात्थ न अत्था च्छिण्णं सब्बोच्छिण्णं पेच्छह सब्बं ॥
८८. सा होह सुब्बोच्छिण्णं अब्बोच्छिण्णं मुन आणंतण ॥  
सएसंवित्ति मा करहु रे धान्धा । भावाभाव<sup>६</sup> सुगति रें बान्धा ।
८९. णिअ मण मणहु रे णेहुएं जोइ । जिम जल जलेहि मिलन्ते सोइ ॥  
ज्ञाण मोक्ख कि चाहु रे आलें । माआजाल कि चाहु रे कोलें ॥
९०. वरगुरुवअण<sup>७</sup> पत्तिजइ साच्चें । सरह भणइ मइ कहिअउ वाच्चें ॥  
णिअ सहाव ण लद्धअ वअणें । दीसइ गुरु-आएसे णअणें ॥
९१. णउ तसु दोस जे एककवि ट्ठाअ<sup>८</sup> । धम्ममाधम्म जे मोही खाअ ॥  
चित्ते बद्धे बज्झइ मुक्के मुक्कइ णत्थि सन्देहो ।

८८. क ख ( भोट. नहीं); ८८ गघ (भोट. ३२ क ख); बाग. सअसम्बित्ति म० ।

सुगति रे (बद्ध)बन्धा । हर. सइसम्बित्ति म करहु० । ०सुगतिरेव बन्धा ।—

८९. (भोट. ३३) मणहरे णेहुएं=गच्छिग्, तु. तोद्. (एक करहु), मिच्छे ज्ञाणे मोक्ख ण लब्भइ)। बाग. ज्ञाण मोक्ख० । जाल कि लेहु रे कोल । हर. ०कि राहु रे आलें० । ०कि लेहु ० ।

८१. चित्तका प्रसर निरंतर देखी । लोभ मोह जे कहेउ उदेखी ॥

यक्ष रूप जिमि चित्ररु विभाय । मायाजाल जे तिमि प्रतिभाय ॥

८२. मुकलहु एहु सहाचिंत देखहु । तहु विलीन चित्त उदेखहु ॥

सहज सहजउ बूझ जव्व । अंतराल गति टूटै तव्व ॥

८३. ऋद्धिसिद्धि री दोउ न काज । पाप-पुण्य तंह डारहु वाज ॥

सो अनुत्तर बूझै जव्वै । सरह भनै जग सिद्धै तव्वै ॥

८४. गुरु वचन सुसिद्धउ जव्वै । इन्द्रजाल सब टूटै तव्वै ॥

सरह भनै अनुत्तर धर्म । हरि-हर-बुद्ध जे एहुउ कर्म ॥

८५. सर्वाकारवर उत्तम काइ । गुनक शृंगालउ सत्त्व ले सोइ ॥

शुद्धि ( ) जानिय जव्वै । जिन-गुण-रतन पाइय तव्वै ॥

८६. अथवा मोहे सो परिजनउ । मोक्षहि बुद्धिहि जाय सम्मानउ ॥

हाथहि कंकण स्थितउ नाइ । गुणदोष विक्षण दर्पणहि जानइ ॥

८७. बुद्धिह सकल मन देइ मुक्ता मल्ल मान सो वाइइ ।

जान परमाथ न अथच्छन्न सर्वाच्छन्न पखे सव ॥

८८. सा होहु सुव्यवाच्छन्न अव्यवाच्छन्न आनन्तर ।

स्वय सर्वात्त न करहु रे बंधा । भाव-अभाव सुगति रे बंधा ॥

८९. निज मन मनन करु रे तिपुणै योगी । जिमि जल जलेहि मिलन्ते सोई ॥

ध्यान मोक्ष कि देखहु रे प्रवाहे । मायाजाल कि लेहु रे क्रोडे ॥

९०. वरगुरुवचन पतियाइय साचें । सरह भनै मैं कहिअउ वाचें ॥

निज स्वभाव न लवभै वचने । दीखै गरु आदेशे हि गगने ॥

९१. नहि तसु दोष जे एकहु ठाँव । धर्माधर्म जो मोही खाव ॥

चित्त बंधे बंधै मुक्ते मंचइ न अस्ति संदेहो ।

९०. ग घ ( भोट. ३९ गघ) लङ्घनः मि. ङ्जो. क्यङ्. (ण कहिअउ); बांग. गणु कहिअउ

अण्ण । ०गुरुउवएसें ण अण्णों।

९१. (भोट. ४०, ४२ गघ), बांग. ०तसु दस ओट्ठाइ । सा सोहिअ खा (३८) । हर.

णउ तसु दोस जे एककवि ठाइ । धमाधम्म सोहिअ खोइ ।

६२. वज्जन्ति जेण जडा परिमुञ्चन्ति तेण बुधा ॥  
वद्धो गमइ दस दिसेहि, मुक्को<sup>४</sup> णिच्चल ट्ठाअ ।  
६३. एमइकरहा पेक्खु सहि, विवरिअ महु पडिहाइ ॥

(५) सहज समरस-भाव—

- पवण धरि अप्पाण म भिन्दह । कट्ठ-जोअ नासाग्ग म विन्दह ॥  
६४. अरे बढ सहज गइ पर रज्जह । मा भव-गन्ध-बन्ध पडिबज्जह ॥  
एहु निअ मण सबल चातर स चल । मेलहि सहाव ट्ठाअ वसइ दोस-णिम्मल ।  
६५. जब्बे मण अत्थमणु जाइ, तणु<sup>६</sup> तुट्टइ बन्धण ।  
7b तब्बे सम रसहि मज्झे, णउ सुद्ध ण बाम्हण ॥

### ५. यहीं सब कुछ

(१) देह ही तीर्थ—

६६. एथु से सरसइ सोवणाह, एथु से गङ्गासाअरु ।  
वाराणसि पअाग एथु, से चान्द-दिवाअरु ॥  
६७. खेत पिट्ठ उअपिट्ठ, एथु मइ भमिअ समिट्ठउ ।  
देहासरिस तित्थ, मइ सुणउ ण दिट्ठउ ॥  
६८. सरु पुडअणि दलु कमल, गन्ध-केसर वर णाले ।  
च्छाडहु वेणिमा करहु से, मा लाग्गहु बढ आले ॥  
६९. कामान्त सान्त खअ जाअ, एत्थ पुज्जहु कुलहीणउ ।  
बाम्ह-विट्ठु-तइलोअ, जहि जाइ विलीणउ ॥

- 
६२. (भोट. ४३ क ख, ५१ ग घ), बाग. वज्जन्ति जेणवि जडा लहु परिमुच्चन्ति तेणवि बुधा (४२) ।  
६३. (भोट. ५२ क ख, ५३ ग घ), सहि=गो. वस्लोग; बाग. विहरिअ महुं (४३) ।  
६४. (भोट. ५४), बाग. ६२।४४ पवण-रहिअ अप्पाण म चिन्तह । कटठ-जोइ णासग्ग म बंधह । (भोट.) .बाग. अरे बढ सहज सइ पर रज्जह । मा भव-गन्ध-बन्ध पडिचज्जह- (४४) । एहु मेलह तुरङ्ग सुच्चल । सहज सहावे सो वसइ णिच्चल (४५); हर. ०सहज शइ पर णज् जहु (६६) ।  
६५. (भोट. ५५ ग घ, ५६ क ख); बाग. ०मणु अत्थमणु ० । ०समरस वज्जइ (४६); हर. जब्बे मण अत्थमण जा तणु ० ।

६२. बंधें जासे जडा परिमृच्चें तेन वृधा ॥  
वद्धोउ जावै दम दिसहि, मृक्तउ निश्चल स्थाय ॥
६३. एवं करभा पेखु सखी, विवरिय मोहि प्रतिभाय ॥

(५) सहज समरस-भाव--

- पवन धरी आपा ना भिन्दहु । कपटे योग नासाग्र न बिन्दहु ॥
६४. अरे मूढ, सहज गति पर रंजै । ना भव-गंध-बंध प्रतिपद्यै ॥  
एहु निज मन तुरंग चंचल । मेलहि स्वभाव स्थाय वसै दोष-निर्मल ॥
६५. जब्बै मन अस्तमन जाइ, तन टूटै बंधन ।  
तव्वै समरस मध्ये, ना शूद्र न ब्राह्मण ॥

### ५. यहीं सब कुछ

(१) देह ही तीर्थ--

६६. एहिं सो सरस्वती प्रयाग, एहिं सो गंगामागर ।  
वाराणसी प्रयाग, एहिं सो चन्द्रदिवाकर ॥
६७. क्षेत्र पीठ उपपीठ एहिं, मै भ्रमेउ समिस्थउ ।  
देह सदृश तीर्थ, मै मुनेउ न देखेउ ॥
६८. सर पुरइणि दल कमल, गंध केसर वर नालें ।  
छाडहु द्वैत न करहु से, ना लागह मढ आले ॥
६९. कामन्त शान्त क्षय जाय, अत्र पूजहु कुलहीनहु ।  
ब्रह्मा-विष्णु-त्रिलोचन, जह जाय विलीनउ ॥

- 
६६. (भोट. ५६ ग , ५७ क ख) बागची-एत्यु से सुरसरि जभणा एत्यु ०।० पत्राग वणारसि एत्यु से चन्द्रदिवाग्रह (४७); हरप्रसाद शास्त्री. एत्यु से सुरसरि जमुणा एत्यु ०। अत्यु पत्राग वणारसि एत्यु ०।
६७. (भोट. ५७ ग घ, ५८ क ख); बाग. कखेतु पीठ उपपी एत्यु मइ मम परि टओ ०। ०सरिसओ मयं सुह अण्ण ण दीटओ = (४८) ।
६८. (भोट. ५८ ग घ, ५९ क ख), बाग. सण्ड पुअणि-दल कमल ० छडहु वीणम ण करहु सोस ण लग्गहु ० (४९); हर. सण्ड पूअणिदलकमल ० छडहु वणि म करहुं सोसं न लग्गहु बढ आलें (१००) ।
६९. (भोट. नहीं); बाग (काम तत्य खअ जाअ पुअ कुलहीणउ । बन्ह. विटु तीलोअ ०।

१००. जइ णउअविसअहि लीलअइ, तहु बुद्धत्त ण केहि ।  
सेउ-रहिअ णव अङ्कुरहि, तरुभम्पत्ति ण ज(र) उ ॥
१०१. जत्थवि तत्थवि जहवि तहवि, जेण तेण हुअ बुद्ध ।  
सए<sup>५</sup>सङ्कप्पे णासिअउ, जगु सहावहि सुद्ध ॥
१०२. सहज कप्प परे वेवि ठिउ, सहज लेउ रे सुद्ध ।  
कअपअपाणी पीस लउ, राअहन्स जिम दुट्ठ ॥
- (२) जग में ही सुखसार--
१०३. जग उपपाअणे दुक्ख बहु, उप्पण्णउ तहि सुहसार ।  
उप्पण उप्पाअ णहि, लोअ ण जाणइ सार ॥
१०४. अरे पुत्त तत्त विचित्त रसु, कहण ण सक्कइ वत्तु ।  
४a कप्प-रहिअ सुह ट्ठाण कुह । णिअ सहावे सेविउ एकक्खह ॥
१०५. कमणे सो गुणहि धरिअउ । अहवा एकोवि ण धरिअउ ॥  
सुण्णासुण्ण वि बुज्झइ जत्थु । गुरुण्णउ वण्ण वि भुंजइ तत्थु ॥
१०६. बुद्ध वि<sup>१</sup> वअणे एत्तवि धम्म । लोआचारें एत्तवि कम्म ॥  
सअल तत्त सहावे देक्खह । लोआचार जे तहि उएक्खह ॥
१०७. एवहि बुद्ध-एअ हलें कोवि । सहज सहावे सिज्झइ सोवि ॥  
सुअणे जिम वरकामिणि माणिउ । रइ-सुह तहि पच्चक्खहि समाणिउ ॥
१०८. एवहि बुद्ध-एअहु लउ सिज्झइ<sup>२</sup> । पज्जोपाएं कहवि ण बज्झइ ॥  
जइ मण सहज णिरन्तरे पावइ । इन्दी विसअहि खणवि ण धावइ ॥
१०९. तहि सो वि देअ ए चउरिद्धी । सरह भणइ जिण-बिम्ब वि सिद्धी ॥  
दोहा-सङ्गम मइ<sup>३</sup> कहिअउ, जेहु विबुज्झिअ तत्थ ।
११०. एहु संसार हलें लेहु, जहि जाणिज्जइ तत्थ ॥  
गहि गुण धम्म संसार अहवा सत्थत्थ णिअत्थणे ॥
१११. तहि भासिअ<sup>४</sup> दोहाकोसं तत्थ च्चिअकन्धअं समत्तं ॥

(मिग्गसुम्), बाग. काम तत्थ खअ जाइ पुच्छहु कुलहीणओ । बम्हं तेलोअ सअल जगु  
णिलीणओ (५०) ।

१००. (भोट. नहीं) ।

१००. यदि नहिं विषयहि लीलियइ, तो बृद्धत्व न केहि ।  
सेतुरहित नव अंकुरहि, तरुसंपत्ति न जेहि ॥
१०१. जहं तहं जैसेउ नैसेउ, येन-तेन भा बृद्ध ।  
स्वकसंकल्पे नाशिअउ, जगन् स्वभावहि शुद्ध ॥
१०२. सहज कल्प परे द्वैत ठिउ, सहज लेहु रे शुद्ध ।  
काय पग पाणि पीस लेउ, राजहंम जिमि दृष्ट ॥

(२) जग में ही सुखसार—

2-0-12 को 2-0-12

१०३. जग उत्पन्ने दुःख बहु, उत्पन्ने तहिं सुखसार ।  
उत्पन्न उत्पाद नहिं, लोक न जानै सार ॥
१०४. अरे पुत्र तत्त्व विचित्र रस, कहन न सककइ वक्तु ।  
कल्परहित सुखथान कहु । निज स्वभावे सेविउ एकउ ॥
१०५. कवने सो गुणे धरिअउ । अथवा एकउ न धरियउ ॥  
शून्य-अशून्यउ बूझै यत्र । गुरु नव वर्णउ भुंजै तत्र ॥
१०६. बद्धहु वचने एतइ धर्म । लोकाचारे एतइ कर्म ।  
सकल तत्त्व स्वभावे देखह । लोकाचार जे तहिं उदेखह ॥
१०७. एवं बृद्ध रूप है कोई । सहज स्वभावे मिद्धयै सोई ॥  
स्वप्ने जिमि वर कामिनि मानेउ । रति-सुख तंह प्रत्यक्ष समानेउ ॥
१०८. एवं बृद्ध रूपउ लड सिद्धयै । प्रज्ञोपाये कहउ न बंधै ॥  
यदि मन सहज निरंतरे पावइ । इन्द्रिय विषय हिं क्षणउ न धावइ ॥
१०९. तंह सोउ देइ चउ ऋद्धी । सरह भनै जिन-विंबउ सिद्धी ॥  
दोहा संगम में कहेउ, जहं जानीजै तथ्य ।
११०. एहु संसार री लेहु, जहं जानीजै तथ्य ॥  
गहि गुण धर्म संसार अथवा शास्त्रार्थ निजस्थाने ।
१११. तहं भाषेउ दोहाकोश, तत्र चित्तस्कंधकं समाप्तं ॥

१००-११९. (भोट. नहीं) ।

१०४. बाग. अरे पुत्तो तत्तो० रसु० वत्थु । ०सुइठाणु वर जगु उअज्जइ तत्थु (५२) ।  
हर. अरे पुत्त० वत्थु । ०ठाणु वरु जग उअज्जइ तत्थु (१०१) ।



## ६. सहज यान

जइ कहमि तोज्जु कहण ण जाइ । अहवा कहमि जणकेर मणपत्तअ ण जाइ ॥

११२. जइ पमाएँ विहि बसेँ, बढ लद्धउ<sup>१</sup> भेउ ।

9a जइ चण्डाल-घरेँ भुञ्जइ, तअवि ण लग्गइ लेउ ॥

११३. सहज-सहज मु माणहु आलेँ । जेँ पुणु बन्ध होइ भवपासेँ ॥

अरे बढ आसा कहवि ण काज्ज । दस (?सद)गुरु किरणे पाडहु बाज्ज ॥

(१) सहानुभूति—

११४. सअं-सवेअण तत्त बढ, लोएँ तं काइ मणग्गि ॥

जो मण-गोअरेँ पाविअइ, सो परमत्थ न होन्ति ॥

११५. णिअ सहाव गअण-सम, अप्पा पर<sup>२</sup> णउ सोइ ।

सहजाणन्द चउट्ठउ, सो की वूच्च ण जाइ ॥

११६. विण बज्जे जिम च्छान्ती जावतिअ, मण माआकेर सहाव ।

सअल विसअ ण सहावेँ सिज्जअ । पज्जोपाएँ कहवि ण बाज्जअ ॥

११७. जिणवर-वअणं पत्तिज्जहु साच्चें । सरह भणइ मइ कहिअउ वाच्चें ॥

सहजेँ सहज वि वाहिअ जबें । अचिन्त जोएँ<sup>४</sup> सिज्जइ तबबें ॥

११८. जिम जल-मज्जेँ चन्दडा, णउ सो साच्च ण मिच्छ ।

तिम सो मण्डलचक्कडा, णउ हेडइ णउ खित्त ॥

(२) चित्त देवता

११९. चित्त देव जे सअलहि राज्जइ । पर-चित्तन्त<sup>५</sup> चाउलि भुंजइ ॥

9b चित्तहिँ सअल जग जो दीसअ । सहज सहावेँ किम्पि ण दीसअ ॥

१२०. चित्तहिँ चित्त जइ लक्खण जाइ । चञ्चल मण पवण थिर<sup>६</sup> होइ ॥

चित्त थिर जो णिम्मल भाव । तहिँ ण पइसइ भावाभाव ॥

१२१. एहु देव बहु आगम दीसअ । अप्पण इच्छें फुड पडिहासअ ॥

अप्पणु णाहो पर विरुद्धो । घरे-घरे सो सिद्धांत पसिद्धो ॥

११५. हर. सहजानन्द चउट्ठ वषणे णिअं संवेसइ जाण (११७ ? १२१) ।

१२०. (भोट. नहीं) ।

१२१ ख. (भोट. ६७ ग घ, ६८ क ख) ।

## ६. सहज यान

यदि कहउं तोहि कहन न जाइ । अथवा कहउ जनके मन प्र यय न जाइ ॥

११२. यदि प्रमादे विधिबस, मूढ लहेऊ भेद ।

यदि चंडाल घरे भुंजइ, तऊ न लागै लेप ॥

११३. सहज सहजे मानहु आगे । जे पुनि बन्ध होइ भव पागे ॥

अरे मूढ आशा कहव न काज । सदगुरु किरने डारहु वाज ॥

(१) सहानुभूति

११४. स्वकसंवेदन तत्त्व मूढ, लोग से काह मानंत ॥

जो मन गोचरे पाइयइ, सो परमार्थ न होन्ति ॥

११५. निज स्वभाव गगनमम, आपा पर न सोइ ।

सहजानन्द चतुर्थउ, सो की कहा न जाइ ॥

११६. विन वद्ये जिमि गांति जौलौं, मन मायाकेर स्वभाव ॥

सकल विषय न स्वभावे भावे सिद्धै । प्रज्ञोपाये कहव न बाझै ॥

११७. जिनवर-व वने पतियाहू साचे । मरह भनै में कहिअउं वाचे ॥

सहजे सहज उ बोधिय जवै । अचिन्त योगे सिद्धै तवै ॥

११८. जिमि जलमध्ये चंदडा, ना सो मत्त्य न मिथ्य ।

तिमि सो मंडल-चक्कडा, ना हेठइ ना क्षिप्त ॥

(२) चित्त देवता

११९. चित्त देव जे सकलहि राजै । पर चित्तन चाउ ली भुंजइ ॥

चित्तदेव जे सकलहिं राजै । सहज स्वभावे किमपि न दीसै ॥

१२०. चित्तहिं-चित्त यदि लखा न जाइ । चंचल मन पवन स्थिर स्थाइ ॥

चित्त स्थिर जो निर्मल-भाव । तंह ना पइसै भाव-अभाव ॥

१२१. एहु देव बहु आगम दीसै । आपन इच्छे फुरि प्रतिभासै ॥

आपन नाथो पर-विरुद्धो । घरे-घरे सो सिद्धान्त प्रसिद्धो ॥

---

१२१. बाग. एककु देव० दीसइ । अप्पणु इच्छे फुड पडिहासइ । अप्पणु णाहो अण विरुद्धा ।

घर-घरें सो अ० (८०) । हर. अप्पण नाहो अण विरुद्धो । हो घरें-घरें सोअस सिद्धान्त

पसिद्धो । १२१-१२७. (भोट. नहीं) ।

१२२. हिअहिं काच मणि लइ तुट्ठो । बोहिमण्डल महासुह ण पइट्ठो ॥  
सम्बर चित्त-राअ दिढ चाङ्गो । जाव ण दंसअ विसअ भुजंगो ॥
१२३. पञ्जरे जिम पगि पक्खि णिच्चल । तिम मण राउ लगइ सुठु वञ्चल ॥  
सो जइ लइअइ अइ त विरालें । चलइ न बुल्लइ ट्ठिअइ निरालें ॥
१२४. चिन्ताचिन्त ण किअउ मइ, णउ परिआणिअ कीस ।  
बुज्झहो जो गुणवन्तो, वेणिण करिआ सीस ॥
१२५. जइ ट्ठाण ण घेप्पइ दुट्ठ मणु, इन्दी काइ चरेइ ।  
पसुघरें\* चोरह मन्त ण पेच्छइ, जो तइलोअ हरेइ ॥
१२६. च्छाआच्छाअहिं जइ सो पइट्ठो । देह वसन्तो चित्त ण दिट्ठो ॥  
जो सो जाणइ णिअ मण ट्ठाणा । सअल जग<sup>५</sup> भवति भव सुइणा ॥
१२७. णिव्वाणें ट्ठिअ झाणे राजइ । आण्ण मान्द आण्ण आउ सह कीजइ ॥  
णउ सो झाणें णउ पब्बाजें । गेह वसंतें समरस भाज्जें ॥
- 10a १२८. घरे-घरें<sup>६</sup> कहिअअ सोज्झु कहाणो । णउ परिआणिअ महासुह ट्ठाणो ॥  
सरह भणइ जग चित्तें वाहिउ । सोवि अचिन्त ण केणवि गाहिउ ॥

## (३) भव-निर्वाण एक-

१२९. ए जे करुण मुणन्ती मागहि, दिढ लाग्गइ तें भव-पास ।  
अइ अण्णो सो अणक्खरु णव, सुण्णहिं चित्त णिरास ॥
१३०. जिम जलेहिं ससि दिसइ च्छाआ । तिम भव पडिहासइ<sup>७</sup> सअलवि मात्रा ॥  
अइसो चित्त भमन्ते ण दिट्ठो । भव णिव्वाण णिरन्तरें पइट्ठो ॥
१३१. अन्तो णत्थ सुइउआ णट्ठो काल दुइउ । एको<sup>८</sup> वि सो जाणिव्वो जेण  
कम्मसउ ॥  
णिजिअ सासो णिहन्द-लोअणो सअल विआर विमुक्को मणो ॥
१३२. जो ए आवत्थ गउ सो जोइ णत्थि संदेहो<sup>९</sup> ।  
णिट्ठुर सुरअ सं पाणिअ, कमल-कुलिस सम्पत्ति ॥
१३३. खणे-खणे किं विबोहिअ णिव्वाण सएसम्बित्ति ।  
वेवि कोडि ण रत्तो, कहि म्पुण लक्ख कहाण<sup>१०</sup> ॥

१२२. हृदये काच मणि लेइ तुष्ट । बोधि-मंडल महासुख न प्रविष्ट ॥  
संवरचित्तराग दृढ़ चंगा । जौ लौं न दंशे विषय-भुजंगा ।
१२३. पंजरे जिमि पडि पक्षि निश्चंचल । तिमि मन राव लगै सुठवंचल ॥  
सो यदि लेइ अचिन्त विडाले । चलै न बोलै स्थिरे निराले ।
- १२४ चिन्ताचिन्त न कियउ में, ना परिजानेउ कैस ॥  
बूझहु जे गुणवन्ता, दोनों करिया सीस ।
१२५. यदि स्थान न गहै दुष्ट मन, इन्द्री काह चरेइ ॥  
पशुघरे चोरह मंत्र न पेखइ, जो त्रैलोक हरेइ ।
१२६. छाया-छार्योहि यदि सो पड़टो । देह बसन्त चित्त ना दृष्टो ॥  
जो सो जानइ निज मन थाना ॥ सकल जग होइ भव-स्वप्ना ।
१२७. निर्वाणे स्थिय ध्याने राजै । अन्य मन्द-अन्य आयु सह कीजै ॥  
ना सो ध्याने ना प्रब्रज्यहिं । गेह बसन्ते समरस भार्ये ॥
१२८. घरे-घरे कहियइ सोझ कहानो । ना परिजानिय महासुख थानो  
सरह भनै जग चित्ते बहेउ । सोउ अचिन्त न कोउ गहेउ ॥

(३) भव-निर्वाण एक—

१२९. ये जे करुण मनंती मांगै, दृढ़ लागै तें भवपाश ।  
अति अन्य सो अनक्षर ना, शून्यहिं चित्त निराश ॥
१३०. जिमि जलेहिं शशि दीखै छाया । तिमि भव प्रतिभासै सकलउ माया ॥  
ऐसो चित्त भ्रमन्त न दृष्ट । भव-निर्वाण निरन्तरे प्रविष्ट ॥
१३१. अन्त नाहि सुपिना नष्ट काल दुइउ । एकउ सो जानिबो जेहि कर्मशत  
निर्जिति श्वास निष्पन्द लोचन । सकल विचार विमुक्त मन ॥
१३२. जो ये अवस्था गउ, सो योगी नाहि संदेहा ।  
निठुर सुरति संपानिय, कमल-कुलिश संपत्ति ॥
१३३. क्षणे क्षणे का विबोधिय, निर्वाण स्वक-संवित्ति ।  
दोउ कोटिन रक्त, कहं पूर्ण लक्ष्य कहान ।

कहाणा । णउ पर सुणिउ महासुह ठाणा ।० सो आचन्त णउ केणाव गहिअ (१११) ।

१३४. तह वेवि रहिअ णिउगो, अणुत्तर बोहि विण्णाण ॥  
 10a रसु परिमुञ्ज ण मूल-रस, कमलवर्गे पण मज्जइ ।  
 १३५. बहु सन्तावेँ सअलेँ, चित्त-गएन्द ण रज्जइ ॥  
 आलअतर उमलइ, हिण्डइ जग च्छाच्छान्द ।  
 १३६. गम्मागम्म ण जाणइ, मत्तो चित्त-गअन्द ॥  
 जइ जग पूरिअ सहजाणन्दे । णाच्चहु गाअहु विलसहु चङ्गे ।  
 १३७. जइ पुगु घेप्पहु वासण विन्दे । तह फुड बाज्झहु ए भव -फान्दे ॥  
 समता कामिणि अणुह णिवास । समरस भोअण अम्बर वास ।  
 १३८. तहि पुणु किम्पि ण दीसइ आन्तर । सम गउ चित्तराअ णिरन्तर ॥

(४) परमपद--

(क) शून्य निरंजन

- सुण्ण णिरञ्जण परम पउ, सुइणोमाअ सहाव ।  
 १३९. भावहु-चित्त सहावता, जउ णासिज्जइ जाव ॥  
 रवि-ससि वन्धण गउ जब्बेँ । उअरे अरइ तलेँ खरइ ण तब्बेँ ।  
 १४०. देक्खइ रवि परि त बुद्ध विण्णाणा । उअरे अरइ तलेँ णाहि मोक्खरणा ॥  
 णउभव णउ णिब्बाणे दिट्ठिअउ, महासुह बाज्ज ।  
 10b १४१. जो भावइ मणु भावणे, सो परसाहइ काज्ज ॥  
 अक्खर-वण्ण-विवज्जिअ, णउ सो विन्दु ण चित्त ।  
 १४२. एहु सो परममहासुह, णउ फेडिअ णउ खित्त ॥  
 जिम पडिविम्ब-सहावता, तिम भाविज्जइ भाव ।  
 १४३. सुण्ण णिरञ्जण परमपउ, ण तहि पुण्ण ण(उ) पाव ॥  
 पञ्च कामगुण भोअणेहि, णिचिन्त थियेहि ।  
 १४४. एव्वेँ लब्भण<sup>३</sup> परमपउ, किम्बहु बोल्लिअ एहि ॥  
 हउ पुणु जाणमि जेण मणु, च्छाडइ चिन्ता-तात्त ।  
 १४५. जो दुज्जअ पडिअ मणु, णउ सो बुज्झइ तात्त ॥  
 (ख) धेय-धारणादि व्यर्थ--  
 धेअ ण धारण<sup>३</sup> मन्त तहि, णउ तहि सिव (अ) सत्ति ।

१३४. तंह द्वैत-रहित निपुण, अनुत्तर बोधि विज्ञान ॥  
रम परिभुंज न मूल रम, कमलवने घन मज्जै ।
१३५. बहु संतापे सकले, चित्तगयंद न रज्जै ॥  
आलय-तरु उमडै, हिलै जग स्वच्छन्द ।
१३६. गम्य-अगम्य न जानै, मस्तो-चिस्त गयंद ॥  
यदि जग पूरित सहजानन्दे । नाचहु गावहु विलसहु चंगे ।
१३७. यदि पुनि लेहु वासना वृन्दे । तंह फुरि बाझहु ये भव-फन्दे ॥  
समता कामिनि अनुभ(व)निवास। समरस भोजन अम्बर वास ।
१३८. तंह पुनि कैम न दीसै अन्तर । मम गउ चित्तराग निरंतर ॥

(४) परमपद—

(क) शून्य निरंजन

शून्य निरंजन परमपद । स्वप्नोपमा स्वभाव ।

१३९. भावहु चित्त स्वभावता, ना नाशीजै जाव ॥  
रवि-शशि बन्ध गउ जब्बै । उतरे अरति तले खरै न तब्बै ।
१४०. देखहु रवि परित बुद्धविज्ञाना । उतरे अरति तले नाहि मोक्षरणा ॥  
ना भव ना निर्वणि, दृष्टउ महासुख बाज ।
१४१. जो भावै मन भावने, सो पर माधै काज ॥  
अक्षर-वर्ण-विर्वर्जित, ना सो विदु न चित्त ।
१४२. एहु सो परम महासुख, ना फैलिय ना क्षिप्त ॥  
जिमि प्रतिबिंब स्वभावता, तिमि भावीजै भाव ।
१४३. शून्य निरंजन परम पद, ना तहिं पुण्य न पाप ॥  
पंच काम-गुण भोजनेहिं, निश्चिन्त स्थितेहि ।
१४४. एवं लहै परमपद, क्या बहु बोलिय एहिं ॥  
हौं पुनि जानउ येन मन, छाडै चिंता तत्त्व ।
१४५. जो दुर्जय पडिय मन, ना सो बुज्झइ तत्त्व ॥
- (ख) धय-धारणादि व्यर्थ—  
ध्येय न धारण मंत्र तहँ, ना तँह शिव (अरु) शक्ति ।

१४६. लक्खालक्ख विणाहि न्तेहिं, णउ तहिं भाव-पसत्ति ॥  
नउ तहिं णिन्दा णउ सिविण, णउ जागर सुसुत्त ।
१४७. भावाभाव-णिवन्दणु<sup>४</sup>, णउ तहिं थाक्कअ चित्त ॥  
णउ जाइअइ णउ सरइ, णउ अवित्थिण्ण वि होइ ।
१४८. णउ करावइ णउ करइ, हेउ विआरह तोवि ॥
- (५) परमपद-साधना
- 11a जसु आइ ण<sup>६</sup> अन्त, णउ जाणिअ मज्झ ।
१४९. तसु कहि किज्जइ कहसु मइ, जोइहिं पुज्जा कज्ज ॥  
वण्ण-आआर पवाण-रहिअ, अक्खुरु वेउ अणन्त ।
१५०. को पुज्जइ कह पुज्जिअइ, ज (I) सुं आइ ण अन्त ॥  
सहि संसरह कहिं तुहु, एत्थ कहिज्जइ तत्त ।
१५१. णउण विआर करन्तहिं, णउ कत्थवि परमात्थ ॥  
जिम केलतरु सोहणेहिं, णउ पाविज्जइ सारु ।
१५२. तिम भुअ तत्त विआरणे, दीसइ एहु संसारु ॥  
बन्द ण दीसइ एत्थु हलें, णउ सो मोक्ख सहाव ।
१५३. बुद्ध संयोग<sup>३</sup> परमपउ, एहु से मोक्ख-सहाव ॥  
जेण पसवइ हिअअ पज्जोर, तेण किसेवि एण ।
१५४. सगुण पइसइ तिअस जणु, भावउ चित्त मणेण<sup>४</sup> ॥  
णिपुंखो वाणो वाणवासो एत्थ कारणे, किम्पि ण जाणो अणुसरइ ।
१५५. सुण्णहि मज्जे सुण्ण पउ, तहि सन्धाण पइसरइ ॥  
सव्व धम्म जे खसम करीहसि<sup>५</sup> । खसम सहावे चीअ ट्ठवीहसि ॥
१५६. सोवि चीअ अचीअ करीहसि । एवहिं सो अणुत्तर गमीहसि ॥
- 11b णअण दुहहु अगुपम णिवन्धह । णिअ गइ णिअ मणे<sup>६</sup> जइ भिडि बन्धह ।
१५७. सरह भणइ एह दुइ पावहु । तुरिअ दुक्ख मिच्चु णिवारहु ॥  
एहु घरे ट्ठिअ महिला मणुसा । एहु ण दीसइ भण सहिं कइसा ।
१५८. पासें पास भमन्ते अच्छह । सरह भणअ तसु घरिणी णेच्छअ ॥  
साङ्के खाद्धउ सअल जगु, सङ्का ण केणवि खाद्ध ।

१४६. लक्ष्यालक्ष्य विना हि तेहि, ना तँह भाव-प्रसक्ति ॥

ना तँह निद्रा ना स्वपन, ना जागर न सुषुप्त ।

१४७. भाव अभाव निबंधन, ना तँह र्हई चित्त ॥

ना जाइअ ना मरै, ना अविच्छिन्नउ होइ ।

१४८. ना करावै ना करै हेतु विचारह सोइ ॥

(५) परमपद-साधना—

जासु ण आदि ण अन्त, ना जानिय मध्य ।

१४९. तासु कहा कीजै कहहु में, योगि हि पूजा काज ॥

वर्ण आचार प्रमाण रहित, अक्षर वेद अनन्त ।

१५०. को पूजइ कहं पूजियइ, जासु अदि न अन्त ॥

सखि संमारहि कहं तुहुं, एहि कहीजै तत्त्व ।

१५१. निपुणे विचार करन्तहिं, ना कतहुं परमार्थ ॥

जिमि केलातरु शोभनेहि, ना पावीजै सार ।

१५२. तिमि भूत-तत्त्व विचारणे, दीसइ एहु संसार ॥

बन्ध न दीमे एहुं री, ना सो मोक्ष स्वभाव ।

१५३. बुद्ध संयोग परमपद, एहु सो मोक्ष स्वभाव ॥

जेहिते न प्रसवै हृदय प्रज्योत, तेहिते कैसे भी येंन ।

१५४. सगुण पइसै त्रिदशजन. भावउ चित्त मनेन ॥

निपुंख वाण वाणवाम एह कारणे किमपि न जानो अनुसरै ।

१५५. गून्य मध्ये गून्य पद, तँह संधान पइसरै ॥

सर्वं धर्मं जे ख-सम करीअसि । ख-सम स्वभावे चित्त स्थपीयसि ।

१५६. सोपि चित्त अचित्त करीअसि । एवं सो अनुत्तर जाइहसि ॥

नयन दोउ अनुपम निबंधह । निज गति निज मने यदि भिडि बंधह ।

१५७. सरह भनै एहु दुहु पावहु । तुरीय दुःख मृत्यु-निवारहु ॥

एहि घरे स्थित महिला-मनुषा । एहु न दीसइ भन सखि कैसा ॥

१५८. पासे पास भ्रमन्तो आछै । सरह भनै तासु घरती न इच्छै ॥

शंकहिं खायेउ सकल जग, शंका न कोऊ खाउ ।



१५६. जें सङ्का सङ्किअउ, सो परमत्थ वि लद्ध ॥  
मल्ल आदि उअत्ति कम्म, जो भावइ उअत्ति ।
१६०. सो णव धम्मिअ वप्पडो, च्छाडहु अलिआ तत्ति ॥  
मरण मरन्त पवण तल्लये गअउ, तिहुअणे<sup>३</sup> सहल समाउ ।
१६१. मग-त्तणे जो पडिहासइ । सरह भणइ सो तत्त ण गवेसइ ॥  
तेल्ल-खिच्चडड अक्खर सारा । भव-णिब्बाण किम्पि ण<sup>४</sup> दूरा ॥
१६२. संसार अणुपलम्भ णिब्बाण । एहु बोह ण धेअ ण धारण ॥  
अ-दसण दसण जत्तिवि ताण । तेत्तिवि मात्तम् भव-णिव्वाण ॥
१६३. अ-मुसिआरह तत्ते काल<sup>५</sup> । एहु उएस ण जाणइ बाल ॥  
गुञ्जा-रअण मज्जे दीप उजाल । चञ्चल थिर करि पवण णिवार ॥
१६४. जो बढ मूलह सार वि जाणइ । ता की काल-विकाल वि<sup>६</sup> लाग्गअ ॥  
णादह विन्दुह अन्तरें जो, जाणइ तिअ तिअ भेअ ।
१६५. सो परमेसर परमगुरु, उत्तारइ तइलोअ ॥

---

कृतिरिञ्चं सरहपादाणां

१५९. जे शंका शंकियउ, सो परमार्थ उ लब्ध ॥  
मल्ल आदि उत्पत्ति कर्म, जो भावइ उत्पत्ति ।
१६०. सो ना धार्मिक वापुडो, छाडहु अलीका तनि ॥  
मरण मरन्त पवन तल्लए गयउ, त्रिभुवने मकल ममाय ।
१६१. मनसे जो प्रतिभामै, सरह भनै सो तत्त्व न गवेयै ॥  
तेल-खिच्चडइ अक्षर सारा । भव-निर्वाणे किमपि न दूरा ॥
१६२. संसार अनुपलभ निर्वाण । एहु बोध न ध्येय न धारण ॥  
अदर्शन दर्शन जेत्तउ तान । तेत्तउ मात्र है भव-निर्वाण ।
१६३. ना समुझे तत्त्वे काल । एहु उद्रेस न जानइ बाल ॥  
गुंजा रतन मध्ये दीप उजाल । चंचल थिर करि पवन निवार ॥
१६४. जो मूढ़ मूलको सार विजानै । ताहि कि काल-त्रिकालउ लागै ॥  
नादहु विन्दुहु अन्तरे, जो जानै सो-सो भेद ।
१६५. सो परमेश्वर परमगुह, उत्तारै त्रैलोक ॥

---

यह कृति सरहपाद की (है) ।



## १(ख). दोहाकोश-गीति

( भोट अनुवाद और मूल )

## दोहा मजोद्विय. ग्लु

### १(ख). दोहा कोश-गीति\*

ऽन्. द्पल्. ग्शोन्. नुर्. ग्युर्. व. ल. फ्यग्. ऽछल्. लो ।

#### १. 'षट्'दर्शन-खंडन

१. दुग्. स्पुल. ल्त. वडि. स्कल्. मेद्. नि ।  
डे स्. पर. स्वये. वो. दम्. प. ल. ॥  
स्वयोन्. गिय. द्वि. मस्. द्गोद्. पडि. फ्रियर् ।  
म्योङ्. व. चम्. गियस्. ऽजिग्स्. पर. व्योस्. ॥१॥

#### (१) ब्राह्मण-

२. दे. जिद्. मि. शेस्. व्रम्. जे. नि ।  
गिय. न. रिग्स्. ब्येद्. ग्शि. दग्. ऽदोन्. ॥  
स. छु. कु. श. दग्. ब्येद्. दङ् ।  
ख्यिम्. न. ग्नस्. शिङ्. मे. ल. ब्रस्नेग् ॥२॥
३. दोन्. मेद्. स्वियन्. स्नेग्. ब्येद्. प. नि ।  
दु.वस्. मिग्. ल. ग्नोद्. पर. व्यस् ॥  
द्व्यु. गु. द्ब्युग्. ग्सुम्. लग्स्. ल्वन्. ग्सुग्स् ।  
थ. दद्. प ऽङ्. डङ्. पस्. व्स्तन्. प. दग्. ॥३॥
४. छोस्. दङ्. छोस्. मिन्. शेस्. पर्. मि. म्जाम्. शिङ्. ।  
ऽप्रो. व. नमस्. नि. गर्जुन्. प. जिद्. दु. जॉल् ॥

\*स्तन. ऽग्युर्, ग्युंद्., वि ७० ख ५-७७ क ३. ५. (तेर्. गी ब्रजक-छापे का पाठ) ।

बोद्. स्कद्दु. वो. ह. मजोद्व. -विय. गलु.

ग्शि नहीं, ब्रशि होना चाहिए । भोट-अनुवाद और तदनुक्रम से मूल ।

# १(ख). दोहाकोश-गीति\*

(नमो मंजुश्रियै-कुमारभूताय)

## १. षड्दर्शन-खंडन

१. [विषसर्प जिमि अभव्य, निश्य (ह) मत्पुरुष को ।

दोष-गंधमे हंसने को, देखने सात्र से भय करै ]

(१) ब्राह्मण —

२. ब्रह्मणेहि म जानन्त हि भेउ । एवइ पट्टिअउ ए चउवेउ ॥

मट्टी (पाणि कुम लइ पढन्ते। घरहि बइसी) अगिग हुणन्त ॥१॥

३. कज्जे विरहिअ हुअवह होमें । अक्खि डहाविअ कडुएँ धूमें ॥

एकदण्डी त्रिदण्डी भअवँ वेमें । विण्णा होइअह हंस उएमें ॥२॥

४. मिच्छेंहि जग वाहिअ भुल्ले । धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्ले ॥

---

\*डाक्टर प्रबोधचंद्र वागची (वाग.) द्वारा सम्पादित 'दोहाकोश' का पाठ (Calcutta Sanskrit Series, 1938) । ब्रकेट [ ] में स. स्वय. पाठ या हमारा पुनरनुवाद और ( ) डाक्टर वागची संपादित अनुवाद है ।  
२. म. म. हरप्रसाद शास्त्री (हर.) 'जाणन्त ही भेउ', 'अग्नि हुणन्त ।

## (२) पाशुपत-

ए. रडि. थल्. बस्. लुस्. ल. व्युग्स्. नस्. सु ।

71a म्गो. ल. स्ल्. पडि. खुर. बु. खुर. बर्. व्येद्. ॥४॥

५. खियम्. दु. मर्. मे. व्तङ्. नस्. ग्नस् ।

म्छम्स्. सु. ऽदुग्. नस्. द्विल्. बु. ऽग्रोल्. ॥

स्वियल्. कुङ्. ब्चस्. नस्. मिग्. ब्चुम्स्. ते ।

नं. बर्. शुब्. शुब्. स्वये.बो. स्लु. बर्. व्येद् ॥५॥

६. ख्यो. मेद्. स्क्र. मेद्. ऽदि. ऽद्र. ग्शन्. ल. स्तोन् ।

द्वङ्. नंम्स्. व्स्कुर्. \*शिङ्. बल्. मडि. योन्. नंम्स्. लेन् ॥

## (३) जैन-

सोन्. मो. रिङ्. शिङ्. लुस्. ल. द्वि. मस्. ग्योग्स् ।

गोस्. दङ्. ब्रल्. शिङ्. स्क्र. नि.व्वल्. बर्. व्येद् ॥६॥

७. नम्. म्खडि. यिद्. चन्. ग्नोद्. व्येद्. लम्. गिय. ग्स्.ग्स् ।

थर्. पाडि. छेद्. दु. व्दग्. जिद्. ऽग्रो. व्येद्. स्लु ॥

ग्चेर्. बुस्. गल्. ते. ग्रोल्. ऽयुर. न ।

खिय. दङ्. व. \*सोग्स्. चिस्. मि. ग्रोल् ॥७॥

८. स्पु. व्तोग्स्.पस्. नि. ग्रोल्. ऽयुर. न ।

बुद्. मेद्. स्पु. व्तोग्स्. ग्रोल्. बर्. ऽयुर. ॥

म्जुग्स्. स्पु. व्स्लङ्. वस्. ग्रोल्. ऽयुर. न ।

र्म. ब्यग्. सोग्स्. ग्रोल्. बर्. ऽयुर ॥८॥

९. लङ्स्. ते. स. वस्. ग्रोल्. ऽयुर. न. ।

र्त. दङ्. ग्लङ्. पो. चि. फियर्. मिन् ॥

मदऽ. ब्स्मुन्. न. रे. नम्. म्खडि. यिद्. चन्. ल ।

थर्. प. नम्. यङ्. योद्. प. म. यिन्. सेर्. ॥९॥

१०. ब्दे. वडि. दे. जिद्. दङ्. नि. ब्रल्. ऽयुर. शिङ् ।

लुस्. किय. द्कऽ. थुब्. ऽवऽ. शिग्. चम्. ल्दन्. पस् ॥

(२) पाशुपत--

अइरिअहि उदूलिअ च्छारें । सीसमु वाहिअ ये जडभारें ॥३॥

५. घरही वइसी दीवा जाली । कोणहि वइसी घण्टा चाली ॥

अक्खि णिवेसी आसण वन्धी । कण्णोहि खुसखुसाइ जण धन्धी ॥४॥

६. रण्डी-मुण्डी अण्णवि वेसें । दिक्खिज्जइ दक्खिण उद्देसें ॥

(३) जैन—

दीहणक्ख जइ मलिणें वेसें । अप्पण वाहिअ मोक्ख उवेसें ॥५॥

७. खवणेहि जाण विडंविअ वेसें । णग्गल होइ उपाडिअ केसें ॥

जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति ता सुणह मिआलह ॥६॥

८ लोमुपाडणें अत्थि सिद्धि, ता जुवइ णिअम्बह ।

पिच्छी-गहणे दिट्ठ मोक्ख, (ता मोरह चमरह) ॥७॥

९. उच्छे-भोअणें होइ जाण, ता करिह तुरङ्गह ॥

सरह भणइ खवणाण मोक्ख, महु किम्पि न भासइ ॥८॥

१०. तत्तरहिअ काआ ण ताव, पर केवल साहइ ॥



## (४) बौद्ध--

द्गो. छ् ल्. द्गो. स्लोङ्. ग्नस्. वतन्. श्से. व्य. वस् ।  
बन्दे. नैम्स्. नि. दे. ल्तर. रब्. व्युङ्. नस् ॥१०॥

११. ख. चिग्. म्दो. स्दे. छद्. पर्. व्येद्. चिग्. ऽजुग् ।  
ल. ल. रोग्. चिग्. सेम्स्. किय. छ् ल्. ऽजिन्. म्योङ् ॥  
ख. चिग्. थेग्. छेन्. दे. ल. ग्युग्. व्येद्. चिङ् ।  
दै. नि. गश्. लुग्स्. छद्. मडि. व्स्तन्. चोस्. यिन् ॥११॥

१२. ग्शन, थङ्. द्कियल. ऽखोर. ऽखोर. लो. म. लुस्. व्स्त्रोम ।  
ल. ल. नम्. म्खडि. खम्स्. (सु) तौग्. पर्. स्नङ्. ॥  
ल्हन्. चिग्. ब्शि. पडि. दोन्. छद्. प. ल. श्गुग् ।  
ग्शन. यङ्. स्तोङ्. ञिद्. ल्दन्. पर्. व्येद्. प. दे ॥१२॥

१३. फल्. छेर्. मि. म्थुन्. ऽफ्योग्स्. ल. श्गुग्. प. यिन् ॥  
ल्हन्. चिग्स्. स्क्येस्. ब्रल्. ग्शन. गङ्. गिस् ।  
म्य. डन्. ऽदस्. गङ्. सगोम्. व्येद्. प. ।  
दे. दग्. ऽगस्. क्यङ्. दोन्. दम्. नि. ॥

चिग्. सोग्स्. गृब्. पर्. मि. ऽग्युर्. रो ॥१३॥

१४. गङ्. शिग्. गङ्. ल. मोस्. पर्. ग्युर्. प. देस् ।  
ब्सम्. ग्तन्. ग्नस्. पस्. थर्. प. थोब्. बम्. चि ।  
मर्. मे. चि. द्गोस्. ल्ह. ब्शोस्. दे. चि. द्गोस्.  
दे. ल. चि. व्य. ग्स्ङ्. रङ्गस्. व्स्तन्. चि. शिग्स्. द्गोस् । ॥१४॥

१५. ऽवब्. स्तेग्स्. ऽग्रो. दङ्. द्कऽथुब्. मि. द्गोस्. ते ।  
छु. ल. श्गुग्. पस्. थर्. ब. थोब्., बम्. चि ।

## २. करुणा-सहित भावना

स्त्रिङ्. जे. दङ्. ब्रल्. स्तोङ्. प. ञिद्. श्गुग्. गङ् ॥

देस्. नि. लम्. म्छोग्. ञेद्. प. म. यिन्. ते ॥१५॥

१६. ऽोन्. ते. स्त्रिङ्. जे. ऽवऽ. शिग्. व्स्त्रोम्स्. न. यङ् ॥  
ऽखोर. ब. ऽदिर्. ग्नस्. थर्. प. थोब्. मि. ऽग्युर् ।

(४) बौद्ध—

चेल्नु भिक्खु जे त्थविर-उएमें । वन्देहिअ पव्वज्जिउ वेसें ॥६॥

११. कोइ सुत्तन्त वक्खाण वइट्ठो, कोवि चिप्ते कर सोसइ दिट्ठो

अण्ण तहि महजाणहिं धा(वइ) । [ग्रंथ प्रमाण शास्त्र हो सोइ ॥१०॥

१२. अयरेमंडल वक्र सब भावें । अन्ये आकाशधातु समुद्धि भासे ॥११॥

अन्य चतुर्थ अर्थ छेदि बैठे । अन्ये शून्यवान् सो करै ॥

१३. बहु प्रतिकूल विपक्ष में बैठे ।] सहज च्छाडी णिध्वाणेहिं धाविउ ॥

णउ परमत्थ एकवि सांहिउ । एकवि सिद्धि नहिं होइ ॥१२॥

१४. जो जसु जेण होइ संतुट्ठो । मोक्ख कि लब्भइ ज्ञाण-पविट्ठो ॥

किन्तहँ दीवें किन्तह णेविजज्जे । किन्तह किज्जइ मन्तह सेज्जे ॥१३॥

१५. किन्तह तित्थ तपोवन जाइ । मोक्ख कि लब्भइ पाणी हुनाइ ॥

## २. करुणा-सहित भावना

करुण-रहिअ ज्जो सुण्णहिं लगा । णउ सो पावइ उत्तिम मग्गा ॥१४॥

१६. अहवा करुणा केवल साहअ । सो जम्मन्तरें मोक्ख ण पावअ ॥

११. कोइह चिन्ता (हर.) ।

१५. स.स्वय. तालपत्र-१

- गङ्. यङ्. गृञिस्. पो. स्व्योर्. बर्. तुस्. प. देस्  
 ऽखोर्. बर्. मि. ग्नस्. म्य.ङन्.ऽदस्. मि. ग्नस् ॥१६॥
१७. क्ये. लग्स्. गङ्. स्म्रस्. ब्र्जुन्. शिङ्. लोर्. प. दे. बोर्. ल ॥  
 गङ्. ल. शेन्. प. योद्. प. दे. यङ्.मथोङ्. ।  
 तौर्गिस्. पर्. ग्युर्. न. थम्स्. चद्. दे.यिन्. ते ।  
 दे. ल. गृशन्. प. सुस्. क्यङ्. शेस्. मि.ऽग्युर् ॥१७॥
१८. क्लोर्. प. दे.यिन्. ऽजिन्. दङ्. स्गोम्. प. दे. यिन्. ते ।  
 ब्र्स्तन्. ब्र्चोस्. स्ञिङ्. ल. ऽछद्. पऽङ्. दे. यिन्. नो ॥  
 दे. मि. म्छोन्. पऽि. ल्त. बु. योद. मिन्. ते ।  
 ऽोन्. क्यङ्. गृचिग्. बु. ब्र्. मऽि. शल्. ल. स्तोस्. प. यिन् ॥१८॥
१९. ब्र्. मऽि. स्म्रस्. प. गङ्. गि. स्ञिङ्. श्.गुस्. प. ।  
 लग्. पऽि. म्थिल. दु. ग्नस्. पऽि. गृतेर्. म्थोङ्. ऽद्र ।  
 गृञ्गु. मऽि. रङ्. ब्र्शिन्. वियस्. पस्. म. म्थोङ्. बर् ।  
 ऽह्रुल्. पस्. वियस्. प. ब्र्स्लुस्. शेस्. मदऽ. ब्र्स्मुन्. स्म्र ॥१९॥
२०. ब्र्. म्. गृतन्. मेद्. चिङ्. रब्. तु.३ ऽब्युङ्. ब. मेद् ॥  
 वियम्. न. ग्नस्. शिङ्. छुङ्. म.दग्. दङ्. ल्हन्. चिग्. तु ।  
 गङ्. शिग्. युल्. गिय. दग्.बस्. ब्र्चिङ्.लस्. मि. ग्रील्. न  
मदऽ. ब्र्स्मुन्. द. नि. दे. ञिद्. शेस्. प. यिन्. शेस्. स्म्र । ॥२०॥
२१. गल्. ते. म्ङोन्. दु. ग्युर्. न. ब्र्. म्. गृतन्. चि ॥  
 गल्. ते. क्लोर्. तु. ग्यर्. न. मुन्. प. ऽजल् ।  
 ल्हन्.चिग्. ५ क्येस्.पऽि. रङ्. ब्र्शिन्. दे. ञिद्. नि ॥  
 दङ्. शेस्. दङ्. दङ्.पो.मेद्.प. म. यिन्. ते । ॥२१॥
२२. मदऽ.ब्र्स्मुन्. ऽो. दोङ्. तर्ग. तु. ऽबोद्. पर्. व्येद् ।  
 गङ्. शिग्. ब्र्.लङ्. नस्. स्व्ये. शिग्. ग्नस्. ग्युर्. प ।  
 दे. ञिद्. ब्र्.लङ्. नस्. ब्र्. छेन्. म्छोर्. गुब्. चेस् ॥  
 स्कद्. गृ.सङ्. म्थोन्. पोस्. मदऽ. ब्र्स्मुन्. स्म्र. व्येद्. क्यङ् ।  
 व्योल्. सोङ्. ऽजिग्. तैन्. मि. ो. जि. ल्तर. व्य ॥२२॥

जइ पुणु वेण्णवि जोडण साक्कअ । णउ भव णउ णिव्वाणें थाक्कअ ॥१५॥

१७. च्छइडहु रे आलीका वन्धा । सो मुञ्चहु जो अच्चहु धन्धा ॥

तसु परिआणें अण्ण ण कोइ । अवरें गणणें सब्बवि सोइ ॥१६॥

१८. सोवि पढिज्जइ सोवि गुणिज्जइ । सत्थ-पुराणें वक्खाणिज्जइ ॥

नाहिं सो दिट्ठि जो ताउ न लक्खइ । एक्के वर-(गुरुपाअ पेक्खइ) ॥१८॥

१९. जइ गुरु वुत्तउ हिअअ पइसइ । णिच्चिअ हत्थे ठविअ उ दीसइ ॥

सरह भणइ जग वाहिअ आलें । णिअ सहाव णउ लक्खउ बालें ॥१९॥

२०. ज्ञाणहीण पब्बज्जे रहिअउ । घरहि वसते भज्जे सहिअउ ॥

जइ भिडि विसअ रमन्त ण मुञ्चइ । (सरह भणइ) परिआण कि मुञ्चइ ॥२०॥

२१. जइ पच्चक्ख कि ज्ञाणें कीअअ । जइ परोक्ख अन्धार म धीअअ ॥

सरहें ( णित्त ) कडडिउ राव । सहज सहाव ण भावाभाव ॥२१॥

२२. जल्लइ मरइ उवज्जइ बज्झइ । तल्लइ परममहासुह सिज्झइ ॥

(सरहें) गहण गुहिर भास कहिअ । पसु-लोअ निव्वोह जिम रहिअ ॥२२॥

२३. व्सम्. गतन्. ब्रल्. वस्. चि. शिग्. व्सम्. व्यर्. योद् ।  
 ब्र्जोद्. दु. मेद्. गङ्. जि.ल्लर्. ब्र्शद्. दु. योद् ॥  
 स्त्रिद्. पडि. फयग्. ग्यस्. ऽग्रो. ब. म. लुस्. व्सलुस् ।  
 रङ्. विशन्. गञ्जुग्. म. सुस्. क्यङ्. बल्ङ्स्. प. मेद् ॥२३॥
२४. ग्युद्. मेद्. स्टङ्ग्स्. मेद्. व्सम्.व्य. व्सम्. गतन् मेद् ।  
 दे. कुन् रङ्. <sup>६</sup> यिद्. ऽष्टुल्. वर्. व्येद्. पडि. ग्यु ।  
 रङ् वशिन्. दग्. पडि. सेम्स्. ल. व्सम्.गतन्. दग्. गिस्.मि.व्सलद्. दे ।  
 ब्दग्. गि. दे.ञिद्. व्दे. ल. ग्नस्. शिङ्. ग्दुङ्. वर्. म. व्येद्. चिचग् ।
२५. स. शिङ्. थुङ्. ल. ग्ञिद्. स्प्रीद्. क्यिस्. द्गऽ. शिङ् ।  
 तंग्. तु.यङ्. दङ्. यङ्. दु. ऽखोर्. लो. ऽगोङ्स् ॥२५॥
- 72a. छोस्. ऽदि. ल्त. वुस्. ऽजिग्. तेंन्. फरोल्. ग्बुद्. ऽय्युर्. ते ।  
 मोंङ्स्. प. ऽजिग्. तेंन्. म्गोन्. पोर्. दोंग्. पस्. म्नन्. नस्. सोङ् ॥२५॥
२६. गङ्. दु. लुङ्. दङ्. सेम्स्. नि. मि. ग्य. शिङ् ।  
 जि. म. स्. ल. ब. ऽजुग्. प. मेद्. ऽय्युर्. व ॥  
 मि.शेस्.प. दग्. ग्नस्. देर्. गुग्स्. फ्युङ्. चिग् ।  
 म्दऽ.व्समुन्.गियस्.नि.मन्.ङ्ग्.थम्स्.चद्. <sup>१</sup> वस्तन्.नस्. सोङ् ॥ २६॥
२७. ग्जिस्. सु. मि. व्य. चिग्. तु. ब्य. व. स्ते ।  
 रिग्स्. ल. व्ये. ब्रग्. दग्. तु. म. ऽव्येद्. पर ॥  
 खम्स्. ग्सुम्. म.लुस्. ऽदि.दग्. थम्स्.चद्. नि ।  
 ऽदोद्. छग्स्. छेन्. पो. ग्चिग्. तु. ख. दोंग्. स्म्युर्. चिग्. दङ्. ॥२७॥
२८. देर्. नि. थोग्. मेद्. द्बुस्. म्थऽ. मेद् ।  
 जि. स्त्रिद्. म्य.ङन्.ऽदस्.प. मिन् ॥  
 ब्दे. ब. छेन्. पो. म्छोग्. ऽदि. ल ।  
 ब्दग्. दङ्. गशन्. दु. योद्. म. यिन् ॥२८॥
२९. म्दुन्. दङ्. ग्यब्. दङ्. फ्योग्स्. ब्चु. रु. ।  
 गङ्. गङ्. म्थोङ्. ब. दे. दे. जिद् ॥

२३. ज्ञाण-वाहिअ कि कीअइ ज्ञाणें । जो अवाअ तहि काहि बखारणें ॥

भव मुद्दे सअलहि जग वाहिउ । णिअ-सहाव णउ केणवि साहिउ ॥२३॥

२४. मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण । सब्ववि रे वढ विन्भम-कारण ॥

असमल चित्त म ज्ञाणे खरडह । सुह अच्छन्त म अप्पणु ज्ञगडह ॥२४॥

२५. खाअन्ते (पिवन्ते सुह रमन्ते । णित्त पुणु पुणु चक्कवि भरन्ते ॥

अइसे धम्मो सिज्झइ परलोअह । णाह पाअें दलि)उ भुअलोअह ॥२५॥

२६. जहि मण पवण ण सञ्चरइ, रवि ससि णाह पवेस ।

तहि बढ चित्त विसाम कर, सरहे कहिअ उएस ॥२५॥

२७. एक्कु कर (मा वेण्णि. कर, मा कर विण्णि विसेम ॥

एक्के रंगे रञ्जिआ, तिहुअण सअलासेस ॥२६॥

२८. आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिन्वाण ।

एहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥२७॥

२९. आगें पच्छें दस दिसें, जं जं जोअमि सोवि ॥

दे. रिङ्. जिद्. दु. म्गोन्. पो. द. ल्तर. ऽबुल्. प. छद् ।  
द. नि. सु. ल. ऽङ्. द्वि. बर्. मि. व्यऽो ॥२६॥

## (१) परमपद—

३०. द्वङ्. पो. गङ्. दु. नुब्. ग्युर्. चिङ्<sup>३</sup> ।  
रङ्. गि. डो. बोर्. जाम्स्. पर्. ऽग्युर् ॥  
प्रोग्स्. दग्. दे. नि. ल्हन्. चिग्. स्वयेद्. पडि. लुस् ।  
ब्ल. मडि. शल्. लस्. ग्सल्. बर्. ब्रिस् ॥३०॥
३१. यिद्. नि. गर्. ऽछिङ्. लुङ्. गर्. दे. डस् ।  
स. स्तेङ्. ऽदि. न. यन्. लग्. ग्नस् ॥  
दे. नि. म्जोङ्स्. पस्. म्छोम्स्. सु. योङ्स्. शेस्. व्य ।  
गृति. मुग्. गर्. य. म्छो. ऽछद्. प. गङ्. शेस्. प. ॥३१॥
३२. क्ये. हो. ऽदि. नि. रङ्. रिग्. यिन्. प. स्ते ।  
ऽदि. ल. खुल्. प. म. व्येद्. चिग् ।  
दङ्गोस्. दङ्. दङ्गोस्. मेद्. ब्दे. बर्. ग्शोग्स्. पडि. ऽछिङ्. ब. स्ते ।  
सिद्. दङ्. म्जाम्. जिद्. थ. दद्. म. ऽव्येद्. पर् ॥३२॥
३३. ग्जुग. मडि. यिद्. नि. ग्चिग्. तु. ग्तोद्. दङ्. नल्. व्योर्. प. ।  
छ. ल. छु. ब्शग्. ब्शिन्. दु. शेस्. पर्. व्योस् ॥  
ब्सम्. ग्तन्. बर्जुन्. पस्. थर्. ब. जौद्. मिन्. नो ।  
स्यु. लुस्. द्र. बस्. जि. ल्तर. बङ्. दु. ऽव्युद्. ॥३३॥
३४. ब्ल. म. दम्. पडि. ब्कऽ. यिस्. ब्दे. बर्. यिद्. छेस्. पर् ।  
ङ्. यिस्. बर्जोद्. दु. योद्. मिन्. शेस्. नि. म्दऽ. ब्स्मुन्. स्त्र ॥  
ग्दोङ्. नस्. दग्. प. नम्. म्खिऽ. रङ्. ब्शिन्. ल ।  
ब्लत्स्. शिङ्. ब्लत्स्. शिङ्. म्थोङ्. ब. ऽगग्. पर्. ऽग्युर् ॥३४॥
३५. दे. ल्त. बु. जिद्. दुस्. सु. जगोस्. पर्. ऽग्युर् ।  
ग्जुग. म. जिद्. ल. स्वयोन्. ग्यिस्. ब्यिस्. प. ब्स्लुस् ॥
- 72b. स्वये. बो. म. लुस्. ल्हग्. पर्. सुन्. ऽब्यिन्. चिङ् ।  
ङ्. गर्. यल्. स्वयोन्. ग्यिस्. दे. जिद्. म्छोन्. मिं. नुस् ।

एवें तु दीढन्तडी, णाह ण पुच्छमि कोवि] ॥२८॥

१. परमपद—

३०. इन्दिअ जत्थ विलीअ गउ, णट्ठो अप्प सहाव ।

सो हले सहजानन्द तणु, फुड पुच्छह गरुपाव ॥२९॥

३१. जहि मण मरइ, पवणहो, तहि क्वअ जाइ [एहि भूमि अंग विसै ।

सोई मूढ को एकांते पज्जिये । तमसागर नगै जो जानै ॥

३२. सअ-सम्बिन्ति म करहु रे बन्धा । भावाभाव सुगति रे बन्धा ॥३१॥

३३. णिअ मण मुणहु रे णिउणें जोई । जिम जलहि मिलन्ते सोई ॥

ज्ञाणें मोक्ख कि चाहु रे आलें । साआजाल कि लेहु रे कोलें ॥३२॥

३४. वरगुरु—वअणें पडिज्जहु मच्चें, सरह भणइ मइ कहिअउ (अ) वाचें ॥

पढमें जइ आआस विसुद्धो । चाहन्ते-चाहन्ते दिट्ठि णिरुद्धो ॥३३॥

३५. ऐसैं जइ आआस वि कालो । णिअ मण दोसैं ण बुज्झइ बालो ॥३४॥

अहिमाणदोसैं ण लक्खिउ तत्त । तेण दूसइ सअल जाणु सो दत्त ॥

३१. के स्थान पर भोट में है—

०। ए ही भूमि ऊपर अंग बसई ।

सोइ मूढ ध्यान परिजानै । मोह समुद्र निरोध जो जानै ।

३२. ०सुगति रे बन्धा के बाद भोट में अधिक है “भवसमतुल्य भेद न कर हूँ, ।



३६. ऽजिग्. तेन्. म. लुस्. ब्सम्. ग्तन्. ग्यिस्. मॉड्स्. ऽय्युर् ।  
 गञ्जुग्. मडि. रङ्. ब्शिन्. सुस्. क्यङ्. म्छोन्. दु. मेद् ॥  
 सेम्स्. क्यि. च्. व. मिन्. म्छोन्. ते. ।  
 ल्हन्. चिग्. स्वयेस्. प. नंम्. ग्सुम्. गिय् ॥३६॥
३७. गङ्. लस्. दे. स्वयेस्. गङ्. दु. नुब् ।  
 गङ्. दु. ग्नस्. ऽय्युर्. ग्सल्. बर्. मि. शेस्. सो ॥  
 च्. व. ब्रल्. बडि. दे. जिद्. गङ्. सेम्स्. प ।  
 बल्. मडि. म. मन्. डग्. म्थोङ्. व. दे. यि. छोग् ॥३७॥
३८. ख्रो. बडि. रङ्. ब्शिन्. सेम्स्. क्यि. डो. वो. जिद्. यिन्. शेस् ।  
 मॉड्स्. नंम्स्. म्दऽ. ब्स्मुन्. ग्यिस्. स्त्रस्. च्. नि. शेस्. पर्. व्योस् ।  
 गञ्जुग्. मडि. रङ्. ब्शिन्. छिग्. गिस्. मि. ब्रजोद्. क्यङ् ।  
 स्लोब्. दपोन्. मन्. डग्. मिग्. गिस्. म्थोङ्. बर्. ऽय्युर् ॥३८॥
३९. छोस्. दङ्. छोस्. मिन्. म्जोस्. नस्. सोस्. प. यिस् ।  
 ऽदि. ल. जोस्. प. दुल्. च्म्. योद्. म. लेग्स् ॥  
 गञ्जुग्. मडि. यिद्. नि. गङ्. छे. स्व्यङ्स्. ग्युर्. प ।  
 दे. छे. बल्. मडि. योन्. तन्. स्विङ्. ल. ऽजुग्. पर्. ऽय्युर् ॥३९॥
४०. ऽदि. ल्तर. तोंगिस्<sup>३</sup>. नस्. म्दऽ. ब्स्मुन्. ग्लु. लेन्. ते ।  
 सङ्गस्. दङ्. ग्युद्. नंम्स्. ग्चिग्. क्यङ्. म. म्थोङ्. डो ॥  
 ज्रो. नंम्स्. लस्. क्यिस्. सो. सोर्. ब्चिङ्स्. ग्युर्. ते ।  
 लस्. लस्. ग्रोल्. न. यिद्. नि. थर्. प. यिन् ॥४०॥
४१. रङ्. ग्युद्. ग्रोल्. न. डेस्. पर्. गशन्. मेद्. दे ।  
 म्छोग्. गि. म्य. डन्. ऽदस्. प. थोब्. पर्. ऽय्युर्<sup>४</sup> ॥

### चित्त

सेम्स्. जिद्. ग्चिग्. पु. कुन्. ग्यि. स. बोन्. ते ।  
 गङ्. ल. सिद्. दङ्. . म्य. डन् ऽदस्. फोब्प ॥४१॥

३६. स. स्वय. के अनुसार जिद् नहीं, यिन् चाहिए ।

३६. ज्ञाणें मोहिअ सअल वि लोअ । णिअ-सहाव णउ लक्खइ कोअ ॥

चित्तह मूल ण लक्खिअउ, सहजें तिण्णवि तत्थ ॥३५॥

३७. तहि जीवइ विलअ जाइ, वसिअउ तहि फुड एत्थ

मूल-रहिअ जो चिन्तइ तत्त । गुरु-उवएसें एत्त विअत्त ॥३६॥

३८. सरह भणइ बढ जाणहु चंगे । चित्तरूअ संसारह भङ्गे ॥

णिअ-सहाव णउ कहिअउ अण्णें । दीसइ गुरु-उवएसे अप्पणें ॥

३९. णउ तसु दोसओ एककवि ट्ठाइ । धम्माधम्म सो सोहिअ खाइ ॥३८॥

णिअ-मण सब्बें सोहिअ जब्बें । गुरु-गुण हिअए पइसइ तब्बें ॥

४०. एवँ मणे मुणि सरहें गाहिउ । तन्त मन्त णउ एककवि चाहिउ ॥

बज्झइ कम्मणें जणो, कम्मविमुक्केण होइ मणमोक्खं ॥३९॥

४१. मणमोक्खेण अणूणं, पाविज्जइ परमणिव्वाणं ॥

### ३. चित्त

चित्तेक सअल बीअं, भव-णिव्वाणावि जस्स विफुरन्ति ॥४०॥

४२. ऽदोद्. पडि. ऽज्रस्. बु. स्तेर्. बर्. व्येद्. प. यि ।  
 यिद्. ब्रश्निन्. नोर्. ऽद्विडि. सेम्स्. ल. फ्यग्. ऽछल्. लो ॥  
 सेम्स्. वचिङ्गस्. पस्. नि. ऽछिङ्गस्. ऽग्युर्. ते ।  
 दे. जिद्. ग्रोल् न्. थे. छोम्. मेद् ॥४२॥
४३. ब्र्लुन्. पो<sup>५</sup>. गङ्. गिस्. ऽछिङ्. ग्युर्. ब ।  
 म्खस्. नंम्स्. दे. यिस्. म्युर्. दु. ग्रोल् ॥  
 सेम्स्. नि. नम्. म्खऽ. ऽद्र. बर्. ग्सुङ्. व्य. स्ते ।  
 नम्. म्खडि. रङ्. ब्रश्निन्. जिद्. दु. सेम्स्. ग्सुङ्. ब्य ॥४३॥
४४. यिद्. दे. यिद्. म. यिन्. पर्. व्येद्. ऽग्युर्. न ॥  
 देस्. नि. ब्र्ल. मेद्. व्यङ्. छुब.थोब्. पर्. ऽग्युर् ।  
 म्खस्. ऽद्रर्. व्यस्. न. लुङ्. नि. नंम्. पर्. ऽछिङ्ग ।  
 म्जाम्. जिद्. योङ्गस्. सु. शेस्. पस्. रब्. तु. थिम् ॥४४॥
४५. मदऽ. बस्मुन्. ग्यिस्. स्म्रस्. नम्. शिग्. नुस्. ल्दन्. न ।  
 मि. तंग्. ग्यो. ब. म्युर्. दु. स्पोङ्. बर्. ऽग्युर् ॥  
 लुङ्. दङ्. मे. दङ्. दबङ्. छेन्. ऽगग्स् प. नि ।  
 ब्रुद्. चि<sup>५</sup>. ग्यु<sup>५</sup>. बडि. ऽदुस्. सु. लुङ्. नि.सेम्स्. ल.ऽजुग् ॥४५॥
- 73a ४६. नम्. शिग्. स्त्र्योर्. ब्रशि. ग्नस्. गर्चिग्. ल. नि. शुग्स्. प. न ।  
 ब्रदे. छेन्. म्छोग्. नि. नम्. म्खडि. खम्स्. सु. मि. शोङ्. डो ॥  
 ख्यिम्. दङ्. ख्यिम्. न. दे. यिस्. ग्तम्. स्म्र. यङ् ।  
 ब्रदे. छेन्. ग्नस्. नि. योङ्गस्. सु. शेस्. प. मेद् ॥४६॥
४७. ऽग्रो. कुन्. ब्रसम्. पस्. सुन्. ब्रियन्. मदऽ. ब्रस्मुन्.स्म्र ।  
 ब्रसम्. ग्यिस्. मि. ख्यब्. ग्रुब्. प. ऽगऽ. यङ्. मेद् ॥  
 स्रोग्. छग्स्. थम्स्. चद्. कुन्. ल. यङ् ।  
 दे. जिद्. योद्. दे. तर्गिस्. प. मेद् ॥४७॥
४८. थम्स्. चद्. रो. म्जाम्. रङ्. ब्रश्निन्. पस् ।  
 ब्रसम्. पस्. ये. शेस्. ब्र्ल. मेद्. पऽो ॥

---

४४. म्खस् (पंडित) न,हीं म्खऽ (खं, आकाश) ठीक होगा ।

४२. तं चिन्तामणिरूत्रं पणमह इच्छाफलं देति ॥

चित्तें बज्जो बज्जइ मुक्के मुक्केइ णत्थि सन्देहा ॥४१॥

४३. बज्जन्ति जेण वि जडा लहु परिमुञ्चन्ति तेणवि बुहा ॥

[चित्तहि गगन समान कहीजै । गगन स्वभावहि चित्त कहीज ॥४२॥

४४. सो मन न मन कर दे तो । इससे अनुत्तर बोधि पावै ॥

खसम करे तो पवन विच्छिन्न । समता परिजान से बिलीन ॥४३॥

४५. सरह भनै यदा शक्ति होइ । अनित्य चल तुरंत छोड़ जाइ ॥

पवन अग्नि महासामर्थ्य निरुद्धै । अमृत हेतुकाले पवन चित्ते पइसै ॥४४॥

४६. यदा चारि योग एक स्थाने रक्खे । परम महासुख आकाशह तुम्हें न भरै ॥

[घरें-घरें कहिअ सोज्झु(सोइ) कहाणो, णउ परिआणिअ महासुह-ठाणो ।

४७. सरह भणइ जग चित्तें वाहिउ । सोवि अचित्त ण केणवि गाहिउ ॥१२८॥]

[सब प्राणी सर्वत्र ही, सोइ है सो ना बूझे ।

४८. सब समरस स्वभाव से, समुझि अनुत्तरज्ञान ॥

- ख. सङ्. दे. रिङ्. दे. ब्रिन्. सङ्. दङ्. ग्शन् ।  
 दोन्. नम्स्. फुन्. सुम्. म्छोर्. प. स्क्ये. बो. ऽदोद् ॥४८॥
४९. क्ये. हो. ब्रिन्. ब्रस्. डस्. सिञ्चाम्. प. छुस्. ब्रकङ्. व ।  
 ऽर्ज्गस्. प. ब्रिन्. दु. जाम्स्. प. म्छोर्. रो ॥  
 व्य. व. व्येद्. दङ्. व्य. व. मिन्. व्येद्. प ।  
 डेस्. प. तर्गस्. न. ऽछिङ्. दङ्. ग्गोल्. व. मेद्.<sup>३</sup> ॥४९॥
५०. यि. गो. मेद्. लस्. ऽछद्. प. योद्. ऽदोद्. प ।  
 गङ्. शिग्. नल्. ऽव्योर्. ब्र्य. ल. ऽगऽ. यिस्. म्छोर्. ॥  
 ऽजुर्. बुस्. ब्रिङ्. प. ऽदि. नि ।  
 ग्लोद्. न. ग्गोल्. व. थे. छोम्. मेद् ॥५०॥
५१. दङ्गोस्. पो. गङ्. गि. मोंङ्. प. ऽछिङ्. प. म्खस्. नम्स्. दे. यिस्. नम्. प. ग्गोल्<sup>४</sup> ।

सहज-

- ब्रिङ्. प. दग्. नि. फ्योग्. वचुर्. ऽगो. व. चोम् ।  
 म्थोङ्. बर्. ग्युर्. न. मि. ग्यो. बर्तन्. प. ग्नस् ॥५१॥
५२. गो. वल्. लोग्. ड. मो. ल्त. बुर. ब्रदग्. गिस्. तर्गस् ।  
 बु. ख्येद्. नम्स्. क्यङ्. रङ्. ल. छेर्. ते. ल्तोस् ॥  
 क्ये. लग्. दबङ्. पो. ल्तोस्. शिग्. दङ् ।  
 ऽदि. लस्. डस्. नि. म. ग्तोग्. सो<sup>५</sup> ॥५२॥
५३. लस्. सिन्. प. यि. स्क्येस्. बु. यि ।  
 द्रुङ्. दु. सेम्स्. थग्. ग्चद्. प. व्योस् ॥  
 लुङ्. व्रिङ्. प. ल. रङ्. जिद्. म. सेम्स्. स्क्ये ।  
 शिङ्. गि. नल्. ऽव्योर्. स्त. चोर्. ऽदुग्. चिग् ॥५३॥
५४. ए. मऽो. म. यिन्. ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. प. म्छोर्. छग्. व्योस् ।  
 सिद्. प. स्त. चोर्. ऽछिङ्. व. यङ्. दग्. स्पङ्<sup>६</sup> ।  
 ऽदि. नि. यिद्. ऽदुस्. प. ल. लुङ्. गि. ल्वस् ॥  
 ग्यो. शिङ्. ऽफ्यर्. ल. शिन्. तु. मि. स्तुन्. ऽग्युर् ॥५४॥

कल आज तथा और कल; अर्थ संपत्ति पुरुष चाहे ।

४६. रे मुखधारिणी जलपूर्ण, अंजलि छरै जैसे संवेदै ॥

क्रिया करना और न करना, निश्चय जानि बंधनमुक्ति नहीं ॥

५०. निरक्षर से करै इच्छा, सो योगी में विरला लखै ॥

कोने बीच बंधा यह चित्त, सुरक्त मुक्त हो निस्मन्देह ॥

१. बज्जंति जेण जडा परिमुंचन्ति तेण बुधा ॥ १' ]

सहज—

बद्धो धावइ दहदिहहि, मुक्को णिच्चल ठाइ ।

५२. एमइ करहा पेक्खु सहि, विहरिअ महुं पडिहाइ ॥४३॥

[अरे इन्द्रिय देखि, इससे मैंने नहीं वृज्जा ॥]

५३. [कर्म से बंधे पुरुष का चित्त आमन्नहि रज्जु तोडै ॥]

पवण-रहिअ अप्पाण म चिन्तह । कट्टजोइ णासग्ग म बंदह ॥ ४४ ॥

५४. अरे बढ सहजे सइ पर सज्जह । मा भवगन्थबन्ध पडिचउजह

एह मण मेल्लह (?मेल्ल) पवण तुरङ्ग मुचञ्चल ।

सहज सहावे सो वसइ णिच्चल ॥४५॥

५५. ल्हन्. चिग्. स्वयेस्. पडि. रङ्. बृशिन्. तोंगस्. ग्युर. न ।  
 दे. यिस्. बृदग्. जिद्. बृतेन्. पर्. ग्युर. प. यिन् ॥
- 73b गङ्. छे. यिद्. नि. ओ. बर्. जगस्. ग्युर. न ।  
 लुस्. किय. ऽछिङ्. व. नम्. पर्. ऽछद्. पर्. ऽग्युर ॥५५॥
५६. गङ्. छे. ल्हन्. चिग्. स्वयेस्. दङ्. रो. म्जाम्. प ।  
 दे. छे. द्मन्. पडि. रिग्स्. दङ्. वाम्. से. मेद् ॥

### ४. यहीं सब कुछ

#### (१) देह ही तोर्य—

- ऽदि. नि. स्. ल. व. र्ग्य. म्छो. जिद्. दङ्. नि ।  
 ऽदि. नि. गङ्. गडि. र्ग्य. म्छो. जिद्. दङ्. नि ॥५६॥
५७. वा. रा. ण. सी. प्र. य. घ. य. ति ।  
 ऽदि. नि. स्. ल. व. ग्सल्. त्थेद्. जिद् ॥  
 शिङ्. कुन्. ग्नस्. दङ्. ओ. बडि. ग्नस्. सोग्स्. प ।  
 पियन्. ते. बृत्तस्. पडि. तोंगस्. प. गङ्. स्म्र. व ॥५७॥
५८. लुस्. दङ्. ऽद्र. बडि. मु. ग्नस्. ग्शन्. मेद् ।  
 दग्. व. ड. यिस्. डेस्. पर्. यङ्. दग्. मथोङ् ॥  
 दव्. ल्दन्. पद्मडि. स्तोङ्. पो. गो. सर्. गिय. द्बुस्. न ।  
 शिन्. तु. फ्र. बडि. नल्. म. द्वि. दङ्. ख. दोग्. ल्दन् ॥५८॥
५९. ब्ये. ग्रग्. ३ ऽोङ्स्. शिङ्. मोंङ्स्. प. म्य. डन्. गियस् ।  
 गदुङ्स्. पडि. ऽन्नस्. बु. मेद्. पर्. म. त्थेद्. चिग् ॥  
 गङ्. छे. छेङ्स्. प. ख्यव्. ऽजुग्. मिग्. ग्सुम्. दङ् ।  
 ऽजिग्. तेन्. म. लुस्. थम्स्. च. द्. ग्शिर्. ग्युर. प ॥५९॥
६०. रिग्स्. मेद्. दे. ल. म्छोङ्. न. लस्. किय. यङ् ।  
 म्थऽ. यि. छेोग्स्. ३ नि. यङ्. दग्. सद्. पर्. ऽग्युर ।  
 क्ये. हो. बु. ओन्. चोद्. पडि. रो. नि.  
 दग्. पर्. यङ्. दग्. ग्नस्. शेस् प ॥६०॥

५५. [सहज स्वभाव समझि, सो स्वयं स्थिर होई ॥]

जबबें मण अत्थमण जाइ, तणु तुटटइ बन्धण ।

५६. तब्बे समरस सहजे वज्जड, णउ सुद्ध ण बम्हण ॥४६॥

#### ४. यहीं सब कुछ

(१) देह ही तीर्थ—

एत्थु से सुरसरि जमुणा, एत्थु से गङ्गासागर ।

५७ एत्थु पआग वणारसि, एत्थु से चन्द दिवाअरु ॥४७॥

क्खेत्तु पीठ उयपीठ, एत्थु मई भमइ परिट्ठओ ।

५८. देहासरिसअ तित्थ, मई सुहअण्ण(?सुणेउ)ण दिट्ठओ ॥४८॥

सण्ड-पुअणिदल-कमल-गन्ध-केसर-वरणालें ।

५९. छड्डहु वेणिम ण करहु सोम, ण लग्गहु वढ आले ॥४९॥

काम तत्थ खअ जाइ, पुच्छह कुलहीणओ ।

बम्ह बिट्ठु तेलोअ(ण), मअल जगु णिलीणओ ॥५०॥

६०. [तँह अजाति में आश्रम कर्म का भी अंतिम समूह सम्यक् तष्ट होइ ॥]

अरे पुत्त बोज्झु रस, रमण सुमण्ठिअ अवेज्ज ।

---

५६. गघ-पृ० ५८ के स. स्क्य पाठ से थोड़ा अंतर है ।



६१. ऽग्रो.ब.ऽछ्द्.चि.ङ्.ऽङोन्. सोग्स्.पस् ।  
 दे. नि. शेस्. पर्. नुस्. म. यिन् ॥६१॥  
 क्ये. हो. बु. ऽोन्.दे. जिद्. स्त. छोग्स्. क्यिस् ।  
 रो. ब्स्तन्. पर्. नुस्. प. म. यिन्. ते ॥६१॥
६२. ब्दे. बडि. ५ ग्नस्. म्छोग्. तोग्. स्पङ्. ते ।  
 ऽग्रो. ब. ञोबर. स्क्ये. व. जिद्. ब्शिन्. नो ॥  
 ब्लो. नि. नम्. ऽगग्स्. यिद्. नि. फम्. ग्युर. प ।  
 गङ्. दु. म्ङोन्. पडि. ङ्. ग्यल्. छद्. पडो ॥६२॥
६३. दे. जिद्. स्म्यु. मडि. रङ्. ब्शिन्. म्छोग्. तु. तोग्स्. प. स्ते ।  
 दे. ल. ब्सम्. ग्तन्. ऽछिङ्. ब. देस्. नि. चि. व्पर. योद्  
 द्ङोस्. पोर्. स्क्येस्. प. म्खडि. ल्तर. रङ्. ब्शिन्. न ।  
 द्ङोस्. पो. नम्. स्पङ्स्. फिय. नस्. चि. शिग्. स्क्ये ॥६३॥
६४. ग्दोद्. नस्. स्क्ये. मेद्. रङ्. व्शिन्. यिन्. प. ल ।  
 दे. रिङ्. द्पल्. लदन्. ब्ल. म. ब्स्तन्. पस्. तोग्स् ॥

## (२) भोग में योग—

- मथोङ्. दङ्. थोस्. दङ्. रिग्. दङ्. द्रन्. प. दङ्. ।  
 स. स्तोम्. ऽख्यम्. दङ्. ऽग्रो. दङ्. ऽदुग्. प. दङ् ॥६४॥
६५. चल. चोल्. ग्तम्. दङ्. लन्. स्त्र. ग्युर. प. ल ।  
 सम्स्. सो. शे. न. ६ ग्चिग्. गि. नम्. प. ल. मि. स्क्योद् ॥६५॥  
 गङ्. शिग्. ब्ल. मडि. मन्. डग्. ब्दुद्. चिडि. छु ।  
 ग्दुङ्. से ल. ब्सिल्. व. दोम्स्. पर्. मि. ऽथुङ्. बर् ॥६५॥
६६. दे. नि. ब्स्तन्. व्चोस्. दोन्. मङ्. म्य. डम्. गिय ।  
 थङ्. ल. स्कोम्. पस्. ग्दुङ्स्. ने. ऽछि. बर्. सद् ॥  
 ब्ल. मस्. ब्स्तन्. प. ब्जोद्. मिन्. न ।  
 स्लोब्. मस्. गो. व. म. यिन्. ते ॥६६॥
- 47a ६७. ल्हन्. चिग्. ७ स्क्येस्. प. ब्दुद्. चिडि. रो ।  
 गङ्. गिस्. जि. ल्तर. ब्स्तन्. पर्. व्य ॥  
 म्छद्. पर्. ऽजिन्. पडि. द्बङ्. गिस्. सु ।  
 ब्लुन्. पोस्. व्थे. ब्रग्. ञाद्. प. स्ते ॥६७॥

६१. वक्त्राण पढन्तेहि, जगहि ण जाणित सोज्ज ॥५१॥

बुद्धि विणासइ मग मरइ, जहि (तुट्टइ) अहिमाण ।

६३. सो माआमअ परम कलु, तहि किम् वज्जइ ज्ञाण ॥५३॥

भवहि उअज्जइ खअहि णिवज्जइ । भाव-रहिअ पुणु कहि उवज्जइ ।

६४. विण्ण-विवज्जिअ जो उवज्जइ । अच्छह मिरिगुणाह कहिज्जइ ॥५४॥

(२) भोग में योग—

देखहु सुणहु परीमहु खाहु । जिग्वहु भमहु वइट्ट उट्ठाहु ॥

६५. आल-माल व्यवहारें पेल्लह, मग च्छइहु एककाकार म चत्तलह ॥५५॥

गुरु-उवएसें अमिअ-रसु, धावहि ण पीअउ जेहि ।

६६. बहु सत्थत्थ-मरुत्थलिहिं, तिसिए मरिअउ तेहि ॥५६॥

[ण तं वाएं गुरु कहइ, णउ तं बुज्जइ सीस ।

६७. सहज सहावा हले अमिअ रस, कासु कहिज्जइ कीस ।

जह पमाणं विहिवसें, बढ लद्धउ भेड ॥

६८. दे. छे. दोल्. पडि. खियम्. दु. रोल् ।  
 डोन्. क्यङ्. द्वि. मस्. मि. गोस्. सो ॥  
 गङ्. छे. स्तोङ्. न. स्रङ्. खडि. खम्. फोर. गियस्. स्प्योद्. दे ।  
 ब्दग्. नि. र्ग्यल्. पो. यिन्. न. स्लर्. यङ्. चि. ब्यर्. योद्. ॥६८॥
६९. द्ब्ये. व. नम्. पर्. स्पङ्स्. नस्. दे. जिद्. ग्नस्. प. ल ।  
 रङ्. ब्शिन्. मि. ग्यो. व्तङ्. स्जोम्स्. ल्हन्. गियस्. शुब् ॥  
 म्य. डन्. ऽदस्. प. ल. ग्नस्. स्निद्. पर्. म्जोस् ।  
 नद्. ग्शान्. दग्. ल. स्मन्. ग्शान्. ग्तङ्. मि. व्य ॥६९॥

## (३). सहज भावना—

७०. ब्सम्. दङ्. बसम्. व्य. रब्. तु. स्पङ्स्. नस्. सु ।  
 जि. ल्त्. वु. छुङ्. छल. दु. ग्नस्. पर्. व्य ॥  
 ब्ल. मडि. लुङ्. ल. ब्स्त्रिम्स्. ते. रब्. ऽबब्. न ।  
 ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. प. ऽब्युङ्. बर्. थे. छोम्. मेद् ॥७०॥
७१. ख. दोग्. योन्. तन्. यि. गो. द्पे. ब्रल्. ब ।  
 स्म्र. रु. मि. ब्तुङ्. दे. नि. ब्दग्. गियन्. म्छोन् ॥  
 ग्शोन्. नु. म. यि. ब्दे. व. स्त्रिङ्. ल. शोन्. प. ब्शिन् ।  
 द्वङ्. फ्युग्. दम्. प. दे. नि. सु. ल. ब्स्तन्. नुस्. सम्<sup>३</sup> ॥७१॥
७२. द्ङोस्. दङ्. द्ङोस्. मेद्. योङ्स्. सु. ब्चद्. प. दङ् ।  
 देर्. नि. ऽग्रो. ब. म. लुस्. रब्. तु. थिम्. पर्. ऽयुर् ॥  
 गङ्. छे. यिद्. नि. मि. ग्यो. रङ्. ग्नस्. ब्त्तन्. प. स्ते ।  
 दे. छे. ऽखोर्. बडि. द्ङोस्. पो. लस्. नि. रङ्. शोल्. ऽयुर् ॥७२॥
७३. गङ्. छे. ब्दग्. ग्शान्. योङ्स्. सु. शेस्. मेद्. नि ।  
 दे. छे. ब्ल. मेद्. लुस्. नि. थोव्. पर्. ऽयुर् ॥  
 दे. ल्त्. ब्स्तन्. प. जिद्. लस्. डेस्. पर्. म. ऽखुल्. पर् ।  
 रङ्. गिस्. रङ्. ल. लेग्स्. पर्. शेस्. पर्. व्यस्. नस्. नि ॥७३॥

जइ चंडालघरे भुंजइ, तअवि ण लगइ लेउ ॥

६८. [जव पल सरावे भिक्षा मांगे, म राजा हूं (कहेत)तो क्या कीजिये ॥

भेद छाड़ि सोई रहै, अचल स्वभाव समापत्ति ।

६९. निर्वाणे वसि भवे सुंदर, रोग अन्य औषधि अन्य न दीजै ॥]

(३) सहज भावना—

७०. चित्ताचित्त वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु ।

गुरु-वअणें दिढ भत्ति कर, होइअइ सहज उलालु ॥५७॥

७१. अखर-वण्णो पर(म)गुण-रहिअओ । भणइ ण जाणइ ये मइ कहिअओ ॥

सो परमेसरु कासु कहिज्जइ । सुरअकुमारी जिम पडि(व)ज्जइ ॥५८॥

७२. भावाभावेँ जो परिहीणो । तहिं जग सअलासेस विलीणो ॥

जव्वेँ तहिं मण णिच्चल थक्कइ । तव्वेँ भवसंसारह मुक्कइ ॥५९॥

७३. जाव ण अप्पहिं पर परिआणसि । ताव कि देहाणुत्तर पावसि ॥

ए मइ कहिअओ भन्ति ण कव्वा । अप्पहिं अप्पा बुज्जसि तव्वा ॥६०॥

७४. डुल्. मिन्. डुल्. ब्रल्. म. यिन्. सेमस्. क्यङ्. मिन् ।  
 द्ङोस्. पो. दे. दग्. ग्दोद्. नस्. शेन्. प. मेद् ॥  
मुदऽ. स्मुन्. गियस्. स्म्रस्. दे. चम्. शिग्. तु. सद् ।  
 क्ये. हो. म. लुस्. द्वि. मेद्. दोन्. दम्. शेस्. पर्. <sup>५</sup> व्योस् ॥७४॥
७५. ख्यिम्. न. ग्नस्. प. फिय. रोल्. सोङ्. नस्. छोल् ।  
 ख्यिम्. ब्दग्. म्थोङ्. नस्. ख्यिम्. छेस्. दग्. ल. द्वि. ॥

(४) धेय-धारणादि व्यर्थ—

- मुदऽ. स्मुन्. गियस्. स्म्रस्. ब्दग्. जिद्. शेस्. पर्. व्योस् ।  
 ब्रुन्. पोस्. ब्रसम्. ग्तन्. ब्रसम्. व्य. ब्रस्लस्. ब्रुद्. मिन् ॥७५॥
७६. गङ्. छे. ब्रल्. मस्. व्स्तन्. चिङ्. थमस्. चद्. शेस्. व्यस्. क्यङ् ॥  
 ब्दग्. <sup>६</sup> गिस्. योङ्स्. सु. ब्र्तग्स्. पस्. थर्. प. थोब. बम्. चि ।  
 युल्. नर्मस्. ब्रोद्. चिङ्. गुदुङ्. बस्. ज्ञोन्. ब्यस्. क्यङ् ।  
 ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. घ. मि. ज्ञोद्. स्दिग्. पस्. ऽजिन् ॥७६॥
७७. युल्. नर्मस्. व्स्तेन्. पस्. युल्. गियस्. मि. गोस्. सो ।  
 उत्पल. ऽदब. म. छे. यिस्. म. रेग्. ब्रशिन्
- 74b गङ्. ल्तर. च. ब. नल्. ऽब्योर्. <sup>७</sup> स्क्यब्वस्. सु. ऽग्रो ।  
 दुग्. गि. ऽङ्गस्. चन्. दुग्. गिस्. ग. ल. छुग्स् ॥७७॥
७८. ल्ह. ल. म्छोद्. प. खि. फग्. ल्यिन्. नस्. क्यङ् ।  
 ब्दग्. जिद्. दे. यिस्. ऽछिङ्. ऽयुर्. चि. शिग्. न्य ।  
 दे. ऽद्रस्. ऽखोर्. व. दि. नि. ऽछद्. मिन्. ते ।  
 गञ्जुग्. मडि. रङ्. ब्रशिन्. म. तौग्स्. गल्. मि. नुस् ॥७८॥
७९. मिग्. नि. मि. ऽज्जुम्स्. <sup>८</sup> सेम्स्. क्यङ्. मि. ऽगोग्. दङ् ।  
 लुङ्. ऽगोग्. प. नि. द्पल्. ल्दन्. ब्रल्. मस्. तौग्स्  
 गङ्. छे. लुङ्. ग्युद्. दे. नि. मि. ग्यो. स्ते ।  
 छिङ्. बडि. छे. न. नल्. न्योर्. पस्. चि. न्य ॥७९॥
८०. जि- स्त्रिद्. द्बङ्. पो. युल्. गिय. ग्रोङ्. ल. ल्हुङ् ।  
 दे. स्त्रिद्. रङ्. जिद्. लस्. मेद. रब्. तु. ग्यस् ॥

७४. णउ अणु णउ परमाणु विचिन्तजे । अणवर भावहि फुरइ सुरत्तजे ॥  
भणइ सरह भन्ति एतवि मत्तजे । अरे णिक्कोली बुज्झह परमत्थजे ॥६१॥
७५. घरं अच्छइ बाहिरे पुच्छइ । पइ देक्खइ पडिवेसी पुच्छइ ॥
- (४) धेय-धारणादि व्यर्थ—  
सरह भणइ बढ जाणउ अप्पा । णउ सो धेअ ण धारण जप्पा ॥६२॥
६. जइ गुरु कहइ कि सत्त्ववि जाणी । मोक्ख कि लब्भइ सअल विणु जाणी ॥  
देस भमइ हब्बासें लइजे । सहज ण बुज्झइ पापे गाहिजे ॥६३॥
७७. विसअ रमन्त ण विसएँ विलिप्पइ । उअर हरइ ण पाणी छिप्पइ ॥  
एमइ जोई मूल सरन्तो । विसहि ण वाहइ विसअ रमन्तो ॥६४॥
७८. देव पिज्जइ लक्खवि दीसइ । अप्पणु मारिइ स कि करिअइ ॥  
तोवि ण तुट्टइ एहु संसार । विणु आआसें गाहि णिसार ॥६५॥
७९. अणिमिसलोअण चित्त णिरोहे । पवण णिरुहइ मिरिगुरु-बोहे ॥  
पवण वहइ सो णिच्चलु जट्ठे । जोई कालु करइ कि रे तब्बे ॥६६॥
८०. जाउ ण इन्दिअ-विसअ-गाम । तावइ विफुरइ अकाम ॥

- ख्येद्. चग्. द. ल्तर. चि. न्येद्. सम्. दङ्. क्ये ।  
 दे. नि. शिन्. तु. ढ्कऽ. बऽि. द्गोङ्गस्. प. ऽजुग् ॥१०॥
८१. गङ्. शिग्. गङ्. ल. ग्नस्. प. नि ।  
 दे. नि. दे. रु. मि. म्थोङ्. स्ते ॥  
 म्खस्. प. थम्स्. चद्. ब्स्तन्. ब्चोस्. ऽछद्. प. यिस् ।  
 लुस्. ल. सङ्गस्. र्ग्यस्. योद्. पर्. म. त्तोर्गस्. सौ ॥११॥
८२. ग्लङ्. छेन्. लोबस्. नस्. सेम्स्.<sup>३</sup> छग्स्. छुद्. पस्. न ।  
 देर्. मि. ऽप्रो. ऽोङ्. छद्. नस्. डल्. ब. स्ते  
 दि. ल्तर. त्तोर्गस्. न. गङ्. दु ऽङ्. द्वि. स. मेद् ।  
 म्खस्. प. डो. छ. मेद्. पस्. दे. म. त्तोर्गस् ॥१२॥
८३. ग्सोन्. प. गङ्. शिग्. न्म. पर्. म. ग्युर्. प ।  
 दे. नि. गस्. शिङ्. ऽछि. बर्. ऽग्युर्. रम्. चि  
 बल्. मस्. ब्स्तन्. प. द्वि. मेद्. बलो.<sup>५</sup> प्रोस्. नि ।  
 दे. ञिद्. ग्तेर्. यिन्. ग्शन्. प. गङ्. शिग्. लो ॥१३॥
८४. युल्. ञिद्. न्म. पर्. दग्. स्ते. ब्स्तन्. ब्य. मिन् ।  
 स्तोङ्. ब. ऽवऽ. शिग्. गिस्. नि. स्प्यद्. पर्. ब्य ।  
 जि. ल्तर. ग्सिङ्गस्. लस्. ऽफुर्. बऽि. ब्य. रोग्. ब्शिन् ।  
 स्कोर्. शिङ्. स्कोर्. शिङ्. स्लर्. यङ्. दे. रु. ऽवब् ॥१४॥
८५. थग्. प. नग्. पोऽि. दुग्. स्बुल्. ब्शिन्<sup>६</sup> ।  
 म्थोङ्. ब. चम्. ग्ग्यस्. स्ङङ्. बर्. ऽग्युर् ॥  
 प्रोर्गस्. दग्. स्व्ये. बो. दम्. प. नि ।  
 युल्. ग्ञिस्. स्वयोन्. ग्ग्यस्. ब्चिङ्. बर्. ऽग्युर् ॥१५॥

### ५. परमपद साधना

(१) इंद्रिय-संयम—

८६. युल्. ल. शेन्. पस्. ऽछिङ्. बर्. म. ब्येद. चिङ् ।  
 क्ये. हो. मोङ्गस्. प. म्दऽ. ब्स्मुन्. ग्ग्यस्. स्त्रस्. प ॥  
 जा. दङ्. फिय. लेब्. ग्लङ्. छेन्. बुङ्. व. दङ् ।  
 ऽदि.<sup>६</sup> नि. रि. द्गस्. ब्शिन्. दु. ब्य. बर्. ब्योस् ॥१६॥

[अरे अब तू क्या कना सोचै । यह अति कठिन ध्यान प्रवेश ॥]

८१. अइसें विमम मन्धि को पडसइ । जो जहि अत्थि ण जाव ण दीसइ ॥६७॥

पण्डिअ सअल मत्थ वक्खाणइ । देहिहि बुद्ध वसन्त ण जाणइ ॥

८२. गज मिखि चित्ते राग दृढावै ॥

अमणागमण ण तेण बिखण्डिअ । तोवि णिलज्ज भणइ हउँ पण्डिअ ॥६८॥

८३. जीवन्तह जो णउ जरइ, सो अजरामर होइ ।

गुरु-उवएसें विमल-मड, सो पर धण्णो कोइ ॥६९॥

८४. विमअ-विसुद्धे णउ रभइ, केवल सुण्ण चरेइ ।

उड्डी बोहिअ काउ जिम, पलुटिअ तह्वि पडेइ ॥७०॥

८५. काल रज्जु में भर्ष जिमि, देवने मात्र भय उपजावै ।

मखे, सुजन जन हे, विषय दोष से बंधै ॥]

## ५. परमपद साधना

(१) इन्द्रिय-संयम—

८६. विसआसत्ति म बन्ध करु, अरे बढ सरहे वुत्त ।

मीण-पअङ्गम-करि-भमर, पेक्खह हरिणह जुत्त ॥७१॥



८७. गङ्. शिग्. सेम्स्. लस्. नम्. ऽफ्रोस्. प ।  
 दे. सिद्. म्गोन्. पोडि. रङ्. ब्शिन्. ते ।  
 छु. दङ्. लंबस्. दग्. ग्शन्. यिन्. नम् ।  
 सिद्. दङ्. म्जाम्. शिङ्. नम्. म्खडि. रङ्. ब्शिन्. नो ॥८७॥
८८. गङ्. शिग्. ब्स्तन्. ते. गङ्. थोस्. प ।  
 75a द्गोङ्स्. प. गङ्. यिन्. दम्. पर्. स्वयोल्. ब. न ॥  
 जि. सर्. ल्कुग्स्. प. स. यि. दुंल. ब्शिन्. बर्लंग् ।  
 सिञ्जङ्. ग. जिद्. दु. नुब्. पर्. ग्युर. प. यिन् ॥८८॥
८९. जि. ल्तर. छु. ल. छु. बशग्. न. दे. ज्रोद्. छु. ह. रो. म्जाम्. ऽग्युर ॥  
 स्वयोन्. दङ्. योन्. तन्. म्जाम्. ल्दन्. सेम्स् ।  
 म्गोन्. पो. सुस्. क्यङ्. म्थोङ्. मि. ऽग्युर ॥८९॥
९०. मोंङ्स्. प. दग्. ल. ग्जोन्. पो. गङ्. यङ्. मेद् ।  
 नग्स्. ल. म्छेद्. पडि. मे. ल्चे. ब्शिन् ॥  
 ग्दोङ्. दु. बब्. पडि. ऽदि. ल्तर. स्नङ्. ब. कुन् ।  
 सेम्स्. किय. चर्. ब. स्तोङ्. प. जिद्. दु. ल्हन्. चिग्. ब्योस् ॥९०॥
९१. गल्. ते. यिद्. दु. ऽोङ्. ङ्म्. स्जाम्. पडि. सेम्स् ।  
 सिञ्जङ्. ल. बब्. प. ग्चेस्. पर्. ब्यस्. न. नि ॥  
 तिल्. गिय. शन्. प. चम्. गिय. सुग्. ड्हुस्. क्यङ् ।  
 नम्स्. क्यङ्. स्दुग्. ब्स्डल्. ऽबऽ. शिग्. ब्येद्. पर्. सद् ॥९१॥
९२. दे. ल्तर. यिन्. ते. दे. ल्तर. म. यिन्. नो ।  
 ग्गोग्स्. पो. फग्. दङ्. ग्लङ्. छेन्. ल्तोस्  
 जि. ल्तर. यिद्. ब्शिन्. नोर्. बुडि. द्गोस्. प. ब्शिन् ।  
 ऽख्रुल्. प. शिग्. पडि. म्खस्. प. डो. म्छर्. छे ॥  
 रङ्. ल. रङ्. रिग्. ब्दे. ब. छेन्<sup>३</sup> पोडि. बग्. छग्स्. ग्स्गुस् ॥९२॥

८७. जत्तवि चित्तहि विप्परइ, तत्तवि णाह सरुअ

अण्ण तरड्ग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरुअ ॥७२॥

८८. कामु कहिज्जइ को सुणइ, एत्थु कज्जसु लीण ।

दुड्ड सुहङ्गा धूलि जिम हिअ जाअ हिअहि लीण ॥७३॥

८९. जत्तवि पइसइ जलहि जल, तत्तइ समरस होइ ।

दोस-गुणाअर चित्त तहा, बढ परिवक्ख ण कोइ ॥७४॥

९०. [मूडों का मित्र कोई नहीं, वन दाहक अग्नि-शिखा जिमि ॥

वृक्ष पर गिरी; ऐसे मत्र भासै चित्त मूल शून्यता में एक बार ॥]

९१. सुण्णहि सङ्गम करहि तुहु, जहिं तहिं समचिन्तस्स ।

तिल-नुस-मत्तवि सल्लता, वेअणु करइ अवस्स ॥७५॥

९२. अइसें सो पर होइ ण अइसों । जिम चिन्तामणि कज्ज सरीसों ॥

अक्कट पण्डिअ भन्तिअ णासिअ । सअ-सम्बित्ति महासुह-वासिअ ॥७६॥

६३. थम्स्. चद्. दे. छे. म्खऽ. म्जाम्. ब्येद्. पर्. ऽय्युर् ॥  
 क. ल. कु. ट. स्मोस्. सु. चि. रुङ्. स्ते ।  
 रङ्. ब्शिन्. म्खऽ. म्जाम्. यिद्. क्यिस्. ऽजिन्. प. यिन् ॥  
 यिद्. दे. यिद्. म. यिन्. पर्. ब्येद्. ऽय्युर्. न ।  
 रङ्. ब्शिन्. ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. प. मछोग्. तु. म्जेस् ॥६३॥
६४. ख्यिम्. दङ्. ख्यिम्. न. दे. नि. ब्जोद्. मिन्. ते ।  
 ब्दे. छेन्. ग्नस्. नि. योङ्स्. सु. शेस्. प. मिन् ॥  
 ऽप्रो. कुन्. सेम्स्. खल्. खुर. ब्. म्दऽ. ब्स्मुन्. ऽद्र ।  
 दे. नि. ब्सम्. मेद्. सुस्. क्यङ्. तोग्स्. म. यिन् ॥६४॥
६५. ब्दे. ग्मङ्. यन्. लग्. योङ्स्. सु. स्पङ्स्. प. न ।  
 ब्स्गोम्. दङ्. मि. स्गोम्. द्ब्येर्. मेद्. ब्दग्. गिस्. म्थोङ्<sup>९</sup> ।  
 युञ्. गिग्रन्. म्छोन्. पन्. ग्गन्. दग्. ब्सम्. पर्. ब्येद् ।  
 दे. जिद्. ब्सम्. पस्. म. तोग्स्. रङ्. गशिन्. ऽगग्स्. पर्. ऽय्युर् ॥६५॥
६६. गल्. ते. स॑म्स्. क्यिस्. स॑म्स्. नि. म्छोन्. वु. ऽप्रो ।  
 न॑म्. तोग्. दङ्. नि. मि. ग्यो. ब्र्तन्. पर्. ग्नस् ॥  
 जि. ल्त्. लन्. छ्व. छु. ल. थिम्. प. ल्त्. ।  
 दे. ल्त्. सेमस्. नि. रङ्.<sup>९</sup> ब्शिन्. ल. थिम्. ऽय्युर् ॥६६॥
६७. दे. छे. ब्दग्. दङ्. ग्शन्. नि. म्जाम्. पर्. म्थोङ् ।  
 ऽबद्. दे. ब्सम्. ग्त्तन्. व्यस्. पस्. चि. ब्यर्. योद् ॥  
 ल्हन्. चिग्. ल. नि. लुङ्. न॑म्स्. म. लुस्. मथोङ् ।  
 रङ्. गि. ऽदोद्. प. मङ्. पो. ग्सल्. बर्. स्तङ् ॥६७॥

## (२) भोग में योग

- 75b६८. म्गोन्. पो. ब्दग्. जिद्. ग्चिग्. पु. ग्शन्. न॑म्स्. ऽगल्<sup>१०</sup> ।  
 ख्यिम्. दङ्. ख्यिम्. न. ग्रुब्. म्थऽ. दे. ग्रुब्. पो ॥

६४. 'मिन्' (नहीं) नहीं, 'यिन्' (ह) चाहिए, 'ऽद्र (इब) नहीं, स्त्रस् (भनें) चाहिए ।

६३. सब्ब रूअ तहिँख-सम करिज्जइ । खसम-सहावें मणवि धरिज्जइ ॥

सोवि मणु तहि अ-मणु करिज्जइ । सहज सहावें सो परु रज्जइ ॥७७॥

६४. घरे-घरे कहिअइ सोज्झु कहाणा । णउ परिसुणिअइ महासुह-ठाणा ॥

सरह भणइ जग चित्तें वाहिअ । सो अचित्त णउ केणवि गाहिअअ ॥७८॥

६५. [गुह्य सुख अंग परिहरिय, ध्यानाध्यान मँने देखा ।

विषय लखि अन्य ध्यावँ, सो ध्यान से न जान स्वभाव विरुद्ध हो ।

६६. यदि मनसे लखि जावँ, और विकल्प अचल स्थिर रहँ ।]

जिम लोण विलिज्जइ पाणिएहि, तिम जइ चित्तवि ठाइ ॥

६७. अप्पा दीसइ परहिँ सम, तत्थ समाहिए काइ ॥४६॥

[एहु देव वहु आगम दीसअ । अप्पण इच्छें फुड पडिहास अ ।]

(२) भोग में योग--

६८. अप्पणु णाहो अण्ण विरुद्धो । घरें-घरें सोअ सिद्धन्त पसिद्धो ॥

ग्चिग्. सोस्. पस्. नि. थम्स्. चद्. छिग् ।  
फिय. रोल्. सोङ्. नस्. खियम्. ब्दग्. छ् लोल् ॥६८॥

६६. ऽोङ्स्. क्यङ्. म. म्थोङ्. फियन्. क्यङ्. मेद् ।  
ऽदुग्. पर्. ग्युर्. क्यङ्. डो. म. शेस् ॥  
दब्. ऽर्लब्स्. मेद्. पडि. द्बङ्. फ्युग्. म्छोग् ।  
ञाग्. प. मेद्. पडि. ब्सम्. ग्तन्. १ ग्युर् ॥६९॥

१००. छ्. दङ्. मर्. मे. रङ्. ग्सल्. ग्चिग्. तु शेङ् ।  
ग्रो. ऽोङ्. ड्. यिस्. मि. लेन्. मि. ऽदोर्. रो ॥  
गङ्. यङ्. सङ्. न. मेद्. पडि. स्गोग्. मो. दङ्. फ्रद. नस् ।  
ञाल्. बडि. समस्. नि. ग्शि. मेद्. प. ल. बर्तेन् ॥१००॥

१०१. रङ्. गि. ग्सुग्स्. दङ्. थ. दद्. म. ल्त. चिग् ।  
दे. ल्तर. सङ्स्. ग्यस्. लग्. तु. ग्तोद्. प<sup>३</sup>. यिन् ॥  
गङ्. छ्. लुस्. दङ्. डग्. यिद्. द्ब्येर्. मेद्. प ।  
ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. पडि. रङ्. ब्शिन्. दे. छ्. म्जसे ॥१०१॥

१०२. खियम्. ब्दग्. सोस्. नस्. खियम्. ब्दग्. मो. पोङ्स्. स्प्योद् ।  
युल्. नि. गङ्. सग्. म्थोङ्. स्ते. स्प्यद्. पर्. व्य ॥  
ड्. यिस्. च्द्. मो. व्यस्. प. ल. ।  
बुस्. प. नम्स्. नि. अ. थङ्. छद् ॥१०२॥

१०३. अ. म.<sup>३</sup> ब्शग्. नस्. बु. दे. स्क्ये. मि. ऽग्युर्. ।  
देस्. नि. नल्. ऽब्योर्. स्प्योद्. प. द्पे. दङ्. ब्रल् ॥  
ब्दग्. पो. स. शिङ्. रङ्. ब्शिन्. म्जसे. छ्गस्. पडि ।  
स्प्योद्. देस्. दगऽ. बडि. सेमस्. दे. जिद् ॥१०३॥

१०४. छ्गस्. दङ्. छ्गस्. ब्रल्. स्पङ्स्. नस्. द्बु. मर्. श्गस् ।  
सेम्स्. ञम्स्. पस्. न. नल्. ऽब्योर्. डस्. म. म्थोङ् ॥  
स. शिङ्. ऽथुङ्. ल. ब्सम्. दु. मेद्. पर्. ग्युर् ।  
ग्रोग्स्. मो. ऽदि. नि. सेम्स्. ल. गङ्. स्नङ्. ब ॥१०४॥

एककु खाई अवर अण्णवि पोडइ । बाहिरें गइ भत्तारह लोडइ ॥८०॥

१९. आवन्त ण दीस्सइ जन्त णहि अच्छन्त न मुण्णिअइ ।

णित्तरङ्ग परमेसुह णिक्कलङ्क घाहिज्जइ ॥८१॥

१०० [जल और दीप स्वयं प्रकाश, एकत्र पूरै]

आवइ जाइ ण च्छड्डइ तावहु । कर्हि अपुव्व-विलासिणि पावहु ।

१०१. सोहइ चित्त णिरालं दिण्णा । अउण रुअ म देखह भिण्णा ॥

काअ-वाअ-मणु जाव ण भिज्जइ । सहज-सहावे ताव ण रज्जइ ॥८३॥

१०२. घरवइ खज्जइ घरिणिएहि, एहिँ देसहि अविआर ।

[मैंने खेल किया, फूटकारों से विच्छिन्न किया ॥]

१०३. माइए पर तर्हि कि उवरइ, विसरिअ जोइणिचार ॥८४॥

घरवइ खज्जइ सहजें रज्जइ, किज्जइ राअ-विराअ ।

१०४. णिअ-पास बड्ठी चित्ते भट्ठी, जोइणि महु पडिहाअ ॥८५॥

खज्जइ पिज्जइ णवि चिन्तेज्जइ, इहले जो चित्ते पडिहाअ ।

१०२. ख. 'अउण' स्थाने 'अप्पण' ।

स-स्क्य. दाहा ४१ ।

१०५. फिय. रोल्. सेमस्. ल. म्छोन्. मेद्. ब्दग्. गिस्. ऽजिन् ।  
 स्म्यु. मडि. नॅल्. ऽव्योर्. प. नि. द्पे. दङ्., ब्रल्. व. स्ते ॥  
 स. ग्सुम्. दु. यङ्. द्वि. मेद्. मि. ग्नस्. मि. ऽव्युङ्. स्ते ।  
 मे. नि. स्प्रब. ऽदि. ल. क्येन. गियस्. ऽवर् ॥१०५॥
१०६. र्ल. ब. छु. ऽजग्. नोर्. बु. रङ्. द्बङ्. मेद् ।  
 थब्स. कियस्. ग्यैल्. स्त्रिद्. कुन. ल. द्बङ्. ब्स्म्युर्. ब ॥  
 सेमस्. जिद्. दे. जिद्. ग्नुब्. पडि. नॅल्. ऽव्योर्. मडो ।  
 ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. पडि. स्दोम्. पर्. शेस्. पर्. व्य ॥१०६॥
१०७. यि. गे. ऽप्रो. क. म. लुस्. प ।  
 यि. गे. मेद्. प. ग्चिग्. क्यङ्. मेद् ॥  
 जि. स्त्रिद्.<sup>६</sup> यि. गे. मेद्. ग्युर्. प ।  
 दे. स्त्रिद्. यि. गे. रब्. तु. शेस् ॥१०७॥
१०८. स्नग्. छ्. म्त्रोस्. पस्. क्लग्. तु. मेद् ।  
 रिग्. व्येद्. दोन्. मेद्. ऽदोन्. पस्. त्राम्स् ॥  
 दम्. प. सेमस्. दङ्. चिग्. गोस्. मि. शेस्. नि ।  
 गङ्. नस्. शर्. चिङ्. गङ्. दु. नुब् ॥१०८॥
१०९. जि. ल्तर. फिय. रोल्. दे. ब्शिन्. नङ् ।  
 76a ब्चु. ब्शि. प. यि. स गॅल्. युन्. दु. ग्नस् ॥  
 लुस्. मेद्. लुस्. ल. स्वस्. प. स्ते ।  
 दे. शेस्. दे. यिस्. ग्गोल्. वर्. ऽव्युर् ॥१०९॥
११०. स्मृब्. यिग्. ब्शि. लस्. दङ्. पो. ब्दग्. गिस्. स्तोन् ।  
 खु. व. ऽथुङ्स्. पस्. ङ. नि. ब्जोद्. पर्. ग्युर् ॥  
 गङ्. गिस्. यि. गे. ग्चिग्. शेस्. प. ।  
 दे. यिस्. मिङ्. नि. मि. शेस्. सो ॥११०॥
१११. क्येन्. ब्रल्. ग्सुम्. नि. यि. गे. ग्चिग् ।  
 सग्. मेद्. ग्सुम्. गिय. द्बुस्. न. ल्ह ॥

१०५. मणु वाहिरे दुल्लकवे हले, विमग्गि जोइणि-माअ ॥८६॥

त्रिभुवने निर्मल अप्रतिष्ठि अभूत, आग तण हेतु जलै ॥।

१०६. चंद्र जले परि नहीं स्ववश मणि, उपाय राज्य के मव वगीभूत ।

सो चित्तसिद्धि जोइणि, महज सम्वरु जाण ॥८७॥

१०७. अक्खर बाढा सअल जगु, णाहिं णिरक्खर कोइ ।

ताव से अक्खर घोलिआ, जाव णिरक्खर होइ ॥८८॥

१०८. पत्त मुसारिउ मसि मिलिउ, होवि लिहे ना खीणु ।

जाणिउ तें विस परमपउ, कहि(अइ कहि) लीएणु (लीणु) ॥४१।

१०९. जिम बाहिर तिम अट्ठभन्तरु । चउदह भुवणें टिअउ णिरन्तरु ॥

असरिर(कोवि)सरीरहि लुक्को । जो ताहि जाणइ सो तहि मुक्को ॥८९॥

११०. सिद्धिरत्थु मइ पढमे पढिअउ । मण्ड पिवन्तें विसरअ ए मइउ ॥

अक्खरमेक्क एत्थ मइ जाणिउ । ताहर णाम जाणमि ए सइउ ॥९०॥

१११. प्रत्ययरहित तीन एक अक्षर, तीन अनास्रव मध्ये देव ।



गङ्ग. शिग्. ग्सुम्. पो. सग्. प. नि ।  
गदोल्. ब. रिग्. व्येद्. दे. ब्शिन्. नो ॥१११॥

## (३) सहज महासुख

११२. म. लुस्. रङ्ग. ब्शिन्. मि. शेस्. पस् ।  
कुन. दु. रु. यि. स्कव्स्. सु. ब्दे छेन्. स्पुब. प. नि ॥  
जि. ल्तर. सगोम्. पस्. स्मिग्. र्ग्युडि. छु. ङ्गोस्. ब्शिन् ।  
स्कोम्. नस्. ऽछि. यङ्ग. नम्. म्खडि. छु. ङ्गोद्. दम् ॥११२॥
११३. दो. जे. पद्म. ग्जिस्. किय. बर्. ग्न्स्. प ।  
ब्दे. व. गङ्ग. गिस्. नम्. पर्. रोल्. प. यिन् ॥  
चि. स्तो. दे. व्देन्. तुस्. प. मेद्. पस्. न ।  
स. ग्सुम्. रे. व. गङ्ग. गिस्. जर्गोस्. पर्. ज्युर् ॥११३॥
११४. यङ्ग. न. थव्स्. किय. ब्दे. व. स्कद्. चिग्. म<sup>३</sup> ।  
यङ्ग. न. दे. जिद्. ग्जिस्. मु. ज्युर्. व. स्ते ॥  
ब्ल. मडि. त्रिन्. गियस्. स्लर्. यङ्ग. नि ।  
बर्ग्य. ल. जाड. यिस्. शेस्. पर्. ज्युर् ॥११४॥
११५. प्रोग्स्. दग्. सब्. प. दङ्ग. नि. र्ग्य. छे. ब ।  
गशन्. मेद्. ब्दग्. जिद्. म. यिन्. नो ॥  
ल्हन्. चिग्. स्वयेस्. द्गड. ब्शि. पडि. दुस् ।  
ग्जुग्. म. जाम्स्. सु. <sup>४</sup> म्योङ्ग. वर्. शेस् ॥११५॥
११६. मुन्. नग्. छेन्. पोर्. सल्. ब. नोर्. बु. नि ।  
जि. ल्तर. ऽछर्. बर्. व्येद्. प. ब्शिन् ॥  
म्छोग्. तु. ब्दे. छेन्. स्कद्. चिग्. ग्चिग्. ल. नि ।  
बसम्. पडि. स्दिग्. प. म. लुस्. फन्. पर्. व्येद्. पडो ॥११६॥
११७. स्दुग्. ब्स्डल्. स्नङ्. व्येद्. तुब्. प. न. ।  
स्कर्. मडि. ब्दग्. पो. <sup>५</sup> ग्गड. दङ्ग. म्जाम्. दु. शर् ॥  
ऽदि. ल्तर. ग्न्स्. पस्. स्पुल्. बर्. स्पुल् ।  
दे. नि. द्कियल्. ऽखोर्. ऽखोर्. लो. दम्. पडो ॥११७॥

जो तीन अनास्रव; चंडालकुल क्रिया तिमि ॥१

(३) सहज महासुख--

११२. रुअणे सअलवि जोहि णउ गाहइ । कुन्दुर-खणहि महासुह साहइ ॥

जिम तिसिओ मिस-तिसिणें थावइ। मरइ सो सोसहिणभजलु कहिँ पावइ।६१

कन्ध-भूअ-आअत्तण-इन्दी-विमअ-विआरु अप्प ह्व ।

ण उ-णउ दोहाच्छन्दे कहवि ण किम्मि गोप्प ॥६२॥

पण्डिअ-लोअहु खमहु महु, एत्थु ण किअइ विअप्पु ।

जो गुरु-वअणें मइ सुअउ, तहि कि कहमि मुगोप्पु ॥६३॥

११३. कमल-कुलिस वेवि मज्झ ठिउ, जो सो सुरअ विलास ।

को तं रमइ णह तिहुअणें, कस्स ण पूरइ आस ॥६४॥

११४. खण उवाअ-सुह अहवा, अहवा वेण्णिवि सोवि ।

गुरुपाअ-पसाएँ-पुण्ण जइ, विरला जाणइ कोवि ॥६५॥

११५. गम्भीरइ उआहरणें, णउ पर णउ अप्पाण ।

सहजाणन्दे चउट्ठ-क्खण, णिअ-सम्बेअण जाण ॥६६॥

११६. घोराण्धारें चन्दमणि, जिम उज्जोअ करेइ ।

परमहासुह एककु खणे, दुरिआसेस हरेइ ॥६७॥

११७. दुक्ख-दिवाअर अत्थ गउ, उवइ तारावइ सुक्क ।

ठिअ-णिम्माणें णिम्मिअउ, तेगवि मण्डल-चक्क ॥६८॥

---

११२ और ११३ क बीच क दो दोहों का भोटानुवाद नहीं है ।

११८. क्ये. हो. मोंडस्. पडि. सेम्स्. कियस्. सेम्स्. ल. बर्तगस्. न. नि ।  
 ल्त. ब. डन्. प. थम्स्. चद्. लस्. नि. रङ्. ग्रोल्. ऽय्युर् ॥  
 म्छोग्. तु. ब्दे. ब. छेन्. पोडि. द्वड्. गिस्. नि ।  
 दे<sup>१</sup>. ल. ग्न्स्. न. द्ङोस्. ग्नु. दम्. पडो ॥११८॥
११९. सेम्स्. किय. ग्लङ्. पो. यन्. दु. छग् ।  
 दे. नि. ब्दग्. जिद्. द्विस्. ल. ग्चिग् ॥  
 नम्. म्खडि. रि. बो. छु. ऽथुङ्. दङ् ।  
 दे. यि. ऽग्रम्. दु. शोग्. चिग्. रङ्. द्गऽ. बर् ॥११९॥
१२०. युल्. गिय. ग्लङ्. पोडि. द्वङ्. पो. लग्. पस्. ब्लङ्स. नस्. सु ।  
 76b जि. ल्तर. ग्सोद्. पर्. रङ्. द्वङ्. स्नङ्. बर्. ऽय्युर् ।  
 नल्. ऽब्योर्. प. नि. ग्लङ्. पो. स्क्योङ्. ब. ब्शिन् ॥  
 दे. जिद्. नस्. नि. ल्दोग्. पर्. ऽय्युर्. प. यिन् ॥१२०॥
१२१. गङ्. शिग्. ऽखोर्. ब. दे. नि. म्य. डन्. ऽदस्. पर्. डेस् ।  
 द्व्ये. ब. ग्शन्. दु. सेम्स्. प. म. यिन्. ते ।  
 रङ्. ब्शिन्. ग्चिग्. गिस्. द्व्ये. ब. नम्. पर्. स्पङ्स् ।  
 द्वि. म. मेद्. प. ड्. यिस्. रब्. तु. तोंगस् ॥१२१॥
१२२. यिद्. कियस्. दे. जिद्. द्मिगस्. दङ्. ब्चस् ।  
 द्मिगस्. प. स्तोङ्. प. जिद्. यिन्. ल ॥  
 ग्जिस्. ल. स्क्योन्. नि. योद्. प. स्ते ।  
 नल्. ऽब्योर्. गङ्. गिस्. स्गोम्. प. मिन् ॥१२२॥
१२३. स्गोम्. प. द्मिगस्. ब्चस्. द्मिगस्. मेद्. दे ।  
 स्गोम्. दङ्. मि. स्गोम्. थ. सज्द. मेद् ॥  
 ब्दे. बडि. नम्. पडि. रङ्. ब्शिन्. नो ।  
 रब्.<sup>२</sup> तु. ब्ल. मेद्. रङ्. ऽब्युङ्. ब ॥  
 ब्ल. मडि. दुस्. थब्स्. ब्स्तेन्. पस्. शेस् ॥१२३॥
१२४. नग्स्. सु. म. ऽग्रो. खियम्. दु. म. ऽदुग्. पर् ॥  
 गङ्. थङ्. दे. ह. यिद्. मियस्. योङ्स्. शेस्. नस् ।

११८. चित्तहिं चित्त णिहालुबढ, सअल विमुच्च कुदिट्ठि ।

परममहासुहे सोज्झ पर, तसु आअत्ता सिद्धि ॥६६॥

११९. मुक्कउ चित्तगएन्द कर, एत्थ विअण्ण णु पुच्छ ।

गअणगिरी-णइ-जल पिअउ, तहि तड वसउ स-इच्छ ॥१००॥

१२०. विसअ-गएन्दे करे गहिअ, जिम मारइ पडिहाइ ।

जोई कवडिआर जिम, तिम हो णिस्सरि जाइ ॥१०१॥

१२१. जो भव सो णिव्वाण खलु, स उ ण मण्णहु अण्ण ।

एक्क सहावे विरहिअ, णिम्मल मइ पडिवण्ण ॥१०२॥

१२२. [मन सोई सालंबन, आलंबन है शून्यता ॥

दोनों में ही दोष है, जिससे योगी का ध्यान नहीं ॥

१२३. ध्यान सालंब निरालंब, ध्यान-अध्यान व्यवहार नहीं ॥

सुखाकार स्वभाव, सु अनुत्तर स्वयं होता ॥]

१२४. घरहि म थक्कु म जाहि वणे, जहि तहि मण परिआन ॥

- म. लुस्. ग्युन्. दु. व्यङ्. छुब्. तंग्. पर्. ग्न्स् ॥  
 ऽखोर्. व. गङ्. यिन्. म्य.ङ्न्.ऽदस्. प. गङ् ॥१२४॥
१२५. यिद्. क्यि. द्वि. म. दग्. ल.<sup>३</sup> ल्हन्. त्रिग्. स्वयेस्. प. स्ते ॥  
 दे. छे. मि. म्युन. फ्योग्स्. क्यिस्. ऽजुग्. प. मेद् ।  
 जि. ल्त्. र्. ग्यं. म्छो. दङ्. वर्. ग्युर. प. ल. ॥  
 छु. बुर. छु. ञिद्. यिन्. ते. दे. ञिद्. थिम्. पर्. ऽग्युर ॥१२५॥
१२६. नग्स्. दङ्. खियम्. न. व्यङ्. छुब्. ग्न्स्.प. मेद् ॥  
 दे. ल्त्. र्. व्येद्. प. योङ्स्.सु.शेस्. नस्. सु ।  
 द्वि.म. मेद्. पडि. सेम्स्. क्यि., रङ्. ब्शिन्. ग्यिस् ॥  
 म. लुस्. मि. तोग्. प. रु. ब्तेन्. पर्. ऽोस् ॥१२६॥

## (४) परमपद--

१२७. दे. नि. ब्दग्. यिन्. ग्शन्. यङ्. दे. ब्शिन्. नो ।  
 गङ्. ब्स्वोम्. योङ्स्. सु. ब्स्वोम्. प. गङ् ॥  
 द्ब्ये. व. दे. ञिद्. ऽछिङ्. दङ्. व्रल्. वर्. व्य ।  
 ऽोन्. क्यङ्. ब्दग्. ञिद्. नंम्. पर्. ग्रील्. बऽो ॥१२७॥
१२८. ब्दग्. दङ्. ग्शन्. दु. ऽखुल्. प. म. व्येद्. दङ् ॥  
 म. लुस्. ग्युन्. दु. ग्न्स्. पडि. सङ्स्. ग्यंस्. ते ॥  
 सेम्स्. नि. डो. बो. ञिद्. क्यिस्. दग्. प. न. ।  
 दे. ञिद्. द्वि. मेद्. म्छोग्. गि. गो ऽफङ् डो ॥१२८॥
१२९. ग्ञिस्. मेद्. सेम्स्. क्यि. स्दोङ्. पो. दम्. प. नि ।  
 खम्स्. गमुम्. म. लुस्. कुन्. दु. ख्यब्. पर्. सोङ् ॥  
 सिञ्ङ. जेडि. मे. तोग्. ग्शन्. दु. ऽखुल्. प. म.व्ये.द्.दङ् ॥  
 मिङ्. नि. म्छोग्. तु. ग्शन्. ल. फम्. पऽो ॥१२९॥
१३०. स्तोङ्. पडि. स्दोङ्. पो. दम्. प. मे. तोग्. ग्यंस् ।  
 सिञ्ङ. जे. दम्. प. स्न. छोग्स्. दु. मर्. ल्दन् ॥  
 ल्हन्. ग्यिस्. शुब्. प. फिय्. मडि. ऽब्रस्. बु. स्ते ।  
 ब्दे. व. ऽदि. नि. ग्शन्. पडि. सेम्स् मिन्. नो ॥१३०॥

सअल गिरन्तर बोहि ठिअ, कहिं भव कहिं णिन्वाण ॥१०३॥

१२५. [सहजै चित्त निर्मल (जब), तब प्रतिपक्ष प्रवेश नहीं ॥

जिमि मागर मध्य वुद्बुद, उसी जल में होइ विलीन ॥]

१२६ गउ घरे गउ वणें बोहि ठिउ, एहु परिआणहु भेउ ।

णिम्मल-चित्त-सहावता, करहु अविकल सेउ ॥१०४॥

१२७. एहु सो अप्पा ऐहु परु, जो परिभावइ कोवि ।

तें विणु वन्धे वेट्टि किउ, अप्प विमुक्कउ तोवि ॥१०५॥

(४) परमपद

१२८. पर अप्पाण म भान्ति करु, सअल गिरन्तर वुद्ध ।

एहु से णिम्मल परमपउ, चित्त सहावें सुद्ध ॥१०६॥

१२९. अद्दअ चित्त-तरुअरह, गउ तिहुअणें वित्थार ।

करुणा फुल्ली फल धरइ, गउ परत्त ऊआर ॥१०७॥

१३०. सुण्ण-तरुवर फल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त ।

अण्णा भोअ परत्त फलु, एहु सोवख परु चित्त ॥१०८॥

१३१ स्तोङ्. पडि. स्दोङ्. पो. दम्. पडि. स्त्रिङ्. जे. मिन् ।

77a गङ्. ल. स्लर्. यङ्. चर्. ब. मे. तोग्. लो. ऽदब्. मेद् ॥

दे. ल. द्मिग्स्. पर्. व्येद्. प. गङ्. यिन्. प ।

देर्. ल्हङ्. बस्. नि. यन्. लग्. मेद्. पर्. ग्युर् ॥१३१॥

१३२. स. बोन्. ग्चिग्. ल. स्दोङ्. पो. ग्जिास् ।

ग्यु. म्छन्. दे. लस्. ऽत्रस्. बु. ग्चिग् ॥

दे. यङ्. द्ब्येर्. मेद्. गङ्. सेम्स्. प ।

दे. नि. ऽखोर्. दङ्. म्य. ङन्. ऽदस्. नंम्स्. ग्रोल् ॥१३२॥

(५) परोपकार--

१३३. गङ्. शिग्. ऽदोद्. प. चन्. गिग्य्. स्क्ये. बो. ऽोङ्स्. पडि. छे ।

दे. नि. रे. ब. मेद्. न. गल् ते. ऽप्रो. ब. नि ॥

फिय. सगोर्. बोर्. बडि. खम्. फोर्. बूलग्स्. नस्. सु ।

दे. बस्. स्थियम्. थब्. बोर्. नस्. व्स्दद्. प. रुङ् ॥१३३॥

१३४. ग्शन. ल. फन्. पडि. दोन्. नि. मि. व्येद्. प ।

ऽदोद्. प. पो. ल. स्त्रियन्. प. मि. स्तेर्. ब ॥

ऽदि. नि. ऽखोर्. बडि. ऽत्रस्. बु. गङ्. यिन्. लो ।

दे. बस्. ब्दग्. जिद्. बोर्. बर्. व्यस्. न. रुङ् ॥१३४॥

नंल्. ऽब्योर्. गिय. द्बङ्. फ्युग्. छेन्.

पो. द्पल्. सरह. छेन्.पोडि.शल्.

स्ङ. नस्. म्जद्. प. दो. ह. म्जोद्.

चेस्. व्य. ब. दे. खो. न. जिद्. नंल्.

दु. म्छोन्. प. दोन्. दम्.

पडि. यि. गो. जेगिस्. सो ॥

१३१. सुण्ण-तरुवर णिक्करुण, जहि पुणु मूल ण साह ।  
तहि आलमूल जो करइ, तसु पडिभज्जइ वाह ॥१०६॥
१३२. एक्केम्बि एक्केवि तरु तें, कारणे फल एक्क ।  
ए अभिण्णा जो मुणइ, सो भव-णिग्वाण-विमुक्क ॥११०॥  
(५) परोपकार
१३३. जो अत्थीअण ठीअऊ, सो जइ जाइ णिरास ।  
खण्डसरारवें भिक्ख वरु, च्छड्डुहु ए गिहवास ॥१११॥
१३४. परऊआर ण किअऊ, अत्थि ण दीअउ दाण ।  
एहु संसारे कवण फलु, वरु छड्डुहु अण्णाण ॥११२॥

इति महायोगीश्वर महासरह के श्रीमुख से रचित . . . दोहाकोष . . . समाप्त ।





## २. दोहाकोश चर्यागीति

( भोट, हिन्दी )

## २. दोहाकोश चर्यागीति

(भोट)

दो.ह.मज्जोद्, स्प्योद्.पडि. ग्लु

- ऽफग्स्.प. ऽजम.दपल्.ल. फयग्.ऽछ्ल्. लो ।  
व्दुद्. किय. स्तोव्स्. रव्. तु. ऽजोमस्. प. ल. फयग्.ऽछ्ल्. लो ॥
१. जि. ल्तर. लुङ्. मिस्. बर्ग्यव्.पस्. मि. ग्यो. वडि ।  
छु.ल. ग्यो.वस् ब.लव्स् नमस्.सु. ऽग्युर ॥
- 27a दे.ल्त. ग्येल्.पोस्. म्दऽ.व्स्मुन् स्तङ्.व. यङ् ।  
ग्विग्. जिद्. न. यङ्. नम्.प. स्त.छोग्स्. व्येद् ॥
२. जि.ल्तर. मोंड्स्.पस्. व्स्लोग्.नस्. व्स्त्.प.यिस् ।  
मर्.मे. ग्विग्. जिद्. ग्विस्.सु. स्तङ्.व. ल्तर ॥  
दे. ल. व्त्त.व्य. ल्त.व्येद्. ग्विस्.मेद्.ल ।  
क्ये. म. ब्लो. नि. ग्विस्.किय. १ द्ङोस्.पोर्. स्तङ् ॥
३. खियम्.दु. मर्.मे. मङ्.पो. स्वर.ग्युर. क्यङ् ।  
मिग्.मेद्.प.ल. मुन्.पर्. ग्नस्.प. ल्तर ॥  
ल्हन्.चिग्. स्वयेस्.पस्. थम्स् चद्. ख्यव् व्यस्. क्यङ् ।  
ञो. यङ्. मोंड्स्.प.दग्. ल. शिन्.दु. रिङ् ॥
४. छु.वो. स्त.छोग्स्. यङ् ग्यं म्छो. ग्विग्. जिद्. दङ् ।  
वजुन्.प. दु.म.दग्. क्यङ् १ व्देन्.प.ग्विग्.गिस्.ऽजोमस् ॥  
जि.म. ग्विग्. दङ्. स्तङ्.वर्. ग्युर.प.यिस् ।  
मुन्.प. दु.म.दग्. क्यङ् ऽजोमस्.पर. व्येद् ॥

## २. दोहाकोश चर्यांगीति

(हिन्दी)

नमो मंजुश्रियै । नमो मारबलविध्वंसिने ।

१. जिमि पवन-घाते अचल जल, चलै तरंगित होइ ।  
तिमि राजहि सरह प्रतिभासै, तऊ एक नाना विध करै ॥
  
२. जिमि मूढ विलोम-नेत्र को, एकै दीप दो भासै ।  
तँह दृश्य दर्शन दो नहीं, (तऊ) बुद्धि में दो वस्तु दीखै ॥
  
३. घरे बहुत दीपक जलै, तऊ जिमि नयनहीन को अंधार रहै ।  
सहज सर्वव्याप्त समीप है, तऊ मूढों को दूर (है) ॥
  
४. नदी नाना तउ समुद्र एक (है), नाना मिथ्या को सत्य एक विध्वंसै ।  
सूर्य एक प्रकाशै (तो), अंधार नाना भी ध्वस्त होइ ॥

५. जि.ल्लर्. छु.ऽजिन्.गियस्. नि. गं.य. म्छो.लस् ।  
 छु.ब्लङ्गस्.नस्. नि. स. गशि. गङ्. व्यस्. क्यङ् ॥  
 दे. नि. म. ञ्.म्स्. नम्.म्खऽ.दग्. दङ्. म्जम् ।  
 ऽफेन्.व.मेद्. चिङ्. ऽग्रिब्.प.दग्. क्यङ्.मेद् ॥
६. गर्यल् बडि. फुन्.सुम्.छोग्स्.पस्. योङ्गस्. गङ् बडि ।  
 लहन्.चिग्.स्क्येस्. प. ग्चिग्. मि. रङ्.बृशिन्. जिद् ॥  
 दे. लस्.ऽग्रो.ब. स्क्ये. शिङ्.ऽगग्.प.स्ते ।  
 दे.ल. द्ङोस्. दङ्. द्ङोस्.पो.मेद्. पऽङ् मेद् ॥
७. दम्.पडि. ब्दे.ब. स्पङ्गस्.नस्. ग्शन्.दु. ऽग्रो ।  
 क्यन्.लस्. स्क्येस्.पडि. ब्दे.ल. रे.बर्. व्येद् ॥  
 रङ्.गि. खर्.बृग्. स्त्रङ्.चि. ज्यो.ब. नि ।  
 ऽथुङ्.बर्. मि.व्येद्. शिन्.दु. रिङ्.बर्. ऽग्रुर् ॥
८. व्योल्.सोङ्. दग्. स्टुग्.बस्ङल्. मि.व्यद्.ल ।  
 म्खस्.प.दग्.गिस्. दे.ल. स्टुग्.बस्ङल्. व्येद् ॥  
 चिग्.शोम्. नम्.म्खडि. बृदुद्.चि. ऽथुङ्.बर्. व्येद्<sup>५</sup> ।  
 ग्शन्. नि. युल्.नम्स्. दग्. लऽङ्. नम्.पर्. छग्.बृ. ॥
९. बृशद्.बडि. सिन्.बु. द्वि.ल. छग्स्.प. नि ।  
 चन्दन्.दग्.ल. द्विङ्.न.दग्.तु. सेम्स् ॥  
 जि.ल्लर्. म्य.ङन्.ऽदस्.प. स्पङ्गस्.नस्. नि. ।  
 सिद्.पडि. ऽवृङ्.ग्नस्. म्थुग्.पोस्. छग्स्. पर. व्येद् ।
१०. ब.लङ्. कङ्. जेस्. छु.यिस्. गङ्.व्यस्<sup>६</sup>.क्यङ् ।  
 जि.ल्लर्. दे. बङ्. स्कम्.पर्.ऽग्रुर्.ब. बृशिन् ॥  
 फुन्.छोग्स्. म. मिन्. फुन्.छोग्स्.बर्तन्.पडि. सेम्स्. ।  
 यङ्.न. फुन्.सुम्.छोग्स्.ष. स्कम्.पर्.ऽग्रुर् ॥
११. जि.ल्लर्. गर्य. म्छो. ब.छ.चन्.गिय. छु. ।  
 छु.ऽजिन्. ख.यिस्. ब्लङ्गस्.दङ्.र. बर्. ऽग्रुर् ॥

५. ज़िमि जलधर समुद्र से पानी ले भूमि भरै ।  
सो अनष्ट शुद्ध आकाश सम, नहीं बढ़ै औ ना घटै ॥
६. जिन-संपत्ति से परिपूर्ण, सहज एक स्वभावता ।  
तेहि से जग उत्पन्न हो निरुद्ध होइ ॥
७. परम सत्य छाडि अन्यत्र जाइ, प्रत्यय से उत्पन्न सुख की आशा करै ।  
अपने डंडे से मधु हिंडोलै, (पर उसे) न पिये अतिचिर हुआ ॥
८. पशु (जिसमें) दुःख न करै, पंडित उसमें दुःख करै ।  
एक हो आकाश का अमृत पान करै : अन्य शुद्ध विषयों में भी रागै ॥
९. गूथ-कीट गंधे रागी, शुद्ध चन्दन में दुर्गन्ध मानै ।  
जिमि निर्वाण छाडि, मन्द (जन) भव के उत्पाद-स्थान में रागै ॥ ॥
१०. ज़िमि जलपूर्ण गोष्पद सोइ सुख जावै ।  
(तिमि) ना संपत्ति दृढ़ चित्त, भी संपत्ति सुख जाये ॥
११. ज़िमि समुद्र का क्षार-जल, जलधर के मुख में जा मधुर हो जाये ।

- 27b बर्तन्.पडि. सेम्स्. १ कियस्. ग्शन्.गिय. दोन्.व्येद्.प ।  
 युल्.गिय. दुग्. क्यङ्. ब्दुद्.चिर्. ऽग्युर्. प. यिन् ॥
१२. बर्जौद्.दु. मेद्.न. स्तुग्.ब्स्ङल्. म. यिन्. ते ।  
 ब्स्गोम्.दु. मेद्. न. दे. जिद्. ब्दे.ब. यिन् ॥  
 जि.ल्लर्. ऽनुग्.गि. स्प्र.यिस् स्षङ्स्. न. यङ्. ।  
 छर्.प. बब्.पस्. लो.तोग्स्. स्मिन्.पर्. व्येद् ॥
१३. दङ्. पो. थ. म. दे. ब्शिन् ग्शन् न. मेद् ।  
 थोग्.म. थ.म. बर्.दु. ग्न्स्.प. मेद् ॥  
 कुन्.तु. तौग्.पस्. मोंङ्स्.पडि. यिद्.चन्. ल ।  
 स्तोङ्.प. दङ्. नि. स्त्रिङ्.र्जे. बर्जौद्.पस्. स ॥
१४. जि.ल्लर्. मे. तोग्. नङ्. ग्न्स्. स्त्रङ्.चि. नि ।  
 बुङ्. बु. जिद्. कियस्. शे.स्. पर्. ऽग्युर्. प. यिन् ॥  
 सिद्. दङ्. म्य. डन्. ऽदस्.प. मि. ऽदोर्. रो. २ ।  
 मोंङ्.प. दग्. गिस्. जि.ल्लर्. योङ्.स्.सु. शेस्. ॥
१५. जि. ल्लर्. मे. लोङ्. डोस्. किय. ब्शिन्. गिय. ग्सुग्स् ।  
 मोंङ्.प. मि. शेस्.प. यिस्. बल्लत्स्.प. ल्लर् ॥  
 दे. ल्लर्. ब्देन. प. स्षङ्.स्.पडि. सेम्स्. ऽदि. नि ।  
 मि. ब्देन्.प.ल. मङ्.दु. बर्तेन्. पर्. व्येद् ॥
१६. मे.तोग्. द्वि. नि. गसुग्स्. सु. मेद्. न. यङ् ३ ।  
 म्ङोन्.सुम्. कुन्.दु. ख्यव्.पर्. व्येद्.प. ल्लर्. ॥  
 दे. ब्शिन्. गसुग्स्.सु. मेद्.पडि. रङ्. ब्शिन्-गियस् ।  
 द्कियल्.ऽखोर्. ऽखोर्.लो. दग्. क्यङ्. शेस्.पर्. गियस् ॥
१७. लुङ्. गिस्.छु.ल. शुग्स्. शिङ्. द्क्नुग्स्.प.यिस् ।  
 ऽजम्. पडि. छु. यङ्. दौ. यि. ग्सुग्स्.ल्लर्.ऽओ ॥  
 तौग्. पस् ४ द्क्नुग्स्. पस्. मोंङ्.प. ग्सुग्स्.मेद्.प ।  
 शिन्.तु स. शिङ्. म्ख्रेग्. प जिद्. दु. ऽग्युर् ॥

स्थिर चित्त मे परमार्थ करे, (तो) त्रिषय-विष भी असृत हो जाये ॥

१२. अवाच्य में दुःख न है, भावना रहै (जो) सोई मुख है ॥  
जिमि अशनि-शब्द करै, पर-वर्षा मे फमल पक जाये ॥
१३. प्रथम अन्तिम तथा अन्य नहीं, आदि अन्त मध्य में रहै नहीं ।  
सर्वकल्पना से मूढ़ हृदय को, शून्य और करुणा कथन की भूमि (है) ॥
१४. जिमि फूल बीच स्थित मधु को, भ्रमर ही जानै ।  
भव-निर्माण न छाडि, मूढ़ जिमि परिजानै ॥
१५. जिमि दर्पण-नलके मुख-बिंब को, मूढ़ अज्ञान का देखना ।  
जिमि सत्य त्याग यह चित्त, असत्य में वहुत स्थिर होइ ॥
१६. पुष्प-गंध अ-काय भी, यथा प्रत्यक्ष सर्वस्थापी ।  
तथा स्वभावनः अकाय, मंडल-चक्र को भी जानिये ।
१७. पवन पानी में बल मे हिलाया, कोमल जल भी पाषाण-काय जिमि चलै ।  
कल्पना-चालित मूढ़ काय त्रिन, अति कठोर ही होइ ॥



१८. सेमस्. गङ्. द्वि.म.मेद्.पडि. रङ्.व्शिन्. ल ।  
 स्त्रिद्. दङ्. म्यङ्.ऽदस्. ऽदम्. ग्यिस्. म.गोस्. सो ॥  
 ऽदम्.दु. ब्चुग्.न. म्छोग्.गि. रिन्.पो.छे ।  
 दे.यि. ऽोद्. वयङ्. ग्सल्.व. म. यिन्. नो<sup>५</sup> ॥
१९. ग्ति.मुग्. ग्सल्. वस्. ये.शेस्. मि.गुपल्. ते ।  
 ग्ति.मुग्. ग्सल्.वस्. स्टुग्.व्स्डल्. ग्सल्.व. यिन् ॥  
 जि.लतर. स. बोन्.लस्. नि. म्यु.गु. ऽव्युङ्. ।  
 म्यु.गुडि. र्यु.लस्. यल्. ग. ऽव्युङ्.वडो ॥
२०. ग्विग्. दङ्. दु.म. सेमस्. ल. द्ध्यद्.प.यिस् ।  
 ग्सल्.व. स्पङ्स्. नस्. स्त्रिद्.प.दग्. तु<sup>६</sup> ऽप्रो ॥  
 म्योङ्.व्शिन्.दु. नि. दोङ्. दु. ऽप्रो.व.ल ।  
 दे.लस्. स्त्रिङ्.ज्. व. नि. चि.शिग्. योद् ॥
२१. ख.स्व्योर्. ब्दे.ल. योङ्स्. सु. छग्स्.नस्. सु ।  
 ऽदि. ङि.द्. दोन्.दम्. यिन्. शे.स्. मौङ्स्. प. स्त्र ॥  
 गङ्. शिग्. खियम्.नस्. व्युङ्.नस्. स्गो. वृङ्. दु ।  
 का. म. रू. पडि. गूतम्. नि. ऽद्वि. वर. व्येद् ॥
- 28a२२. लुङ्. गि. र्यु. लस्<sup>७</sup>. स्तोङ्.पडि. खियम्. दु. नि ।  
 नम्.प. दु.मडि. छुल्. ग्यिस्. ब्चोस्.म.वस् ॥  
 नम्. म्खड. लस्. वव्. ज्ञोस्.प. दङ्. ब्चस्. पडि ।  
 ग्दुङ्.वस्. बर्ग्यल्.वर्.ग्युर. पडि. नल्.ऽव्योर्.प ॥
२३. जि.लतर. ब्रम्. से. मर्. दङ्. ऽत्रस्.क्यिस्. नि ।  
 बर्.वडि. मे.ल. स्त्रियन्.स्रेग्. व्येद्.प. नि ॥  
 नम्.मखडि. ब्चुद्.क्यि. जस्.क्यिस्. व्स्वयेद्.प. स्ते ।  
 ऽदि.नि. दे.ङि.द्. ग्नोल्. प. शे.स्. सेर् ॥
२४. ख.दोग्. द्ब्ये.वस्. ऽछिद्. वु. म. गंद्. सेर् ।  
 मौङ्ग्.पस्. रिन्.छेर्. बर्तग्.प. म. शे.पस् ।

१८. असमल स्वभाव चित्त में, भव-निर्माण पंक न चाहिये ।  
पंक में रखे वररत्न की भी प्रभा प्रकाशित न होइ ॥
१९. अंधार प्रकटै, (तो) ज्ञान न प्रकटै ।  
अंधार प्रकटन से दुःख प्रकटित होइ ।
२०. एक-अनेक चित्त में चर्या से, प्र ताश छाडि भव में जावै ।  
दर्शन जिमि पास जाये, तो कारुणिक कैसा ॥
२१. आकाश योग (है) सुख में परिराग से, यही परमार्थ (है) यह मूढ भनै ।  
जो घरसे जाइ द्वारे, कारुण्य की कथा पूछै ॥
२२. पवन कारण शून्य घरे, अनेक विध वृत्ति क्रिया ।  
आकाश से गिर सदोष, दाह-जयी योगी ॥
२३. जिमि ब्राह्मण घृत-तंडुल, ज्वलित अग्नि में होम करै ।  
आकाश रस द्रव्य से उत्पन्न यह, सोई मुक्ति कहै ॥
२४. वर्ण-भेद से बंधन न जीर्ण कहै, मूढ रत्न-परीक्षा न जानै ।

- दे. नि. र.गन्. ग्सेर्. गिय. ब्लो.यिस्. लेन् ।  
 ञ.म्स्. म्योङ्. ख्येर्. नस्. दोन्.दम्. स्पुब्.पर. व्येद्<sup>३</sup>
२५. मि.लम्. ब्दे.ल. जेस्. सु. छग्स्. पर. व्येद् ।  
 फुङ्.पो. मि.र्तंग्. ब्दे. ब. तंग्. चेस्. सेर्. ॥  
 ए. वं. यि. गेर्. रङ्.गिस्. गो. वर्. व्येद् ।  
 स्फुद्.चिग्. द्ब्ये. बस्. फ्युग्. ग्यं. ब्शि. ब्कोद्. चिङ्
२६. ञ.म्स्.सु. म्योङ्.बस्. लहन्.चिग्. स्वयेस्. प. सेर् ।  
 गुसुग्स्. ब्जान्. शेस्. प. मे. लोङ्. ल्त. ब. ब्शिन् ॥  
 जि. ल्तर. ४ म. तोंगस्. स्मिग्. ग्युं.छि. ल. नि ।  
 ङ्खुल्.पडि. द्बङ्. गिस्. रि. दग्स्. ग्युं. पर. व्येद् ॥
२७. मोंङ्.प. स्कोम्. प. मि. दोम्स्. ऽछिङ्. बर्. ऽग्युर् ।  
 गङ्.शिग्. दोन्.दम्. सेर्. शिङ्. ब्दे. ब. लेन् ॥  
 कुन्.जोंब्. ब्देन्. प. द्रन्.प. मेद्.प. स्ते ।  
 सेम्स्. दङ्. सेम्स्. नि. मेद् पर. ग्युर्.पडो ॥
२८. दे. जिद्. ५ योङ्.सु. ग्युर्. प. म्छोर्. गि. म्छोर् ॥  
 म्छोर्.गि. दम्. प. प्रोग्स्. दग्. शेस्. पर. गियस् ॥  
 सेम्स्. नि. द्रन्. मेद्. तिङ्.ङे. ऽजिन्. दु. स्वयोर् ।  
 ऽोन्. मोंङ्.स. योङ्.सु. दग् षङ्.दे जिद्. दो ॥
२९. जि. ल्तर. ऽद्.स्. स्वयेस्. ऽदम् गियस्. मि. छुग्स्-बिन् ।  
 सिद्. ऽव्युङ्. ञोस्. पस्. ग्यंल्. छोस्. मि. गोस्. सो ६ ॥  
 दे. यङ्. थम्स्. चद्. स्यु. मर्.ङेस्. पर. ब्लत. व्य. स्ते ।  
 ऽजिग्. तंन्. ऽदस्. प. स्कद्. चिग्. लेन्. दङ्. ब्तङ्. स्वोम्स्. व्येद् ॥
३०. बर्तन्. पडि. ब्लो. चन्. दे. दग्. ग्ति. मुग्. ऽछिङ्. बर्. ऽग्युर् ।  
 रङ्. ब्युङ्. वसम्. गियस्. मि. ख्यब्. रङ्. ब्शिन्. ग्नस्. प. यिन् ॥  
 स्नङ्. ऽदि. ग्सल्. बर्. दङ्. पो. जिद्. नस्. म. स्वयेस्. ते ।  
 गमु. ग्स्. चन्. म. यिन्. ग्सु. ग्स. किय. रङ्. ब्शिन्. नम्. पर. स्पङ् ॥

- वह पीतल सोने के खयाल से, अनुभव ले परमार्थ साधै ॥
२५. स्वप्न-सुख में अनुराग करै, स्कन्ध अनित्य सुख नित्य कहै ।  
एवं अक्षर स्वयं जानै, क्षण भेद से मुद्रा रचै ॥
२६. अनुभव से सहज कहै, रूप-प्राप्ति दर्पण-दर्शन जिमि ।  
जिमि बे समझे मायाजल में, भ्रमवश मृग धावै ॥
२७. मूढ़ प्यासा अतृप्त फँसै, जो परमार्थ कह सुख लेइ ।  
संवृति-सत्य स्मृति नहीं, और चित्त न चित्त होइ ॥
२८. सोई परिणाम उत्तमोत्तम, परमोत्तम सखे, जान ।  
चित्त स्मृतिरहित समाधि में जुडै, अंध-मूढ़ परिशुद्ध सोइ ॥
२९. जिमि पंकज न पंके, तिमि भव-दोष न जिनधर्म लिपै ।  
सो भी सब माया अवश्य जानिये, लोकोत्तर क्षण दानादान समापत्ति करे ॥
३०. सो स्थिरमति अंधार नाशै, अव्याप्त स्वयंभू चित्त स्वभाव में रहै ।  
यह प्रभास स्पष्ट पहिले से ही न उपजै, अरूपी रूप-स्वभाव परिहरै ॥

३१. दे. ञिद्. ग्युन्. दु. ग्नस्. शिङ्. ब्सम्. ग्तन्. ग्चिग्. पु. व्येद् ।  
 यिद्. ल. मि. व्येद्. द्वि. मेद्. ब्सम्. ग्तन्. सेम्स् म. यिन् ॥  
 ब्लो. दङ्. सेम्स्. किय. स्नङ्. व. दे. ब्दग्. ञिद् ।  
 ऽजिग्. तौन्. गङ्. दग्. ग्शन्. दु. स्नङ्. ब्दग्. ञिद् ॥
३२. स्न. छोग्स्. म. लुस्. म्योङ्. व्येद्. दे. ब्दग्. ञिद् ।  
 छग्स्. दङ्. ग्ति. मुग्. व्यङ्. छब्. सेम्स्. क्यङ्. दे. ब्दग्. ञिद् ॥  
 ग्ति. मुग्. मन्. वर्. स्प्रोन्. मे. ऽवर् ।  
 जि. स्त्रिद्. ब्लो. यि. द्ब्ये. वस्. क्ये ॥
३३. दे. स्त्रिद्. सेम्स्. किय. द्वि. म. स्पङ्स् ।  
 म. शेन्. रङ्. ब्शिन्. गङ्. शिग्. ब्सम् ॥  
 द्गग्. प. मेद्. चिङ्. स्प्रुङ्. व. मेद् ।  
 ऽजिन्. प. मेद्. दे. ब्सम्. गि. ख्यब् ॥
३४. ब्लो. यि. द्ब्ये. वस्. मोंङ्स. नर्मस्. ऽछिङ् ।  
 द्ब्येर्. मेद्. ल्हन्. चिग्. स्वयेस्. नर्म. दग् ॥  
 ग्चिग्. दङ्. दु. मस्. नर्म. ब्र्तग्. ग्चिग्. ञिद्. मिन् ।  
 शेस्. प. चम्. ग्यिस्. ऽप्रो. व. नर्म. पर्. ग्रौल् ॥
३५. ग्सल. व. गङ्. शिग्. शेस्. प. <sup>३</sup> ब्सगोम्. प. ब्स्तन् ।  
 मि. ग्योडि. सेम्स्. नि. ब्दग्. ञिद्. दे. रु ग्सुङ् ॥  
 द्गऽ. व. ग्यस्. पडि. युल्. थोब्. प ।  
 म्थोङ्. वडि. सेम्स्. नि. नर्म. पर्. ग्यस् ॥
३६. युल्. ल. ब्रोस्. क्यङ्. थ. दद्. मेद् ।  
 द्गऽ. व. ब्दे. वडि. म्यु. गु. दङ् ॥  
 म्छोग्. गि. ऽदब्. म. स्वयेद्. प. स्ते ।  
 जि. स्त्रिद्. व्योस्. प. ब्चुङ्. मि. फ्रोग् ॥
३७. स्प्रोस्. मेद्. ब्दे. वडि. ऽव्रस्. वु. ञिद् ।  
 गङ्. गिस्. गङ्. दु. गङ्. ल. दे. दग्. मेद् ॥

३१. उसी स्रोत में रहि ध्यान एक (मात्र) करै,  
अमनसिकार निर्मल ध्यान चित्त न है  
बुद्धि, चित्त और चित्ताभास यह सब लोफ  
जो अन्यत्र आभासै सो अपने ही ॥
३२. सकल नाना दृश्य दर्शन सो अपने ही, राग, अंधार, बोधिचित्त भी अपने ही ।  
तिमिरनाशक जलता दीप जिमि बुद्धि का भेद रे ॥
३३. तिमि चित्त का मल त्यागै, अनासक्त स्वभाव जो समझै ।  
अनिवारित न धारे सो समुझि न व्यापै ॥
३४. बुद्धि-भेद से मूढ बँधै, अभेद (है) सहज विशुद्ध ।  
एक और नाना विकल्प एक ही नहीं, ज्ञान मात्र से जग विमुक्त ॥
३५. स्पष्ट जो ज्ञान भावना कहै, अचल चित्त अपने ही वहाँ कहै ।  
विकसित आनंद का विषय पाइ, दर्शन का चित्त विकसै ॥
३६. विषय में सक्ति भी भेद नहीं, आनंद सुख का अंकुर (है) ।  
उत्तम पत्र जनमि, जिमि कर कुछ ना हरै ॥
३७. निष्प्रपंच सुख का जो फल, सो जँह जिसका शुद्ध नहीं ।

दे. यिस्. दे. रु. दे. ल. द्गोस्. प. व्यस् ।

जेस्. सु. छग्स्. प. दङ्. नि. म. छग्स्. पडि ॥

३८. गुमुग्स्. जिद्. दग्. नि. स्तोङ्. प. जिद्. यिन्. नो ।

स्त्रिद्. पडि. ऽदम्. शेन्. फग्. ल्त. वु ।

द्वि. मेद्. सेम्स्. जयुर्. स्वयोन्. चि. योद् ।

गङ्. यङ्. दग्. गिस्. म. गोस्. प ॥

दे. यङ्. दे. यिस्. चि. पियर्. ऽछिङ्. ।

नल्. ऽव्योर्. ग्यि. दबङ्. षयुगू. छेन्. पो. द्पल्. स. र. हडि. शल्. रङ्. नस्. म्जद्. प. बो-

ह. म्जोद्. चेस्. व्य. ब. स्प्योद्. पडि. ग्लु. ज्. गिस्. सो ॥

सो तँह तिस को चाह करै, अनुराग और विराग की ॥

३८. शुद्ध रूप ही शून्यता, भवपंक में आमक्ति शूकर जिमि ।

विमल चित्त होइ, दोष क्या है ?

जो शुद्ध न चाहै, सो तिस से क्यों बंधे ॥

महायोगीश्वर-सरहपादकृत दोहाकोश चर्यागीति समाप्त ॥

---





## ३. दोहाकोश उपदेशगीति ( भोट, हिन्दी )

## ३. मि. सद्. पडि. ग्तेर्. मज्जोद. मन. डग्. गि. ग्लु\*

(भोट)

- 28b ऽजम्.दपल्.गुशोन्. नुर. ग्युर व. ल. फ्यग्.ऽछल्. लो ।
१. ए. म. म्खऽ. ऽग्रो. गुसङ्. बडि. स्कद् ।  
गञ्जिस्. मेद्. रङ्. ब्रुशिन. फ्यग्. ग्य. छेन्. पोडि. गुनस् ।
- 29a सङ्स्. गुयस्. छोस्. दङ्. दगे.ऽदुन्. रङ्. ब्रुशिन. नि ।  
व्यङ्. छुब्.सेम्स्. दपऽ. ब्दे. बडि. म्गोन्. पो. ल ॥
२. फ्यग्. ब्रुसङ्. पौ. यिस्. ब्रुतुद्. दे. ब्रुशद्. पर्. व्य.  
स्क्ये. बो. सिद्. पडि. ऽख्रि. शिङ्. ल्त. बुस्. ब्रुकिस्. प. नमस् ॥  
ब्रुद्ग. तु. ऽजिन्. पडि. म्य. डन्. थङ्. ल. रब्. तु. स्कम्स् ।  
ग्यल्. बु. गुशोन्. नु. ख्रिद्. मेद्. फ. दङ्. ब्रुल्. व. ब्रुशिन<sup>१</sup> ॥
३. ब्रुद्. बडि. गो. स्कब्स्. मेद्. पस्. सेम्स्. ल. स्तुग्. दुर्. ग्युर ।  
द्व्यद्. पस्. म.ऽोङ्स्. दे. ब्रुशिन. जिद्. किय. ये. शेस्. नि ॥  
व्यस्. प. नमस्. दङ्. ब्रुल्. शिङ्. बसग्स्. पडि. लस्. मिन्. शेस् ।  
रङ्. जिद्. शेस्. पडि. म्दऽ. ब्रुस्मुन्. ग्यिस्. नि. दे. स्कद्. स्म्रस् ॥
४. म्खस्. प. थम्स्. चद्. स्विङ्. ल. दुग्. गिस्. ख्यब्<sup>२</sup>. पर्. ग्युर ।  
सेम्स्. जिद्. नल्. पडि. दोन्. नि. कुन्. ग्यिस्. तोग्स्. द्कऽ. प ॥  
मथऽ. यिस्. म्गोस्. द्वि. म. मेद्. पडि. स्विङ्. नि. ।  
रङ्. ब्रुशिन.गदोद्. नस्. नम. प. कुन्. ग्यि. द्व्यद्. व्यमिन् ॥
५. गल्. ते. द्व्यद्. न. दुग्. स्त्रुल्. ग्चेस्. प. खो. नर्. सद्. ।  
ब्रुलो. यिस्. गुशन्. पडि. छोस्. ऽदि. थम्स्. चद्. रङ्.<sup>३</sup> गिस्. स्तोङ् ॥

\* स्तन. ग्युर. ग्युद्. शि. पृष्ठ २८ ख ५-३३ ख ४

## ३. दोहाकोश 'अनुच्छिन्नकोश' उपदेशगीति

(हिन्दी)

नमोमंजुश्रियै कुमारभूताय ।

१. अहो डाकिनी गुह्य वचन, अद्वय स्वभाव महामुद्रावास ।  
बुद्ध धर्म संघ स्वभाव, बोधिसत्त्व मुख-नाथके अर्थ ॥
२. मुहस्तसे नमि कहिये, पुरुष के भवमें लता जिमि मंगल ।  
शोक-स्थाने आत्म-ग्रह सूखै, जिमि पिता विनु राजकुमार का भव\* नहीं ॥
३. सुख-अवस्था विनु चित्ते रूप होइ, तैसे ही अनागत-चर्या × का ज्ञान ।  
क्रिया विनु संचित कर्म नहीं, सरह भनै स्वयं जानि यह वचन ॥
४. सब पंडितों के हृदये व्यापन विष, चित्त ही नाल-अर्थ सब कठिन कल्पना ।  
अन्ततः निर्मल (है) हृदय, स्वभाव राग से सर्वथा त्याज्य नहीं ॥
५. जो परखै सर्प डंसै मोई मरै, बुद्धि से भिन्न यह सब धर्म स्वतः शून्य ।

---

\* जन्म । × आचरण, साधना ।

- क्येन्, दङ्. ब्रल्. पियर्. वृत्तं. प. थम्स्. चद्. योद्. म. यिन्. ।  
 रङ्. ब्शिन्. ग्नस्. सु. ग्रोल्. वडि. दे. ब्शिन्. जिद्. शेस्. न ॥
६. मथोङ्. थोस्. ल. मोग्स्. मेद्. चिङ्. दे. यिस्. मि. म्थुन्. ब्रल् ।  
 दङ्गोस्. पोर्. तौग्. प. थम्स्. चद्. फ्युग्स्. दङ्. ऽद्र. बर्. बर्जोद् ॥  
 दङ्गोस्. मेद्. तौग्. प. दे. वस्. शिन्. तु. ब्लुन्. ऽय्युर्. शेस् ।  
 मर्. मे. ऽवर्. दङ्. ब्स्द्. पडि. द्पे. यिस्. बर्जोद्. प. दग्. ॥
७. ग्जिस्. मेद्. रङ्. ब्शिन्. फ्यग्. गर्य. छेन्. पोर्. ग्नस् ।  
 दङ्गोस्. पोर्. स्क्वेस्. प. दङ्गोस्. पो. मेद्. पर्. रब्. शि. शिङ् ॥  
 दे. यि. फ्योग्स्. दङ्. ब्रल्. ब. म्खस्. प. दे. जिद्. नि.  
 ब्लुन्. पो. न्मस्. किय. बलो. ल. रङ्. गिस्. द्प्यद्.<sup>५</sup> ब्यस्. न ॥
८. स्कद्. चिग्. ग्रोल्. ब. दे. ल. छोस्. किय. स्कु. शेस्. व्य ।  
 ग्रोल्. ब. दे. लस्. ग्शन्. पडि. ब्दे. छेन्. स. योद्. चेस् ॥<sup>१</sup>  
 वियस्. प. न्मस्. कियस्. र्मस्. क्यङ्. स्मिग्. ग्युडि. छु. दङ्. म्बुङ्ग्स् ।  
 स. दङ्. लम्. दङ्. सङ्ग्स्. ग्यस्. चम्स्. चद्. गो. ग्चिग्. पडि ॥
९. ग्जुग्. मडि. ये. शेस्. ऽदि. जिद्. यिन्. गिय. यिद्. ल.<sup>६</sup> द्विस् ।  
 दे. ल्तर. तौग्स्. पडि. मि. दे. ल. नि. ऽछिङ्. ब. मेद् ॥  
 डुल्. म. स्पङ्ग्स्. शिङ्. डुल्. गियस्. चुङ्. सद्. गोस्. प. मेद् ।  
 जौन्. मोंङ्ग्स्. गजौन्. पो. ग्जिस्. सु. ऽप्येद्. प. ग. ल. योद् ॥
१०. दे. ल्तर. व्चौन्. पडि. स्क्वेस्. बु. दे. नि. ऽखोर्. बर्. ऽछिङ् ।  
 स. दङ्. छु. दङ्. मे. दङ्. लुङ्. दङ्. नम्. म्खऽ. न्मस् ॥
- 29b ल्हन्.<sup>७</sup> चिग्. स्क्वेस्. पडि. रो. ग्चिग्. लस्. नि. ग्शन्. योद्. मिन् ।  
 त्रिद्. दङ्. म्य. डन्. ऽदस्. प. ग्जिस्. सु. मि. तौग्स्. प ॥
११. ऽदि. नि. छोस्. किय. द्बिङ्ग्स्. किय. ग्नस्. लुग्स्. यिन्. पर्. ब्शद् ।

ए.म. म्खऽ. ऽग्रो. ग्सङ्. बडि. स्कद् ॥

क्ये. म. रङ्. ल. रङ्. गिस्. दे. जिद्. मङ्गोन्. ते. ल्तोस् ॥

म. येङ्ग्स्. प.<sup>८</sup> यि. सेम्स्. कियस्. ल्त. दङ्. ब्रल्. ग्युर्. न ।

अ-प्रत्यय\* होने से सारी परीक्षा न होई. स्वभाव-रथाने मृषित जैसा जा जाने ॥

६. दर्शन-श्रवण आदि विनु उससे प्रतिकूल नहीं,  
वस्तुकल्पना सारी पशु-मदृश कहिये ।

बिना वस्तुकी कल्पना से अतिमूढ़ हो जाते,  
दीपक जलने वृज्जनेकी उपमा की क्या ॥

७. अद्वय स्वभाव महामुद्राका वास, वस्तुकी उत्पत्ति अवस्तु स्वभाव ।  
उसका निष्पक्ष पंडित मोड़, मूढ़ोंके मतमें अपने चर्या करै ॥

८. उसी क्षणिक मुक्ति में धर्मकाय जानिये, उस मुक्तिसे अन्य महामुख भूमि यह ।  
वालोक कथन, मृगजलकी वंचना ; भूमि, मार्ग, बुद्ध सब एक जान ॥

९. निज ज्ञान यही है, यह मनसे पूछ ; ऐसा समझे नरको बंधन नहीं ।  
धूल न छोड़ धूल कुछ भी ना चाहिये, पाप-विरोधी दोनोंमें करना है कहाँ ॥

१०. ऐसे वह पराक्रमी पुरुष संसार में बंधे ; धरती, जल, अग्नि, वायु और आकाश ।  
सहज एकरस (तत्त्व) से अन्य नहीं, भव-निर्वाण दो नो समझै ॥

११. यही धर्म-धातुकी स्थिति कहिये,

अहो डाकिनी गुह्य बचन ॥

अहो अपनेहि अपने को प्रहरै देख, अनलस चित्ने दृष्टि न होई ॥

---

\*हेतु बिना ।

११२. योङ्स्. पडि. सेम्स्. कियस्. दे. जिद्. तौगस्. पर्. मि. ऽग्युर्. ते ॥  
 दङ्गोस्. पोडि. छङ्ग. छिङ्ग. ग्सेब्. तु. दे. जिद्. नोर्. बु. स्तोर् ।  
 क्ये. म. ऽदोद्. पडि. दङ्गोस्. पो. गङ्ग. लऽङ्ग. ख्योद्. जिद्. छगस्. म. व्येद् ॥  
 गल्. ते. छगस्. पर्. व्य. वडि. युल्. ल. यिद्. छगस्. ने ।
१३. ऽदि.<sup>२</sup> नि. ब्दे. छेन्. सेम्स्. म्छोग्. ग्सिर्. थडि. नद्. रब्. स्ते ॥  
 द्वि. म. मेद्. पडि. सेम्स्. ल. ऽदोद्. पडि. म्छोन्. गियस्. व्तब् ।  
 क्ये. म. ग्युर्. दङ्ग. ऽत्रस्. बु. गजिस्. सु. म. ल्त. चिग् ॥  
 दङ्गोस्. पोर्. स्वये. वडि. ग्युर्. दङ्ग. ऽत्रस्. बु. योद्. मिन्. ते ।
१४. रे. दङ्ग. दोग्स्. पडि. दुग्. गिस्. नल्. ऽव्योर्. सेम्स्. म्योस्. न ॥  
 ल्हन्.<sup>३</sup> चिग्. स्वये. पडि. ये. शेस्. ग्नस्. दे. ऽछिङ्ग. बर्. ऽग्युर् ।  
 क्ये. म. रङ्ग. व्शिन्. ब्रल्. वडि. दे. जिद्. व्स्गोम्. दु. योद्. म. सेर्. ॥  
 गल्. ते. व्स्गोम्. पर्. व्य. दङ्ग. स्गोम्. व्येद्. गजिस्. तौगस्. न ।
१५. गजिस्. सु. ऽजिन्. पडि. यिद्. कियस्. ब्यङ्ग. छुब्. सेम्स्. स्पङ्गस्. ते ॥  
 स्वयेस्. बु. दे. यिस्. रङ्ग. गिस्. रङ्ग. ल.<sup>४</sup> स्दिग्. प. ब्यस् ।  
 क्ये. म. बल्. मडि. शल्. गिय. ब्दुद्. चिडि. थिगस्. प. जि. स्विोद्. प ॥  
 देस्. शेस्. सङ्गोन्. ऽग्रो. प. यिस्. रब्. तु. बल्ङ्ग. बर्. व्य ।
१६. दुस्. दङ्ग. थब्स्. ल. म्खस्. पस्. दुस्. सु. म. व्स्तेन्. न ॥  
 लोङ्ग. बस्. ग्यल्. पोडि. बङ्ग. म्जोद्. कु. दङ्ग. ऽद्र. थर्. ऽग्युर् ।  
 क्ये. म. रिन्. छेन्. द्बङ्ग. दङ्ग. ब्रल्.<sup>५</sup> वडि. स्वयेस्. बु. नि. ॥  
 ग्दोल्. प. द्मन्. प. शिग्. गिस्. ग्यल्. पोर्. रे. स्मोन्. व्शिन् ।
१७. रिग्. प. ऽजिन्. पडि. ग्युद्. नम्स्. देर्. व्स्लुस्. पस् ॥  
 म्खऽ. ऽग्रोस्. छद्. प. ब्चद्. नम्. दो. जेडि. द्म्यल्. बर्. त्तुङ्ग ।  
 क्ये. म. द्गे. वडि. व्शेस्. ग्जोन्. दग्. लस्. म्छोग्. गि. दोन्. बल्ङ्गस्. नस् ॥  
 दम्. पर्. मि.<sup>६</sup> ऽजिन्. द्मन्. पडि. सेमस्. कियस्. योङ्गस्. स्पोङ्. व ।
१८. स्वये. वो. रब्. रिब्. ग्सेब्. कियस्. ख्येर्. बर्. ग्युर्. प. न ॥  
 व्त्तल्. प. छेन्. पोर्. रङ्ग. ल. स्दुग्. व्स्ङ्गल्. ब्यस्. पर्. सद् ।

१२. अजस चित्तेहि सो समुझ न होइ, वस्तुके मदमें वैधि सोइ मणि-भ्रान्ति ।  
अरे किसी इच्छित वस्तु में राग न कर, जो रजनीय विषयमें मन रागी होइ ॥
१३. यह महामुख-चित्तवर में महाशूल रोग, निर्मल चित्त पार राग प्रहार करै ।  
अहो कार्य-कारण तू दोनों ना देखु । वस्तु-उत्पत्तिमें कार्य-कारण  
ना होइ ॥
१४. आशा-शंका-विपसे योगी-चित्त मातै तो, सहज ज्ञान में बसि वह बद्ध होई ।  
अहो ध्यान में सो नि स्वभाव ना कह जो ध्यान औ ध्येय दो समुझै ॥
१५. द्वैतग्राही मन बोधिचित्त को छोडै, सो पुरुष अपनेहि अपने पाप करै ।  
अहो गुरुमुखामृत विन्दु मात्र पाइ, निश्चय आगे वटिज्ञान भले लेइ ॥
१६. काल औ उपाय में पंडित काल का आश्रय ना ले, जैसे भिखारी राज-  
कोशकी चोरी करै ।  
अहो रत्न औ बल विनु पुरुष सोइ, जिमि चंडाल-शूद्र राजा ने  
बनना चाहै ॥
१७. विद्याधरकी जाति वहाँ राखै, डाकिनी निग्रह तोडि नरक में गिरै ।  
अहो कल्याणमित्रों से परमार्थ ले  
उत्तम न धरि हीन चित्त परित्यागै ॥
१८. पुरुष मेरुशिखरे जावै तो, महाकल्प भर अपनेहि दुखी हो मरै ।



- क्ये.म. बर्तन्. पडि. स. ल. फिय. नस्. दम्. छिग्. मि. ल्दन्. न ।  
 ग्यल्.पोस्. छद्.प. ग्चोद्. पडि. मि. नि. बसुङ्क ब. ल्तर ।  
 १९. नम्. स्मिन्. ल्चग्.स. क्युस्. सोग्. गि. लुङ्क. नि. बसुङ्क. व्यस्. नस् ॥  
 30a. प्रो.छ. मोल्.म. खर्.ब्लुग्.स. प. नि. बसोद्.पर.दकऽ ।  
 क्ये.म. ग्न्स्.लुग्.स. तोग्.स. क्यङ्क. द्मन्.बशि. स्प्योद्.प.  
 जिद्. व्यद्. न. ॥  
 ग्यल्.पो. खि.लस्. बव्.नस्. फ्यग्.दर्. व्येद्.प.बशिन् ।  
 २०. सद्. मि. शेस्. पडि. व्दे. ब. छेन्. पो. जिद्. स्पङ्कस्. नस् ॥  
 ज्खोर्.बडि. व्दे.ब. दग्. ल. रेग्. प. जिद्. क्यिस्. ऽछिङ्क ।  
 क्ये.म. स्त्रोस्. प. नम्स्. दङ्क. ब्रल्. बडि. रङ्क. गि. सेम्स्. म्थोङ्क. नस् ॥  
 स्त्रोस्.प. नम्स्. ल. छेद्. दु. ऽबद्. पडि. नल्. ऽब्योर्. नि ।  
 २१. तोर्.बु.रिन्.छेन्. ज्दो.नस्. ऽछिङ्क.बु. छोल्. ब. बशिन् ॥  
 ऽबद्. प. व्यस्. क्यङ्क. स्त्रिङ्क. पोडि. स. नि. नम्. यङ्क. मिन् ।

ए.म. ऽमख.ऽप्रो. ग्सङ्क.बडि. स्कद् ॥

- व्यङ्क. छब्. सेम्स्. सिन्. प. दङ्क. व्यङ्क. छुब्. सेम्स्. तोग्.स. दङ्क ।  
 २२. ऽबद्.प. दङ्क.बचस्. ऽबद्.प. ब्रल्. बडि. ये. शेस्. नि ॥  
 दम्.प. नम्स्. क्यि. शल्. गिय. ब्दुद्. चि.लस्. व्युङ्क. ब ।  
 जि.म. स्ल.ब. ग्जिस्. क्यि. द्बुस्.सु. ग्सल्. बर्. व्येद्<sup>३</sup> ॥  
 छ.ददङ्क. ल्दन्. पडि. स्वयेस्. बुडि. स्न. च्. लस्. व्युङ्क. शिङ्क ।  
 २३. म्छन्. दङ्क. ल्दन्. पडि. फ्यग्. ग्य. लस्. नि. दे. सेम्स्. ग्चिग् ॥  
 ग्सुग्.स. सोग्.स. दङ्कोस्. पोडि. छोस्. नम्स्. दे. यिस्. म्दोग्.  
 व्ग्ग्युर. नस् ।  
 शि.ब. दङ्क.बचस्. मन्.ङग्.गिस्. नि. शेस्. पर. व्य ॥  
 ऽोद्. ग्सल्. ब. यि. छोस्. जिद्. दे. नि. डेस्. म्थोङ्क. डे<sup>४</sup>.नस् ।  
 २४. बल्.मडि. दुस्.थबस्. व्स्तेन्. प. दे. नि. छेर्. तोग्.स. ल ॥  
 शेस्.रब्. फ.रोल्.फियन्. दङ्क. म्दो. ग्शन्. लस्. ज्दो. चिङ्क ।  
 कुन्.ल. स्व्यर्. बडि. सेम्स्. नि. रब्.तु. ब्स्गोम्.पर.व्य ॥

अहो स्थिर-भूमि में बाहर से ना जो मद्बचनयुक्त,  
राजदंडतोड़क पुरुषके पकड़ने-सा ॥

१९. वितप्त लोहांकुश से प्राणवायु को पकड़,  
उबलते पात्र के मुँहमें डालना जैसा दुःमह ।  
अहो स्थिति-रीति जान भी हीन आचरण करि,  
जिमि राजामन से उतर कूड़ा बुहारै ॥

२०. कुछ न समझ महासुख छाड़ि, सांसारिक सुखोंके स्वाद ही में बँधा ।  
अहो अपने चित्त को निष्प्रपंच देखि भागनेवालों को,  
वेदना में व्यवहारी योगी ॥

२१. मणि-रत्न पाकर बंधन ढूँढने जैसा, व्यवहार किया नहीं हृदय-भूमि कभी ।  
अहो डाकिनी गुह्य बचन ॥  
बोधिचित्त-ग्रहण औ बोधिचित्त-अवबोधन, सव्यवसाय औ अव्यवसाय ज्ञान ॥

२२. सन्तोंके मुखामृतसे संभूत, रवि शशि दोनोंके मध्य प्रकाश करै ।  
ज्वर-युक्त पुरुष की नासिकासे संभूत, लक्षणवती मुद्रासे एक-चित्त ॥

२३. रूपादि वस्तु के उन धर्मों से शंकित होने पर, स-शांति उपदेश जानिये ।  
उस प्रभास्वर धर्मता के अभिसमय से, गुरु-समय\* का सेवन बड़ा समझै ॥

२४. प्रज्ञापारमिता औ अन्य सूत्र पा कर, सबमें युक्त-चित्त सुभावित करै ।

फिय. दङ्. नङ्. दु. वल्ल. व. मेद्. पडि. सेम्स्. दे. नि ।

गङ्. गिस्. मि. बंसम्. गङ्. ल. यङ्. नि. सेम्स्. म. यिन् ॥

२५. रङ्. <sup>१</sup> वशिन्. ग्नस्. प. दो. जे. च. मोर्. गलु. बलङ्स्. प ।

- व्दे. छेन्. ग्सब्. ग्तङ्. ब्रल्. व. छु. बो. ल्त. बुर. व्सोम् ॥

ऽदुस्. पडि. छोग्स्. सु. स्प्रोस्. प. कुन्. गियस्. ग्येङ्स्. पडि. सेम्स् ।

ऽफो. दङ्. ऽजुग्. प. मेद्. पडि. रङ्. वशिन्. वर्तन्. प. जिद् ।

२६. सेम्स्. किय. स्त्रिङ्. पो. रङ्. द्गऽ. वर्. नि. लेग्स्. व्तङ्. स्ते ।

स्क्योन्. <sup>२</sup> प. ल्त. वुडि. सेम्स्. नि. व्य. व. दङ्. ब्रल्. व ॥

मथऽ. यिस्. म. गोस्. वे. शेस्. दे. नि. व्सोम्. पर्. व्य ।

सोम्. दङ्. व्सोम्. व्य. मेद्. पडि. सेम्स्. नि. रङ्. वशिन्. ब्रल् ।

२७. रे. दोग्स्. मेद्. पडि. म्यर्. थुग्. प. नि. दो. जेडि. सेम्स्. ।

30b द्म्यल्. वर्. सोङ्. स्त्रिद्. न. यङ्. दे. ल. स्दुग्. व्सङ्ल्. मेद् ॥

स्त्रिद्. दङ्. ऽव्रस्. <sup>३</sup> बु. म्छोग्. ल. ग्नस्. क्यङ्. ल्हग्. प. जेद्. मिन्. पस् ।

व्दे. दङ्. स्दुग्. व्सङ्ल्. ग्जिस्. कियस्. फन्. दङ्. ग्नोद्. स्पङ्स्. नस् ॥

२८. व्सङ्. दङ्. ङन्. पडि. स्प्योद्. पस्. दे. ल. ऽफेल्. ऽग्रिब्. मेद् ।

तोङ्स्. पडि. ये. शेस्. ग्जिस्. ब्रल्. ऽदि. लस्. ग्यु. यि. द्वि. म. ब्रल् ॥

गङ्. दुऽङ्. म. ल्त. ये. शेस्. छेन्. पो. जिद्. <sup>३</sup> म्योङ्. व ।

ऽखोर्. बडि. दुग्. न्स्. शि. वर्. नुस्. पडि. नल्. ऽव्योर्. पस् ॥

२९. द्गे. स्लोङ्. ग्शु. ऽद्र. र्थल्. स्त्रिद्. कुन्. ल. द्बङ्. स्ग्युर. व्येद् ।

मिग्. नि. मि. ऽजुम्स्. व्सोम्. दु. मेद्. पडि. नल्. व्योर्. प ॥

द्बेन्. पडि. ग्नस्. दङ्. ग्नस्. मल्. मेद्. पडि. ग्नस्. जिद्. दु ।

छग्स्. दङ्. स्दुङ्. व. स्पङ्स्. पडि. द्वि. म. <sup>३</sup> मेद्. पडि. यिद् ॥

३०. दोन्. दम्. सेम्स्. किय. ङो. बो. दे. नि. व्सोम्. पर्. व्य ।

ए.म. म्खऽ. ऽग्रो. ग्सङ्. बडि. स्कद् ॥

द्कियल्. ऽखोर्. व. दङ्. स्थिन्. स्नेग्. पस्. स्तोङ्. शिङ् ।

स्ङ्ग्स्. दङ्. फ्यग्. ग्ये. रब्. ग्नस्. ल. सोग्स्. नम्. ब्रल्. व ॥

- वाह्य और अन्तर दृष्टि के बिना सो चित्त जिममे ध्यावें (वहाँ)  
जहाँ चित्त नहीं ॥
२५. स्वभाव में स्थित वज्रशिखर गीत गाना, गंभीर महामुख की अविगन  
नदी जिमि भावना ।  
समाजों में सर्वप्रपंच से अलम-चित्त, संक्रमण और प्रवृत्ति बिना दृढ़  
स्वभाव (हो) ॥
२६. चित्त-सार को स्व-आनन्द में भले डाले, दोष जिमि चित्त को निष्क्रिय(करै) ।  
अन्त न चाहिए, वही ज्ञान भावना करै ; ध्यान-ध्येय बिना चित्त  
निःस्वभाव ॥
२७. आशा-शंका-रहित भूतकोटि है वज्र-चित्त, नरकगति भव\* में भीदुख नहीं ।  
॥ भव और उत्तम फल में स्थित भी अधिक लाभ बिना, सुख-दुख दोनों  
में हित-अहित (भाव) छोड़ि ।
२८. गुह्य और दुचर्या से उसकी प्राप्ति<sup>३</sup> नहीं, कल्पना ज्ञान  
इस अद्वय से कारणगंध नहीं ।  
महाबुद्ध चाहो तो मूढको जानै, निष्क्रिय मन से कहीं न ढूँढ़े जो ॥
२९. गुण न ढूँढ़ि उसके विपक्ष से रहित, कारण और सब शास्त्र से ना वह पावै ।  
द्वेष-राग-रहित चित्त में कारण का मल नहीं,  
कहीं मत देख महाज्ञान ही अनुभव करै ॥  
संसार विष शमन समर्थ योगी ।
२९. भिक्षु, धनुष जिमि सर्व राज्य वश करै ।  
आँख मत बंद कर भावना बिना ही, योगी,  
एकान्तवास और शयनासन बिना रहते ही ॥
३०. काम और आसक्ति त्याग निर्मल मन ।  
परमार्थ चित्त सोई भाव भावना करै ॥  
अहो डाकिनी गुह्य बचन ॥  
मंडल और होम हजार एक ॥  
मंत्र और मुद्रा प्रतिष्ठा आदि के बिना ॥

\* जन्म, योनि ।

३१. ग्युं. दङ्. व्स्तन्. व्चोस्. कुन्. ग्यि. व्स्तुब्. पर्. मि. नुस्. पडि ।  
 दौं. जै. \* ये. शेस्. ऽदि. नि. रङ्. व्शिन्. ग्नस्. न. म्जस् ॥  
 ग्चिग्. गिस्. गो. बर्. नुस्. प. रिन्. छेन्. बर्द. यि. म्छोग् ।  
 स्प्रुल्. गिय. ग्सोब्. ल्तर. ग्शन्. ल. म्जस्. प. योद्. म. यिन् ॥
३२. ङि. ड. पोस्. ङि. ड. पो. म्छोन्. प. ब्ल. म. म्छोग्. दग्. लस् ।  
 तौंग्स्. पस्. ग्शन्. ल. म्छोन्. ते. दे. जिद्. रङ्. ल. म्छोन्<sup>५</sup> ॥  
 नम्. म्खऽ. नोर्. बु. जि. म. ल्त. बुडि. मथु. म्दऽ. ब ।  
 थिग्. ले. ग्सुम्. दङ्. यिद्. द्रन्. प. दङ्. द्रन्. मेद्. दङ् ॥
३३. स्व्योर्. बडि. स्प्र. सोग्स्. गङ्. लऽङ्. स्प्योद्. पर्. नुस्. रुङ्. पडि ।  
 ग्सेर्. ऽग्युर्. चि. ल्तर्. छोस्. न्मन्. थम्स्. चद्. रो. म्जाम्. ऽग्युर् ॥  
 लम्. स्व्यङ्. ब. ल. ग्जुग्. मडि. ये. शेस्. ग्चिग्. पु. ग्चिग्<sup>६</sup> ।  
 लम्. जिद्. बर्दस्. स्तोन्. प. नि. ब्ल. म. म्छोग्. दग्. ल ॥
३४. ग्सुग्स्. स्प्र. द्वि. रो. रेग्. दङ्. छोस्. ल. वर्तेन्. पर्. ब्य ।  
 छोस्. न्मन्. थम्स्. चद्. क्येन्. मेद्. पर्. नि. स्क्ये. न. यिन् ॥
- 31a म. स्क्येस्. प. ल. म्खस्. स्कल. ल्दन्. दे. दग्. गिस् ।  
 स्क्येस्. प. थम्स्. चद्. ल. नि. शुग्स्. कियस्. म्खस्. पर्. ऽग्युर्<sup>७</sup> ॥
३५. थ. मि. दद्. पडि. ये. शेस्. खो. न. ग्चिग्. पु. जिद् ।  
 रङ्. व्शिन्. ग्शग्. पडि. सेम्स्. कियस्. रङ्. ल. ख्यब्. ऽग्युर् ॥  
 ब्दग्. दङ्. ग्शन्. दु. स्नङ्. बडि. रङ्. व्शिन्. ग्चिग्. शेस्. शिङ् ।  
 दे. जिद्. खो. न. म. येङ्स्. प. यिस्. योङ्स्. ब्सुङ्. स्ते ॥
३६. दे. जिद्. सेम्स्. किय. सुग्स्.<sup>८</sup> यिन्. फियर्. ब्तङ्. नस्. क्यङ् ।  
 गङ्. लऽङ्. शन्. प. मेद्. पस्. ब्दे. ब. लेन्. पर्. व्येद् ॥ ।  
 सेम्स्. ल. ग्नोद्. पडि. लन्. नि. थम्स्. चद्. कियस्. स्तोङ्. शिङ् ।  
 जिद्. दङ्. लेन्. पडि. ब्य. ब. गङ्. गिस्. गोस्. प. मेद् ॥
३७. चर्ौल्. दङ्. ब्रल्. शिङ्. ग्नस्. स्कब्स्. ग्लो. बुर. क्येन्. मेद्. पर् ।  
 स्नङ्. ब. स्न. छोग्स्. फ्यग्.<sup>९</sup> र्यं. ऽदि. नि. ग्सिग्स्. मोर्. छे ॥

३१. कारण औ सर्व शास्त्र (जिसे) सिद्ध करने में असमर्थ ।  
 इस वजूज्ञान स्वभाव में स्थित सुन्दर ।  
 एक के द्वारा जानने में समर्थ रत्न उत्तम संकेत ।  
 निर्मित रचना जिमि दूसरे को सुन्दर नहीं ॥
३२. हृदय से हृदय में प्रहारि उत्तम गुरुओं से ।  
 अबबोध से दूसरे को प्रहारि सोई अपने को प्रहरै ।  
 गगनमणि सूर्य जिमि समर्थ धनुष् ।  
 तीन तिलक औ स्मृति से सहित-रहित मन ॥
३३. प्रयोग शब्द आदि कहीं भी चर्या उचित ।  
 कंचन भूत औषधि जिमि सब धर्म\* पदार्थ समरम होइ ।  
 मार्गशोधमें निज ज्ञान ही अकेला एक ।  
 मार्गसंकेत-कर्ता उत्तम गुरु ॥
३४. रूप-शब्द-गंध-रस-स्पर्श औ धर्म का आलंबन करै,  
 सभी धर्म विना प्रत्यय × उत्पन्न ।  
 अनुत्पन्न को भव्य सभी उत्पन्न के रूप में पंडित ने जान लिया ॥
३५. अभिन्न ज्ञान सोई एक स्वभाव में स्थापित चित्त अपने में व्याप्त ।  
 स्व-पर में भासित स्वभाव को एक जानि, तत्त्व को अनुद्धत (हो) धारै ॥
३६. सोई चित्त का रूप है, अतः छोड़कर भी, जहाँ अमन्द सुख लेवै ।  
 चित्त-अपकारी सब कामों से शून्य कर, लाभ औ लेना जिसे न चाहिए ॥
३७. यत्नरहित क्षेत्र में अवस्थित अकस्मात् विना प्रत्यय२, नाना अवभास  
 यही मुद्रा का महाप्रेक्षण ।

- थम्स्. चद्. थम्स्. चद्. दम्. पडि. दुस्. सु. ज्ञे. म्थोङ्. नस् ।  
 बल्. मर्. म. ग्युर्. छोस्. नि. गङ्. यङ्. योद्. म. यिन् ॥
३८. वर्. स्नङ्. म्जुव्. मोस्. म्छोन्. पस्. वर्. स्नङ्. म्थोङ्. व. मेद् ।  
 बल्. मस्. म्छोन्. पडि. बल्. म. दे. यङ्. दे. ब्शिन्. नो ॥  
 बर्तुल्. शुग्स्. स्प्योद्. पडि. नल्. ३ ऽव्योर्. व. नि. ग्रोङ्. ख्येर्. सेम्स् ।  
 र्ग्यल्. पोडि. फो. ब्रङ्. ऽजुग्. चिङ्. बु. मो. दङ्. चो. यङ् ॥
३९. स्क्युर्. व. स्ङर्. ब्रोस्. प. यिस्. स्क्युर्. व. म्थोङ्. व. ब्शिन् ।  
 युल्. नम्स्. थम्स्. चद्. दे. ब्शिन्. जिद्. दु. रिग् ॥  
 छोग्स्. किय. ऽवोर्. लो. जो. वर्. वर्यन्. पडि. ग्न्स्. जिद्. दु ।  
 कुन्. दु. रु. यि. स्कव्स्. सु. व्दे. व. छे. ४ म्थोङ्. नस् ॥ [ ]
४०. वर्द. दङ्. दम्. छिग्. ल्दन्. पडि. नल्. ऽव्योर्. नम्स्. कियस्. नि ।  
 स्त्रिद्. दङ्. शि. व. म्जाम् प. जिद्. लेग्स्. फ्यग्. र्ग्य. छे ॥
- ए.म. म्खऽऽप्रो. ग्सङ्. बडि. स्कद् ॥
- ये. शेस्. स्वयेस्. पडि. नल्. ऽव्योर्. गर. लऽङ्. दोग्स्. मेद्. पस्. ॥  
 द्बङ्. फ्यग्. थव्स्. दङ्. ल्दन्. पस्. म्थर्. स्वयेस्. ५ ब्चल्. वर्. व्य ॥
४१. द्मन. पडि. ग्रोङ्. ख्येर्. शुग्स्. नस्. गङ्. दङ्. म्थून्. प. ल ।  
 छुङ्. दु. छुङ्. दुस्. ब्रिद्. चिङ्. छेन्. पो. दे. ल. स्वियन् ॥  
 दे. यिस्. ब्स्ञोन्. ब्कुर्. व्यस्. पडि. जेस्. नि. जि. स्ञोद्. प ।  
 व्दग्. गिर्. मेद्. पडि. सेम्स्. कियस्. दे. ल. ग्तङ्. वर्. दव्य ॥
४२. कुन्. दु. ऽव्यम्. शिङ्. म्छन्. म. रब्. तु. वर्तग्. व्य. स्ते ६ ।  
 रिग्स्. दङ्. ख. दोग्. म्छन्. मडि. छोग्स्. कियस्. रिम्. शेस्. दव्य ॥  
 रङ्. गि. बु. मो. म. दङ्. स्त्रिङ्. मो. छ. मो. दङ् ।  
 ग्युङ्. मो. छोस्. म. स्मद्. ऽव्योङ्. ग्सो. रस्. कियस्. ऽव्योब् ॥
४३. स्दो. व्सङ्ग्. दङ्. नि. द्कर्. शम्. द्मर्. सेर्. स्मुग्. नग्. म. ।  
 स्मे. व. चन्. ल. ग्युद्. स्व्यर्. स्. ल. बडि. फ्यग्. र्ग्य. नि ॥
- 31b व्चु. द्रुग्. लो. लोन्. रब्. तु. म्जेस्. प. स्क्र. सेर्. लि ।  
 उत्प. ल. यि. द्विस्. ख्यव्. तु. म. स्त्र. मख्रेग्स्. क्द. प. फ्र. ॥

सब को उत्तमकालमें उपदर्शन कर. गुरु धर्म कोई नहीं ।।

३८. तर्जनी से लखाये अन्तरिक्ष दीखै नहीं, गुरु से लखाया गुरु तैसा भी ।  
तैसा ही व्रत योगी नगर चिन्तै,

राजप्रासाद पइठि (राज) कन्या से क्रीडै ॥

३९. खटाई के हटने से पूर्व जिमि,

खटाई देखै सर्व-विषय तथतामें\* जानै ।

गणचक्र के समीप ललाट में ही, कुन्दुरु×,

आकाश-अवकाश में महामुख देखि ॥

४०. संकेत औ सद्बचनी योगियों ने (देखा) भव

औ शान्ति के तुल्य शुभ महामुद्रा ।

अहो डाकिनी गुह्य वचन ॥

ज्ञान-उत्पन्न कहीं भी निःशंक योगी,

ईश्वर-उपाययुक्त अन्त्यजन्म (का) यत्न करै ॥

४१. हीन नगर में बैठि जिसके सपक्षमें,

उस महान् को थोड़ा-थोड़ा बचा देना ।

उससे उपासित जितना द्रव्य,

आत्मा नहीं उसे चित्तसे वहाँ छोडै ॥

४२. सर्वभ्रामक लक्षणा भले निरखै,

जाति वर्ण लक्षणा की गोष्ठीसे परिपाटी जानै ।

अपनी कन्या माता भगिनी नतनी औ डोमनी रजकी वेश्या दरजिनी ॥

४३. पथरकटिनी औ श्वेतपटी / लाली पीली धूँधली काली,

तिलवाली संततियुक्त सुकर मुद्रा ।

षोडशी अतिसुंदरी पीतकेशी, उत्पलगंधी, कठोरफुवा तनू-उदरा ॥



४४. स्मद्. किय. शेङ्. र्ग्यस्. भ. ग. रुब्. चिङ्. छग्स्. पडि. म्दङ्स् ।  
 क्युद्. म्दङ्. ब्चस्. ग्सङ्. थुब्. गुस्. पस्. रब्. तु. ग्शोल् ॥  
 दद्. प. रब्. तु. वर्तन्. शिङ्. तौग्. प. छुङ्. ग्युर्. प ।  
 तौग्स्. गुस्. ल्दन्. पडि. फ्यग्. र्ग्य. दब्ङ्. गिस्<sup>१</sup>. स्मिन्. पर्. द्ब्य ॥
४५. योन्. तन्. ब्मुङ्. न. रङ्. गिस्. रिग्. पडि. ये. शेस्. स्विन् ॥  
 स्कब्स्. सु. रो. स्त्रोम्स्. ग्ञुग्. मडि. ये. शेस्. फ्यग्. ब्ग्य. ब्मुङ् ॥  
 ब्चुन्. मोडि. शु. क्र. द्गुग्. पडि. फ्यग्. र्ग्य. छेन्. मो. नि ।  
 दुस्. कियस्. व्स्डु. व. ब्यस्. नस्. तौग्. मेद्. म्खऽ. ल. लस्ति. म ॥
४६. रेस्. ङऽ. छोङ्. दुस्. ग्नस्. न. जि. ल्तर. ऽदुग्<sup>२</sup> ।  
 दोन्. गियस्. दोन्. लं. ब्ल्तस्. नस्. दोन्. ञिद्. गर्. द्गर्. ब्त्तङ्. ॥  
 रेस्. ङऽ. दुर्. खोद्. शुग्स्. नस्. स्प्रोन्. म. दग्. ल. स्प्योद् ।  
 ञाम्. ङ. मेद्. पडि. सेम्स्. कियस्. यि. दग्स्. ग्नस्. सु. ञाल् ॥
४७. ग्दोल्. प. नर्मस्. दङ्. ऽप्रोग्स्. तो. रो. यि. ऽखोर्. लो. द्रङ् ।  
 दि. व्य. मेद्. पडि. स्प्योद्. प. छद्. दु.<sup>३</sup> ग्मुङ्. मि. ब्य ॥  
 ग्लु. गर्. ग्लिङ्. बु. च्चद्. ऽजो. रोल्. मोडि. छोग्स्. सु. ऽजुग् ।  
 हे. रु. क. यि. गर्. दङ्. द्रुग्. ल. स्क्येस्. सोग्स्. ग्लुस् ॥
४८. सेम्स्. ल. ग्सेङ्स्. ब्स्तोङ्. चुङ्. सद्. स्क्यो. बर्. मि. ब्यऽो ।  
 र्ग्यब्. तु. ल. व. ब्गो. शिङ्. यन्. लग्. सङ्स्. मस्. स्प्रस् ॥  
 ऽखोर्. लो. ल्दन्. पडि. थोर्. छग्स्. स्प्यिग्<sup>४</sup>. चुग्. दग्. तु. ग्मुङ् ।  
 रुस्. पडि. दुम्. बुस्. यन्. लग्. कुन्. ल. व्ग्यन्. ब्यस्. नस् ॥
४९. ग्लङ्. छेन्. स्तग्. गि. पग्स्. पस्. स्तोङ्. दङ्. स्मद्. द्किस्. ते ।  
 ख. ट्वां (ग). द्रिल्. बुर. ल्दन्. प. लग्. तु. थोग्स्. पर्. ब्य ॥  
 ग्लङ्. छेन्. स्म्योन्. पडि. स्प्योद्. प. ल्कुग्स्. प. ब्यस्. नस्. नि ।  
 व्य. मेद्. मि. ब्य. मेद्. पडि. स्प्योद्. प. रङ्. शुग्स्. कियस् ॥
५०. ग्लङ्. छेन्. म्छो. रु. शुग्स्. ऽद्र. तौग्. तु. स्म्योन्. सेम्स्. कियस् ।  
 द्मन्. पडि. छोस्. नर्मस्. स्प्यद्. न. शोल्. बर्. म्दऽ. ब्स्मुन्. स्त्र ॥

४४. विपुल भग योनि प्रहारि रति कान्त,  
तांत्रिकी-सहित गुह्य सेवन में अतिनिम्न ।  
अति वृद्ध श्रद्धा कर कल्पना में क्षुद्र हो,  
त्रिलिङ्गी मुद्रा के वश परिपक्व होइ ।
४५. गुण-ग्रहण करि स्वयं विद्या-ज्ञान देइ,  
अवकाश-समरस निज ज्ञान मुद्रागहै ।  
रानी का शुक्र खींचै महामुद्रा,  
काले संग्रह करि निर्विकल्प आकाशे लीन होइ ॥
४६. कभी हाट के स्थान में ऐसा रहै, अर्थ से अर्थ को दखि ही नाचै-उच्चाटै ।  
कभी श्मशान में बैठि दीप बारि, निर्भय चित्त से प्रेत-स्थान में सोवै ॥
४७. चंडालों का साथी सुख से चिता-चक्र शीतल करै,  
इस क्रिया विना चर्या का प्रमाण नहीं ।  
गीत नृत्य वाद्य क्रीड़ा गन्धर्व-समाज में प्रविशै,  
हेरुक के नृत्य आदि के गीत से ॥
४८. चित्त को ऊपर उठा जरा भी खेद ना करै,  
पीठ में कस्तूरी लगा अंग ताम्र से रचै ।  
च की शिखा सामान्य चूड़ा में धरै,  
अस्थिखंड से सारे अंग को भूषित करै ॥
४९. हाथी बाघ का छाला ऊपर औ नीचे लगा, खट्वांग घंटा हाथ में धरै ।  
मस्त हाथी की चाल से जड़ बन निष्क्रिय अनिष्क्रिय चर्या में स्वयं बैठै ॥
५०. सरोवर में बैठे गज-सा सदा विक्षिप्त-चित्त,  
हीन धर्मों को आचरि मुक्त होइ सरह भणै ।

ए.म. म्खऽ.ऽप्रो. गसङ्क.बडि. स्कद् ॥

- स्न. छोग्स्. छोस्. नमस्. थम्स् चद्.. रो. ग्चिग्. पर् ।  
 स्तोन्. पर्. व्येद्. प. व्ल. म.<sup>६</sup> दम्. प. जिद्. यिन्. ते ॥
५१. दङ्. पडि. म्छु. दङ्. म्छुङ्.स्. पडि. जे. व्चुन्. म्छोग्. दे. नि ।  
 गुस्. पडि. सेम्स्. कियस्. ग्चङ्. मडि. स्वि्य. वोर्. व्लङ्. बर्. व्य ॥  
 ग्चिग्. तु. व्स्टुस्. पडि. सेमस्. नि. म्छोन्. व्येद्. व्ल. म. स्ते ।  
 म्छोन्. पर्. व्य. बडि. ग्शि. नि. स्लोव्. पडि. स्विङ्. जिद्. दो ॥
५२. दे. तोग्स्. प.<sup>७</sup> यिस्. स्टुग्. व्स्टल्. थमस्. चद्. स्फद्. चिग्. ल ।  
 32a जोम्स्. पर्. व्येद्. पडि. द्पऽ. बो. दे. नि. द्विन्. चन्. पस् ॥  
 दोन्. ल. व्लत्स्. नस्. व्यस्. प. द्विन्. दु. ग्सो. बडि. फियर् ।  
 स्मन्. पडि. ग्यल्. पो. दे. नि. तंग्. तु. ग्सुङ्. बर्. व्य ॥
५३. ऽखोर्. बडि. ग्य. म्छो. सब्. चिङ्. ग्यु<sup>१</sup>. छे. लस् ।  
 स्प्रोल्. बडि. ग्य. म्छोग्. दे. नि. ग्शन्. मेद्. दे ॥  
 दम्. पडि. ग्य. ल. वर्तेन्. नस्. व्दे. छेन्. जेद्. ग्युर्. पडि ।  
 स्तोव्स्. छेन्. ग्जोन्. प. दे. नि. ग्यो. मेद्. कुन्. गियस्. ब्कुर् ॥
५४. ये. शेस्. जि. म. ल्त. बुडि. ऽोद्. सेर्. दग्. प. यिस् ॥  
 म. रिग्. पर्. व्येद्. पर्. पडि. स्वयेस्. बु. म्छोग्. दे. नि<sup>२</sup> ॥  
 ग्सेर्. ग्युर्. चि. ल्त्. छोस्. नमस्. थम्स्. चद्. व्दे. बर्. स्ग्युर्. म्जद्. पडि ।  
 थव्स्. ल. म्खस. प. ऽखोर्. लोस्. स्ग्युर्. ग्यल्. तंग्. तु. व्स्तिन् ॥
५५. छ. बो. ल्त. बुडि. सेम्स्. कियस्. ग्जिस्. ल्त. सिल्. ग्नोन्. चिङ् ।  
 गङ्. यङ्. म. स्पङ्स्. गोस्. प. मेद्. पडि. ये. शेस्. ल्दन् ॥  
 व्लो. म. ब्चोस्. शिङ्.<sup>३</sup> व्लो. यि. नम्. प. ग्नस्. ग्युर्. प ।  
 व्ल. म. दम्. पडि. शल्. गिय. व्दुद्. चि. लस्. नि. व्युङ् ॥
५६. सेम्स्. दङ्. सेम्स्. लस्. व्युङ्. शेस्. थ. स्वाद्. प. नमस्. कियस् ।  
 वर्तंग्. प. ऽदि. नि. नल्. ऽव्योर्. प. यि. ग्रोम्स्. नंग्स्. सु ॥  
 स्ग्युर्. बर्. व्येद्. प. वल्. मडि. शल्. गिय. पद्. मो. स्ते !  
 थम्स्. चद्.<sup>५</sup> द्गो. बडि. व्शेस्. सु. व्स्ग्युङ्. व. दे. लस्. व्यङ् ॥

अहो डाकिनी गुह्य बचन ॥

धर्म नाना, (पर) सबका रस एक देशना करता मद्गुरु है ॥

५१. हंस-चंचु तुल्य महाभट्टारक उसे गौरव-सहित शिर पर लेवै ।  
एकाग्रचित्त लखै (सोई), गुरु लक्ष्य वस्तु शिष्य का हृदय है ॥
५२. वह समझै सारे दुःख को क्षण में, नाश करै उसे, वीर नायक है ।  
अर्थ देखि दया करने के लिए, दया वह वैद्यराज मदा धारै ॥
५३. गंभीर संसार-सागर महाकारण से, तारक नाव उत्तम सोइ अन्य नहीं ।  
सुनाव के आश्रय महासुख पाने का, महाबल अचल मित्र मोई पूजै ॥
५४. सूर्य सम ज्ञान की शुद्ध प्रभा से, अविद्या का अन्त करै उत्तम पुरुष सोई ।  
सुवर्ण जिमि सारे धर्मों का सुख में परिवर्तक,  
उपाय-चतुर चक्रवर्ती (को) मदा सेवै ॥
५५. नदी जिमि चित्त से द्वैत-दृष्टि का पराभवकारी,  
कुछ भी न छाड़ि (सो) निर्लेप ज्ञानी ।  
बुद्धि ना मथि बुद्धि के आकार में स्थित, सद्गुरु के मुखामृत से संभूत ॥
५६. चित्त औ चेतसिक व्यवहारों से, यह (है) परीक्षा योगी की मित्रों में ।  
परिवर्तनकारी गुरुमुख कमल,  
सारे कल्याणमित्रों में परिवर्तन उभसे होवै ।

५७. ग्युद्. नर्मस्. कुन्. दु. स्पस्. शिङ्. थ. स्त्रिद्. कियस्. द्वन्. प ।  
सङ्स्. ग्युस्. नर्मस्. किय. ग्सङ्. व. सुस्. क्यङ्. शेस्. मि. ऽग्युर् ॥  
मन्. डग्. मिग्. गिस्. म्थोङ्. शिङ्. द्वङ्. वडि. रस्. ख्यब्. प ।  
शब्स्. किय. डल्. ल. रेग्. न. ये. शेस्. रिग्. ५ पर. ऽग्युर् ।
५८. स्त. छोग्स्. दङ्गोस्. पोडि. छोस्. ल. स्तोङ्. पडि. म्द. फन्. दङ् ।  
स्तोङ्. प. स्तङ्. वडि. थब्स्. कियस्. म्योङ्. बर्. ऽग्युर्. व्येद्. प ॥  
शेस्. रब्. शेस्. पस्. स्तङ्. व. ग्शल्. न्यर्. म्थोङ्. व. स्ते ।  
शेस्. रब्. दे. नि. ब्ल. मेद्. स्लोब्. द्पोन्. दग्. लस्. ऽव्युङ् ॥
५९. जोन्. मोंङ्स्<sup>६</sup> थम्स्. चद्. थब्स्. कियस्. म्छोग्. तु. सग्युर्. व्येद्. दङ् ॥  
तोंग्. पडि. सुग्. डु. गङ्. गिस्. सग्युर्. बर्. मि. नुस्. प ॥  
ऽदि. नि. मन्. डग्. रिङ्. पो. लस्. नि. डेस्. ऽव्युङ्. दङ् ।  
दे. यङ्. जे. ब्चुन्. मथु. लस्. डेस्. पर्. जेद्. पर्. ग्युर् ॥
६०. दे. फियर्. ग्युद्. पर्. ल्दन्. पडि. वियन्. ल्बस्. गङ्. ल्दन्. प ।
- 32b दुस्. थब्स्. ब्स्तेन्. प. म्खस्. पस्. तर्ग्. तु. ब्स्तेन्. पर्. व्य ॥

ए.म. म्खऽ.ऽग्रो. ग्सङ्.वडि. स्कद् ॥

- थब्स्. दङ्. शेस्. रब्. रङ्. ब्शिन्. म्जाम्. प. जिद्. तोंगस्. नस् ॥
६१. ऽोद्. ग्सल्. लस्. नि. ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. प. जेद्. पर्. ऽग्युर् ॥  
स्.ल. व. ग्युस्. ऽद्र. व. नि. गोम्स्. प. लस्. व्युङ्. स्ते<sup>७</sup> ।  
ग्सल्. बर्. व्येद्. प. सा. लु. स्.लडि. ऽोद्. ऽद्रर्. स्प्योद् ॥  
दङ्गोस्. ग्रुब्. कुन्. गिय. च. ड. दो. जे. स्लोब्. द्पोन्. यिन् ।
६२. लेग्स्. पर्. स्व्यङ्स्. प. ग्यु. जि.द. ऽत्रस्. वु. कुन्. गिय. लुस् ॥  
बदे. बर्. ग्शेगस्. पडि. ब्कऽ. दङ्. म्थुन्. पर्. व्य. वडि. पियर् ।  
व्यङ्. छुब्. सेम्स्. द्पऽ. बदे. वडि. म्गोन्. पोस्.<sup>८</sup> लेग्स्. ग्सुङ्स्. प ॥  
छोस्. किय. स्कु. दङ्. लोङ्स्. स्प्योद्. जोंगस्. दङ्. स्प्रुल्. पडि. स्कु ।  
डो. बो.जिद्. किय. स्कु. नि. ग्यु. ऽत्रस्. रब्. शेस्. व्य ॥
६३. सगो. स्कुर्. ग्जिस्. कियस्. स्तोङ्. व. ग्जिस्. मेद्. छोस्. यिन् ते ।  
डो. बो. जिद्. किय. बदे. व. दे. नि. लोङ्स्. स्प्योद्. छे ॥

५७. सारे तंत्रों में रचि व्यवहार से एकान्त, बुद्धों का रहस्य कोई ना जान ।  
उपदेश-नेत्र से देखि वशिता-पट-न्याप्त, चरणधूलि स्पर्श करि जानै ॥
५८. नाना वस्तु धर्म पर शून्य वाण फेंकि, शून्य-भासी उपाय से अनुभव करै ।  
प्रज्ञा-ज्ञानसे प्रभासित प्रमेय देखै, सो प्रज्ञा अनुपम आचार्योंसे होवै ॥
५९. सर्व क्लेश उत्तम उपायसे परिवर्तन कर, समझ शल्य जो न परिवर्तन करै ।  
यही उपदेश हृदय-निर्गन श्री, सोई भट्टारक\* प्रभावसे निश्चय पावै ॥
६०. अतः तंत्रधारी अधिष्ठान-पूर्ण, हो समय-उपाय-धर पंडित को सदा  
अवलंबै ।  
अहो डाकिनी गुह्य बचन ॥  
प्रज्ञा-उपायके स्वभावको समता समुच्चि, प्रभासे सहज को पावै ॥
६१. भावनासे विपुलचंद्र-सा हो, प्रकाशशाली रवि-शशि-किरण सदृश आचरै ।  
सर्वसिद्धि मूल (है) वज्राचार्य, सुधौत सर्व-हेतु-फल शरीर ॥
६२. सुगत-वचन के अनुसार क्रियार्थ के लिए, सुख-स्वामी बोधिसत्त्व-  
सुभाषित ।  
धर्मकाय संभोग श्री निर्माण काय, स्वभाव-काय ही हेतु-फल मूल जानै ॥
६३. पक्षबन्धन अभ्याख्यान उभय शून्य अद्वय धर्म में, स्वभाव सो  
सुख-महासंभोग ।

\* गुरु, दृढसंकल्प, हेरक ।

- स्त.छोर्गोस्.प.यिस्. ऽग्रो.व. थम्स्.चद्<sup>३</sup>. स्प्रुल्.प.लस् ।  
 द्ब्येर्.मेद्. येशेस्.ञिद्. नि. कुन्.ग्यि. व्दग् ॥
६४. स्वथेद्.पर्.व्य. दङ्. ब्येद्.पडि. रङ्.बृशान्. मि.द्मिगस्. क्यङ् ।  
 गोम्स्.पडि. म्थु.यिस्. दोग्स्.प. थम्स्.चद्. सिल्.मन्न्.नस् ॥  
 ऽत्रस्.बु. ग्जिस्. नि. रङ्. दङ्. ग्शान्. दोन्.कुन्.छोर्गोस्. यिन् ।  
 र्यु. दङ्. ऽत्रस्.बुर्<sup>४</sup>. व्तगस्. क्यङ्. डो.बो. दे. द्ब्येर्.मेद् ॥
६५. स्मोन्.लम्. सिञ्जङ्.जे. स्तोव्स्.विथस्. ग्सुगस्. स्कु. नम्. ग्जिस्. ऽव्युङ् ।  
 बुम्.प. व्सङ्. द्पग्.व्सम्.शिङ्. दङ्. नोर्.बु. रिन्.छेन्. ल्तर ॥  
 गङ्.गिस्. व्सुङ्.व.मेद्.पडि. स्कु. नि. रव्.तु. म्जेस् ।  
 ग्दुल्.व्य.नम्स्.ल. स्त.छोर्गोस्.प.यि. ग्सु गस्<sup>५</sup>. शर्.वस् ॥
६६. दे.दग्. थम्स्.चद्. व्सम्. मि. ख्यव्. (प) स्प्रुल्.प. स्ते ।  
 व्सम्.दु.मेद्.पडि. येशेस्. रङ्.व्युङ्. गङ्. व्सोम्.प ॥  
 देर्. नि. ऽत्रस्.बु. म.लुस्. व्सोम्.पर्. ग्युर्.व. यिन् ।  
 थेग्.प.छेन्.पो. व्ल.मेद्. सिञ्जङ्.पोडि. लम्. ऽदि. नि ॥
६७. ऽत्रस्.बु. लम्.दु. ख्येर्.नस्. ग्दोङ्.नस्. ऽत्रस्. ग्नस् ।  
 ग्शान्.दोन्. फुन्.सुन्.छोर्गोस्.प. ऽत्रस्.बुडि. म्छोर्गो. यिन्. ते ॥  
 स्व्यङ्.प. ग्चो.बोर्. ग्युर्.प. सोगस्.लस्. दे. नि. ऽव्युङ् ।  
 शोल्.व. छेन्.पो. लस्. स्व्यङ्. रि.व.मेद्.पडि. सेम्स् ॥
६८. र्युन्. मि.ऽछद्.पडि. म्थु.लस्. डेस्.प. जेद्.पर्. ग्युर् ।  
 स्व्येस्.बु. ख्. नि. छेन्. गङ्.ल. ल्ह.जेस्. ऽदि. स्व्येस्.पस् ॥  
 ग्दुङ्.प. म.लुस्. थम्स्.चद्. स्कद्.चिग्. जोर्. शि. थिम् ।  
 सेङ्.गे. ग्लङ्.छेन्. स्म्योन्. दङ्. स्तग्. दङ्. द्रेद्.मो. दङ् ॥
६९. ग्चन्.सन्. खो.बो. दुग्.स्प्रुल्. मि. दङ्. ग्यङ्. (प.) दङ् ।  
 र्थल्.पोडि. छद्.प. दुग्. दङ्. थोग्. दङ्. ल्चे. ऽव्ब.प<sup>६</sup> ।  
 थम्स्.चद्. डो.बो. दे. जिद्. यिन्.फियर्. ग्नाद्.प.मेद् ।  
 नम्.तोर्ग. द्ग्र.छेन्. छोम्स्.पस्. द्ग्र. ऽदि. थम्स्.चद्. छोम्स् ॥

नाना जगत् सब निर्माण से (हुआ), अभेद ज्ञान ही सबका आत्मा ॥

६४. उत्पाद्य-उत्पादक का स्वभाव न पाते भी,  
भावना शक्ति से सब नाश करि ।

उभय-फल है स्व-पर के अर्थ संपत्ति,  
हेतु-फल की परीक्षा भी उसके भाव से न भिन्न ॥

६५. अधिष्ठान करुणावल से रूप-काय द्विविध हुआ,  
भद्रकलश, कल्पवृक्ष औ मणिरत्न जिमि ।  
न धरने की जो अतिमुन्दर, विनेयों की काया नाना रूप उद्गमन से ॥

६६. वे सर्व अचिन्त्य तारण है, चित्त में नहीं ज्ञान जो स्वयंभू भावना ।  
वहीं अशेष फल भावित है, अनुपम महायान-मार का यही मार्ग ॥

६७. मार्ग में फल को लेजा सामने फले स्थित,  
अन्य के अर्थ सम्पन्न फल-उत्तम है ।  
मुख्य भूत हो घोष आदि से यही हुआ,  
महामोक्ष से घोष इच्छा विना चित्त ॥

६८. अविच्छिन्न स्रोत की शक्ति से अवश्य पावै,  
पुरुष महाछाग जिससे यह हव्य उपजै ।  
अशेष ध्याल सब उपशम-मग्न, सिंह गज पागल बाघ औ भालू ॥

६९. श्वापद तीव्र आगीविष मानुष औ उलूक,  
राज-निग्रह विष छत औ जिह्वा निपात ।  
सर्व वस्तु सोई होने से हानि नहीं, महाशत्रु लुटेरा दुःकमन यह सबको लूटै ॥



७०. ब्दग्. ल्तडि. ग्दुग्.प. थुल्.बस्. ग्दुग्.प. थम्स्.चद्. थुल्. ।  
 दे.फियर्. सेम्स्.किय. नोर्.बु. ऽदि. नि. दम्.पर्. ब्योस्. ॥  
 अरे. म. म्खऽ.ऽग्रो. ग्सङ्क.बडि. स्कद्<sup>३</sup> ॥  
 स्कु. दङ्क. ग्सुङ्क. दङ्क. थुग्स्.किय. ग्सङ्क.ब. गङ्क. रिग्.प ।  
 स्क्येस्.बु. दे.ल. ग्दुग्.पडि. ल्कुग्स्.प. योद्. म. यिन् ॥
७१. लस्.र्नम्स्. गङ्क. लऽङ्क. द्गो. दङ्क. स्दिग्.प. ग्जिस्. तौग्स्. प ।  
 गङ्क. शिग्. चोल्.ब. दे. नि. ग्दुग्.पडि. स्व्योर्.बर्. ब्रशद् ॥  
 गङ्क.सग्.गिस्. स्प्योद्. दे. नि. रङ्क.गिस्. रङ्क<sup>३</sup> ब्चिङ्कस्.पऽो ।  
 मोस्.प. गर्.पुन्. छग्स्.प. यि. नङ्क.कियस्. ऽखोर्.बर्. ल्तुङ्क ॥
७२. तौग्.गिस्. द्गोस्.प. मेद्. चिङ्क. सङ्क.मस्. छोग्.पर्. सद् ।  
 गङ्क.ल. द्मिग्स्. क्यङ्क. द्मिग्स्.प. दे.यिस्. थर्.प. स्प्रिब् ॥  
 ब्सङ्क.पोर्. तौग्स्. क्यङ्क. दे.यि. नद्.कियस्. ऽखोर्.बर्. ल्तुङ्क ।  
 द्मन्.पडि. लस्.ल<sup>१</sup>. बर्तग्. न. नम्. स्मिन्. र्थुन्. मि.ऽछ्द् ॥
७३. ब्तग्. प. मेद्.पडि. सेम्स्. नि. नम्.म्खऽ.लत.बुर्. ग्नस् ।  
 नम्.म्खऽ. ग्नस्.प.मेद्.प. दे. जिद् थ.स्ञाद्.ब्रल् ॥  
 ब्रल्.बडि. सेम्स्.ल बर्त. दङ्क. द्प्यद्.प. मि.द्गोस्.किय ।  
 रङ्क.बशिन्. ग्शग्.प. जि.लत.बु. जिद्. दे.लत. जिद् ॥
७४. ब्रस्.बु<sup>५</sup>.थोग्स्.प.मेद. प. ग्दोद्.नस. रङ्क.ल. ग्नस्  
 दे.पियर्. रे. दङ्क. दोग्स्.पडि. ग्जोन्.पोस्. छिङ्क. मि. द्गोस् ॥  
 बर्द. दङ्क. थ.स्ञाद्. ब्तग्स्.प. कुन्. क्यङ्क. दे.बशिन्. ते ।  
 यङ्क. दम्. म.यिन्. यिन्.प. म्खस्.प.कुन्.गिय. युल् ॥
७५. गर्.यु. दङ्क. ऽब्रस्.बु. द्ध्योर्.मेद्. ऽदि. नि. स्ञिङ्क.पोडि. सेम्स्<sup>६</sup> ।  
 दे. म्योङ्क.व.यि. ऽबद्.पस्. कुन्.लस्.व्चल्. मि.द्गोस् ॥  
 दम्.प. व्स्तेन्. दङ्क. जोन्. दङ्क. थोस्.प. ल्हूर्. लेन्. दङ्क ।  
 योन्.तन्.द्वङ्क.लस्. ऽब्युङ्क. शोस्. ब्यिन्.लर्बस्. नोद्.प. दङ्क ॥
७६. तिङ्क.ऽजिन्. ब्लोर्. ग्शन्.नस्. नि. स्व्योर्. दङ्क. सगोम्.प. दङ्क ।  
 फन्. डेस्. सङ्कोन्.दु. सोङ्क.नस्. बर्तुल्.शुग्स्.<sup>७</sup> गङ्क. स्प्योद्. प. ॥

३ (ख). दोहाकोश-गीति (हिन्दी)

७०. आत्मदृष्टि-विष के दमनसे मय विष दमिन. अतः यह चित्त-मणि उत्तम करै  
अहां डाकिनी गुह्य वचन ॥  
काय वाक् मन के रहस्य को जो जाने,  
उम पुरुष को ध्याल (से) जड होना नहीं ॥
७१. कर्म जिन्हें पुण्य औ पाप दो ममझै,  
जो व्यायाम सोई व्याल-योग कहिए ।  
पुद्गल<sup>२</sup> करि सोई अपने आप बद्ध,  
अविच्छिन्न अधिमोक्ष भीतरी भव में गिरै ॥
७२. कल्पनासं अनिच्छुक पहिच ही गन मारै,  
जो उपलब्ध भी उम उपलब्धि से मोक्ष ढँकै ।  
भले समुझि भी उमके रोग से संमार में गिरै,  
हीन कर्म को परखै तो परिपक्व सन्तान अविच्छिन्न ॥
७३. ख-सम निर्विकल्प चित्त रहै, गगन (मय) त रहै सोई व्यवहाररहित ।  
विरहित चित्तमें कल्पना औ परीक्षा नहीं चाहिए,  
स्वभावस्थापना जेमे (हो) तैसे ही ॥
७४. फल अव्याहत प्रथमसे अपनेमें रहै,  
तिमसे आशा औ शंका प्रतिपक्ष से बँधे नहीं ।  
संकेत औ व्यवहार सब परीक्षा भी वैसी,  
असम्यग<sup>३</sup> होना सब पंडित का विषय ॥
७५. हेतु-फल अभिन्न यही हैं सार चित्त,  
इसे अनुभवके प्रयत्नसे सर्वत्र ढूँढिये ।  
सन्त-सेवन, उपश्रवणमें तत्परता औ, गुणवश संभूत यह अधिष्ठान-हानि औ
७६. समाधि बुद्धिमें अन्यसे प्रयोग औ भावना,  
हित निश्चय करि पूर्व-गतिसे व्रत जो आचरै ।

- दे. दग्. थम्स्.चद्. लोग्.तौग्. ब्चोस्.म. ल. स्प्योद्. यिन् ।  
 स्त्रिाङ्.पोडि. सेम्स्. नि. स्क्योन्. दङ्. योन्.तन्.नंम्स्. दङ्. ब्रल् ॥
७७. दोन्. दे.त्रिाङ्. नि. ब्य.ब. गङ्. यङ् मि.द्गोस्.किय ।  
 व्य.ब. ब्र्तङ्.बडि. सेम्स्. नि. ब्र्दे.ब.छे. म्छोग्. त्रिाङ् ॥  
 लङ्.रिग्. ल.सोग्स्. शे. ऽदोद्. ग्दोन्.ग्यिस्<sup>१</sup>. सिन् ।  
 द्ङोस्. पोर्. ऽजिन्. पडि. दुग्. गिस्. रङ्. गि. सेम्स्. ल. ख्यब् ॥
७८. फिय.रोल्. स्पङ्स्.पडि. सेम्स्. नि. नङ्.दु. ऽजोग्.प.चन् ।  
 स्त्रिाङ्.पो.ल. स्प्योद्. नंम्स्.कियस्. ऽदि. त्रिाङ्. ब्र्सम्.पर्. रिग्स् ।  
 तौग्.गे. स्प्रोस्.पडि. स्बुन्.प. फियर्. ब्र्सल्. नस् ।  
 ग्ङुग्. मडि. द्बङ्.पो.दग्.लस्. स्क्येस्<sup>२</sup>.प.यि ।
७९. दोन्. ग्यि. स्त्रिाङ्.पो. ब्र्ल.न.मेद्.प. ऽदि ।  
 तौग्स्.पस्. ब्र्चु.ब्रिाङि. स.ल. ग्नस्.पर. ऽग्युर् ॥  
 नंल्.ऽब्योर्. ये.शेस्.छेन्.पो. गङ्. ऽदोद्. प ।  
 रिम्. दङ्. चिग्.चर्. ऽजुग्.पडि. रिम्.छोस्.कियस् ॥
८०. ये.शेस्.म्छोग्.गि. गो.फङ्. स्त्रिाङ्.पो.नंम्स् ।  
 ब्र्कोद्.पस्. ऽप्रो<sup>३</sup>.नंम्स्. फ्यग्.र्ग्य.छे. थोब्. शोग् ॥  
 स्त्रिाङ्.पो. ब्र्ल.न.मेद्.प. ग्तन्.ल. द्बब्.प. दो.ह. म्जोद्. चेस्. द्य. ब.,  
 नंल्.ऽब्योर्.किय. द्बङ्.प्युग्. द्पल्. स.र.ह.पस्. म्जोद्.प. जौग्स्. सो ॥
- ॥ र्य.गर्.ग्यि. म्खन्.पो. ब्र्ज.पाणि. दङ्. ब्र्ल.म. अ.सुस्. शुस् ॥

- ये सब उलटी समझ कृत्रिम चर्या' है, मारचित्त(तां है)गुणदोषविर्वर्जित ॥
७७. सोई अर्थ-क्रियार कुछ नहीं चाहिए, क्रिया-रहित चित्त महामुख उत्तम (है)।  
पंच विद्या आदि राग-द्वेष रज्जुमे बंधा ही,  
धारा त्रिप अपने चित्तमें व्याप्त ॥
७८. बाहर क्षिप्त चित्त भीतर निक्षेपी, मारतः चर्याओंसे यही ठीक चिन्तन ।  
अवबोध-प्रपंच के भुस को बाहर फेंकि, निज इन्द्रियों से (जो) उत्पन्न ॥
७९. अनुपम यह अर्थ-सार, अवबोध कर चौदह भुवन में रहै ॥  
योग महाज्ञान जो चाहै, क्रम औ मद्यःप्रवेश क्रमधर्म से ।
८०. उत्तम ज्ञान का कपाट सारोंसे विरचित, जगतके लोग महामुद्रा पावें ॥

इति अनुत्तरसार निर्णय दोहाकोश नाम योगीश्वर श्री सरहकृत समाप्त ।  
भारतीय पंडित वज्रपाणि औ गुरु श्रमु द्वारा अनुवादित ।

१. व्रत, साधना । २. वास्तविकता की कसौटी हूँ —वस्तु का अर्थयुक्त क्रिया में समर्थ होना ।



४. क. ख. दोहा

( भोट, हिन्दी )

## ४(क). क. ख. दोहा

( भोट )

बचोम्.ल्दन्.ऽदस्. द्पल्. हे.रु.क.ल. फ्यग्.छल्.लो ।

61.१. क. नि. युम्.गिय. पद्.मडि. नङ्.दु. ग्नस्.प. ऽदि. यिन्. ते ।

ल्स्. नि. नम्.पर्.बचिङ्.स्.शिङ्. ब्दुद्.चि. ऽजुग् ॥

मगुल्.नस्. ख्युद्.पडि<sup>३</sup>. डों.वि. ग्शोन्.नु.म ।

ग.बुर्.ऽजुग्.चिङ्. ऽदि. नि. प्यिद्.कडि. यल्.ग्. यिन् ॥

२. ख. नि. नम्.म्वखऽ. ग्नस्.पर्. द्प्रल्. बडि. स्तोङ्.प. स्ते ।

द्गोस्. दङ्. मि.द्गोस्. म.गोस्. ग्चेर्.बु.ल् ॥

स. शिङ्. ऽथुङ्. यङ्. म्य.ङन्.ऽदस्.ल. गनस् ।

नल्.ऽव्योर्. ग्चेर्.बु. ब्रुङ्.नस्. शिन्.दु. द्गऽ ॥

नम्.म्व.दग्. नि. ख्यब्.चिङ्. वर्तन्. ग्युर्.पडो ।

३. ग. नि. नम्.म्वखऽ. ऽजो.शिङ्. जो.शिङ्. ऽथुङ्.बर्. व्येद् ॥

गं.गा. य.मु.न. ग्जिस्. नि. लेग्.पर्. छिङ्.स् ।

स्त्रिद्.ल. वर्तन्.ते. ऽप्रो. ऽोङ्. ऽछद्.पर. ऽग्युर् ॥

४. घ. नि. त्रिल्.बुडि. स्प्र.यिस्. द्पल्.ल्दन्. हे. रु. क. नि. म्जोस् ।

व्दग्.मेद्.म.यिस्. म्गुल्.नस्. यङ्. दङ्. यङ्. दु. ऽख्युद् ॥

नल्.ऽव्योर्.म.यिस्. लुङ्.नम्. यङ्. नस्. यङ्. दु. ऽफो ।

ख्यिम्.बद्.ग्.मो. नि. ग्जुग्.मडि. यिद्.किय. दङ्. ल.ऽफो ॥

५. ङ. नि. ग्जुग्.मडि. रङ्.ब्रशिन्. रङ्.ब्रशिन्. ग्यिस्. नि. स्तोङ् ।

ग्जुग्.मडि. ख्यिम्.बद्.ग्.मो. ल. द्गो. दङ्. मि. द्गो. मि. ऽफो.शिङ् ॥

\*स्तन्. ऽग्युर्, ग्युद्, शि ष० ५ख ३-५७ ख २ ।

# ४(ख). क. ख. दोहा

( हिन्दी )

नमो भगवते श्री हेरुकाय ।

१. क-का (कुलिश) स.तृकमल मध्यं म्बिन यह काया वेधि अमृत झरै ।  
गले वद्ध डोंवी कुम.री, कगूरसे निरुनी यह वमन्न थाग्वा ॥
२. ख-खा ख-सम वमि ललाट शून्य, पुण्य अ-पुण्य न चाहिये नग्नको ।  
खा - पी निर्वाणमें वस, नग्न योगी गहि अति आनंदित  
गुद्ध आकाश व्यापि दृढ़ हुआ ॥
३. ग-गा गमन लास्य करि-हरि स्थूल कर, गंगा यमुना दोनों को भले बांधै ।  
भव आश्रय करि गमनागमन खंडित होई ॥
४. घ-घा घनघन श्री हेरुक मुदित नैरात्मासे कंठे समाश्लिष्ट ।  
योगिनी पवन बार-बार डोलावै, घरती निज मन हंसमें लगावै ॥
५. ङ-ङ निज स्वभाव स्वभावसे शून्य, निज घरतीमें पुण्य-अपुण्य ना प्रसरे ।



- ग्युन्. दु. नैल्<sup>६</sup>. ऽब्योर्.प. नि. ब्दे.वर्.ब्येद्. नुस्. न ।  
 नुब्.मोडि. मुन्.प. छद्.नस्. ऽोद्.ग्सल्. पर्. ऽयुर्(.प) ॥
६. चर्. नि. द्गऽ.व. ब्शिन्. नि.ऽदि. दङ्. यङ्.दग्.ल्दन् ।  
 क्ये. हो. म्थऽ. ब्शि. दङ्. नि. ब्रल्.पडि. सेम्स्.ब्सुङ्.च्चिग् ॥  
 स्कद्.च्चिग्. ब्शि. नि. यङ्. दग्. बल्. मडि. ग्सुङ्. लस्. गो. वर्. ग्यिस् ।  
 थिग्. ले. ब्शि. नि. मोंङ्स्.<sup>७</sup> पडि. बग्.छग्स्.क्यिस्. नि. मि. शेस्. सो ॥
5619. छ्. नि. द्बङ्. पो. स्पोङ्स्. ल. दग्. पडि. रङ्. ब्शिन्. ग्यिस् ।  
 ऽदोद्. योन्. दङ्. नि. द्ङोस्. दङ्. द्ङोस्. मेद्. स्पोङ्स् ॥  
 चल्. चोल्. ग्तम्. नैम्स्. दोर्. चिग्. ऽदि. नैम्स्. क्यिस् ।  
 रो. ऽदि. थोङ्. ल. नम्.म्खऽ.ल. नि. लोङ्स्.स्प्योद्.ग्यिस् । ।
८. ज्. नि. स्वये<sup>८</sup>. दङ्. गं. दङ्. ऽछि.ब.मेद्.पडि. नम्.म्खऽ. यिन् ।  
 गङ्. दङ्. गङ्. दु. बल्तस्. क्यङ्. दे. दङ्. देर्. नम्. म्खऽो ॥  
 जि.ल्लर्. ग्नस्.प. दे.ल्लर्. दे. नि. दे. जिद्. दो ।  
 जि. ल्लर्. म्थोङ्. व. दि. ल्लर्. दे. नि. दोन्. दम्. मो ॥
९. झ. नि. मे.तोग्. मङ्.पोडि. स.बोन्. जि.ल्लर्. ब्स्तेन्. प. दङ् ।  
 दे.ल्लर्. स्न.छोग्स्.क्यिस्. नि. फुङ्.पो. ऽयुब्<sup>९</sup>.प. यिन् ॥  
 स्न.यिस्. स्त्रङ्.च्चि. दङ्. नि. मर्.गञिस्. ऽथुङ्.नुस्. न ।  
 युन्.रिङ्स्.दुस्. दग्. ऽछो.व. ल. नि. थै.छोम्. मेद् ॥
१०. स्कब्स्. ऽदिर्. ज्ञ.यिग्.गि. द्रङ्स्.पडि. छिग्स्. ब्चद्. ग्चिग्. मेद्. प.  
 ऽदि. ऽग्रेल्.पर्. यङ्. नि. ङ्. दङ्. म्छुङ्स्.सो.  
 शेस्.प. चम्.लस्. म. व्युङ्. ङो ।
११. ट. नि. क्ये.हो. यङ्.दग्. बल्.मडि. ग्सुङ्.गि. थिग्.ले. फब् ।  
 स.ग्शि<sup>११</sup>. ऽगुल्.बस्. नम्.म्खऽ.लस्. नि. थिग्.ले. ऽजग् ॥  
 लम्.लोग्. चल्.चोल्. म.ब्येद्. क्ये.हो. नल्.ब्योर्.प ।  
 ख्येद्.क्यिस्. चल्.चोल्.ग्यिस्. नि. ल्हन्. स्वयेस्. मि.र्ताग्स्. सो ॥

निरन्तर योगी सुख करै जो, निमि अंधकार काटि उसे प्रभा प्रकशै ॥

६. च-चा चउथ आनंद यह औ संयुक्त, अहो चउथ अनन्त चिन्त गहो ।  
चउ क्षण सम्यग् गुरुके वचनसे जानै, चउ विन्दु मूढ़ के रागसे न जाना ॥
७. छ-छा छाडहु इन्द्रिय प्रतिक्रमण शुद्ध स्वभावमे इच्छित गुण औ वस्तु-अवस्तु  
आलमाल १ कथायें छः डि इनसे, यह रसना देखनेको गगन में भिक्षा चरै ॥
८. ज-जा जन्मजरामृत्यु विना आकाश, जहँ जहँ भी देखै तहँ तहँ आकाश ।  
जैसे रहै, तैसे सोइ-सोई, जैसे अनुभवै तैसे परमार्थ सोई ॥
९. झ-झा बहु कुसुम का जैसे बीज औ आश्रय, तैसे नाना स्कन्ध सिद्ध है ।  
नासासे मधु घृत उभय पी सकै तो, दीर्घकाल तृप्ति होने में संदेह ना ॥
१०. इस स्थानमें अक्षरकी गिनतीका एक पद नहीं है । टीकामें  
भी और 'छ तुल्य' इति मात्र होने से अनुवाद नहीं हुआ ।
११. ट-टा अहो सद्गुरुवचन विन्दु के नीचे, मही कंपसे गगनसे विन्दु झरै ।  
विपथ टालमाल १ मत कर हे योगी, तू टालमाल सहज न समझै ।

१२. ठ. ठडि. स्रस्. नि. सङ्गस्.र्नम्स्. वर्जोद्.प. दङ् ।  
 ठ.यि. यि.गे. बलङ्गस्.नस्. ग्नस्.थोव्.ऽग्युर् ॥  
 छुल्. ब्शिन्. लोङ्. नि. तिङ्.ङे.ऽजिन्. नि. ऽफो<sup>४</sup>.बर्.ऽग्युर् ।  
 यङ्.दग्.ब्ल.मस्. नम्. म्खऽ. गो.बस्. व्यङ्.छुब्. यिन् ॥
१३. ड. नि. सङ्गस्.र्नम्स्. वर्जोद्. चिङ्. डों.वि. लोङ् ।  
 तुम्.मोस्. व्स्नेग्स्.शिङ्. छु.र्नम्स्. ऽज्जग्.पर्. ऽग्युर् ॥  
 ड.म.रु. नि. अ.न.ह.यि. स्कद्.दु. ग्रग्स् ।  
 ड.म.रु. दे. व्सुङ्गस्.वस्. नल्.ऽव्योर्. म. स्र. यिन्. ॥
१४. ढ. नि. रिल्.प. फोब्स्<sup>५</sup>. नम्. प.ग्चिग्.तु. ख्यब्.पर्. ग्युर् ।  
 सेम्स्.नि. ऽफोव्स्. ल्हन्.चिग्.स्क्येस्.पडि. म्छोग्. तु. ग्युर् ॥  
 दवङ्.पो. लङ्. यङ्. ऽफो. शिङ्. ल्ह. न. स्क्येस्. देर. ऽशुग्स्. सो ।  
 गब्. पडि. ख्यिम्.बद्गम्.मो. नि. द्ङोस्.पो. चिर्. मि. म्थोङ् ।
१५. ण नि. ग्ञुग्. मडि. रङ्.ब्शिन्. रङ्.ब्शिन्.ग्यिस्. नि. स्तोङ् ।  
 ग्ञुग्. मडि. यिद्. नि. गो. न. द्गे<sup>६</sup>. दङ्. मि. द्गे. मि. ऽगोस्. शिङ् ।  
 ग्ञुग्.मडि. ख्यिम्. बद्गम्.मो. नि.ल्हन्.चिग्.स्क्येस्.पस्. बङ्गस्. पर्.ग्युर् ।  
 र्थुन्.दु. ब्स्तेन्.न. स्क्ये. शि. दङ्. नि. ऽछिङ्.बर्. ऽग्युर्. ब. मेद् ॥
१६. त. नि. स्कु.ग्सुम्. ग्शुङ्.ग्सुम्. वर्तन्.तस्. शस्.पर.ग्यिस् ।  
 यि.गे. ग्सुम्. नि. स.र.ह.यि. छिग्. ल. वर्तन्. ते. ब्स्गोम्स्.<sup>७</sup> ॥  
 सेम्स्.नि. म्जाम्.प.ञिद्.क्यि. ब्सम्.ग्तन्.ग्यिस् ।  
 गल्.ते. च्.बडि. सेम्स्. दङ्. ब्लो. ग्जिस्.ग्चिग्.तु. व्येद्.प. नुस्. ॥
१७. सेम्स्. नि. शिङ्. छद्. पर्. ग्युर्. पस्. रङ्. ब्शिन्. ग्चिग्. यिन्. नो ।  
 थ. नि. गङ्.छे. ना.द. दङ्. थिग्. ले. ऽदि. स्रस्. न ॥  
 नल्. ऽव्योर्. म. यि. स्र. यिस्. दे<sup>८</sup>. छे. ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. पर्. तोंग्स् ।  
 जि. ल्तर. रङ्. द्गर्. ग्नस्. पर्. ग्युर्. न. छे. ऽदि. ऽफेल्. बर्. ऽग्युर् ॥
१८. द. नि. स. र. ह. यि. छिग्स्. थम्स्. चद्. व्स्तेग्स्. दङ्. ऽछि. मेद्. ऽग्युर् ।  
 ऽो. म. ग्जिस्.क्यिस्. ब्दे.म्छोग्. दे. ल. ख्रुस्.ग्यिस्. शिग् ॥

१२. ठ-ठा ठवतिसे मंत्रों का वांचना, ठण अक्षर उठि स्थान पावै ।  
शीलसदृश मांग समाधि मंचरै, मद्गुरु गगन जान बोधि है ॥

१३. ड-डा डोंवी अन्ध मंत्रोंको पढ़े, चंडाली शीर्ष जल जर्ग ।  
डमरु अनहद वाजै, सो डमरु कहै योगिनी शब्द है ।

१४. ढ-ढा ढलै एक प्रकार से व्याप्त, चित्त सहज उत्तम होइ ।  
पाँचो इन्द्रिय ढलि सहज तह रहै, गुण घरनी वस्तु वयों ता देखै ॥

१५. ण-णा णिअ (निज) मन स्वभावसे घुन्य,  
निज स्वभाव जाने तो न पुण्य अपुण्य न चाहिये ।  
निज घरनी सहज आयत्त होइ, सदा आश्रय ले जनम-मरण ना रुकै ॥

१६. त-ता त्रिकाय त्रिग्रन्थ दृढ़ जाने, त्रि-अक्षर सरह वचन दृढ़ भावै ।  
तुल्य चित्त की समाधि से, यदि मूल चित्त शो बुद्धि उभय एकत्र कर सकै,  
तो चित्त क्षेत्र उच्छिन्न होने से स्वभाव एक रहै ।

१७. था-था थिर कर चन्द्र-गगनतो, स्थानोंको छाडि घुस घरीर में जिमि होइ ॥

थान थिर करि पवन से मूत्र जाइ, थिर बैठे तब्ये वृद्धि होइ ।

१८. द-दा दुइ सभी सरहकी वाणी अमर होइ,  
दोनों दुद्धी-दूध से उन उत्तम सुख में नहाइ ।

- थिग्.ले.ग्जिस्. नि. शेस्. न. दग्. पडि. रङ्.ब्रशिन्. यिन् ।  
 स्दुग्.ब्रस्डल्. ग्दुग्.प.चन्. नि. दङ्गोस्. दङ्<sup>२</sup>. दङ्गोस्.प.मेद् ॥
१९. ध. नि. ध.यि. रङ्.ब्रशिन्. ब्रक्.ब्रशल्. व्येद्.चिङ्. ग्नस् ॥  
 ब्रक्.ब्रशल्. व्येद्. क्यङ्. मि.मथोङ्. नङ्.दु. शुग्स्. नस्. सोङ् ॥  
 ख्रुस्.मखन्.मो. नि. स.र.ह.यि. छिग्.गिस्. लोङ् ।  
 ग्यो.स्ग्युडि. स्व्योर्.ब. नम्.मखडि. रङ्.ब्रशिन्.दु. नि. ग्यिस् ॥
२०. न. नि. स्न.छोग्स्. छुल्.ग्यिस्. लेग्स्.पर्. गचिग्<sup>३</sup>. तु. ऽफो ।  
 ऽजिग्.तेन्.प.र्नम्स्. म.गो.वस्. न. स्न.छोग्स्. स्म्र ॥  
 गङ्.पियर्. ऽजिग्स्.प. मेद्.प. दे.फियर्. शो.गम्. ऽजल् ।  
 सिद्. मिन्. म्य.डन्.ऽदस्. मिन्. ग्शन्. यङ्. मेद्.प. यिन् ॥
२१. प. नि. वृदुद्.चि. लङ्. नि. स्न.रु. ब्र्लुग्स्.पर्. व्य ।  
 पद्. म. दो. जे. स्व्यर्. शिङ्. स्व्यर्. शिङ्. म्जाम्. जिद्. ऽग्रुब् ॥  
 मे. तोग्. पद्. मडि.<sup>४</sup>. दो. जे. ग्दन्. नि.छोद्. पर. ग्यिस् ।  
 पद्. मडि. दे. जिद्. मि. शेस्. ब्रदे. छेन्. र्ग्यल्. पो. मिन्. ॥
२२. फ. नि. स्रो. शिङ्. ब्रस्दु. वडि. सेम्स्. ऽदि. नम्. म्खऽ. ल्त. बु. यिन् ।  
 स्रो. प. मि. मथोङ्. नि. नम्. म्खऽ. ल्त. वुर्. ऽदोद् ॥  
 फट्. क्यि. स्म्र. दङ्. हुं. गि. स्म्र. नि. जि. ल्तर. ऽफो ।  
 दि. ल्तर. दपग्. वसम्. ल्जोन्. शिङ्. स्पोङ्. पो<sup>५</sup>. ब्रशिन्. दु. ऽफो ॥
२३. ब्र. नि. नग्स्. क्यि. छङ्.पडि. मे. तोग्. ख. सुम्. व्ये. वडि. जिङ्. नम्स्.  
 ऽजिन् ।  
 थेग्. चिङ्. यिद्. ऽोङ्. ऽदोद्. पडि. ऽज्रस्. बु. दप्यिद्. कडि. यल्. ग. ब्रशिन् ॥  
 द्रवङ्. दु. ब्रस्दु. शिङ्. लेग्स्. पर्. गर्. नि. नन्. तन्. व्येद् ।  
 ऽप्रो. ऽदुग्. व्येद्. पडि. नल्. स्व्योर्. म. नि. रङ्. गि. लुस्. ल. ब्रस्लङ्स् ॥
२४. भ.<sup>६</sup> नि. भग. जिद्. नि. भगडि. रङ्. ब्रशिन्. स्तोङ्. पर्. ग्नस् ।  
 दे. नि. द्गो. दङ्. मि.द्गो. मेद्. पर्. म्दऽ. ब्रस्मुन्. ड. यिस्. स्म्र ॥

दुइ विन्दु जानै शुद्ध स्वभाव हे, दुःख विपथर वस्तु अवस्तु (है) ॥

१९. ध-धा धोत्री स्वभाव धोइ बैठ, धोवते भी न देख भीतर बैठ जा ।  
धोत्रिन सरह की वाणी मांगती, धुन मायायोग गगनस्वभाव से ॥
२०. न-ना नाना प्रकार से भले, एकत्र लग, पामर ना वृझे नाना कहै ।  
जो कि नाच भय नहीं सो युक्त मिला, ना भव ना निर्वाण ना अन्य ही है ।
२१. प-पा पंच अमृत नामामें डाल, पद्म वज्र जोडि जोडि समता साथ ।  
पद्म-पुष्प से वज्रासन पूज, सोई पद्म न जाने तो महामुख राजा नहीं ॥
२२. फ-फा फटकार यह संग्रह चित्त ख-सम है, उत्साह ना देखै भी खसम चाहै ।  
फटकार औ हुंकार जिमि प्रसरै, तिमि कल्पद्रुम विरति भासै ॥
२३. व-वा वनका ब्रह्मपुष्प मुखपरिमंडल विभाग तडाग धरै,  
वज्र जा मनोहर इच्छित फल वसन्त (-पल्लव) जिमि,  
वसमें संचय कर भले ना उद्यम कर,  
विहरत जग योगिनी अपने शरीर मे ले ॥
२४. भ-भा भग ही भग के स्वभाव शून्य वसै भनइ,  
मैं सरह सो. पुण्य-अपुण्य ना भनूँ ।

- ब्ल.मडि. गसुङ्क.गिस्. ऽदोद्. योन्. लङ्. ल. सो ।  
 छुल्.पर. म. व्येद्. सेम्स्. जिद्. ऽदि. नि. नम्.मखऽ. यिन् ॥
२५. म. नि. नन्. तन्. गियस्. नि. यङ्. दङ्. यङ्. दु. छङ्. ऽज्जग्. चिङ् ।  
 दपल्<sup>१</sup>.ल्दन्. ब्ल.म. व्स्तेन्.पस्. च्.व. गो.वर.गियस् ॥  
 गल्.ते. च्.वडि. सेम्स्. दङ्. ब्लो. ग्जिस्. ग्चिग्. तु. व्येद्. तुस्. न ।  
 सेम्स. नि. शि. शिङ्. छद्. पर. ग्युर. पस्. रग्. व्शिन्. ग्चिग्. यिन्. नो ।
२६. थ. नि. गङ्.छे. ना.द. दङ्. थिग्.ले. ऽदिर्. स्त्रस्. न ।  
 नैल्. ऽव्योर्. म. यि. स्त्र. यिस्. दे. छे. ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. पर. तौग्स् ।  
 जि. ल्तर. रङ्. द्गर्. ग्नस्. प. दे. व्शिन्.दु. नि. ब्तेन् ।  
 स्क्ये. शि. ग्जिस्. क्यिस्. ऽजिग्स्.(प.)मेद्.प. थोब्. पर. ऽग्युर ॥
२७. र. नि. जि. म. स्.ल. वडि. थिग्. ले. नम्. मखऽ. व्शिन्. दु. शि. व. मेद् ।  
 जि. मस्. गङ्. न. ब्दे. व. छेन्. पोडि. छुल्. नि. शिन्. दु. जेस् ॥  
 र. स. ना. नि. थिग्.<sup>२</sup>ले. थिग्.ले. फोब् ।  
 जिन्. दङ्. म्छन्. दु. ग्जुग्. मडि. यिद्. क्यि. डङ्. दु. सोद् ॥
२८. ल. नि. क्ये. हो. लुङ्.गि. ख्यिम्. ब्दग्. मो. दे. ख्यिम्. नङ्. लोङ् ।  
 ना. द. थिग्. ले. लोङ्. चिग्. छोस्. नि. सग्. मेद्. यिन्. नो ॥  
 ल. ल. ना. दङ्. व्चस्. दङ्. र. स. अ. व. धू. मिडि. च्. नङ्. नस् ।  
 थिग्. ले. ऽज्जग्. प. दे. जिद्. शिन्. तु. डो. म्छर्. फियर्. नि. ऽथुङ् ॥
२९. व. नि. छु. यि. म्छोग्. नि. रोल्. पस्. ऽथुङ्. चिग्. क्ये ।  
 दो. जे. नैल्. ऽव्योर्. म. नि. रोल्.पस्. ऽफो ॥  
 गङ्. छे. दपल्. मो. नैल्. ऽव्योर्. म. नि. ल्हन्. चिग्.स्क्येस्. पस्. म्जोस् ।  
 दे.यि. छे. न. ड. म. ह. नि. अ. न. ह. यि. स्कद्. दु. अग्स् ॥
३०. श. नि. रङ्.व्शिन्.गियस्. नि. ल्हन्. श्रुब्. अ. न. ह. यि. स्त्रस् ।  
 थिग्.<sup>५</sup>ले. ऽज्जग्. प. गङ्. शिङ्. नैल्. ऽव्योर्.म. यिन्. म्गोन् ॥  
 स. र. ह. यि. छिग्. गिस्. ग्सिल्.वडि. स्त्रर्. नि. ब्य ।  
 नम्. मखऽ. ऽजो.शिङ्.. ऽजो.शिङ्. थिग्.ले. फोब्. ल. ऽथुङ् ।

भुंज गुरुवचनसे पंच कामगुण<sup>१</sup>, भ्रान्ति न कर यह चित्त आकाश है ॥

२५. म-मा मदिरा बलात् पुनः पुनः झरै, श्रीगुरुसेवा से मूल को जानै ।  
मूल-चित्त औ उभय एक तो कर सकै, चित्त मरि नष्ट होने से स्वभाव एक है ॥

२६. य-या जब्वै नाद औ विन्दु यहां बोलै,  
तव्वै योगिनीके शब्दमे सहजै समुझै ।  
जैसे स्वानन्द में स्थित तैसे आश्रय (लेड),  
जनम मरण दोनोमे निर्भयता पावै ॥

२७. र-रा रवि-शशि विन्दु खसम अ-मर, रविसे पूर्ण महासुख प्रकार अतिसुंदर ।  
रसना विन्दु-विन्दु चुवै रातिदिन, निज मन के हंस मारै ॥

२८. ल-ला लेहु पवनकी करिनी सो घर भीतर अंध,  
नाद विन्दु अन्ध धर्म अनास्रव है ।  
ललना सहित रस(ना) अवधूति के भीतरसे,  
विन्दु झरै सोई अतिअचरज के लिये पी ॥

२९. व-वा वर वारि ललित पीओ रे, वज्रयोगिनी ललित प्रकाशै ।  
जब्वै श्रीयोगिनी सहजसे मुदित, तव्वै डमरू अनहद ख्यापै ।

३०. श-शा स्वभावसे स्वकृत अतहद शब्द, विन्दु झरै जो योगिनी स्वामिनी ।  
सरह वचन से शीत शब्द करे,  
गगन लास कर लास कर शशधर विन्दु पी ॥



३१. ष. नि. गङ्.छे. लहन्.चिग्. स्वयेस्. पडि. म्छोग्.गिस्. म्जोस् ।  
 दे. छे. रङ्. दङ्. ग्शन्.गिय. व्य. छग्स्. ङगस् ॥  
 म्जम्. दङ्. मि<sup>४</sup>. म्जम्. नैल्. ऽ योर. म. ऽदि. शुव्. पर. थे. छोम्. मेद् ।  
 क्ये. हो. म्दऽ. व्स्मुन्. नि. ऽदि. ल. थे. छोम्. मेद्. चेस्. स्त्रा ॥
३२. स नि. द्ङोस्. पो. ऽदि. कुन्. द्ङोस्.पो.मेद्. पर. म्जाम् ।  
 स्तोङ्. प. स्त्रिङ्.जै. म्शुल्.पस्. म.स्पङ्.स्.गिग् ॥  
 लहन्.चिग्.स्वयेस्.पडि. द्गऽ.यस्. तैग्. तु. म्जोस् ।  
 लहन्. स्वयेस्. म्छोग्. ऽदि. <sup>६</sup> गङ्. गिस्. क्यङ्. नि. ऽछिङ्. मि. नुस् ॥
३३. ह. नि. क्ये. हो. व्जद्. पऽम्. स्वये. व. स्न. छोग्स्. वियस्. नि. छिम् ।  
 क्ये. हो. म्दोङ्.प. ऽफोग्. चिङ्. व्कङ्. यङ्. द्गऽ. व. मेद् ॥  
 गङ्. छे. लुस्. ल. द्वङ्. फ्युग्. म्गोग्. मेद्. छिङ्.स्. शिग्. दङ्. ।  
 रोल. पस्. दे. छे. व्ल. मेद्. लेन्म्. पर. ऽशुव्. पर. ऽग्युर्. ॥
- 57b३४. क्ष. नि. युल्<sup>९</sup>. दु. लहुङ्. न. व्यङ्. छुव्. सेम्स्. नि. छुद्. सोस्. ऽग्युर् ।  
 क्ष. क्षडि. स्त्रस्. नि. गैय. म्छो. दग्. क्यङ्. स्केम्स्. नुस्. न ॥  
 ऽदि. नि. च्चुव्. मोडि. व्दार्. व्शिन्. तिङ्. जिन्. नोन्. पोस्. द्गऽ. बर्. ऽग्युर ।  
 क्ये. हो. ग्चेर्. टुर. थ्. स्. च्. स्. वर्. होस्. पर. थे. छोम्. मेद् ।
- क. ख. दो. ह. शोस्. द्. य. नै. ऽयो. ग्. गि. द्. द्. पशु. छेन्. पो. व्पल्. व्रम्. स  
 छेन्. पो. स. र. हडि. शल्. रङ्. नस्. श्. ङ. प. जै. ग्. सो ।  
 युल्. को. स. लर्. ल्हुङ्. पडि. द्. स्. नैल्. ऽशार्. प. छेन्. पो. ब्रै. रो. च. न.  
 व्ज्रडि. शल्. रङ्. पस्. रङ्. ऽग्युर. दु. प्हुङ्. पडो ॥

**ॡ. कायकोश अढृतवजूगीति**  
( भोट, हिन्दी )

# ५(क). स्कुडि. वृजिद् ऽञ्जि.नेद्.र्षो.र्जिडि. ग्लु<sup>१</sup>

(भोट)

ऽजम्.द्वपल्.ग्वोन्.नुर.ग्युर.<sup>१</sup>व. ल. पयग्.ऽछ्ल्.जो ॥

१. नाना मत

१. क्ये.हो. द्वबङ्. दङ्. व्येद्.पर्. ऽजिन्.प. रल्.प.चन् .  
ब्रम्. से. ग्चेर्.वु. सङ्स्. र्येस्. ग.प. दङ्. नि ॥  
सो.न.ञिद्. वृशि. ऽदोद् पडि. र्येङ्. फन्.प. ।  
थम्स्.चद्.मुख्येन्. शेस्. सेर्.नन्. रङ् म.रिग् ॥
२. देस्.नि. स्लु.वर्. ऽङ्. स्त. थर्.लम्. थर्.लम्. रिङ् ।  
व्ये.ब्रम्.प. दङ्. म्दो.स्दे<sup>१</sup>. स्ङ्गस्.प. दङ् ॥  
नेल्.ऽव्योर्.प. दङ्. द्वु.म. ल.गग्. ते  
ग्चिग्.ल. ग्चिन्. रक्योन्.ऽ.ग्.शिङ्. चोद्.पर्. व्येद् ॥

२. सहजयोग, महामुद्रा

३. स्नङ्.स्तोङ्. मुखऽ. म्जम्. दे.ञिद्. मि.शेस्. प ।  
ल्हन्.चिग्.स्वयेस्. ल. र्येव्.क्यिस्. पयोग्स्.पर्. ग्युर ॥  
स्कु.गसुम्. थुग्स्. ग्सल्. मेर्. मेर्. रस्. दङ्. मर्<sup>१</sup>. नग्.वृशिन् ।  
खो.न.ञिद्.ल्दन्. रङ्.स्नङ्. मर्.मे.ल्ल.बुर्. ग्सल् ।
४. रङ्.रिग्.ग्सल्.वस्. ऽप्रो.व.कुन्.ल. ख्यव् ।  
द्व्येर्.मेद्. छुल्.ग्यिस्. म.स्वयेस्.म.यि. रङ् वृशिन्. यिन् ॥
- 107a व्दग्.नु. ऽजिन्.पडि. सेम्स्.क्यिस्. द्रन्.प. स्न्.छोग्स्.र्युडि ।  
ङ्गो.बो.ञिद्.ल. स्नङ्.छ्ल्. चिर्. यङ्<sup>१</sup>. ऽछर् ॥

१. स्तन्. ऽग्युर, र्युद्, शि, पृ३३ १०६ ख४--११३ क २ ।



५. मुन्.प.ल्ल.बुडि. वग्.ल. कुन्.ग्नस्. क्यङ्. ।  
 दे. ञिद्. जौद्.पडि. नैल्.ऽव्योर्. स्प्रोन्.मे. ऽवर् ॥  
 सिञ्जङ्. पोडि. दोन् नि. तौग्.गेडि. युल्.ल्स्. ऽदस् ।  
 मङ्गोन्.दु. मि.ग्सल्. द्रन्.पडि. म्थु.यिस्. व्स्त्रिब्व्स् ॥
६. तौग्.मेद्. देस्. शेस्. द्रन्.मेद्. व्दे. पडि. लम्<sup>१</sup> ।  
 ग्रोद्. मेद्. ऽन्नस्.बु. व्लो.लस्.ऽदस्.पर्. स्नङ्. ॥  
 ल्हन्.चिग्.स्वयेस्.प. थुग्स्.किय. ग्तेर्.म्जोद्.नस् ॥  
 दग्. दङ्. म.दग्. ऽखोर्.ऽदस्. ग्सुगस्. सु. स्नङ् ॥
७. स्नङ्. यङ्. स्वये.व.मेद्.पडि. डङ्.दु. ग्चिग्. ।  
 दे.ञिद्. मि.ग्यो. थ.स्ञाद्. रङ्.व्शिन्. मेद्. ॥  
 फ्यग्.र्ग्य.छेन्.पो. म्युर्.<sup>२</sup> मेद्. व्दे. छेन्. दङ् ।  
 म्यु.ल. मि.ल्लतोस्. ऽन्नस्.बु. व्लो.लस्.ऽदस् ॥
८. फ्यग्.र्ग्य.छेन्पो. जौग्स्. पडि. ऽन्नस्.बु. यिन्. ।  
 थ.स्ञाद्.लम्.गिय. दोन्.ल. म्.छोन्.ते. स्व्यर् ॥  
 ब्जौद्.ब्येद्.मेद्.प. सिञ्जङ्.पोडि. दोन्. ।  
 कुन्.गिय. व्जौद्.ब्य. द्रन्.मेद्. रिग्.पडि. द्ब्विङ्ग्स् ॥
९. मोस्.पडि<sup>३</sup>. शेस्.पस्. तौग्स्.प. थ.दद्. क्यङ् ।  
 द्रन्.मेद्. ऽदि. ल. ब्जौन्.प. योद्. रे. स्कन् ॥  
 लम्.गिय. चोल्.वस्. ऽन्नस्.बु. सो.सो. यङ् ।  
 द्रन्.प. ऽदि.ल. व्देन्.प. योद्. रे. स्कन् ॥
१०. ब्तङ्. स्त्रोम्स्. द्बङ्.गिस्. रे. ऽजोग्. थ.दद्. क्यङ् ।  
 स्वये. मेद्. ऽदि. ल. ग्ञिस्.सु. योद्. रे. स्कन् ॥  
 यिद<sup>४</sup>.ल. व्य. दङ्. मि.व्य. स्ञाद्.ऽदोग्स्. क्यङ् ।  
 व्लो.ऽदस्. ऽदि.ल. व्चल्.दु. योद्. रे. स्कन् ।
११. स्नङ्.बडि. क्येन्.गियस्. द्रन्.प. स्वये.ऽग्युर्. यङ् ।  
 स्तोङ्.बडि. द्रन.मेद्. क्येन्.लस्. ऽद्रऽ.व.मेद् ॥

५. अंधकार जिमि अप्रमाद में सर्वस्थिति भी, सोई लेने को योगप्रदीप जलावै सार-अर्थ तर्कके विषयसे परे, पहिले अप्रकट स्मृति-शवितसे द्वादित ॥
६. उस निर्विकल्प से स्मृति, विनु सुख-मार्ग, अगम फल वद्धि से परे प्रकाशै । सहज चित्तकी विधि से, शुद्ध-अशुद्ध संसार से परे रूप भासै ॥
७. भासित भी अजहंम में एक, सोई अचल व्यवहार निःस्वभाव । महामुद्रा अविकार औ महासुख, हेतु न देख फल (है) वद्धि से परे ॥
८. महामुद्रा निःपन्न फल है, व्यवहार मार्ग के अर्थ आयुध जोड़ । न कहने का सार-अर्थ, सर्व वाच्य स्मृति विनु विद्या-धातु ॥
९. अधिमुक्ति<sup>१</sup> ज्ञानसे अवबोध भिन्न (होते) भी,  
इस विस्मृतिमें मिथ्या है रे कह ।  
मार्ग के अभ्याससे फल पृथक् (होते) भी, इस स्मृतिमें सत्य है रे कह ॥
१०. उपेक्षा वश आशा निक्षेप से भिन्न भी, इसी अ-जातमें द्वैत है रे कह । मनमें करना न करना व्यपदेश<sup>२</sup> भी, इस बुद्धिसे परेकी अपेक्षा है रे कह ॥
११. आभास प्रत्ययसे स्मृति उत्पन्न (हो) भी,  
शून्य विस्मृति प्रत्ययसे अतिक्रमण नहीं ।

तोंग्.मेद्. दोन्.ल. व्य.ब्रल्. व्ल्त.रु. मेद् ।  
रङ्ग.ल. ग्शन्.नस् छोव्.ब. अ. रे. ऽष्टु ल् ॥

१२. क्ये.हो<sup>९</sup>. दो<sup>१०</sup>.जे.ल्ल.बुर्. तोंग्स्. द्कऽ. खो.न.जि-द् ।  
म.शेस् चोल्.बस्. स्प.फियर्. व्रङ्ग.सेम्स्.कियस् ॥  
ब.मेद्.पडि. दोन्. दङ्ग. फ्रद्.पर्. द्कऽ ।  
व्य.ब्रडि. रङ्ग. ब्रश्िन्. मि.व्य. शेस्. ग्युर्. न ॥
१३. ग्य.ल.बडि. द्गोङ्गस्.प. जग्.गचिग्. युल्.लस्.ऽदस् ।  
स्कु. नि. मि.ऽग्युर्. छोस्.जिद्. खोङ्ग<sup>११</sup>. स्तोङ्ग. लग्स् ॥  
लुस्.ल. मि.ग्नस्. व्य. दङ्ग. ब्येद्.प.व्रल् ।  
लम्. व्स्लद्. लम्.गिय. ऽब्रस्.बु. म्थोङ्ग. मि. ऽग्युर्. ॥

### ३. महासुख, अकथ

१४. स्क्ये.मेद्. दङ्ग. ल. मि.व्येद्.पयि. थुग्स् ।  
द्रन्.मेद्. दङ्ग. ल. मम्.जाम्. ग्शग्. व्दे.ब.छे ॥
- 107b व्दे.छेन्. दङ्ग.ल्. मि.तोंग्. र्ग्युन्.ल. ग्नस्. ।  
यिद्.ल. मि.व्येद्. स्नङ्ग.ब. रङ्ग<sup>१२</sup>.गर्.दग् ॥
१५. क्येन्. नि. द्रन्.प. म.ऽगग्. शेस्. प. ग्सल् ।  
च.ब.गचिग्.र्ग्यस्. स्क्योन्.मेद्. पद्.म.व्रश्िन् ॥  
ऽग्रो.ब.कुन्.ल. ल्हन्.चिग्.स्क्येस्.व्रश्िन्. ग्नस् ।  
ग्शन्. योद्. लोङ्ग. म्थोङ्ग. स्तोव्स्.कियस्. व्स्लद्. मोद्. क्यड ॥
१६. जि.व्रश्िन्. थोग्.मडि. पद्.मडि. मे.तोग्.व्रश्िन् ।  
लेग्स्. म्थोङ्ग. स्तोव्स्.किय. पयग्.र्ग्य.छे. मि.ग्यो ॥  
ग्सु.ङ्ग. दङ्ग. ऽजिन.पडि. जोंग्.मस्. व्स्लद्. ग्युर्.क्यड ।  
दुस्.ग्सुम्. ऽग्युर्.मेद्. च.ब. ब्दग्.जिद्.छे ॥
१७. नम्.शेस्. लुङ्ग. दङ्ग.ऽोग्. सगो. सङ्गस्. ल.सोग्स् ।  
ये.नस्. स्प्योद. ब्रल. रङ्ग.ग्शन्. ब्र्तङ्ग. ग्शग्. ब्रल् ॥

- निर्विकल्प अर्थमें निष्क्रिय दृष्टि नहीं, अपनेमें परमे ढूँढना अरे भ्रम ॥
१२. अहो वज्र-सदृश दुर्गवबोध तत्त्व, न जान अभ्यासमे शब्दके लिये  
मधु-चित्तसे ।  
निष्क्रिय अर्थ का संग कठिन, क्रिया का स्वभाव न करे जान कर ॥
१३. जिनका<sup>३</sup> आशय एक ही विषयानीन, काय निर्विकार धर्म ही कोटरीकृत ।  
शरीर में ना रह औ क्रियाहीन, मार्ग मलिन(तो) मार्गफल ना दीखै ॥
३. महामुख अकथ
१४. अजात निरंतर अ-कर्ता चित्त, विस्मृति औ ममापत्ति (हैं) महामुख ।  
महामुख औ निर्विकल्प स्रोतमें वसै, अमनसिकार भासै स्वभूमिमें शुद्ध ॥
१५. प्रत्यय तो स्मृति ना निरौधै ज्ञान प्रकाशै, एक मूल निर्दोष फुल्ल पद्म जिमि ।  
सब जग में सहज जिमि रहै, अन्य तो है अंधदृष्टि बलसे कलुष भी ॥
१६. जैसे आदिम कमल-पुष्प सुदर्शन बलकी महामुद्रा अचल ।  
बहन-ग्रहण के दोलनसे कलुषित भी, त्रिकाल निर्विकार मूल महात्मा ॥
१७. विज्ञान पवन अधोद्वार मंत्र आदि से,  
चर्याहीन स्व-पर त्याग-स्थापना-विहीन ।



- ऽखोर.वर्. मि.सेम्स्. म्य.ङन्.ऽदस्. मि. ल्तोस ।  
दुस्.ग्मुम्. न्निद्.ग्मुम्. स्कु.ग्मुङ्.थुग्स्. (ग्मुम्.) ल ।
१८. दुस्. गङ्.ल. मि.ऽवद्. वलङ्.दोर्. ल्त.व.मेद्. ॥  
मथऽ.द्वुस्. मि. ऽव्येद्. द्वु.म. द्रङ्.पोऽि. लम् ।  
व्वस्.ववोस्.न्न.न शुग्स्.क्लि.म. म्छोग्. सो ॥  
व्वोद्.ऽजुग्. रिम्.सोग्स्. फ.रोल. पियन्.पऽि. लम् ।
१९. जे.लम्. ग्शग्.नस्. रिङ्.दु. ऽखोर.वऽि. र्ग्यु ॥  
ल्हन्.त्रिग्.स्वये. दङ्. ग्जे.न.पो. ऽग्रन्.स्.ल ब्रल ।  
खो.न.ञिद्.ल. स्कु.व्शि. ये.शेस्.ल्ङ् ॥  
जे.न.मोङ्.स्. ल.सोग्स्. छो.स्.गस् ऽवोर.वऽि.लम् ।
२०. युल्.दु. गङ्. स्वयेस्. मि.स्व्यद्. युल्.मेद्. मथोङ् ॥  
ङो.वो.ञिद्.ल. द्गऽ. दङ्. मि.द्गऽ. मेद्<sup>४</sup> ।  
ऽजिन्.तोर्. ग्जिस्. व्वस्. म.व्वोस्. छोस्.क्वि. छु ॥  
द्वङ्.पो. रङ्. यन्. म.सिन्. स्तोङ्.पर्. ग्नस् ।
२१. स्मर्. मेद्. जम्स्.मु. म्योङ्.व. र्ग्युन्. मि. ऽछद् ॥  
रङ्.गि. र्ग्युद्.ल. स्व्यर्. ते. शेस्.पर्. व्य ।  
द्रि.म.मेद्.पऽि. दो.ल. पथग्.र्ग्ये.छे ॥  
र्ग.म्छो. नम्.म्वऽ.लत.वुऽि. जम्स्.म्योङ्. ऽव्युङ्<sup>५</sup> ।
२२. द्वङ्.पो.युल्.त्रल्. ल्तुङ्.वऽि. ग्यङ्. स. मेद् ॥  
द्रन.पस्. सिन्.पस्. ख्योद्. जिद्. छग्स्.प. स्ते ।  
रङ्.वतङ्. ग्शग्.पस्. स्प्रीस्.प. स्लर्.ल. लदोग् ॥  
ऽछर्.नुव्. मेद्. न. नम्.तोर्. मुन्.प. नुव् ।
२३. छोस्.ञिद्. रो. म्जम्. बुद्.पऽि. मे.तोग्. म्छङ्स् ॥  
स्व्योन्. दङ्. योन्.तन्. द्व्येर्.मेद्. <sup>६</sup> जिद्. दु. म्छङ्स् ।  
ङो.म्छर्.छे. स्ते. जम्स्. म्योङ्. स्मर्. म. ग्तुब् ॥  
वदे.व. द्व्येर्.मेद् जि.ल्लर्. छ्.ग्शग्.व्शिन् ।

संसार ना चिन्तै निर्वाण न देखै, त्रिकाल त्रिभव काय-वाग्-मनको मिलावै ॥

१८. जिसे अप्रयास ग्रहण-त्याग की दृष्टि नही,  
अन्त मध्य में न बैठे मध्य (है) ऋजु मार्ग ।  
प्राकृत-कृत्रिम विना हृदय मध्ये न उत्तम,  
यात्रा प्रवेश क्रम आदि पार-गमन मार्ग ॥

१९. समीप मार्ग राखि लंबा (है) संसार का कारण,  
सहज और प्रतिपक्ष सपत्नी रहति ।  
तत्त्व के चार काय(और)पाँच ज्ञान, केश आदि समूह संसार का मार्ग ॥

२०. विषयमें जो बंधै न चरित निर्विषय देखै, भावमें ही आनन्द निरानन्द नहीं ।  
ग्रहण अवबोध दोउ साथ न मथै धर्मकाय,  
इन्द्रिय स्वच्छन्द न पकड़ शून्ये रहै ॥

२१. अकथ अनुभव सदा न काटै, स्वसन्तान में युक्त हो जानै ।  
निर्मल अर्थमें महामुद्रा, सागर में गगन सम अनुभव होइ ॥

२२. इन्द्रिय-विषय विनु प्रपात नहीं, स्मृति से बँधा तू ही कामुक ।  
स्वयं त्याग-स्थापना से प्ररंच क्षण निवृत्त,  
उदय-अस्त विनु विकल्प अंधकार असत् ॥

२३. धर्मता समरस कूपर कुसुम तुल्य, दोष औ गुण अभिन्नता में तुल्य ।  
महा अचरज अनुभव कहने में अष्टाष्ट, सुख भिन्न नहीं जिमि जल स्थापना ॥

२४. लहन्.गृचिग्.स्वयेस्. दङ्. नैल्.ऽव्योर्. दे. मि.ऽब्रल् ॥  
 दङ्गोस्.गृचिग्. व्सम्.प. दु.मर्. द्रन्. म्थोङ्. यङ् ।  
 द्रन्. मेद्. गृचिग्. यिन्. दु.म.ञिद्.दु.मिन् ॥
- 108a गङ्.शिग्. लहन्.विग्.स्वयेस्.द्गऽ. व्दे.छेन्. स्तोङ् ।
२५. नैल्.ऽव्योर्.स्प्योद्.प. व्लो.लस्.ऽदस्.पर्. स्प्योद् ॥  
 छग्स्. लम्. गृञ्गुग्.मडि. दोन्.ल. स्व्योर्.ऽदोद्. न ।  
 नङ्. दङ्. फिय.रोल्. म.दमिग्स्. ब्दग्.ग्वान्.मिन् ॥  
 दे.ञिद्. दोन्.शेस्. रङ्.वशिन्. श्रोल्.वर्. वस्तन्. ।
२६. स्कु.गुसुम्. छोस्.स्कुर्.<sup>१</sup> द्ब्ये.व.मेद्. मोङ्. क्यङ् ॥  
 जाम्स्.सु. व्लङ्गस्. न. ऽब्रस्. वु. सो.सो.ऽव्युङ् ।  
 क्ये.हो. द्ब्येर्.मेद्. तौग्स्. न. ल्त.ङ्गन्. म्युर्.दु. ऽजोम्स् ॥  
 स्वये.मेद्. स्तोङ्.प. द्ब्येर्.मेद्. थुग्.फद्. दोन् ।
२७. यिन्.पर्. शेस्.न. नग्स्.ऽदव्. तैन्. दङ्. ब्रल् ॥  
 थुग्.फद्. म.शेस्. म्छन्. मडि. सिञ्जङ्. जे. नि ।  
 ऽखोर्.<sup>२</sup>.वडि. ग्नस्.सु. चि. स्प्यद्. सग्.पडि. ग्यु ॥  
 स्तोङ्. दङ्. सिञ्जङ्. जे. द्प्येर्. मेद्. स्वये. व. मेद् ।
२८. गङ्.शिग्. ऽखोर्. दङ्. म्य.ङ्गन्.ऽदस्. रे.दोग्स्.ब्रल् ॥  
 लुस्.सेम्स्. म.जोद्. द्रन्.मेद्. रङ्.द्गर्. ग्शग् ।  
 दे. ञिद्. व्लो.यिस्. म.जोद्. रङ्.व्युङ्. यिन् ॥  
 म्जाम्.ग्शग्. जेस्.थोव्. शि. ग्नस्. म्छन्.ञिद्. दे<sup>३</sup> ।
२९. दोन्.दम्. म. यिन्. व्लो.यिस्. व्स्गोम्.दु. मेद् ॥  
 लुस्.द्ग. सेम्स्.कियस्. ग्सग्स्. सोग्स्. चोल्.मेद्. ग्सल्  
 स्न.वर्. ल.सोग्स्. द्ब्यिब्वस्. दङ्. नम्.म्खऽ. दङ् ॥  
 चोर्.ल. रेग्.पर्. म. स्प्यद्. गृञ्गुग्.मर्. ग्नस् ।
३०. स्नङ्.व.थम्स्.चद्. व्दे.व. योद्. मि.व्येद् ॥  
 द्रन्.प.स्तङ्.चम्. स्यु.मर्. शेस्<sup>४</sup>. चम्. ग्सल् ।

२४. सहज वह जोग उसके विना,  
 एक वस्तु चिन्तन नाना चित्त में स्मृति देखे भी ।  
 विस्मृति एक अनेकता में ही है, जो सहज आनन्द महासुख शून्य ॥
२५. योगचर्या बुद्धिसे परे आचरै, काम-मार्ग निज-अर्थ जोड़ना चाहै तो,  
 अन्दर बाहर न लहै आप औ पर नहीं, सोई अर्थ जानै स्वभाव मोक्षशासन ॥
२६. त्रिकाय धर्मकायमें भेद नहीं (तो) भी, समता उठानेमें फल भिन्न होइ ।  
 अहो अभिन्न समझै तो कुदृष्टि तुरन्त मर्दे,  
 अजात शून्य अभिन्न चित्त संसर्गके अर्थ ॥
२७. है जानै तो वनस्पति आश्रयहीन, चित्त संसर्ग न जानै निमित्त करुणा तो,  
 संसारके स्थान में चर्याके आस्रवका<sup>४</sup> कारण क्या,  
 शून्यता करुणा अभिन्न अनुत्पन्न नहीं ॥
२८. जो संसार औ निर्वाणकी आशा-शंका रहित,  
 काय-चित्त न लहै विस्मृति स्वच्छन्द ।  
 सोई बुद्धिसे ना मिलै स्वयंभू है,  
समापत्तिके बाद प्राप्त सोई शान्ति-स्थान सो लक्षण ॥
२९. परमार्थ नहीं बुद्धिसे भावनीय नहीं,  
 काय-वाग्-चित्तसे रूप आदि व्यायाम के विना भासै ।  
 नासा आदि संस्थान<sup>५</sup> औ आकाश, तृण को मत छ अपने में रह ॥
३०. सब आभास सुख है मत कर, स्मृति आभास माया-ज्ञान मात्र भासै ।

४. मल । १. शरीर अवयव ।

स्ल.वडि. ग्सुगस्. वर्जान.छ. मेद्. ग्सुङ्.वस्. स्तोङ् ॥  
 व् चल्. वयङ्. मेद.ल. वलतस्. वयङ्. म्थोङ्.व. मेद् ।

#### ४. ध्यान, महामुद्रा

३१. स्यु.मर्. स्नङ्.वडि. द्रन्.प. दे. द्रन्. ते ॥  
 द्रन्. प. मेद् लस्. चिर्. यङ्. म्थोङ्. व. मेद् ।  
 द्रन्.पर्. स्नङ्. यङ्. दे. ल. ऽजिन्.प. मेद् ॥  
 द्रन्.पस्. रेग्. क्यङ्. रेग्.गि.<sup>५</sup> व्सम्.ब्रल्.वस् ॥
३२. व्सम्.दु. मेद्.पस्. ब्रल्.वस्. स्वये.व.मेद् ।  
 द्रन्.प. स्वयेस्. क्यङ्. युल्.ल. मि.स्प्योद्.पर् ।  
 चिर्. यङ्. म.शुव्. स्तोङ्.वडि. रङ्.सोर्. ग्शग् ॥  
 जि.ल्लर्. व्यस्. क्यङ्. पयग्.ग्यं.ग्युन्. मि. ऽछ्द. ।
३३. यन्.लग्.व्शि.ल्दन्. पयग्.ग्यं.छेन्.पो. व्शि ॥  
 स्वये.मेद्. दोन्.तौगस्.प.यि<sup>६</sup>. यन्.लग्. दङ्. ।  
 व्देन्.ग्जिस्. थ.मि.दद्.क्यि. यन्.लग्. दङ् ॥  
 स्नङ्.व. स्वये.मेद्. थुग्.फद्. जिद्. दु. तौगस्. ।
३४. द्रन्.प. ग्सुङ्.दु.मेद्.पडि. यन्.लग्. दङ्. ॥  
 स्तोङ्.प. क्येन्. दङ्. द्रन्.मेद्.ब्लो.लस्.ऽदस् ।  
 दङोस्.पो. दग्ग्. स्पुव्.मेद्.पडि. यन्.लग्. गो ।
- 108b. दे. जिद्. ग्शिर्.ल्दन्<sup>७</sup>. ऽदोद्.पस्. द्वेन्.प्. दङ्. ।
३५. तौग्.दङ्.वचस्. द्प्योद्.पर्. ब्चस्.प. दङ् ॥  
 दग्. दङ्. व्दे. दङ्. द्वेन्.पर्.ग्नस्.ल.सोग्स् ।  
 थ.स्जद्. दे.जिद्. म्छोन्.पडि. युल्.दु. ग्सुङ्स् ॥  
 ग्शिर्.ल्दन्. रब्.ऽब्रिङ्. थ.मर्. ग्सुङ्स्.प. यङ् ।
३६. द्मन्.पडि. दोन्.दु. म्खस्.पस्. रब्.तु.व्शद्<sup>८</sup> ॥  
 पयग्.ग्यं.छेन्.पो. ग.ल. ग्नस्. मि.ब्येद्. ।  
 ब्लङ्.दोर्.ब्रल्.वडि. दोन्. दु. दे.व्शिन्. व्शद् ॥  
 ग्चङ्. स्मेर्. मि.ऽव्येद्. गङ्. यङ्. दङोस्.शुव.दग्.तु. ब्येद् ।

चन्द्र पुतली अंश-विन्दु ग्रहण में शून्य,

यत्न (कर) अभाव की दृष्टि से भी न दीखै ॥

#### ४. ध्यान, महामुद्रा

३१. माया प्रतिभास की स्मृति सोई सुमिरै, विस्मृति से क्यों ना दीखै ॥

स्मृति-प्रतिभास भी उसका न धारण होई,

स्मृति द्वारा स्पर्श भी स्पर्श ध्यान-रहित ॥

३२. ध्यान में अभाव से वियोग से उत्पत्ति नहीं,

स्मृति उपजी भी जो विषयमें न आचरै ।

क्यों कर भी न सिद्ध स्व-अंगुलि रख, जैसे करी हुई मुद्रा कभी न टूटै ॥

३३. चतुरंगी महामुद्रा चार, अनुत्पन्न अर्थ अवबोध का अंग ।

दो सत्य अभिन्न का अंग औ, आभास अनुत्पन्न चित्त संसर्ग में ही समुझै ॥

३४. स्मृति ग्रहण विन्दु अंग, शून्य प्रत्यय औ विस्मृति बुद्धि से परे ।

वस्तु प्रवारण असिद्धका अंग (है), सोई मूल युक्त इच्छासे विविक्त औ ॥

३५. सवितर्क औ सविचार, आनन्द सुख औ विविक्त स्थान इत्यादि ।

सोई व्यवहार लखनेके विषयमें धरै, मूलयुक्त अधिमात्र<sup>२</sup> मृदुग्रहण भी ।

३६. हीनके अर्थ पंडितने कहा, महामुद्रा जहाँ न रहै ।

ग्रहण-त्याग-रहित अर्थमें वैसा कहा,

पवित्र-अपवित्र न विभाग कर जो भी भले साधै ॥

३७. ल्हन्.चिग्.स्क्वयेस्. दङ्. युल्.ल. ग्तुम्.मो. स्पर्. ल.सोग्स् ॥  
 दम्.छिग्.ब्दग्.गि. खो.न.जिद्. दङ्. नॅल्.ज्योर्. ब्स्गोम् ।  
 द्ङोस्.पो.<sup>२</sup> थम्स्.चद्. म्जाम्. जिद्. फ्यग्.र्ग्यं. छेन्. पो. ल ॥  
 त्तोग्-प. स्पङ्.शिङ्. मि.त्तोग्. ब्स्गोम्.प. चि.शिग्. ज्युर् ।
३८. बल्.म.ल. गुस्. ग्सङ्.वडि. ऽदुल्.स्दोम्. दे.र. ज्तोग्स् ।  
 फिय. नङ्. ग्सङ्.वडि. द्वङ्.वस्कुर्. सो.सोडि. म्छन्.जिद्.दङ् ॥  
 वुम्.प. ग्सङ्.व. शेस्.रव्. ये.शेस्. दङ् ॥  
 डो.वो. डेस्<sup>३</sup>. छिग्. द्वा.व. ल.सोग्स्. कुन् ।
३९. थुन्.मोङ्. म्थु. स्क्वयस्. फ्यग्.र्ग्यं.छे.ल. रेग्. मि.नुस् ॥  
 क्ये.हो. फ्यग्.र्ग्यं. छे. ल. ऽत्रस्.वुडि. ब्दग्.जिद्. स्कु.गसुङ्.  
 थुग्स्.ल्दन्.पस् ।  
 ऽत्रस्.वु. दे.यङ्. स्जिङ्.पोडि. दोन्.ल. ऽथद्.कियस्. द्रङ्.  
 दङ्. डेस्.पडि. दोन्.ल. मिन् ॥  
 लम्. दङ्. ऽत्रस्.वु. स्जिङ्.पो.थम्स्.चद्<sup>४</sup>. ब्चुद्. ब्स्दुस्. दङ् ।
४०. थेग्.छेन्. बल्.न.मेद्.पडि. द्ङोस्. दङ्. थेग्.प.दग्. गि.  
 ख्यद्.पर्. दङ् ॥  
 कुन्.गिय. स्जिङ्.पोर्. म्युर्.नस्. ग्सङ्.व. बल्.न.मेद् ।  
 फ्यग्.र्ग्यं.छेन्.पो. डेस्.पडि. म्छन्.जिद्. नि ॥  
 द्रन्. दङ्. द्रन्.मेद्. ग्जिस्.मु.मेद्.पस्. स्क्वे.मेद्. दे ।
४१. बलो.लस्.ऽदस्.शिङ्. नम्.मखऽ<sup>५</sup>.ल्ल.बुर्. चिर्. मि. ग्नस् ॥  
 लस्.किय. फ्यग्.र्ग्यं. द्पे. दङ्. छोस्.किय. फ्यग्.र्ग्यं.डि. लम् ।  
 फ्यग्.र्ग्यं.छेन्.पो. ऽत्रस्.वु. दम्.छिग्. फ्यग्.र्ग्यं. ग्शन्.दोन्. ते ।  
 छोस्.किय. फ्यग्.र्ग्यं. मन्.छद्. ब्स्तेन्.पस्. म्थर्.मि.ऽग्रो ।
४२. रो.दोग्स्. म्थर्.ल्हुङ्. ऽदु.ऽजि.व्य.वडि. स्क्वोन्.दु. ज्युर् ॥  
 खो.न.जिद्.ल.<sup>६</sup> ग्जने.पो. द्वा.मेद्. रङ्.सोर. ग्शग् ।  
 नॅम्.त्तोग्. जि.स्जोद्. शर्. यङ्. ल्हुग्.पडि.जिद्. ल. शर् ॥  
 द्रन्.प. रङ्.सर्. शोल्.नस्. द्रन्.मेद्. ल्हुग्.प. जिद् ।

३७. सहज औ विषय में चंडिका बेंत इत्यादि,  
सत्य वाणी आत्मका तत्त्व औ योगभावना ।  
सर्व वस्तु सम ही (है) महामुद्रामें,  
कल्पना छाड़ि भावना अविकल्प क्यों होवै ॥
३८. गुरु-भक्ति गुह्य विनय-संवर वहाँ निष्पन्न,  
बाहर-भीतर गुह्य-अभिषेक भिन्न-भिन्न लक्षण ।  
कलश गुह्य प्रज्ञा औ ज्ञान, भाव निश्चय वचनभेद इत्यादि सब ॥
३९. साधारण शक्ति से उत्पन्न महामुद्रा को छू न मकै,  
अहो महामुद्रामें फल की आत्मा काय-वाक्-चित्तवाले से ।  
सो भी फल सार-अर्थमें उपपत्ति से ऋजु औ निश्चित अर्थ नहीं,  
मार्ग औ फल-सार औ सब रससंग्रह ।
४०. महायान, अनुत्तर वस्तु औ यानोंके, विशेष सबके सारभूतसे गुह्य अनुत्तर ।  
महामुद्रा निश्चयका लक्षण ही (है),  
स्मृति-विस्मृति अद्वय से उत्पन्न नहीं (है) ॥
४१. बुद्धिसे परे हो खसम क्यों ना रहै, कर्ममुद्रा दृष्टान्त धर्ममुद्राका मार्ग ।  
महामुद्रा फल सद्बचन मुद्रा परार्थ (है)  
धर्ममुद्रा यावत् सेवनसे अन्त न होइ ॥
४२. आशा-शंका अन्तच्युत संकर<sup>३</sup> का दोष होइ,  
तत्त्व का परिपक्ष भेद नहीं स्व-अंगुलि रख ।  
विकल्प जितना भी उगै मुक्त में उगै,  
स्मृति स्वभूमि में मुक्त हो तो विस्मृति मुक्त ही ॥



४३. गङ्. यङ्. लोङ्स्. स्प्योद्. स्नङ्.वर्. शोस्. शिङ्. द्रन्.मेद्. ग्सोस् ॥  
रङ्.व्शिन्. ज्मस्.जिद्. स्वये.मेद्. दग्.तु.ल्दन् ।
- 109। कुन्.ल. ह्यव्.चिङ्. बव्. छु.ल्ल.बुर्. गन्स् ॥  
र्युन्.मि.छद्.पडि. ऽवव्.छु. ल्ल.बु. दङ् ।
४४. मर्.मे.ल्लर्. ग्सल्. रङ्.रिग्. व्यङ्.छुव्.सेम्स् ॥  
ओग्.प.मेद्.व्शिन्. द्रन्.रिग्. रङ्.गिस्. स्तोङ् ।  
यङ्.दग्.खो.न.जिद्. नि. गङ्. शो.न ॥  
गशन्.योद्. (प.) न. कुन्.गिस्. म्थोङ्.वर्. रिग्स् ।
४५. रङ्.ल. योद्. क्यङ्. ल्कोग्.ग्युर्. व्ल.मडि.शल. ॥  
सेम्स्.जिद्. सङ्स्.र्ग्यस्.खो.न.जिद्. यिन्. ते ।  
द्रन्.पस्. वस्लद्.चिङ्. दे.जिद्. गशन्.दु. बर्तगस् ॥  
सङ्स्.र्ग्यस्. यिन्.फियर्. योन्.तन्. गङ्. शो. न ।
४६. योन्.तन्. रस्. दङ्. द्कर्.पो. ल्ल.बु. स्ते ॥  
खो.न.जिद्.किय. योन्.तन्. फ्यग्.र्ग्य.छे. ॥  
ङो.बो. योन्.तन्. सो.सो. म.दिन्. थ.दद्. मिन् ॥  
फ्यग्.र्ग्य.छे. दङ्. व्शि.व.ल.सोग्स्. कुन् ।
४७. योन्.तन्. सो.सो. म.यिन्. थ.दद्. मिन् ॥  
द्रन्.मेद्. योन्.तन्.र्ग्य.म्व्छो. म.ऽगुल्.वर् ।  
द्रन्.पर्. मि.ऽग्युर्. छु.यि. द्वव.ऽर्लव्स्. मेद् ॥  
स्वये.मेद्. योन्.तन्. मि.ऽग्युर्. ब्रग्.दङ्.द्र ।
४८. ब्रग्.च. ग्रग्.चम्. जेस्. सु. ऽव्रङ्.व. मेद् ॥  
ब्लो.यि.ऽदस्.शिङ्. युल्.दु. म.ग्युर्. प ।  
फ्यग्.र्ग्य.छेन्.पोडि. योन्. तन्. नम्.म्ख.ऽ.ऽद्र ॥  
द्रन्प. सेम्स्.चवन्. सेम्स्.लस्.व्युङ्.व. यिन् ।
४९. दे.फियर्. स्तोङ्.प. गशन्.नस्. व्चल्. मि.द्गोस् ॥  
व्शि.र. स्नङ्. यङ्. ग्चिग्.गि. योन्.तन्. नि ।

४३. जो भी संभोग भासना जानि विस्मृति पोषै,  
स्वभाव तुल्य ही अज शुद्ध (होना) युक्त ।  
सर्वत्र व्याप्त निर्झर जल जिमि रहै,  
औ अविच्छिन्न स्रोत निर्झर जल जिमि ॥
४४. दीप जिमि प्रकाशै स्वसंवेद्य बोधिचित्त,  
अनिरुद्ध सी स्मृतिवेदना स्वतः शून्य ।  
सभ्यक् तत्त्वमें जो आसक्त, अन्य होवे तो सबका देखना युक्त ॥
४५. अपनेमें होवै तो परोक्ष गुरु-मुख, चित्त ही बुद्ध तत्त्व है ।  
स्मृति से कलुषित सोई अन्यत्र परीक्षा कर,  
बुद्ध है, इसलिए जिस गुणमें आसक्त होवे ॥
४६. गुण श्वेत पट-सा है, तत्त्व का गुण महामुद्रा है ।  
भाव गुण प्रत्येक का भिन्न नहीं, महामुद्रा औ चतुर्थ आदि सब ।
४७. गुण प्रत्येक नहीं भिन्न नहीं, स्मृतिहीन गुण सागर अचल ।  
स्मृति में अविकृत जलकी तरंग नहीं,  
अनुत्पन्न गुण अविकृत शैल सदृश (है) ।
४८. शिला ख्याति मात्र (से) अनुसरै नहीं, बुद्धि से परे विषयमें हुआ नहीं ।  
महामुद्रा का गुण गगन-सम, स्मृति प्राणीके चित्तसे संभूत नहीं ॥
४९. अतः शून्यता को अन्यत्र खोजिए, चारमें भासे तो भी एकका गुण ।

- फ्यग्.र्ग्य.व्शि.रु. स्नङ्<sup>५</sup>.व. चि.फियर्. म्छोन् ॥  
 गोङ्.गि. ख्यद्.पर्. दग्.गि. व्शि.रु. व्युङ् ।  
 ५०. फ्यग्.र्ग्य.छेन्.पो. ग्सुम्.दु. तौग्. मि.व्येद् ॥  
 गङ्.ल. मि.ग्नस्. छ्गस्. प. मेद्.पर्. स्योद् ।  
 मे.तौग्. स्त्रङ्.र्चि. स्त्रङ्.मस्. ऽथुङ्.दङ्.ऽद्र ॥  
 सो.सोर्. तौग्.पडि. ये.शेस्. थब्स्. यिन्. ते ।  
 ५१. रो. दङ्. फ्रद्.न. रो.ल. शेन्.प. मेद्<sup>५</sup> ॥  
 दे.ल्लर्. कुन्.गियस्. शेस्.पर्.ऽग्युर्. म. यिन् ।  
 स्त्रिङ्.पोडि. दोन्.गिय. ऽप्रो.द्रुग्. ख्यब्.मोद्. क्यङ् ॥  
 ऽप्रो.व. द्रन्.पस्. व्चिङ्.स्.ते. पद्.त्रडि. स्त्रिन् ।  
 ५२. सेम्स्.लस्. द्रन्.प. व्युङ्.फियर्. ऽष्ट्रुल्.पडि. ग्युं ॥  
 यिद्.ल. मि.व्येद्. शेस्.न. सङ्.स.र्ग्यस्. जिद् ।  
 ऽष्ट्रुल्.प. दे.ल. थब्स्. दङ्. शेस्.रव्. मेद्<sup>६</sup> ॥  
 वये.हो. द्द्वेर्.मेद्. शेस्. न. थब्स्.म्छोग्. दे.खो.न ।

### ५. सहज, महामुद्रा

५३. सङ्.स.र्ग्यस्. स्.म्स्.चन्. छोस्.र्नम्स्. थमस्.चद्.कुन् ॥  
 रङ्.गिस्. सेम्स्. जिद्. दग्.दङ्. ल्हन्.चिग्. स्वयेस्. ।  
 यिद्.ल. मि.व्येद्. यिद्.ल. स्वयेस्.चम्. न ॥  
 1(9b) द्रन्.पडि. स्नङ्.व. नुव्. स्ते. व्देन्. वर्जुन्. मेद् ।  
 ५४. दे.फियर्. दे.जिद्. खो.नडि. युल्.<sup>६</sup> म. यिन् ॥  
 द्पेर्.न. मिग्.गि. युल्.दु. स्प. मि. स्नङ् ।  
 र्नम्.पर्.मि.तौग्. तौग्.पडि. युल्. म. यिन् ॥  
 स्तोङ्.पडि. क्येन्.गियस्. द्रन्.प. ग्सल्.चम्. न ।  
 ५५. द्रन्.पडि. स्नङ्.व. नुव्.नस्. म्थोङ्. व.मेद् ॥  
 ये.शेस्. ऽोन्. लोङ्. स्कुग्.स्. पर्. मि.ऽग्युर्. ते ।  
 म.द्रेन्.प.ल. ऽोन्.लोङ्.लकुग्.स्.र्ग्यु. मेद्<sup>७</sup>. ॥  
 ब्रेमस्.पो.ल.सोग्.स्. थ.स्त्रिद्. कुन्.दङ्.ब्रल् ।

चार मुद्रामें भासित क्यों लखै, आगेके चारों विशेषों में संभूत ॥

५०. महामुद्रा तीनमें नहीं समझै, जहाँ न रहै निष्काम आचरै ।  
मक्खीके पुष्प मधु पीने जैसा, प्रत्येकमें कल्पना-ज्ञान उपाय है ॥
५१. रसमें संसर्ग हो पर रसमें आसक्ति नहीं, तैसे सबसे ज्ञान होता नहीं ।  
सार अर्थ के छ गति व्याप्त होने पर भी, गति स्मृतिसे बद्ध पत्रका कीट ॥
५२. चित्तसे स्मृति संभव होनेसे भ्रान्ति का कारण,  
अमनसिकार जानै तो बुद्ध ही (है) ।  
उस भ्रान्तिमें उपाय औ प्रज्ञा नहीं,  
अहो अभेद जानै तो उत्तम उपाय सोई ॥

#### ५. सहज चित्त: महामुद्रा

५३. बुद्ध प्राणी सारे धर्म सब, स्वयं शुद्ध सहज (यह) चित्त ही ।  
अमनसिकार मनमें उत्पन्न मात्र यदि,  
स्मृति-आभास अस्त होइ सत्य औ मिथ्या नहीं ॥
५४. अतः सोई उसका विषय नहीं, जैसे चक्षुके विषय में शब्द नहीं भासै ।  
अविकल्प कल्पनाका विषय नहीं,  
शून्यताके प्रत्ययसे स्मृति मात्र प्रकाशै यदि ॥
५५. स्मृति-आभास अस्त होनेसे न दीखै, ज्ञान बधिर-अन्ध-मूकना होइ ।  
न-स्मृतिमें बधिर-अंध-मूक कारण नहीं, जड़ आदि सर्वव्यवहार-रहित ॥

५६. स्नङ्ग.ब. नुब्. चेस्. ब्य.बडि. थ.स्ञाद्. नि ॥  
 द्रन्.प. फ्यग्स्. ते. द्रन्.मेद्. ग्सोस्.सु. स्पुङ्गस्. ।  
 दे. ञिद्. स्क्ये.मेद्. ब्लो.लस्.ऽदस्. प. नि ॥  
 द्रन्.प.मेद्. दङ्ग. स्क्ये.मेद्. ये. शेस्. मेद्. ।
५७. गसुङ्ग.र्गिन्. ब्खेग्स्. सव्यङ्गस्. ब्लो.लस्.ऽदस्. फुल्.बस्  
 स्मोन्. लम्. द्वङ्ग.गिस्. स्क्ये.ब. फियस्. मि. बर्ग्युद्. ।  
 दे.फियर्. फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो. स्ङोन्. सोङ्ग. ल ॥  
 सु.ल. मि.वर्तेन्. गङ्ग.ल. रग्. म.लुस् ।
५८. छु.ल. शुग्स्. दङ्ग. छोग्स्. दङ्ग. स. ऽग्येद्. व्येद् ॥  
 रिग्.व्येद्. शोङ्ग.ख्येर्. द्कोग्.प. दग्.दङ्ग. म्छुङ्गस्. ।  
 फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो. रङ्ग.लस्. ग्शन्.मेद्. फियर् ॥  
 म्छोद्. र्जस्. ३ द्रन्.प. म्ग्रोन्. दङ्ग. म्छोद्. ग्न्स्. रङ्ग.शेस्. पस् ।
५९. म्छोद्.प. रङ्ग.गि. द्रन्.प.मेद्. ल. म्छोद् ॥  
 ब्लो. लस्.ऽदस्.किय. स्क्ये. मेद्. छोग्स्.ल. रोल् ।  
 फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो. ग्शन्.ल. मि.ल्लोस्.फियर्. ॥  
 ब्स्गोम्.व्य. रङ्ग.ल. स्गोम्.व्येद्. रङ्ग.गि. सेम्स्. ।
६०. ब्लो.ऽदस्. रङ्ग.ल. द्मिग्स्.प.ञिद्.दङ्ग.ब्रल् ॥  
 दे.ञिद्. ऽब्रस्.बु.यिन्.फियर्. ग्शन्.ल. रग्.म.लुस्. ।  
 ब्स्गोम्.ब्स्रुब्. स्ङ्गस्. ब्स्.लस्. रङ्ग.गि. सेम्स्. यिन् ते ॥  
 यि.दम्. ल्ह. दङ्ग. रङ्ग.गि. सेम्स्. यिन्.पस् ॥
६१. दे.फियर्. म्खऽ.ऽप्रो. लुङ्ग. स्तोन्. ल.सोग्स्. रङ्ग.गि. सेम्स् ।  
 सेम्स्. नि. द्रन्.प. चिर्. (यङ्ग) स्नङ्ग.बर्. स्तोन् ॥  
 म.द्रन्. (प.) ल. ५ थम्स्.चद्. द्मिग्स्.सु. मेद् ।  
 फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो. रङ्ग.लस्. ग्शन्.मेद्.फियर् ॥
६२. सङ्ग.र्ग्यस्. छोस्. दङ्ग. द्गो.ऽदुन्. ल.सोग्स्. ते ।  
 फ. म. द्कोन्.म्छोग्. रङ्ग.ब्रशिन्. व्यङ्ग.छुब्.सेम्स् ॥

५६. आभास अस्त (है) इसीका व्यवहार,  
 स्मृति से मुद्रित विस्मृत प्रत्यय-राशि ।  
 सोई अज बुद्धिसे परे, स्मृतिहीन औ अज ज्ञान अग्निसे ॥
५७. धारणी-घर होम-घोष बुद्धि से परे अर्चना,  
 अधिष्ठानवश उत्पन्न पीछे असंतान ।  
 अतः महामुद्रा पूर्व गतिमें, किसीको न आलंबै कहीं ना अधीन ॥
५८. जलवास समाज औ भोज करै, वेद नगर दूहना (?) तुल्य ।  
महामुद्रा अपनेसे परे नहीं जो,  
 पूजाद्रव्य स्मरण दीप औ पूज्य स्वयं जानि ॥
५९. पूजा अपनी विस्मृतिमें पूजै, बुद्धिसे परे के अजन्मा समाजमें ललित ।  
महामुद्रा अन्यत्र न देखै अतः, भावै अपनेमें भावनीय अपना चित्त ॥
६०. बुद्धिसे परे अपनेमें निरालंब, सोई फल होनेसे दूसरेके न अधीन ।  
 भावना साधन मंत्र जप अपना चित्त, औ इष्टदेव अपना चित्त है ॥
६१. अतः डाकिनी व्याकरण इत्यादि अपना चित्त,  
 चित्त स्मृति क्यों भासित बता देइ ।  
 अ-स्मृतिमें सब आलंबन में नहीं, महामुद्रा अपनेसे पर ना होवै ॥
६२. बुद्ध धर्म संघ इत्यादि, माता पिता रत्न स्वभाव बोधिचित्त (है) ।

मृछोद्. दङ्. ब्जोन्. ब्कुर्.ब्यस्. न . द्रन्.पडि. र्ग्यु ।  
थ.दद्. मेद्. न. स्वये.मेद्. रङ्.सर्. श्रोल् ॥

६३. बलो.लस्.<sup>६</sup>ऽदस्.न. व्य. दङ्. मि.ब्य. मेद् ।  
सङ्स्.र्ग्यस्. सेमस्.चन्. मृछोन्.छुल्. सो.सो. यङ् ॥  
लहन्.चिग्.दग्.तु. स्वयेस्. ते. णिग्.म. रिग् ।  
गङ्.शिग्. स्नङ्. यङ्. द्रन्.पर्. मि.तौर्ग.न ॥

६४. सेमस्.चन्. ङिद्. नि. ऽब्रस्.बु. स्वये.ब. मेद् ।  
110: गङ्.शिग्. मि.स्नङ्. द्रन्.पर्. तौर्ग.चे. न ॥  
सङ्स्.र्ग्यस्. ङिद्.<sup>९</sup> वयङ्. खमस्.गुमुम्. ऽखोर्.बडि. र्ग्यु ।  
गङ्.शिग्. द्रन्.मेद्. यिद्.ल. ऽछङ्.व्येद्. चि ॥

६५. सेमस्.चन्. स्नङ्. यङ्. सङ्स्.र्ग्यस्. दग्. दङ्. मृछुङ् ।  
गङ्.शिग्. द्रन्.प. सङ्स्.र्ग्यस्. तौर्गस्.ऽदोद्. न ॥  
सङ्स्.र्ग्यस्. स्नङ्. (ब.) सेमस्.चन्. ख्यद्.पर्.मेद् ।  
देस्.न. स्नङ्.<sup>१</sup> ब्तग्स्. ग्ञिस्. ल. ब्तर्ग. तु. मेद्. दे. पोर् ॥

६६. बोर्. यङ्. रङ्.लस्. ग्शान्.मेद्. ऽग्रो. ग्युन्. ऽछद् ।  
रङ्.लस्. योद्.स्चाम्. तौर्ग.गि. द्रन्.पस्. ब्स्लङ् ॥  
स्नङ्.ब. ग्सल्.ल. मि.तौर्ग. म. शेन्. सेमस् ।  
दे.फियर्. योद्. दङ्. मेद्. पडि. तौर्ग. प. ग्ञिस्. ब्रल्. ते ॥

६७. ग्ञुग्. मर्. ग्न्स्. न. गङ्.<sup>२</sup> ल्तर. व्यस्. क्यङ्. ब्दे ।  
द्रन.प. ऽोद्.ग्सल्.ऽजिन्.पडि. स्ञिङ्.पो.चन् ।  
शेन्.प.ग्ञिस्.दङ्.ब्रल्. ते. रङ्.ब्शिन्.ग्ञुग्.मर्. ग्शग् ॥  
देस्.न. फ्यग्.र्ग्य.छेन्.पो. मुङ्.दु. रब्.ऽजुग्. स्ते ।

६८. द्रन.प. द्रन्.मेद्. स्वये.मेद्. मुङ्.दु. ऽजुग् ॥  
द्रन.मेद्. मि.तौर्ग.प.पि. रङ्.ब्शिन्. दङ्. ।  
तेन्.ब्रेल्.<sup>३</sup> ग्लो.बुर्. स्वये.बडि. द्रन्.प.ग्ञिस्. ॥  
स्वये.ब.मेद्.पडि. दङ्. दु. रो.ग्चिग्.फियर् ।

पूजा औ उपासना करे तो स्मृतिका कारण,

भेद नहीं उत्पत्ति नहीं तो स्वभूमिमें मुक्त ।

६३. बुद्धिसे परे हो तो क्रिया अ-क्रिया नहीं,

बुद्ध (औ) प्राणी के लखने का ढंग पृथक्-पृथक् भी ।

शुद्ध सहजमें जनमी विद्या अविद्या, जो भासै भी स्मृतिमें न अवबोधित यदि ॥

६४. प्राणी ही फल उत्पन्न नहीं, जो न भासै भी स्मृतिमें अवबोधित यदि ।

बुद्ध ही त्रिधातु संसार का कारण, जो विस्मृति (सो) मनमें धारिये क्या ॥

६५. प्राणी भासै भी शुद्ध बुद्ध (के) तुल्य, जो स्मृति बुद्ध समझा चाहे तो ।

बुद्ध भासै भी प्राणी से विशेष नहीं,

अतः आभास परीक्षा दोनोंमें निरूपण नहीं उसे छोड़ ॥

६६. छोड़ा भी अपनेसे पर नहीं जग प्रवाह टूटै,

अपनेसे है चिन्ता कल्पनाकी स्मृति से ले ।

आभास प्रकटमें अविकल्प अमन्द चित्त,

अतः भाव-अभाव दोनों कल्पना से रहित ॥

६७. निजमें रहै तो जैसे करा भी सुख, स्मृति आभास्वर धारी सारवान् ।

आसक्ति द्वैतरहित स्वभाव निजमें थापै, अतः महामुद्रा युगमें प्रविष्ट(है) ॥

६८. स्मृति विस्मृति अजन्मा युगमें उतरै, औ विस्मृति अविकल्पका स्वभाव ।

प्रत्यय अकस्मात् उत्पन्न दो स्मृति, उत्पत्ति विना साथमें एकरसके कारण ॥



## ६. त्रिकाय, त्रिमुद्रा

६९. देस्.न. स्क्ये. दङ्. स्क्ये.व. व्लो.लस्.ऽदस् ॥  
 ऽोद्.गुसल्.स्तोङ्. दङ्. सुङ्.दु. ऽजुग्. ल.सोग्स्. ।  
 म.बचोस्. म.ब्यस्. स्क्ये.मेद्. रङ्.सर्. शोल् ॥  
 दे.ल. स्कु.ग्मुम्. छोस्.स्कु. लोङ्स्.स्कु. दङ् ।
७०. स्न.छोग्स्. स्नङ्.व<sup>५</sup>. स्पुल्.स्कु. शेस्.सु. बशद् ॥  
 ग्जुग्.म. डो.वो.ञिद्.किय. स्कु. यिन्. ते ।  
 स्त्रिङ्.जे. स्तोङ्. दङ्. द्ब्येर्.मेद्. स्क्ये.व.मेद् ॥  
 लस्.किय. फ्यग्.र्ग्य.ल. वर्तेन्. अमस्.म्योङ्. नि ।
७१. बचोस्.म.यिन्.फियर्. क्येन्.गिय. स्तोवस्.लस्. व्युङ् ॥  
 ग्शन्.ल. ल्तोस्.फियर्. खो.न.ञिद्. म. यिन् ।  
 छोस्.किय. फ्यग्.र्ग्य. बचोस्<sup>५</sup>. म. म.यिन्. क्यङ् ॥  
 अमस्.सु.म्योङ्.वस्. म.गुब्. ञिद्. मि. मथोङ् ।
७२. फ्यग्.र्ग्य.छेन्.पो. अमस्.सु.म्योङ्. ऽग्युर्. न ॥  
 द्रन्.प. स्न.छोग्स्. स्क्ये.व.मेद्.पर्. शेस्. ।  
 द्ङोस्.पोर्.स्नङ्.व. डो.वो.ञिद्.कियस्. स्तोङ् ॥  
 सेमस्.चन्. स्क्ये.व.मेद्. दङ्. द्ब्येर्.मेद्. दोन् ।
७३. स्त्रिङ्.जे. थवस्.कियस्.<sup>९</sup> म्छोन्.व्य. द्पे.यिस्. ब्स्तन् ।  
 स्न.छोग्स्.स्नङ्. यङ्. व्लो.ऽदस्. युल्. मि.ग्यो ।  
 ब्दग्.ञिद्. नैल्.ऽब्योर्. दे.ञिद्. तैग्.तु. बल्ल ॥  
 स्प्योद्.लम्. थमस्.चद्. फ्यग्.र्ग्य.छे.ल. ग्नस् ।
७४. द्ङोस्.पोडि. ग्नस्.लुगस्. स्क्ये.मेद्. डङ्.दु. ग्शग् ॥
- 10b. लुङ्.गि. क्येन्.बचस्. र्ग्य.मछो. दङ्. बल्.ते. ।  
 द्ब<sup>५</sup>.<sup>९</sup>लवस्. छ.यि. ग्जोर्.म. ग्लो.बुर्.स्क्ये ॥  
 दे.ञिद्. र्ग्य.मछो.दग्. दङ्. द्ब्येर्.मेद्. दो ।
७५. द्रन्.पस्. क्येन्. व्यस्. तौग्.प. गलो.बुर्. स्क्ये ॥  
 दे.ञिद्. स्ङर्.गिय. द्रन्.प.मेद्. दङ्. नि ।

६ त्रिकाय, त्रिमुद्रा

६६. अतः उत्पन्न औ उत्पत्ति बुद्धि से परे (हैं),  
आभास शून्य औ योगमें उतार इत्यादि ।  
अमथित अकृत अज स्व-भूमिमें मुंचै,  
तहाँ त्रिकाय धर्मकाय औ संभोगकाय ॥
७०. नाना भासित निर्माणकाय इति कहिये, निज स्वभाव ही का क.य है ।  
करुणः शून्यता भिन्न उत्पन्न नहीं, कर्ममुद्राके आश्रय से अनुभव ॥
७१. अमथित होने से प्रत्ययके बलसे हुई, दूसरेकी अपेक्षासे तत्त्व नहीं (हैं) ।  
धर्ममुद्रा अपक्व नहीं भी, अनुभवसे असिद्ध नहीं दीखै ॥
७२. महामुद्रा अनुभूत हो तो, नाना स्मृति की उत्पत्ति का न होना जानै ।  
वस्तुके-प्रतिभास भावही से शून्य, प्राणी अनुत्पत्ति अभेदके अर्थ ।
७३. करुणा उपायसे लखै दृष्टान्तसे दिखावै,  
नाना प्रतिभास भी बुद्धिसे परे विषय अचल ।  
आत्मा ही योगी वही सदा देखै, सारा चर्यामार्ग महामुद्रामें रहे ॥
७४. वस्तुकी व्यवस्था अज हंसमें थापै, पवनके प्रत्यय के साथ सागरस्वच्छ में ॥  
वेला पानीकी तरंग अकस्मात् जनमै, सोई शुद्धसे सागर भिन्न नहीं ॥
७५. स्मृतिप्रत्यय कृत कल्पना अकस्मात् जनमै, औ सोई पूर्वकी स्मृति नहीं ।

- स्वये.मेद्. व्लो.ऽदस्.दग्.गिस्. म्छर्. म्छुङ्गस्.ते ॥  
 दे.ल्लर्. फ्यग्.र्ग्ये.ल. स्क्वयेस्.प. रङ्गर्.मेद्. व्शिन् ।
७६. फियस्. क्यङ्ग<sup>१</sup>. क्येन्.गिय. स्तोव्स्.कियस्. स्क्वयेस्.स्विद्. क्यङ्ग ॥  
 स्वये.व.मेद्.प. दे.दग्. द्ब्येर्.मेद्. दो ।  
 गुसुग्स्.चन्. म.यिन्. कुन्.ल.ख्यव्.प. दङ्ग ॥  
 मि.ऽग्युर्.व. दङ्ग. दुस्.र्नम्स्. थम्स्.चद्.पऽो ।
७७. नम्.म्खऽ.ल्ल्त.वुर्. स्वये.ऽगग्.मेद्.प. दङ्ग ॥  
 थग्.प. स्पुल्.व्मुङ्ग. स्पुल्.गिय. स्तोङ्ग. प. दङ्ग<sup>२</sup> ।  
 छोस्.स्कु. स्पुल्.स्कु. लोङ्गस्.स्कु. स्पुल्.स्कु. द्ब्येर्.मेद्. दे ॥  
 डो.बो.ञ्चिद्. नि. व्लो.धि. युल्.लस्. ऽदस् ।
७८. फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो. स्कद्.चिग्. म्ङ्गोन्. सङ्गस्.र्ग्येस्. ॥  
 दे.ञ्चिद्. सेम्स्.चन्. दोन्.दे. गुसुग्स्.स्कुर्. व्युङ्ग ।  
 र्ग्ये.मथुन्. ऽत्रस्.वु. नम्.स्मिन्. ऽत्रस्.वु. दङ्ग ॥  
 द्वि.म.मेद्.पडि. ऽत्रस्.वु. ग्शन्.दोन्<sup>३</sup> व्येद् ।
७९. गो.ऽफङ्ग. ख्यद्.पर. व्जोद्.लस्.ऽदस्. पर. व्गद् ॥  
 क्ये.हो. म.व्चोस्. फ्यग्.र्ग्ये. व्दे.ब.छे ।  
 द्रन्.मेद्. क्लोङ्ग.दु. रङ्ग.दु. रङ्ग. शर्.ब ॥  
 स्वये.मेद्. नम्.म्खऽ.ल्ल्त.वुर्. ख्यव् ।
८०. व्लो.लस्.ऽदस्.पडि. दङ्ग. ल. ग्नस् ॥  
 स्नङ्ग.व. स्प्रोस्.व्रल्. व्दे.ब.छे ।  
 द्रन्.मेद्. चिर्. यङ्ग. नि. तर्गे.प ।  
 द्रन्<sup>४</sup>.प.स्त.छोर्गस्. सेम्स्.सु. ग्सल्. ॥
७. सहज महासुख
८१. वर्तग्. चिङ्ग. व्चल्. न. द्मिग्स्.सु. मेद् ।  
 स्वये.व.मेद्.प.ऽजिन्.दङ्ग.व्रल् ॥  
 जिन्.दङ्ग.व्रल्.वडि. र्ग्ये.व. मेद् ।  
 द्रन्.प. स्यायु.म. रङ्ग.रिग्. चम् ॥

भ्रज शुद्ध बुद्धिसे परे आश्चर्य तुल्य,  
ऐसे महामुद्रा से उत्पन्न पहिले न जिमि ॥

७६. बाहर भी प्रत्ययके बल जन्म भव भी, जन्म विना वे अभिन्न हैं ।  
रूपी नहीं सर्वव्याप्त औ, अविकारी औ सर्व कालोंवाला ॥

७७. गगन जिमि जन्म विरोधी नहीं,  
औ रज्जु (मे) सर्प की धारणा सर्पकी शून्यता ।  
धर्मकाय संभोगकाय निर्माणकाय अभिन्न, स्वभावतः बुद्धिके विषयसे परे ॥

७८. महामुद्रा क्षणिक पूर्व बुद्ध (है), सोई प्राणीके अर्थ रूप-कायमें होइ ।  
कार्य शक्ति फल विषय फल औ, निर्मल फल परके अर्थ करै ॥

७९. कपाट विशेष वर्णनातीत कहिए, उहो अपवध मुद्रा महासुख ।  
विस्मृति वीचिमें स्वयं उगै, अजन्मा ख-सम जिमि व्यापी ॥

८०. बुद्धिसे परे साथमें रहै, प्रतिभास निष्प्रपंच महासुख ।  
विस्मृति भी क्यों अविकल्प, नाना स्मृति चित्तमें प्रवाशै ॥

### ७. सहज महामुख

८१. परख कर ढूँढनेपर आलंबन नहीं, अनुत्पन्न धारणरहित ।  
धारणरहित (जो सो) कारण नहीं, स्मृति माया स्वसंवेदन मात्र ।

८२. स्वयु.मेद्. थर्.मेद्. द्रन्. मेद्. ग्सल् ।  
 स्वये.मेद्.दोन्.दम्. कुन्.ग्सल्.वस् ॥  
 थम्स्.चद्. ब्लो.लस्. ऽदस्.पर्. स्तङ् ।  
 खम्स्.ग्सुम्. ब्लो.ऽदस्. ये.शेस्. जिद् ॥
८३. ल्हन्.चिग्.स्वयेस्.प. दे.खो.न ।  
 द्रन्.पडि. च्.व. म.लुस्. थग्.ब्वच्. दो ॥  
 द्रन्.मेद्. स्वये.व.मेद्.पडि. द्ब्विङ्स्.ल. द्गोङ् ।  
 दे. जिद्. म.ब्वचोस्. ब्लो.यि. युल्.लस्.ऽदस् ॥
८४. द्रन्.रिग्.सेम्स्.किय. र्ङ्.ऽवर्. जिद्.दु. ग्सल्<sup>६</sup> ।  
 ग्सल्.वस्. नम्.तोर्. ऽखोर्.बडि. षोग्स्.सु. ऽय्युर् ॥  
 थर्.वडि. लम्. नि. खो.न.जिद्. शेस्.नस् ।
८५. रङ्.ऽव्युङ्. जि.ब्वशिन्. व्सम्.(प.)ब्रल्.ल. ग्नस् ॥  
 ८५. द्रन्.प. रङ्.ग्सल्. द्ङोस्.पोर्. ग्रुब्.प. मेद् ।  
 ब्वचोस्.मेद्. द्गोङ्स्.प. स्वये.मेद्. ब्वदे.छेन्. ऽदि ॥  
 म्ङोन्.सुम्.स्तङ्.वस्. दोस्<sup>७</sup>.ग्सुङ्. गङ्.यङ्. मेद् ।  
 दोन्.मेद्. युल्.दु. चिर्.यङ्. म्थोङ्.व. मेद् ॥
८६. तौन्.(प.)दङ्.ब्रल्. स्लोब्.प. गङ्.यङ्. मेद् ।  
 गङ्.ल. यिद्.ल. द्ब्व्येर्.मेद्. फ्यग्.र्ग्ये.छे ॥  
 म्छेन्.मडि. द्रन्.स्त.छेोर्. जि.स्ञोद्.प. ।  
 दे. जिद्. फ्यग्.र्ग्ये.छे.ल. द्ब्व्ये.व.मेद् ॥
८७. तौर्.गस्. दङ्. भि.तौर्.गस्. ग्जि.ग. सो.सो.<sup>८</sup> मिन्. ।  
 तौर्.छेद्. म्थऽ.ल. मि.ग्नस्. स्वयोन्.दङ्.ब्रल् ॥  
 रङ्.गि. दे.जिद्. तौर्.गस्.न. ग्शन्.लस्. मिन्. ।  
 तौन्.ऽब्रेल्. म्य.ङन्.ऽदस्.लम्. व्स्तन्.प.दङ्. ॥

#### ८. मुद्रा, महामुद्रा

८८. स्वये.ब.मेद्.पर्. तौर्.गस्.न. फ्यग्.र्ग्ये.छे ।  
 दे.जिद्. मि.शेस्. लस्.किय. फ्यग्.र्ग्ये. दङ्. ॥

८२. मायारहित मुक्तिरहित विस्मृति प्रकाश, अनुत्पन्न सर्व परमार्थ प्रकाशनसे ।  
सब बुद्धिसे परे हो भासै, त्रिधातु बुद्धिसे परे ज्ञान ही ॥
८३. सहज तत्त्व (है), स्मृति-मूल अद्येप रज्जु काटै ।  
स्मृतिरहित अजन्मा धातु में हँसै, सोई अपवव बुद्धि-विषयसे परे ॥
८४. स्मृति वेदक चित्त स्वयं ज्वालाहीमें प्रकाशै,  
प्रकाशनसे विकल्प संसार का सखा होवै ।  
मोक्ष-मार्ग सोई जानि, स्वयंभू जिमि चिन्ता विना रहै ॥
८५. स्मृति स्वयंप्रकाशक वस्तु सिद्ध नहीं उ.प.व उ.श.य उ.ज महासुख ।  
प्रत्यक्ष प्रतिभाससे पार्श्व धरनेको कुछ भी नहीं,  
अर्थहीन विषयमें कहीं भी देखनेको नहीं ॥
८६. आश्रयहीनसे सीखना कुछ भी नहीं, जहाँ मनमें अभेद महामुद्रा ।  
निमित्तकी जितनी नाना स्मृति, सोई महामुद्रा में भेद नहीं ।
८७. कल्पना अकल्पना दोनों पृथक् नहीं,  
नित्य औ उच्छेद अन्तमें न रहै निर्दोष ।  
अपने सोई कल्पना करै तो अन्यसे नहीं, औ आश्रयसंबंधी निर्वाण-मार्ग -  
कहिये ॥
८. मुद्रा, महामुद्रा
८८. अनुत्पन्न समझै तो महामुद्रा, सोई न जानै (तो) कर्ममुद्रा ।

- दम्.छिग्. छोस्.ल.सोग्स्.प. बर्चोल्. ऽदोद्.<sup>३</sup>प ।  
 दे.ञिद्. म्छोन्.वडि. द्पे.चम्. दोन्. मि.नुस् ॥
८९. गमुङ्.ऽजिन्. ब्रल्.वडि. फ्यग्.र्ग्ये.छे. बर्तेन्.प. ।  
 शेस्. प. रङ्.लुग्स्.सो.म. ञिद्.ल. व्युङ् ॥  
 ऽदोद्.मेद्. रङ्.ब्यान्. ग्जुग्.मडि. डो.बोर्.ग्नस् ।  
 थ.म.ल्. स्नङ्.वडि. शेस्.प. ऽदि.ञिद्. व्लो ॥
९०. यिन्.मिन्.द्रन्.पडि. सेम्स्.ल. रङ्.<sup>३</sup>गशन्. यिन् ।  
 यिद्.छेस्. रिन्.छेन्. ग्दम्स्.ङ्ग्. यिद्.वशिन्. ग्तेर् ॥  
 यिद्.ल. व्य. दङ्. मि.व्य. मेद्.पर्. गशग् ।  
 रङ्.रिग्. फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो. ञिद्. यिन्.पस्. ॥
९१. फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो.ऽिद्.ल. ञिद्.कियस्. व्स्तन् ।  
 द्रन.प.स्न.छोग्स्.दोन्.ल. सेम्स्. म.ऽजुग् ॥  
 फिय.नङ्.ब्रल्.दस्. चोद्.मेद्. फ्यग्.र्ग्ये.<sup>५</sup>दङ् ।  
 फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो. खोग्.ल्दन्. ऽदोद्.प. मेद् ॥
९२. ऽदोद्.प. व्युङ्.न. दे.यङ्. द्रन्.पडि. र्ग्यु ।  
 रङ्.(गि.)मेम्स्.(प.)फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो. ल ॥  
 द्रन्. दङ्. म.द्रन्. थ.दद्. स्वये.व. मेद् ।  
 छुल्. दङ्. म.ऽछुल्. व्लो.यि. युल्.लस्. ऽदस् ॥
९३. द्रन.पडि. शेन्. तोग्.वर्तस्.पस्. ऽखोर्.वडि. ग्यु ।  
 ऽोद्.ग्सल्.<sup>५</sup> फ्यग्.र्ग्ये. ग्जुग्.मडि. डो.बो. ञिद् ॥  
 गङ्.यङ्. ऽग्युर्.मेद्. व्यङ्.छुव्.सेम्स्. स.ग्चिग् ।  
 खो.न.ञिद्.ल. गमुङ्.ऽजिन्. डो.बो.ब्रल्. ॥
९४. स्नङ्.व्.दोन्.ल्दन्. ये.शेस्. ञिद्.दु. म्थोङ् ।  
 बसम्.पस्. वर्तग्स्.पस्. द्रन्.पडि. छोग्स्.सु. र्ग्युस् ॥  
 स्नङ्.व. स्वये.व. लोग्.पडि. स्तोव्स्.कियस्. म्थोङ्.<sup>६</sup> ।  
 द्रन.प. द्रन.मेद्. दङ्.ल. शेस्.ऽजुग्. प ॥

सद्वचन धर्म इत्यादि अभ्यास की इच्छा,

सोई परखनेके दृष्टान्त मात्र के अर्थ असमर्थ ॥

८६. ग्रहण-धारण-रहित महामुद्रा-आश्रय, ज्ञान स्व-मर्यादा अभिनव ही में होवै।  
इच्छा विना स्व-पर अपने ही भाव में रहै

मृदु प्रतिभासी ज्ञान(है)यही बुद्धि ।

९०. है-नहीं स्मृतिके चित्तमें स्व-पर है,

आस्था रत्न अववादवचन चिन्ता (मणि) कोश ।

मनसिकार औ अमनसिकार अभाव में राखै, स्वसंवेद्य महामुद्रा ही होनेसे ।

९१. महामुद्रा हीके समीप से आदेशै, नाना स्मृतिके अर्थ चित्त न प्रविशै ।  
बाहर भीतर विना निर्विवाद मुद्रा औ, महामुद्रा प्राणी (की) इच्छा नहीं ॥

९२. इच्छा हो तो सो भी स्मृति-हेतु, स्व-चित्त महामुद्रा में ॥

स्मृति औ विस्मृति का भेद उपजै नहीं,

भ्रम औ अभ्रम बुद्धिके विषयसे परे(है) ॥

९३. स्मृति आसक्ति कल्पना तर्कदर्पसे संसार-कारण,

आभास्वर मुद्रा(है) निज स्वभाव ही ॥

जो भी निर्विकार बोधिसत्त्वभूमि एक,

तत्त्व (है) धारण-ग्रहण (स्व) भाव-रहित ॥

९४. प्रतिभासी अर्थवाला ज्ञानहीमें दीखै,

चिन्तनसे परीक्षासे स्मृतिसमूहमें कारण ।

प्रतिभासना जन्म मिथ्याबलसे दीखै, स्मृति-विस्मृति के साथ ज्ञान प्रवेश ॥



६५. लुस्. दङ्. यिद्.कियस्. ऽवद्. क्यङ्. द्रन्.र्ग्यु.मेद् ।  
 ग्जिस्.सु.मेद्.न. ऽखोर्.वडि. रङ्.व्शिन्. मेद् ॥  
 द्रन्.प. स्न. छोग्स्. ऽर्ग्यु.वडि. रङ्.व्शिन्. ऽदि ।  
 111f स्न.च्.डि. फ्यग्.र्ग्यु.दग्.ल. ये.नस्. मेद् ॥
६६. देस्.न. फ्यग्.र्ग्यु.छेन्.पो. ब्सम्.मेद्. ब्लङ्. दोर्<sup>०</sup>. ग्शग् ।  
 क्ये.हो. नङ्. (ब.) सव्. दङ्. मि.सव्. ब्स्वयेद्.रिम्. दङ् ॥  
 योङ्स्.ग्रुव्. डो.बो.जिद्. दङ्. द्बुग्स्.द्व्युङ्. दङ् ।  
 र्ग्युस्.गदव्. लस्. दङ्. छोस्.किय. फ्यग्.र्ग्यु. नि ॥
६७. नैल्.ऽब्योर्. योङ्.स्.सु.जोर्गस्.पडि. रिम्.प. स्ते ।  
 फ्यग्.र्ग्यु.छेन्.पो. डो.बो.जिद्.किय. रिग् ॥  
 दम्.छिग्. फ्यग्.र्ग्यु. योङ्स्.सु. ग्रुव्.पडि.<sup>१</sup> रिम् ।  
 कुन्.वर्तग्स्. (प.दङ्) योङ्स्.सु.ग्रुव्.पडि. र्ग्यु. ॥
६८. लस्.किय. फ्यग्.र्ग्यु. दव्ङ्.गि. डो.बो. दङ्. ।  
 द्गऽ.व.व्शि.ल्दन्. थव्स्.किय. रङ्.व्शिन्.चन् ॥  
 छोस्.किय.फ्यग्.र्ग्यु. स्न.छोग्स्.स्नङ्.व. स्ते ।  
 द्गऽ.व.व्शिडि. ल्हन्.चिग्.स्वयेस्.प. जिद् ॥
६९. फ्यग्.र्ग्यु.छेन्.पो. स्वये.व.मेद्.प. ल ।  
 ग्मुङ्.ऽजिन्. द्रन्.ब्रल्.<sup>२</sup> डो.बो. ब्लो.लस्.ऽदस् ॥  
 द्वि.म.मेद्.पडि. ऽत्रस्.बु. म्ङोन्.सङ्स्.र्ग्युस् ।  
 दम्.छिग्. फ्यग्.र्ग्यु. म्छन्.मडि. नैल्.ऽब्योर्. ते ॥
१००. ऽत्रस्.बु. ल्ह.यि. द्कियल्.ऽखोर्. ऽग्रो.वडि. दोन् ।  
 जे.बचुन्. फम्. थव्स्. दङ्. शेस्. रव्. म्छोन्. ते ॥  
 द्गऽ.व.व्शि.ल्दन्. दम्.छिग्. फ्यग्.र्ग्यु.छे. ।  
 दे.ल्लर्. थव्स्.किय. स्ब्योर्.व<sup>३</sup>. कुन्.ऽदुल्. यङ्. ॥
१०१. सव्.मो. छोस्.किय.फ्यग्.र्ग्यु.गत्तन्.ल. द्बव् ।  
 सेम्स्. जिद्. फ्यग्.र्ग्यु.छेन्.पो. रङ्.ल. व्स्तन्. ॥

६५. काय और मनसे रत भी स्मृति-कारण नहीं,  
अद्वैतमें संसार का स्वभाव नहीं (होता) ।  
नाना स्मृतिकारण का स्वभाव यह, नासाग्रकी मुद्राओं में आदिसे नहीं ॥
६६. अतः महामुद्रा ध्यानहीन ग्रहण-त्याग थापें,  
अहो भीतर गंभीर और अ-गंभीर उत्पत्तिक्रम ।  
संसिद्ध (स्व) भाव और श्वास संभूत, स्नायुपत्र कर्म और धर्मकी मुद्रा ॥
६७. योगपर्यवेक्षणका क्रम है, महामुद्रास्वभाव ही का क्रम ।  
सद्वचन मुद्रा संसिद्धिका क्रम, सर्वपरीक्षा संसिद्धिका कारण ।
६८. कर्ममुद्रा इन्द्रि (य) का स्वभाव और, चउ अन्दी उपाय का स्वभाववान् ।  
धर्ममुद्रा नाना प्रतिभास (है), चउ आनन्दका सहज ही ॥
६९. अनुत्पन्न महामुद्रा में, धारण-ग्रहण स्मृति बुद्धि से परे ।  
निर्मल फल पूर्व बुद्ध, सद्वचन मुद्रा निमित्त योग (है) ।
१००. फल देवमंडल संसारके अर्थ, भट्टारक माता पिता प्रज्ञा और उपाय लखै ।  
चउ आनन्दयुत सद्वचन महामुद्रा, ऐसे उपाय प्रयोग सर्व विनय भी ॥
१०१. गंभीर धर्ममुद्रा निर्णय, चित्त ही महामुद्रा अपनेको आदेश ।

- दग्ऽवस्. ग्सुङ्.वडि. द्रन्.प. व्कर्.व. दङ् ।  
 म्छोग्.दग्.स.ऽजिन्.पडि. द्रन्. फ्यग्. ग्तङ्.व. दङ् ॥
१०२. ल्हन्.चिग्.स्वयेस्.दग्स्. द्रन्.प. व्कर्.वस्. दङ् ।  
 दग्ऽ.ब्रल्.स्नङ्.व. स्वये.मेद्. द्रन्.प.ग्सल्. ॥  
 दे.व्शिन्. सव्.मोडि. छोस्.किय. फ्यग्.ग्यं. व्स्तन्. ।  
 दग्ऽ.व्शि. ये.शेस्. गङ्.दु. स्वयेस्.प. दङ् ॥
१०३. थ.मि.दद्. चिङ्. योङ्स्.सु. थिम्.पर्. ग्नस् ।  
 तौग्.पडि. जाम्स्.म्योङ्. दग्.ल. ग्नस्.प. दङ् ॥  
 यिद्.ल. म.द्रन्. तौग्.प. थ.मि.दद्. ।  
 द्पे. दङ्. लम्.स्ते. थ.स्ञाद्. ऽदुल्.वर्. व्स्तन् ॥
१०४. सेम्स्.ञिद्. फ्यग्.ग्यं.छेन्.पो. ऽछर्.व. नि. ।  
 स्वये.मेद्. स्वये.वडि. छो.ऽफुल्. चिर्. यङ्. ऽछर्. ॥  
 व्लो.लस्.ऽदस्. प. व्सम्.स्वयेस्. डो.वोर्. व्स्तन् ।  
 म.स्वयेस्.प. दङ्. स्वयेस्.पडि. द्ङोस्.पो. ग्ञिस् ॥
१०५. थ.दद्.मेद्. दे. ग्जुग्.मडि. डो.वोर्. ग्शाग् ।  
 द्रन.प.स्न.छोग्स्. गङ्.ल. रंयु.व. ऽदि ६ ॥  
 द्रन्.मेद्. ऽजुग्.पस्. तौग्.प. मि.जगग्.प ।  
 शेस्.पर्. लेग्स्.ग्शाग्. न. नि. ग्नस्.पर्. ऽग्युर् ॥
१०६. स्नङ्. दङ्. स्तोङ्. दङ्. ग्ञिस्.ऽजिन्. स्वये.वडि. ग्यं ।  
 थ.मि.दद्.पर्. गो. न. व्दे.व.छे ॥  
 जाम्स्.म्योङ्. शर्.वस्. मि.मथुन्.ऽजिन्.प.ब्रल् ।
- 112a. द्रन्.प.मेद्. दे. ऽदि.द्रडि. युल्. मेद्. प ॥

### ९. शून्यता, महासुख

१०७. द्रन्.प.मेद्. दङ्. स्नङ्. स्तोङ्. थ.मि.दद् ।  
 म.क्येस्. म्छन्.म.मेद्.पडि. नैल्.ऽव्योर्. ल ॥  
 म्जाम्.ग्शाग्. जेस्.थोव्.मेद्. दे. ग्युन्.गिय. नैल्.ऽव्योर्. ल ।  
 स्नङ्. दङ्. स्वये.व. द्रन्.प. गङ्. स्वयेस्. क्यङ्. ॥

आनन्दसे गृहीत स्मृति कठिन औ,

उत्तम शुद्ध धारण स्मृति अर्ध (उन्मेष) देना ।

१०२. महज शुद्ध कठिन स्मृति औ, निरानन्द प्रतिभास अज स्मृति प्रकाशै ॥  
ऐसे गंभीर धर्ममुद्रा आदेशै, चउ-आनंद जानै औ कहीं जनमै ॥

१०३. अभिन्न विलीन रहै, औ कल्पना अनुभव में रहै ।  
मनमें न स्मरै कल्पना अभिन्न, दृष्टान्त औ व्यवहार विनयन कहिए ॥

१०४. चित्त ही महामुद्रा उगै, अनुरूपन प्रातिहार्य वैसे उगै ॥  
बुद्धिसे परे समाधिज भावमें बतावै, अज औ जात दो वस्तु ॥

१०५. अभिन्न वह निज (स्व) भावमें थापै, नाना स्मृति जिसका कारण यह ।  
विस्मृतिप्रवेशसे कल्पना न निरोधै, ज्ञाने संस्थापित हो तो ठहरै ॥

१०६. प्रतिभास शून्यता-द्वैत धारणा उत्पत्ति-कारण, अभिन्न जानै तो महासुख ।  
अनुभूतिके उदयसे विपक्ष धारणा हटै, सो विस्मृति ऐसे निर्विषय ॥

### ६. शून्यता, महासुख

१०७. विस्मृति औ प्रतिभासशून्यता भिन्न नहीं, अजात अ-निमित्त योगी को ।  
समापत्ति उपलब्धि नहीं स्रोतके योगमें,  
प्रतिभास औ अज स्मृति जो जनमै भी ॥

१०८. दे.ञिद्. स्तोङ्.व. द्रन्.प.मेद्. ग्नस्.पस् ।  
 द्रन्.प. यिद्.ल. व्येर्.मेद्. स्नङ्. स्तोङ्. द्ब्येर्.मि. फ्येद् ॥  
 दे.ञिद्. थुग्.फ्रद्. स्क्ये.मेद्. जम्स्.म्योङ्. ल ।  
 स्नङ्.वडि. डो.वो. स्तोङ्.व. व्दे.छेन्. शर् ॥
१०९. छ्व्.रोम्. छूर्.व्शु. व्तुङ्.ङु. व्तुव्.व्शिन्. दु ।  
 गङ्. स्नङ्.स्क्ये.मेद्. व्दे.व.छेन्.पोर्. छोर् ॥  
 व्तङ्.स्ञोम्स्. द्रन्.प.मेद्. दे. तोंग्.प. म.व्कग्. क्यङ् ।  
 ब्लो.लस्.ऽदस्.पस्<sup>२</sup>. मोंङ्स्.प. सगोम्.दङ्.ब्रल् ॥
११०. दि.ल. ग्नस्.न. व्दे.छेन्. जम्स्.ऽव्युङ्. स्ते ।  
 दङ्.पोर्. स्नङ्.व. स्तोङ्.पडि. जम्स्.म्योङ्. ऽव्युङ् ॥  
 छ्व्.रोम्. स्नङ्. यङ्. छु. डो.शेस्.व्शिन्.दु ।  
 ग्ञिस्.प. द्रन्.पडि. स्नङ्.व. म.ऽगग्. पर् ॥
१११. स्तोङ्.प. व्दे. दङ्. थ.मि.दद्.पर्. ऽव्युङ् ।  
 छुव्.रोम्. छु<sup>३</sup>.रु. व्शु.वडि. ग्नस्.स्कव्स्.व्शिन् ॥  
 द्रन्.प. द्रन्.मेद्. स्क्ये.व.मेद्.ल. थिम् ।  
 थम्स्.चद्. थ.मि.दद्.पस्. व्दे.व.छेन्.पोर्. ग्चिग् ॥
११२. दे.ञिद् छ्व्.रोम्. छु.रु. व्शु.व.व्शिन् ।  
 थम्स्.चद्. रङ्.व्शिन्. थुग्स्.फ्रद्. शेस्. ग्युर्. न ॥  
 व्चिङ्. व्क्रोल्.दग्.गिस्. म. व्सुङ्. द्रन्.पडि. जेस्.म<sup>४</sup>.  
 ऽजुर्.बुस्. व्चिङ्स्.प. व्शिन्.दु. सेम्स्. मि. स्त्रिब् ॥
११३. ऽजुर्.बु. वलोद्. न. श्रोल्.शिङ्. सेम्स्.ञिद्. गर्.द्गर्. व्तङ् ।  
 ल्दोग्.पस्. ग्सिङ्स्.ल. ऽफुर्.वडि. व्य.रोग्. व्शिन् ॥  
 दे.ञिद्. स्. शेन्. स्नङ्.व. लोङ्स्.स्प्योद्. यिन् ।  
 ल्चग्स्.क्युस्. व्तव्.पस्. ग्लङ्.छेन्. थिम्.प.व्शिन्<sup>५</sup> ॥
११४. व्य.ब्रल्. व्शग्.पस्. ग्लङ्.छेन्. लोम्.व.व्शिन् ।  
 द्रन्.प. द्रन्.मेद्. डो.शेस्. ग्नोद्.प.मेद् ॥

१०८. सोई शून्य विस्मृति ठहरै तो,  
स्मृति मन में अभिन्न प्रतिभासशून्य भिन्न न उन्मेषै ।  
सोई चित्तसंसर्ग अज अनुभव में,  
प्रतिभास (स्व)भाव शून्यता महासुख उदित होइ ॥
१०९. ओलेके पिघले पानीके पीने के विच्छेद-सा  
जो प्रतिभास अज महासुखकी वेदना करै ।  
उपेक्षा विस्मृति सो कल्पना अनिरुद्ध भी,  
बुद्धिसे परे से मूढ भावना रहित ॥
११०. यहाँ बसै तो महासुख संभवै, प्रथम प्रतिभास-शून्यता अनुभव होइ ।  
ओला प्रतिभासै तो पानी की पहिचान जिमि,  
द्वितीय स्मृति-प्रतिभास न निरोधै ॥
१११. शून्यता सुख औ अभिन्न होइ, ओलेके पानी में पिघली अवस्थिति जिमि ।  
स्मृति-विस्मृति अजमें विलीन, सब अभिन्न (ता) से महासुखमें एक ॥
११२. सोई ओलेके पानीमें पिघलने सा, सब स्वभाव चित्त संसर्ग जानै तो ।  
ग्रंथिमोचन से अगृहीत स्मृति, ना अनुसरै,  
कुदालसे बँधा जिमि चित्त न ढाँकै ।
११३. कुदाल खोदे मुक्तचित्त ही नाचै उचाटै, निवृत्तिसे संक्रममें कौए-सा ।  
सोई जानै तो प्रतिभास संभोग है, अंकुश देनेसे गजके निमग्न होने-सा ।
११४. निष्क्रिय रखने से गज मस्त-सा, स्मृति विस्मृति ज्ञानको ना बाँधे ।

- स्नङ्. दङ्. स्तोङ्.प. शस्.पस्. तोग्.दङ्.ब्रल् ।  
 स्क्ये.वर्. ग्नस्.पस्. द्ब्येर्.मेद्. द्रन्.मि.ग्यु ॥
११५. दे.जिद्. ख्यव्.बृदग्. द्ग्र. कुन्.ङो.शस्.ब्रिन् ।  
 स्नङ्.व. स्तोङ्.पर्. थिम्.पस्. लन्. छ्व.छुर्.थिम्.<sup>६</sup> ब्रिन् ॥  
 द्रन्.प. द्रन्.मेद्. थिम्.प. दे.खो.न ।  
 स्क्ये.व. नम्.प. ग्जिस्.ल. स्क्ये.ग्यु. मेद् ॥
११६. थुग्.फ्रद्. स्क्ये. मेद्. ये.शस्. शर्.वस्. न ।  
 द्रन्.प. ब्र्लो.यि. युल्.मेद्. फ्योग्स्.मेद्. ये.शस्. ऽछर् ॥  
 स्प्र.व. मे. म्छेद्. रङ्. ऽवर्.मे.ब्रिन्.दु ।
- 112b ञाम्स्.भ्योङ्. स्मर्. मि.वतुव्.प. ग्शोन्. नुडि. ब्दे. व. ब्रिन् ।
११७. स्न.छोग्स्.स्नङ्. यङ्. द्रन्.पर्. मि.ऽग्युर्. व ।  
 दल्.बडि. बव्.छु. स. द्पऽ.लंबस्. मि.ऽग्युर्.पस् ॥  
 रङ्.गि. डो.वो. ग्सल्.वस्. मर्.मे द्रन्. ।  
 दे.ल्लर्. फ्यग्.ग्ये.छेन्.पो. गङ्.ल. मि.वस्तन्.पस् ॥
११८. ब्य.सर्. को.ने. म्खऽ.ल. ग्नस्. ब्रिन्.दु ।  
 तोग्स्.पडि. स्प्योद्.पस्. ब्र्लङ्.दोर्. मि.<sup>१</sup>.ब्येद्. प ॥  
 सोग्.छगस्. प.त.रि.ब्रिन्. शे. छगस्.मेद् ।  
 ब्र्लो.ऽदस्. ऽब्रस्.वु. ऽदोद्.न. मेद्.गुव्.प ॥
११९. स्मन्. म्. छोग्. (प.) न. पे. त. जि.ब्रिन्. जिद् ।  
 क्ये.हो. दे.ल्लर्. म्खस्.प. थव्स्.सिन्.गिस्. (न.) नि ॥  
 द्रन्.प.मेद्.ल. स्क्ये.मेद्. ग्येस्. व्तव्. स्ते ।  
 द्रन्.प.मेद्.पस्. द्रन्.मेद्. ग्ये.यिस्.<sup>२</sup> व्तव् ॥
१२०. स्नङ्.वस्. स्तोङ्. प. ल. ग्येस्. ग्दव् ।  
 स्तोङ्.पस्. स्नङ्.व.ल. ग्येस्. ग्दव् ॥  
 द्रन्. दङ्. स्नङ्.व. ब्दे.बडि. रोर्. शर्. न ।  
 स्तोङ्. दङ्. द्रन्.मेद्. ग्ये.यिस्. थेव्स्.प. यिन् ॥

प्रतिभास औ शून्यता ज्ञानसे निर्विकल्प, योनि से अभिन्न स्मृति अकारण ॥

११५. सोई विभूति सर्व शत्रु की पहिचानसी,  
प्रतिभास-शून्यता में विलयन से लवण (सी) पानी में लीन ।  
स्मृति विस्मृति विलय सोई, द्विविध उत्पत्तिमें उत्पत्ति-कारण नहीं ॥
११६. चित्त संसर्ग उपजै नहीं ज्ञान उदय से यदि,  
स्मृति बुद्धि का विषय नहीं विना पक्षज्ञान उगै ।  
तूण दहै स्वयं ज्वलित अग्नि जिमि, अनुभव कथनमें अस्फुट शिशु सुख-सा ॥
११७. नाना प्रतिभासन भी स्मृतिमें विकार नहीं, मन्द नदी भूमि भंग अविकार ।  
अपने (स्व) भाव प्रकाशनसे दीपक स्मृति, तैसे महामुद्रा जिसे नहीं बतावै ॥
११८. सरकोन पक्षी आकाशमें वसै जैसे, अवबोध-चर्यासे लेना-छोड़ना नहीं करै ।  
प्राणी पन्नरी जिमि संसर्ग राग नहीं,  
बुद्धिसे परे फल चाहे तो अभाव सिद्धि ।
११९. उत्तम औषध हो तो पेत जिमि, अहो तैसे उपाय बद्ध पंडित लोग ।  
विस्मृतिमें अज विस्तार अर्पित करै,  
स्मृतिके विना विस्मृति संतानसे अर्पणा ।
१२०. प्रतिभास-शून्यताका विस्तार रोपना,  
शून्यतासे प्रतिभासको विस्तार देना ।  
स्मृति औ प्रतिभास सुखके रसमें उदय हो तो,  
शून्यता औ विस्मृति विस्तर से ग्रस्त है ॥



१२१. स्तङ्. दङ्. द्रन्.प. स्तोङ्.पडि. र्ग्यं. दङ्. नि ।  
 द्रन्.मेद्. ग्न्स्.प.दग्.गिस्. र्ग्यस्.ग्दब्. न ॥  
 स्तङ्. दङ्. द्रन्.प. व्दे<sup>३</sup>.वडि. रोर्. शर्.नस् ।  
 म्छन्.मडि. ब्स्गोम्.पस्. म.दफ्यद्. म्छन्.मडि. ब्लो.लस्.ऽदस् ॥
१२२. द्रन्. दङ्. स्तङ्.ब.दग्.ल. स्क्ये.मेद्. र्ग्यस्. बतब्. प ।  
 स्क्ये.मेद्.दग्.ल. ब्लो.ऽदस्. र्ग्यं.यिस्. थेब्स् ॥  
 द्रन्.पस्. द्रन्.मेद्. व्दे.वडि. र्ग्यस्. थ्ब्स्.पस् ।  
 स्तोङ्.पर्. म.सोङ्. छद्.पडि. म्थर्. म. ल्हुङ्<sup>४</sup> ॥
१२३. ग्न्स्.प. स्क्ये.प.दग्.ल. र्ग्यस्. थेब्स्.पस् ।  
 द्ङोस्.पोर्. म. सोङ्. तंग्.पडि. म्थर्. म. ल्हुङ् ॥  
 थम्स्.चद्. ब्लो.लस्.ऽदस्. शिङ्. स्क्ये.ब. मेद् ।  
 थम्स्.चद्. व्दे.व.छेन्.पोडि. र्ग्यु.दङ्.ल्दन्. ॥
१२४. दे.लत्. शोस्.पस्. व्तङ्. स्ञोम्स्. म्थर्. म. ल्हुङ् ।  
 द्रन्.प. ऽखोर्.वडि. द्ङोस्.पो. दङ्<sup>५</sup>.द्रन्.प. मेद.पडि. तोंगस्.प. ल. ॥  
 व्तङ्.स्ञोम्स्. लम्.दु. ख्येर्.बर्. व्येद्. प. दङ् ।  
 रिग्.पस्. ग्धिग्स्.नस्. स्तोङ्.प. व्तङ्.स्ञोम्स्. दङ् ॥
१२५. ग्मुङ्.ऽजिन्. ब्रल्.वडि. रङ्.रिग्. व्तङ्.स्ञोम्स्.पस् ।  
 व्देन्.प.ग्जिस्.ब्रल्. ग्जिस्.मेद्. व्तङ्.स्ञोम्स्. ब्स्गोम्. ॥  
 गङ्.दु. म.द्रन्<sup>६</sup>. ब्स्म.ग्त्तन्. व्तङ्.स्ञोम्स्. म्छोग् ।  
 लुङ्.दु. म.व्स्तन्. व्तङ्.स्ञोम्स्. म. यिन्.ते ॥
१२६. शोस्.प. सोर्. ग्गग्. द्रन्.मेद्. जाम्स्.ऽफो.ब ।  
 द्रन्.पडि. म्छन्.म. द्रन्. मेद.लम्.दु. ख्येर् ॥  
 व्दे.व.ल. म.ख्येर्. ब्लो.ऽदस्. म.दमिग्स्.प ।
- 113a. ग्जिस्.ल. मि.तोंग. व्दे.ब. र्ग्यु. म. छद्<sup>७</sup> ॥
१२७. क्ये.हो. जाम्स्. दङ्. ब्रल्. बस्. ग्मुङ्.ऽजिन्. ग्जिस्.खस्. 'ग्रोल् ।  
 दे.जिद्. फ्यग्.र्ग्यं.छेन्.पोडि. दोन्. म्थोङ्.ग्थुर् ॥

१२१. प्रतिभास औ स्मृति शून्यताका विस्तार,  
 स्मृति विना रहनेवालोंसे विस्तृत हो तो ।  
 प्रतिभास औ स्मृति सुखके रसमें उदयसे,  
 तो निमित्त भावनासे अभेद्य निमित्त बुद्धि से परे ॥
१२२. स्मृति और प्रतिभासमें अज विस्तार पड़े,  
 अज शुद्धमें बुद्धिसे परे विस्तारसे ग्रस्त ।  
 स्मृतिसे विस्मृति सुखका विस्तृत-ग्रस्त करनेसे,  
 शून्यतामें न जा उच्छेद अन्तमें ना चुवै ॥
१२३. विहार उत्पत्तिमें विस्तार ग्रस्त होनेसे, वस्तु में न जावै (तो) शाश्वत  
 अन्त ना ग्रसै ।  
 सारे बुद्धिसे परे होकर उपजें नहीं, सारे महासुखके कारण वाले ॥
१२४. ऐसे जाननेसे उपेक्षा अन्त न पावै,  
 स्मृति संसार-वस्तु औ विस्मृतिके अबबोधमें ।  
 उपेक्षा-मार्गमें ले जाना औ, विद्या से विचार कर शून्यता औ उपेक्षा ॥
१२५. ग्रहण-धारण विना स्व(सं)वेद्य उपेक्षासे  
 सत्य-द्वय रहित अद्वय उपेक्षा भावना ।  
 जहाँ विस्मृति ध्यान उत्तम उपेक्षा अव्याकृत उपेक्षा भावना नहीं ॥
१२६. ज्ञान अंगुलीपर रखा विस्मृति संस्फुट,  
 स्मृति-निमित्त विस्मृति मार्गमें ले जावै ।  
 सुखमें मत ले जा बुद्धिसे परे निरालंबना, द्वैतमें कल्पना हीनसुख कारण  
 ना उच्छिन्न हो ॥
१२७. अहो ध्वंस-रहित ग्रहण-धारण दोनोंसे मुक्त, सोई महामुद्राका अर्थ देखै ।

ऽब्रस्.बु. म्थर्.थुग्. रिन्.छेन्.गृतेर्.छेन्.ल ।

फ्यग्.र्य.छेन्.ल. ग्नस्. ऽदोद्. गङ् ॥

द्वि.मेद्. ऽब्रस्.बु. त्तोर्गस्.पर्. शोग् ।

स.र.ह्रि. शल्.रङ्.नस्<sup>७</sup>. ग्मुङ्गस्.प. र्कुडि.मज्ोद्. ऽछि मेद्. दो.जोडि. ग्लु. शे स्.  
व्य.ब. ज्तोर्गस्.सो ।

अन्त्यावस्थ फल महारत्नकोशमें, महामुद्रा में विहारका इच्छुक जो  
निर्मल फल का (उसे) अवबोध हो ॥

(इति) सरह श्रीमुखसे कथित कायकोश 'अमृतवज्रगीति' समाप्त ।

---



# ६. वाक्कोश मंजुघोष वज्रगीति

( भोट, हिन्दी )

# ६. गसुङ्.गि. मज्जोद्. 'ऽजम्.द्व्यङ्.स. दो.जैङि. ग्लु'\*

( भोट )

ऽजम्.दपल्. ग्शोन्.नु. ग्युर्.ब.ल. फ्यग्.ऽछल्.लो ।

१. क्ये.हो<sup>३</sup>.तिङ्.ङे.ऽजिन्.चे.ग्विग्.रो.स्त्रोमस्.स्प्योद्. प.ख्यद्.पर्.चन् ।  
दङ्गोस्.दङ्.दङ्गोस्.मेद्.यिद्.तौगस्.ऽखोर्.बर्.ग्यु.बस्.व्तङ्.बर्.व्य ॥  
स्नङ्. दङ्. स्तोङ्.ब. सुङ्.दु. ऽजुग्.प. द्व्येर्.मेद्. दे.खो.न ।  
छोस्.किय.द्व्यिङ्स्.किय.रङ्.व्शिन्.थम्स्.चद्.ऽव्युङ्.शिङ्.थिम्.पर्.ग्नस् ॥
२. व्दग्. दङ्.<sup>३</sup> ग्शन्.दोन्. ग्जिस्.मेद्. व्रन्.मेद्. ग्सल्.वङि.दङ् ।  
फ्यग्.ग्ये.छेन्. पोङि. नैम्.ग्रङ्स्. द्पग्.मेद्. व्जोद्.लस्. ऽदस् ॥  
दङ्गोस्. दङ्. दङ्गोस्.मेद्. योङ्स्.सु. व्तङ्. न. ऽखोर्.ऽदस्. मेद् ।  
जिङ्.बु. ग्लग्.व. मेद्. न. फ्योगस्.व्शिर्.ऽखोर्.लो. स्पङ्स् ॥
३. ब्यिस्.प. म. शेस्. तैन्.ऽब्रेल्<sup>४</sup> ऽखोर्.बर्. ऽजुग्.पङि. ग्यु ।  
शेस्.रव्.शन्.पस्. दङ्गोस्.ऽजिन्. व्दग्.ग्शन्.दोन् मि.गुब् ॥  
मर्.मे. स्पर्. यङ्. द्मुस्. लोङ्.दग्.ल. स्नङ्. मि. स्निद् ।  
व्दग्.ग्शन्.दोन्.ऽदोद्. दङ्गोस्.ऽजिन्. रङ्.गिस्. रङ्.ल.ऽजिन ।
४. तौग्.प. यिन्.फियर्. व्तङ्. मि.व्तङ्.ल. बर्तौग्.पर्. व्य ।  
स्नङ्.<sup>५</sup>मेद्. रङ्.रिग्. तौग्.पङि. थ.स्त्राद्. कुन्.दङ्.ब्रल् ।  
थव्स्.दङ्.ब्रल्.फियर्. व्दग्.दोन्. मि.ऽगुब्. म्छन्.मर्. ऽग्युर् ।  
द्व्येर्.मेद्. दोन्.ल. ग्नस्.पस्. दे.जिद्. स्तोन्.प. दङ् ॥
५. छोस्.किय. द्व्यिङ्स्.ल. ऽजुग्.पङि. म्छन्.जिद्. व्स्तन्.पङो ।  
ब्ल.म.लस्. व्स्तन्. लुङ्. ऽब्रेल्. ग्दम्स्.ङ्ग.<sup>६</sup> जैस्.सु. स्तोन् ॥

\* स्तन्. ऽग्युर्., ग्युद्.शि, पृष्ठ ११३ क २-११५ ४

## ६. वाक्कोश 'मञ्जुघोषगीति'

( हिन्दी )

नमो मञ्जुश्रियै कुमारभूताय

१. अहो समाधि एकगिखर रस अलस-चर्या विशेषी,  
वस्तु औ अ-वस्तु मन-कल्पना संसार के कारणमें द्योड़िए ।  
प्रतिभास-शून्यता युगमें प्रविष्ट भेदरहित तत्त्व,  
धर्मधातु स्वभाव सारा होकर रहै विलीन ॥
२. स्व-पर-अर्थ दो नहीं औ विस्मृतिप्रकाशन,  
महामुद्रा पर्याय अमित कथनातीत ।  
वस्तु औ अ-वस्तु परित्यागै तो संसार से परे न (होइ),  
वापी उरुगुप्त ना तो चउदिसि चक्र फेंक ।
३. बाल अजान आश्रय संसारमें उतरने का कारण,  
मन्दप्रज्ञ स्वभाव स्व-पर-अर्थ ना साधै ।  
दीप जलता भी जन्मांधको प्रभासै ना,  
स्व-पर-अर्थ इच्छा साधक अपनेहि अपने धारै ॥
४. अवबोध होनेसे त्याग-अत्यागको सदा करै,  
प्रतिभास विना स्वसंवेद्य अवबोध सर्व-व्यवहार-रहित ।  
उपायरहित होनेसे स्व-अर्थ-असिद्ध अ.निमित्त होइ,  
औ अभिन्न अर्थ में स्थितिसे सोई शिक्षा ॥
५. धर्मधातुमें प्रविष्ट का लक्षण कहै ।  
गुरु-देशना व्याकरण<sup>२</sup>संबंध अववादवचन अनुशासै ।

---

१. भावना । २. उपदेश ।



लुङ्. दङ्. रिग्स्.पस्. रङ्.गि. म्छन्.ञिद्. तोंगस्.ऽदोद्.प ।  
 व्ल.म.ल. ब्र्तेन्. ग्दम्स्.ङ्ग्.ल्दन्.प.दग्.लस्. ञ्द् ॥

६. ब्र्जान्. ब्र्कुर्. व्रस्. न.ल्हन्. चिग्. ब्र्दे.व.म्छोग्. थोब्. ऽग्युर् ।  
 द्वि.म.दङ्.ब्रल्.व्य.फियर्. व्ल.मडि. श्वस्.ल. ऽदुद् ॥  
 113b म्छोद्.न. व्बिन्.र्ल्वस्.छेन्<sup>०</sup>पो. ऽव्युङ्.बर्. र्ग्यल्.बस्. ब्रशद् ।  
 क्ये.हो. ग्रोङ्.ख्येर्.चम्.अ.ओ.ङ्न्.कुस्.नम्.म्खऽर्. सोङ्. ब्र्शिन्.दु ॥

७. थर्.वस्.ऽबद्. न. र्ग्यल्.बडि. स.ल. ग्दोन्. मि. स. ।  
 ब्र्जोद्.व्य.र्जोद्.द्वङ्.स्क्रुर्.व्बिन्.र्ल्वस्.स्वये.शिङ्.ऽफेल्. बडि.ग्नस् ॥ ।  
 स्डोन्.दु. स्लोव्.मस्.व्य.दङ्. स्लोव्.दपोन्.व्य.बडि. रिम्.प.<sup>१</sup> दङ् ।  
 जेस्.सु. स्लोव्.मस्. ब्य. दङ्. सव्.मो. द्वङ्.ब्र्स्क्रुर् ब ॥

८. फ्यग्.र्ग्यं. म्छोद्. दङ्. व्र्स्तोङ्.प.दग्.गिस्. ग्सोल्.व.ग्दव् ।  
 स्ञन्.पडि. छिग्.गिस्. ग्सोल्.ग्दव्. रिग्.प. चर्ल्.दपङ्. दङ् ॥  
 फ्यग्.र्ग्यं.ल. ब्र्तेन्. ग्मङ्.बडि. द्वङ्.ब्र्स्क्रुर्. स्दोम्.स्वियन्.दङ् ।  
 ग्नङ्.ब. स्वियन्. दङ्. जेस्<sup>३</sup>.सु. स्प्रो.ब. व्र्स्तन्.प. स्ते ॥

९. स्लोव्.मस्. जस्. द्वुल्. सव्.मोडि. द्वङ्.ब्र्स्क्रुर्. दम्. ब्र्चऽ. दङ् ।  
 ब्र्स्वयेद्.पडि. रिम्.प.ल.सोग्स्. व्र्स्तन्.प. नि ॥  
 ङो.बो.ञिद्.किय. रिम्.प. व्र्स्तन्.प. दङ् ।  
 ञाम्स्.म्योङ्. ब्र्सोम्.पर्.ब्य.बडि. ब्र्जोद्.व्य.ल.सोग्स्. कुन् । ]

१०. गङ्.ल. मि. ग्नस्.व्य. सर्.को. नि<sup>३</sup>. गङ्.ल. तेंन्मि.ऽछ्ऽ ।  
 ऽदोद्.प. मेद्.पडि. ब्र्दे.व.दग्.ल. मि.ग्नस्. ते ॥  
 म.सुङ्.मेद्.फियर्. गङ्.ल. तेंन्. दङ्. तेंन्.व्येद्.ब्रल् ।  
 ग्जिस्.मेद्.र्नल्.ऽब्योर्. रङ्.ल. ऽछर्.बडि. ञाम्स्.म्योङ्. ब्र्दे ॥

११. ब्र्दग्.तु.तोंग्.पडि.दङ्गोस्.पो.व.तङ्.न.नम्.म्खडि.मथऽ. ल्तर.यङ्स्.<sup>४</sup> ।  
 म्य.ङ्न्.ऽदस्.पडि. ग्रोङ्.ख्येर्.दग्.तु. ऽजुग्.ऽदोद्. न ॥

- व्याकरण औ विद्यासे स्व-लक्षण जानने की इच्छा,  
गुरु आश्रय अववादवचन वालोंसे लहै ॥
६. उपासना करि सहजे वरसुख पावै,  
मलरहित करनेसे गुरुचरण में लगै ।  
पूजि के महा अधिष्ठान संभूत जिनने कहा,  
पूजि के महा अधिष्ठान संभूत जिनने कहा,  
अहो नगर चउ अंकुश आकाश गमन जिमि ॥
७. मोक्ष से निरत हो तो जिनकी भूमि में अवश्य,  
वाच्य-वाचक अभिषेक अधिष्ठान उपजै वृद्धि का स्थान ।  
पहिले शिष्य का करै गुरु क्रिया-क्रम,  
पीछे शिष्य का करना औ गंभीर अभिषेक ॥
८. मुद्रा पूजा औ स्तोत्रसे आरोचना,  
कल-वचन से आरोचना क्रम विद्या क्रमसाक्षी औ,  
मुद्रामें वृद्ध गुह्य अभिषेक संवर-दान,  
उपहारदान औ अनुकम्पा शासन ॥
९. शिष्य द्रव्य निवेदै गंभीर अभिषेक प्रतिज्ञा औ,  
आरोह-क्रम इत्यादि शासन ।  
स्वभाव-क्रम बताना औ,  
अनुभवभावना कथनीय इत्यादि सब ॥
१०. जहाँ न बसै सर्.को\* जहाँ निःश्रय ना चाहै,  
निष्काम शुद्ध सुख में ना रहै ।
- अचरज विना जहाँ आश्रय औ आश्रयी नहीं,  
अद्वय योगी अपने उदित अनुभव सुख ॥
११. अपने अवबुद्ध वस्तु छाड़ै तो गगन के अन्त-सा विशाल,  
शुद्ध निर्वाणनगर में प्रवेश की इच्छा हो तो,

- छोग्स्.द्रुग्. फ्रद्. छर्.प. र्ग्यन्.गिय. नँल्.ऽब्योर्.छे ।  
 स्नङ्.स्तोङ्.प. स्वये.मेद्. थुग्.फ्रद्. क्येन्.ल. रग्. म.लुस् ॥
१२. ग्जिस्.मेद्. गोम्स्.पस्. लम्.म्युर्. खुङ्.दु. ऽजुग्.मि.ल्दोग् ।  
 सेम्स्.चन्.सङ्स्.र्ग्येस्.रङ्.वृशिन्.यिन्<sup>१</sup>.पर्.शेस्.न. चोल्.व.मेद् ॥  
 गङ्.गि.रो.स्ञोमेस्. स्प्योद्.प.ल. वर्तेन्.नस्. ऽज्रस्.बु. थोव् ।  
 स्प्योद्.प.व्यस्.न.ऽप्रो.व.ऽखोर्.व.दग्.लस्.थर्.वर्. थे.छोम्.मेद् ॥
१३. वृद्. दङ्. मि.मथुन्.फयोग्स्.लस्. नम्.पर्. र्ग्यल्.वर्. ऽयुर् ।  
 म्छन्.मडि.नँल्.ऽब्योर्.मि.व्य.वृत्तङ्.स्ञोमेस्. <sup>२</sup>नँल्. ऽब्योर्.मिन् ॥  
 म्खस्.पडि. ये.शेस्. म्युर्.दु. थोव्.चिङ्. स्त्रिब्व्.प. सद् ।  
 म्छन्. मडि. स्प्योद्.पस्. द्रङ्.दोन्. म्खस्. क्यङ्. मोंङ्स्.नँम्स्. ऽछिङ् ॥
१४. रो.स्ञोमेस्. फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो.ल. वर्तेन्. नम्.म्खर्. ऽप्रो ।  
 ग्जिस्.मेद्. स्प्योद्.लम्. र्ग्युन्.दु. वृस्तन्.न. छे. ऽदिर्. थोव् ॥
- 114a स्नङ्.ब<sup>३</sup>. स्यु.मडि. युल्.ल. मि.ग्नस्. तोंग्.युल्.मेद् ।  
 ऽजिग्.तेन्. छोस्. बर्ग्येद्.ऽछिङ्.वर्. मि.नुस्.वर्तुल्.शुग्स्. म्छोग् ॥
१५. स्त्रिङ्.जे. यव्स्. थिन्. स्प्योद्.प. छग्स्.मेद्. म्खऽ.ल्लर्.यङ्स् ।  
 फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो. यन्.लग्.वृशि.ल्दन्. थव्स्.किय. म्छोग् ॥  
 वृशिर.ल्दन्<sup>४</sup>. फ्यग्.र्ग्ये. ग्चिग्.गि. छो. ऽफुल्.ग्चिग्.गि. दङ् ।  
 ग्जिस्.मेद्. दङ्. ल. फ्यग्.र्ग्ये.छेन्.पो. ग्लोद्. दे. ग्शग् ॥
१६. द्यङ्.छुव्.सेम्स्.ल्दन्. वृत्तङ्.शग्.मेद्. न. ग्लङ्.छेन्.ऽद्र ।  
 तोंग्.पडि. ङो.वोस्. मो.तँ.ल्लर्. स्नङ्. ऽदोद्. न ॥  
 तोंग्.मेद्. स्नङ्.मेद्. दोन्.ल. ऽवद्.दे. नँल्.ऽब्योर्.व्य ।  
 स्कु.वृशि<sup>५</sup>. म्थर्.पियन्. ऽज्रस्.बु. वृदे.व. छेन्.पोडि. दङ् ॥
१७. स्वये.वर्. स्नङ्.ब. लम्.गिय. लुस्.नँम्स्. नि ।  
 स्कु.गुसुम्.मथुर्.ल्दन्. तोंग्.प. नँम्.पर्.ब्रल् ॥  
 शेस्. दङ्. शेस्.व्यर्. र्ग्युद्.पडि. युल् ।  
 दूङोस्.पोडि. रङ्.वृशिन्. स्वये.बडि. क्येन्.स्नङ्. यङ् ॥

छ परिषद् संसर्ग वृष्टिस्रोतका महायोगी,  
प्रतिभास-शून्यता अज चित्तसंसर्ग प्रत्ययमें ना स्पशैं ॥

१२. अद्वय-भावना से मार्ग शीघ्र पकड़में आवै निस्सन्देह,  
प्राणी बुद्ध स्वभाव है (यह) जानै तो अनायास ।  
जिसमें रस-समचर्या के आश्रयसे फल पावै,  
चर्या करै तो जग-संसार से मुक्ति निस्सन्देह ॥
१३. मार औ प्रतिपक्षसे विजय (पूरा) हो जावे,  
निमित्त योगी निष्क्रिय उपेक्षा योगी नहीं ।  
पंडितका ज्ञान जल्दी पा कर आवरण नाशै,  
निमित्त चर्या से स्मृति-अर्थ चतुर भी मूढ़ बंधैं ॥
१४. समरस महामुद्रा आश्रय ले आकाश में जा,  
अद्वयचर्या मार्ग-स्रोतमें कहै तो इस समय पावै ।  
प्रतिभास माया के विषयमें ना रहै कल्पना-विषय नहीं,  
आठ लोकधर्म बाँध न सकै उत्तम व्रत ।
१५. करुणा उपाय लीन ? चर्या रागरहित ख-सम विशाल,  
महामुद्रा चतुरंगी उत्तम उपाय ।  
चार एक मुद्रा औ एक प्रतिहार्यका,  
अद्वय प्रसन्न महामुद्रा पुनः थापै ॥
१६. बोधिचित्ती छोड़ना नहीं गज जिमि,  
अवबोध-वस्तु से गो-अश्व जिमि प्रतिभास चाहे तो ।  
निर्विकल्प निष्प्रतिभास अर्थमें निरत सो योग करै,  
औ चउ काय (के) अन्त (पर) पहुँचै फल महामुखमें ॥
१७. जन्म प्रतिभास मार्ग के शरीर,  
त्रिकाय शक्तिसहित कल्पना-विरहित ।  
ज्ञान औ ज्ञेय में सन्तानों का विषय,  
वस्तु-स्वभाव उत्पत्ति-प्रत्यय प्रतिभास भी (है) ।

१८. म.स्वयेस्.प.यि. युल्.लस्.ऽदस्<sup>३</sup>. म.म्योङ् ।  
 दङोस्.पो. दङोस्.मेद्. व्तङ्.स्त्रोम्स्. ल.सोग्स्. कुन् ।  
 ऽप्येद्.प.मेद्. दे.द्रन्.मेद्. स्वये.मेद्. युल् ।  
 फयग्.र्ग्यं.छे.ल. तंग्.तु. म्छन्.जिद्.ब्रल् ॥
१९. फुङ्.पो. दग्.पडि. ग्सङ्.बडि. युल्.लस्.ऽदस् ।  
 द्गऽ.व.वशि.यि. म्छन्.जिद्. फयग्.र्ग्यं.डि. युल् ॥  
 रङ्.र्ग्यं.द्. म.यिन्. शेस्<sup>४</sup>.रव्. थवस्.दङ्.ब्रल् ।  
 स्त.च<sup>५</sup>. ल.सोग्स्. दे.जिद्. म.सिन्. न ॥
२०. दे.जिद्.दग्.ल. स्व्योर्. यङ्. दोन्.दम्. मिन् ।  
 रङ्.रिग्. दो. जे.ग्नस्. ते. सेम्स्.द्.पडि. नैल्.ऽव्योर्. नि ॥  
 थम्स्.चद्.म्व्येन्. पडि. डो.वो. ऽदि.द्र. मेद् ।  
 र्ग्यं.म्छोडि. द्बऽ.लव्स्. ब्रग्.चडि. डो.वोर्.म्छुङ्स् ॥
२१. ग्रङ्स्.चम्.जिद्. न. गङ्.दु.ऽङ्. स्लेव्.प.मेद् ।  
 दम्.छिग्. व्स्ग्रुव्. दङ्. ऽत्रस्.नम्. स्व्यर्.व ॥  
 म्छोन्.व्य. म्छोन्.व्येद्. छिग्.गि. थ.स्त्राद्. लम् ।  
 दम्.छिग्. जाम्स्.न. थवस्.सोग्स्. जाम्स्. गङ्. न ॥
२२. ब्लो.लस्.ऽदस्.पडि. युल्.दु. स्लोव्.प. मेद् ।  
 व्तुल्.शुग्स्. स्प्योद्.पस्. फिय. दङ्. नङ्.ऽव्युङ्. व<sup>६</sup> ॥  
 खो.न.जिद्.दङ्.ल्दन्. न. ख्यद्.पर्.चन् ।  
 दे.जिद्. मि.ल्दन्. दुद्.ऽप्रो.दग्. दङ्. म्छुङ्स् ॥
२३. दे.जिद्. स्पङ्स्.पस्. ल्हन्.चिग्.स्यक्येस्. व्स्सोम्स्. प ।  
 थवस्.ब्रल्. दम्.छिग्. जगल्. यङ्. जोस्.प. मेद् ॥  
 ऽदि. दङ्. फ.रोल्. ग्रङ्स्.ल. मि.लतोस्. पर्. ।  
 द.लत्त.जिद्.दु. म्ङोन्.ग्युर्. फयग्.र्ग्यं.छे ॥
- 114b २४. दे.जिद्. स्पङ्स्.<sup>७</sup>न. नम्.यङ्. फ्रद्. मि.ग्युर् ।  
 फयग्.र्ग्यं.छेन्.पो. स्कद्.चिग्. थोस्.पस्. क्यङ् ॥

१८. अजातके विषयसे परे न भोगै,  
वस्तु-अवस्तु उपेक्षा इत्यादि सब ।  
सो ईर्या\* नहीं अ-स्मृति अ-जात विषय,  
महामुद्राका मदा लक्षण नहीं ।
१९. शुद्ध स्कन्धके गुह्य-विषयसे परे,  
चउ-आनंदका लक्षण मुद्राका विषय ।  
स्व-सन्तान नहीं है प्रज्ञा-उपाय-रहित,  
नासिकाग्र इत्यादि सोई न गहै तो ॥
२०. सोई शुद्धमें युक्त भी परमार्थ नहीं,  
स्वसंवेद्य वज्र (में) रहै चित्त-योगी ।  
सर्वज्ञ (स्व)भाव ऐसा नहीं,  
सागर-तरंग की प्रतिध्वनि के स्वभाव तुल्य ॥
२१. गिनने मात्र ही से कहीं भी पहुँचना नहीं,  
सद्वचन प्रतिपादन औ फल विनियोग ।  
लक्ष्य-लक्षण (है) शब्दके व्यवहार का मार्ग,  
सद्वचन ध्वस्त हो तो उपाय इत्यादि ध्वस्त जो ॥
२२. बुद्धिसे परेते विषयमें सीखै नहीं,  
व्रतचर्यासे बाहर भीतर होइ ।  
तत्त्ववान् हो तो विशेषवान्,  
सोई वियुक्त तिर्यक् (पशु)-तुल्य ॥
२३. सोई त्यागनेसे सहज भावना,  
उपायरहित सद्वचन विरुद्ध भी दोष नहीं ।  
यह भी परे गिननेमे न अपेक्षासे  
अभी ही आविर्भूत (हुई) महामुद्रा ॥
२४. सोई छाड़ै तो कभी संसर्ग ना होई,  
महामुद्रा क्षण (भर) मुननेसे भी ।

\*ईर्यापथ, साधारण शारीरिक आचरण ।

स्तोद्.दङ्.ल्दन्. मि.ल्दन्.ल. मि. ल्तोस्.पर् ।  
 ब्स्तन्.प.चम्.ग्यिस्. च्.ग्विग्. ऽदि.यिस्. थोब् ॥

२५. गङ्.शिग्. द्रेन्.प.दग्.ल. स. येङ्स्.पऽि. ।  
 ल्हन्.चिग्.स्वयेस्. डोन्. ब्स्वोम्.दङ्.ल्दन्.पस्. थोब् ॥  
 दे.ञिद्. रङ्<sup>१</sup>.यिन्. ग्शन्.ग्यि. छोस्. मि.छोल् ।  
 दुर्.खोद्. व.सोग्स्. छोल्.फियर्. ऽब्रङ्स्. ते. फुङ् ॥
२६. क्ये.हो.ब्रम्.स. रिग्स्.डन्.ख्यिम्.ऽद्रोस्.ऽछोल्.स्तोङ्.ब्रशिन् ॥  
 सङ्.ङन्. द्रेस्.प.ग्विग्.ल. ग्विग्. ग्नोद्. दे ॥  
 म्छन्.मऽि. नल्.ऽव्योर्. म्छन्.मेद्. दोन्.मि.रिग् ।  
 म्छन्.म.मेद्.ल. ब्ल्तब्स्.प. नम्<sup>२</sup>.यङ्. मेद् ॥
२७. म्छन्.म.दुस्. दङ्. ग्रङ्स्.ल. ल्तोस्.पर्. ऽग्युर् ।  
 ब्स्वयेद्. दङ्. जोग्स्.पऽि. रिम्.प. ख्यद्.पर्. ब्स्वम्. मि.ब्य ॥  
 ग्विस्.मेद्. ऽदुस्.प. नल्.ऽव्योर्. म्छोग्.ल्दन्. गङ् ।  
 गङ्. यङ्. म. शेस्. द्रन्. मेद्. योङ्स्. पऽि. युल् ॥
२८. द्रन्.पऽि. ग्युद्. स्पङ्स्. दे.ल. गोम्स्.पर्. व्य<sup>३</sup> ॥  
 थुन्.मोङ्. म. यिन्. ग्सङ्.स्ङ्ग्स्. ख्यद्.पर्.चन् ॥  
 थोग्.म.ञिद्.नस्. ब्देन. पऽि. डो.बो. रे. ग्नस् ।  
 दङ्गोस्.ऽग्रुब्. ब्स्वुस्.पस्. ल्हन्.चिग्.स्वयेस्.ल. थुग् ॥
२९. दे.ञिद्. ख्यद्.पर्. रङ्.रिग्. युल्.लस्.ऽदस् ।  
 दे.ञिद्. ब्दे.बऽि. ग्नस्. दङ्. दङ्गोस्.पो. स्तोङ् ॥  
 छोस्.नैम्स्. दग्.पस्. रङ्.ब्रशिन्<sup>४</sup>. ब्दे.बऽि. दोन् ।  
 गङ्.ल. मि.ग्नस्. बलो.यि. युल्.लस्.ऽदस् ॥
३०. युल्.मेद्. ग्नस्.मेद्. तैन्.दङ्.ब्रल्.बस्. स्तोङ् ।  
 ए. व. दङ्गोस्.ग्रुब्. डो.बो.ञिद्.क्यि. ष्यु ॥  
 दो.जे.ऽछङ्. दङ्. रङ्.रिग्. ब्ल.मऽि. ब्क्ऽ ।  
 ऽदुस्.पऽि. ग्युद्.दु. द्वि.मेद्. फ्यग्.ग्ये.छे ॥

- पात्रसहित रहित को न देखनेमें,  
वताने मात्रसे एकाग्र इससे पावै ॥
२५. जो शुद्ध स्मृति में न उद्धत,  
सहज सम्मुखे भावनावान्से पावै ।  
सोई स्वयं है अन्यका धर्म ना ढूँढे,  
श्मशान मृग इत्यादि ढूँढने के लिए अनर्थ ॥
२६. अहो ब्राह्मण हीन-जाति गृह (संकीर्ण गवेषणा-याचना जिमि,  
हीन आमिष संकीर्ण एक को एक बाँधें ।  
निमित्त योगी निमित्त विना अर्थ ना संवेदें,  
अनिमित्तमें ईक्षण कभी नहीं ॥
२७. निमित्त काल औ संख्यामें दीखै,  
उत्पत्ति औ क्षय का क्रम ना विशेषतः चिन्तै  
अद्वय कालिक उत्तम योगवान् जो,  
कुछ भी न जानै विस्मृति व्यसनका विषय ॥
२८. स्मृति सन्तान छाडि वहाँ भावना कीजिए,  
साधारण नहीं है मंत्र विशिष्ट ।  
मूल-आपत्ति से सत्यस्वभाव में रहै,  
सिद्धिसंचय से सहज में चित्त ॥
२९. सोई विशेष स्ववेद्य विषय से परे,  
सोई सुखका स्थान वस्तु-शून्य ।  
शुद्ध धर्मों से स्वभाव सुख का अर्थ,  
जहाँ न रहै बुद्धि के विषय से परे ॥
३०. विषय नहीं वास नहीं आश्रय-वियोग से शून्य,  
एक सिद्धि स्वभावही का कारण ।  
वज्रधर औ स्वसंवेदन गुह-आदेश,  
समाज-तंत्र में निर्मल महामुद्रा ॥



३१. कुन्.जोब्.लस्.किय. फयग्.र्ग्य.ल.सोग्स्. कुन्<sup>१</sup> ।  
 ऽखोर्.लोस्. स्म्युर्. र्ग्य.ल्.द्मङ्गस्.किय. दङ्. मङ्ङु.ङ्स् ॥  
 फिय.नस. सङ्.मो. व्स्वयेद्.पडि. रिम्.प. कुन् ।  
 जोग्स्.पडि. फयग्.र्ग्य. जि. स्लडि. स्कर्.फन्.ब्शिन् ॥
३२. द्गऽ.ब्रल्. द्गऽ.व.मृछोग्.तु. द्गऽ. ल.सोग्स्. ।  
 ल्हन्.चिग्.स्वयेस्.द्गऽ. ऽखोर्.लोडि. च्.व. जिद् ॥  
 द्वि.म.मेद्.पर्. दग्.व्येद्<sup>१</sup>. दे.पि. द्गोङ्गस्.पर्. ग्सल् ।  
 दे.जिद्.ल्दन्.पस्. तंग्.तु. ये.शस्. म्योङ्ग ॥
३३. द्फ्येर्.मेद्. थुग्स्.किय. स्तोङ्ग.जिद्. गो.ऽफङ्ग. यङ्गस् ।  
 लुस्. दङ्. थव्स्.ल्दन्. थव्स्.ल.वर्तेन्. व्स्गोम्.प ॥  
 द्रन्.प.स्वयेद्.व्येद्.र्ग्यु.क्येन्. ऽब्रस्.वु. स्मिन् ।  
 लस्.चन्.द्रङ्ग.फियर्. ग्गोल्.वडि. थव्स्.सु. स्व्योर्.<sup>१</sup> ॥
- 115a ३४. लस्.किय. फयग्.र्ग्य. जाम्स्.म्योङ्ग. ब्रोद्.व. स्वयेद् ।  
 दे.जिद्.ल्दन्. गोम्स्. म्योङ्ग. ग्गोल्.वडि. लम् ॥  
 पद्.म. दोर्जेर्. स्व्योर्.व. म्थोङ्ग.ऽदोद्. दङ्ग ।  
 छग्स्.चन्. लम्.गियस्. दे.जिद्. ग्गोल्. मि. ऽग्युर् ॥
३५. ग्शन्. यङ्ग.लस्.किय. फयग्.र्ग्य. जाम्स्.म्योङ्ग. दग्. वर्तेन्. ल ।  
 थ<sup>१</sup>.मल्. रङ्ग.लुस्. फयग्.र्ग्य.छेन्.पो. स्वर ॥  
 फयग्.र्ग्य.छेन्.पो. कुन्.दु.ख्यब्.पडि. द्पे ।  
 रिन्.पो.छे. दङ्ग. नम्.मुखऽ.त्त.बुर्.मृङ्गु.ङ्स् ॥
३६. फुङ्ग.पो.ल्ङ्ग.सोग्स्. ग्सङ्ग.व. मृछोग्.तु. ऽग्युर् ।  
 ऽजिग्.तेन्. ऽजिग्.तेन्.ऽदस्.प. ल्हन्.चिग्.ग्नस् ॥  
 खो.न.जिद्. नि. व्ल.मडि.व्कऽ.द्विन्.गियस्<sup>२</sup> ।  
 मृछोन्.चिङ्ग. व्स्गुव्. मि. द्गोस्.पर्. रङ्ग.ल. जेद् ॥
३७. फयग्.र्ग्य.छेन्.पो. मृछोग्.जिद्. द्वि.म.ब्रल् ।  
 गो.ऽफङ्ग. थोव्.पर्.व्य.फियर्. स्प्यद्.पर्. व्य ॥

३१. संवृति कर्ममुद्रा इत्यादि सब,  
चक्र से परिणत क्षत्रिय शूद्र के तुल्य ।  
बाहर भीतर गंभीर जन्म का सारा क्रम,  
निष्पन्न मुद्रा रवि-शशि क्षुद्रतारा जिमि ॥
३२. निरानन्द उत्तम आनंद में आनन्द इत्यादि,  
सहज आनंद चक्र का मूल ही ।  
निर्मल शोधक सोई आशय में प्रकाशै,  
सोई संयोग से सदा ज्ञान अनुभवै ॥
३३. अनुद्घाटित चित्त का शून्यता विशाल कपाट,  
शरीर वाक् उपायवान् उपाय में दृढ भावै  
स्मृति-उत्पादक कारण प्रत्यय पक्व फल,  
कर्मवान् आकर्षण के (कारण) मोक्ष-उपायमें जुडै ॥
३४. कर्ममुद्रा अनुभव लास्य उपजै,  
सोई सहित भावना अनुभव मोक्षका मार्ग ।  
पद्म-वज्र-संयोग देखनेकी इच्छा औ,  
सकाम मार्ग से सोई मुक्त न होइ ॥
३५. अपि तु कर्ममुद्रा शुद्ध अनुभवके आश्रयमें,  
नश्वर स्व-शरीर (में) महामुद्रा ज्वालै ।  
महामुद्रा सर्वव्यापन का दृष्टान्त,  
रत्न औ गगन सदृश तुल्य ॥
३६. पंच स्कन्ध इत्यादि गुह्य उत्तम हुआ,  
लोक लोकातीत साथ रहै ।  
सोई गुरु दया द्वारा,  
लखि, साधन ना चाहिए स्वयं लहै ॥
३७. महामुद्रा उत्तम निर्मल ही (है),  
कपाट प्राप्त करने के लिए चर्या करै ।

तंग्.छद्. गञिस्.मेद्. मञ्जम्.स्व्योर्. गचिग्. जिद्. गशग् ॥  
लुङ्. दङ्. मन्.ङ्ग. रिग्.पस्. शोस्.पर्.व्य ॥

३८. खो.न.जिद्. नि. व्स्युवस्. न. ग्दोन्. मि.<sup>३</sup> स ।  
फ्यग्.र्ग्यं.छेन्.पो. ग्सल्. ते. शोस्. गोम्स्. न ॥  
खो.न.जिद्. नि. तोंगस्.पर्. थे.छोम्.मेद् ॥  
दे.जिद्. शोस्.न. गोम्स्.पडि. स्तोवस्.कियस्. स्प्योद् ॥

३९. दे.जिद्. म.शोस्. स्तोङ्. स्मो.ऽोगस्मो. दङ् ।  
रिग्.म.ल. वर्तेन्. ग्सुम्.पो. ग्चोर्.व्येद्. दङ् ॥  
छु.व्य.ल.सोग्स्. दङ्. दुद्.ऽग्रोर्. म्छुङ्स्<sup>४</sup> ।  
रङ्.रिग्. र्युद्.ल. थ.स्जिद्. ऽजल्.व्येद्. दङ् ॥

४०. फिय.नङ्. गशिग्स्.नस्. रङ्.वशिन्.मेद्. ऽदोद्. न ।  
ऽजिग्.तेन्. च.चो. यिन्. मेद्. ख्यद्. मेद्. म्छुङ्स् ॥  
बूदेन्. दङ्. तेन्.ब्रेल्. स्मो.नस्. थर्.ऽदोद्. दङ् ।  
द्वङ्.पो. व्स्ङ्मस्. पस्. थर्.लम्. ऽद्रेन्.ऽदोद्. दङ् ॥

४१. वियस्.प. छङ्.प. स्तोङ्<sup>५</sup>.पस्. ऽत्रिद्.द्गऽ. स्ते ।  
देस्.न. व्य.व. व्येद्. ऽदोद्. थर्.मेद्. वर्जुन्.गियस्. व्स्ल्स् ॥  
ग्रङ्स्.चन्.रिग्स्.सोग्स्. ग्चेर्.बु. व्ये.ऽग्रग्. ऽदोद् ।  
व्येद्. दङ्. म्युर्.लत्.ल.सोग्स्.गिय. न. ऽव्यम् ॥

४२. क्ये.हो. दे.नस्. ऽखोर्.व. जि.लत्.र्. ग्तङ्.बर्. ऽग्युर् ।  
र्ग्यु.क्येन्.मेद्.पस्. तोंगस्.युल्. म.यिन्.<sup>६</sup>पडि ।  
सेम्स्.किय. दे.जिद्. फ्यग्.र्ग्यं.छे.ल. ग्नस् ।  
दे.जिद्. स्तोवस्.किय. म्छन्.म.दङ्.ब्रल्.शिङ् ।

४३. छे.गचिग्. फ्यग्.र्ग्यं.छेन्.पो. थोव्.पर्. ऽग्युर् ।  
क्ये.हो. डो.म्छर्. ग्सल्.बडि. स्प्योद्.युल्. ऽदि ॥  
स्मन्.पडि. र्ग्यल्.पो. तोंगस्.लस्. स्व्ये.मेद्. ऽङ्गर् ।

115b ये.शोस्. लङ्.सोग्स्. म्छन्.जिद्. रङ्.<sup>७</sup>ल.लदन् ॥

नित्य उच्छिन्न अद्वय समयोग एक ही थापें,  
व्याकरण औ उपदेश विद्यासे जानै ॥

३८. तत्त्व साधै तो अवश्य,  
महामुद्रा प्रकाशै ज्ञान भावै जो ।  
 तत्त्व ही लखै निस्सन्देह,  
 सोई जाने तो भावना-बलसे आचरै ॥
३९. सोई ना जानै उपरि औ निम्न द्वार,  
 औ विद्या को आलंबै त्रयी प्रधान कारी  
 जलपक्षी इत्यादि मत्स्य औ तिर्यक् तुल्य,  
 स्वसंवेद्य सन्तानमें व्यवहार औ याप्य ॥
४०. बाहर भीतर कल्पना करके अस्वभाव इच्छा हो तो,  
 लोक कोलाहल है किन्तु अविशेष तुल्य ।  
 इच्छा सत्यआश्रय द्वारसे मोक्ष,  
 औ इन्द्रियसंवरसे मोक्ष-मार्ग (में) खींचने की इच्छा ॥
४१. बालक मद्य शून्यता से वंचित आनन्दित,  
 ततः क्रिया करनेकी इच्छाकर मोक्ष नहीं मिथ्यासे डालै ॥  
सांख्य जाति आदि नग्न विभाषा चाहै,  
 कर्ता औ हेतु दृष्टि इत्यादि का घूमना ॥
४२. अहो उससे संसार त्यक्त होइ जिमि,  
 हेतु-प्रत्यय रहितसे कल्पना-विषय ना होये ।  
 चित्त सोई महामुद्रामें रहै,  
 सोई बलके निमित्त-रहित ।
४३. एकदा महामुद्रा प्राप्त होइ,  
 अहो अद्भुत प्रकट चर्या विषय यह ।  
 वैद्यराज कल्पनासे अजात उगै,  
 पंच ज्ञान इत्यादि लक्षण अपने साथ ॥

४४. दङ्.पोडि. लस्.चन्. रिग्स्.कियस्. खो.न. म्थोङ्।  
 म्छन्.म.ल. ब्तेन्. द्रन्.पस्. ग्येङ्.बडि. र्थु ॥  
 खो.न.जिद्.ल. फिय.रोल्. म.द्मिग्स्. न।  
 म्छन्.मडि. स्प्योद्.युल्. द्रन्.मेद्. दङ्. ल. थिम् ॥
४५. म्छन्.मडि. नैल्.ऽव्योर्. खम्स्.गसुम्. ऽवोर्.बडि. लम्।  
 म्छन्.मडि. दङ्.पो. बग्.मेद्. स.बोन्. ब्चस् ॥  
 द्रन्.मेद्. नैल्.ऽव्योर्. नम्.म्खाडि. द्कियल्. दङ्. म्छुङ्स्।  
 सो.सोर्.मेद्.न. डो.बो. म.स्क्येस्.फियर् ॥
४६. स्क्ये.बो.गशन्.गिय. ब्लो.यि. स्प्योद्.युल्. मिन्।  
 दे.जिद्.ल.ल. म्खस्.पस्. स्प्यद्.व्यर्. ऽव्युङ्।  
 द्रन्.प. नैम्.तोर्. ग्.सुग्स्.सु. ग्.नस्. प. २ दङ्।  
 द्रन्.मेद्. खम्स्. ग्.सुम्. दग्.पडि. ग्.नस्.सु. स्पङ्स् ॥
४७. दे.जिद्. म.स्क्येस्. दङ्.पो. कुन्.गिय. ग्.नस्।  
 फिय. दङ्. नङ्.रोल्. म.द्मिग्स्. थम्स्.चद्. शुब् ॥  
 क्ये.हो. फ्यग्.र्थ.छेन्.पो. योन्.तन्.म्छोर्.ल्दन्. गङ्।  
 ब्ल.म. म्.प.व्य.फियर्. दङ्.पो. कुन्.गिय. ग्.शिङ् ॥
४८. ब्ल.म. ३ द्कोन्.म्छोर्. मि.स्पोङ्. योन्.तन्. ऽव्युङ् ;  
 गङ्.शिङ्. दद्.पडि. सेम्स्.ल्दन्. बर्ग्य.लम्. न ॥  
 नैल्.व्योर्.नैम्स्.कियस्. ग्.शुङ्. ऽदि. तोर्.प. शोर्।  
 ग्.सुङ्. गि. म्जोद्. ऽज्. द्.व्यङ्. दो. जेडि. ग्लु. स. र. हस्. ग्.सुङ्. प. जोग्.सौ ॥

४४. प्रथम कर्मी जातिसे सो देखे,  
निमित्त का अश्रय जे स्मृतिसे उद्धत कारण ।  
तत्त्वमें बाह्य उपलभ न हो तो,  
निमित्त चर्या विषय विस्मृति के साथ निमग्न ॥
४५. निमित्त योगी त्रिभुवन संसार मार्ग,  
निमित्त-वस्तु प्रमाद बीज-सहित ।  
स्मृति विना योगी गगनमंडल तुल्य  
पथक् नहीं तो (स्व)भाव न उत्पन्न होइ ॥
४६. अन्य पुरुषकी बुद्धि के गोचर नहीं,  
सोई देखने में पंडित चर्या क्रिया में होइ ।  
स्मृति विकल्प रूपमें रहता औ,  
स्मृति विना त्रिभुवन शुद्ध-आवास में त्यक्त ॥
४७. सोई अ-ज्ञात सर्वसिद्धि का स्थान,  
बाह्य औ अन्तर अलब्ध सर्वसिद्धि ।  
अहो महामुद्रा वरगुणवती जो,  
गुरु प्रमोद क्रिया-हेतु लिये सर्वसिद्धि-मूल ॥
४८. गुरु रत्न न छाड़ गुण मंभूत,  
जो श्रद्धालु चित्त विघ्नद मार्गमें ।  
योगियों को इस ग्रंथ का अवबोध हो,

इति सरह-कथित ग्रन्थ-कोश "मंजुघोषवज्रगीति" समाप्त ॥



७. चित्तकोश 'अजवज्रगीति'  
( भोट, हिन्दी )



## ७. थुग्स्. किय. मज्जोद्. 'स्वये. मेद्.दो.जेँडिग्लु'\*

( भोट )

- ज्जम्.द्गल्. ग्शोन्.नुर.ग्युर.व.ल. फ्यग्.ऽछ्ल.लो ।
१. स्वये.वो. ल्हन्.चिग्. स्वयेस्.पडि. ये.शेस्. नि ।  
 रङ्ग.गि. अम्स्.सु. म्योङ्ग.व. दे.खो.न ।  
 रिग्. दङ्. म.रिग्. रङ्ग.रिग्. ग्सल्.व. दे.खो न ।  
 मर्.मे. मुन्.ग्सल्.<sup>५</sup> रङ्ग.गि. रङ्ग.ग्सल्. रङ्ग.ल. सद् ॥
२. ऽ.म्.गिय. पद्.म. ऽदम्.ल. म.शोन्. ख.दोग्. लेग्स्. ।  
 ग्सुङ्ग.ऽजिन्. द्वि.म. म. स्पङ्गस्. स्विङ्ग.पो. ग्सल्. ॥  
 नग्स्.ऋोद्. गन्स्.पडि. रि.दग्स्. गचिग्.पुर्. ग्यु ।  
 ग्यु.ल. म.शोन्. ऽत्रस्.बु. दे.खो.न ॥
३. स्नङ्ग. दङ्ग. मि. स्नङ्ग. युल्. मेद्. शेन्.मेद्. ग्सल्<sup>६</sup> ।  
 दङ्गोस्. स्तोङ्ग. म.द्रन्. द्रन्.मेद्. ब्जेद्.प. मेद् ॥  
 ल्हन्.चिग्.स्वयेस्.प. नैम्.गसुम्. अम्स्.सु. ब्दे ।  
 शेन्.प.मेद्.फियर्. तोग्.गि. युल्.लस्.ऽदस् ॥
४. स्न छोग्स्. द्रन्.फियर्. जेँस्.सु. ऽत्रङ्ग.व. मेद् ।  
 ग्सल्. दङ्ग. मि. म्जाम्. ये.शेस्. स्विङ्ग.पो. जिद् ॥
116. मुन्.सेल्. जि. न. स्योन्.मेडि. ख.दोग्<sup>७</sup>.ल्टर्  
 रङ्ग.रिग्. रङ्ग.ल. ऽवर्. न. ऽजिन्.तोग्.सद् ॥
५. स्त्रिब.प. सद्.फियर्. द्रन्.मेद्. येङ्गस्.प.मेद् ।  
 ग्जिस्. दङ्ग. योद्.मेद्. थ.स्जिद्. म.स्वयेद्. चिग् ॥  
 फ्यग्.ग्यु.छेन्.पो. ब्सम्.मेद्. बलो.लस्.ऽदस् ।  
 रङ्ग.रिग्. दो.जेँ.ऽजिन्.प. नैल्.ऽव्योर्.प ॥

\*स्तन्. अयुर. ग्यु'द.शि पृष्ठ ११५ ख ४-११८ क २.

# ७. चित्तकोश 'अजवज्रगीति'

( हिन्दी )

नमो मंजुश्रियै कुमारभूताय ।

१. सहज पुरुषका ज्ञान, अपने अनुभव का तत्त्व ।  
विद्या औ अविद्या स्वसंवेद्य प्रकाश तत्त्व,  
तिमिरनाशक दीप स्वयंप्रकाश अपनेको नाशै ॥
२. पंक्का पद्म पंक्रमे अलिप्त सुवर्ण; गहँ-धारँ मल न छाड सार प्रकटै ।  
वनखंड-वासी मृग अकेला कारण, कारणमें न लिप्त हो फल तत्त्व ॥
३. प्रतिभास औ अ-प्रतिभास निर्विषय निर्लेप प्रकाशै,  
वस्तु शून्य ना स्मृति ले विस्मृति कहै नहीं ।  
सहज त्रिविधसम सुख निर्लेप होनेसे कल्पना-विषय-अतीत ॥
४. नाना स्मृति के कारण अनुसरै नहीं, प्रकट औ असम ज्ञान सार ही ।  
तिमिरनाशक सूर्य दीपक वर्ण जिमि,  
स्वसंवेद्य अपने में जलकर ग्रहण कल्पना मारै ॥
५. नीवरण नाशनसे विस्मृति उद्धत नहीं,  
द्वैत औ अ-भाव व्यवहार न उपजावै ।  
महामुद्रा अचिन्त्(य) बुद्धि-अतीत स्ववेद्य वज्रघर योगी ॥

६. ऽदऽ.दृगऽ. ल्हन्<sup>१</sup>चिग्.स्वयेस्.पडि. मर्.मे. नि ।  
थव्स्. दङ्. शेस्.रब्. मुङ्.दु. ऽजुग्.पडि. दोन् ॥  
स्वये.मेद्. स्तोङ्.ऽोद्.गसल्. रिस्.दङ्.ब्रल् ।  
ख्यद्.पर्.चन्.गिय. ये.शेस्. खो.न.ञिद् ॥
७. ग्जिस्.ल. मि. लतोस्. व्दे.व. र्ग्युन्. मि. ऽछद्. ।  
रङ्.व्युङ्. तोंग्.मेद्. वग्.छग्स्. चँद्.नस्. ग्चोद् ॥  
सेम्स्.चन्<sup>२</sup>. सङ्स्.र्ग्यस्. ख्यद्.पर्. व्सम्.यस्. क्यङ् ।  
स्पोद्.लम्.दग्.न. र्ग्युन्.गिय. नैल्.ऽव्योर्.छे ॥
८. द्रन.पडि. रङ्.व्शिन्. व्सम्.गियस्. मि.ख्यब्. क्यङ्. ।  
ग्दोद्.नस्. दग्.पस्. द्रन्.मेद्. द्ब्यिङ्स्.ल. थिम् ॥  
रङ्.दोन्. स्वये.मेद्. ग्जिस्.ब्रल्. तोंग्स्.पडि. दोन्<sup>३</sup> ।  
ऽत्रस्.वु. दग्.पस्. व्लो.ऽद्स्.युल्.मेद्.<sup>३</sup>ब्रल् ॥
९. तोंग्म्.पडि. थव्स्.र्ग्युन्. रङ्.व्शिन्. कुन्.ल.ख्यब् ।  
थव्स्.किय. ऽग्रो.दोन्. स्त्रिङ्.जे. व्सम्.यस्. क्यङ् ॥  
ये.शेस्. रङ्.व्शिन्. स्वये.ऽगग्.मेद्.पर्. तोंग्स्. ।  
थव्स्.किय. व्दे.व. स्वयेस्. क्यङ्. दे.मेद्. म.सिन् ऽछिङ् ॥
१०. ग्रील्.वडि. ये.शेस्. रङ्.ल. ल्हन्.चिग्. ऽव्युङ् ।  
व्सोम्.व्य. सोम्<sup>४</sup>.व्येद्. द्मिग्स्.पडि. व्लो.लस्.ऽदस् ॥  
सङ्स्.र्ग्यस्. सेम्स्.चन्. व्सम्.गियस्. मि.ख्यब्.प ।  
स्वये.मेद्. तोंग्स्.पडि. युल्.न. व्लोर्. मि. स्नङ् ॥
११. दे.ञिद्. सद.पस्. व्दे.व. स्तोङ्.पस्. म्छोन् ।  
व्सोम्.व्यडि. डो.बो. स्नङ्.वडि. क्येन्.लस्. ऽव्युङ् ॥  
मि.तोंग् तोंग्स्.पस्. कुन्.जोब्. थ.स्त्राद्. शुब्<sup>५</sup> ।  
ग्जिस्.सु.मेद्.पडि. स्नङ्.वडि. क्येन्.मेद्.ल ॥
१२. रङ्.व्शिन्. दग्.प. स्वये.वडि. नैम्.ऽफुल्. शर्. ।  
ब्रल्. दङ्. म.ब्रल्. मि.तोंग्. व्लो.लस्.ऽदस् ॥

६. अतीत(?) आनन्द महज दीप, प्रज्ञा-उपाय कल्प प्रवेश के अर्थ ।  
अज शून्य आभास निकाय-रहित, विशिष्ट ज्ञान तत्त्व ॥
७. द्वैत देखे विना सुख-स्रोत न निरुद्धै, स्वयंभू निर्विकल्प वासना मूलसे कटै ।  
प्राणी बुद्ध विशेष अन्ताशय भी, शुद्धचर्या मार्गमें स्रोत का महायोग ॥
८. स्मृति-स्वभाव अचिन्त्य भी, प्रथम से शुद्ध विस्मृति धातुमें लीन ।  
स्वार्थ अज अद्वैत कल्पना-अर्थ,  
शुद्ध फल से बुद्धि-अतीत निर्विषय वियोग ॥
९. कल्पनाके उपाय का स्रोत स्वभाव सर्वव्याप्त,  
उपायकी गतिके लिये करुणा अचिन्त्य भी ।  
ज्ञान स्वभाव जन्मविरोधी नहीं लखि,  
उपायका सुख उत्पन्न हो भी उसके विना ना बंधै ॥
१०. मोक्ष-ज्ञान अपनेमें सह संभवे, ध्येय धारण उपलब्धि बुद्धि-अतीत ।  
बुद्ध प्राणी अचिन्त्य अज कल्पना, दिपयमें बुद्धिमें न भासै ॥
११. सोई विबोध-सुख शून्यतासे लखै,  
ध्येय क्रिया का स्वभाव प्रतिभासकी प्रत्ययसे होवै ।  
अवितर्क कल्पनासे संवृति व्यवहारसिद्ध,  
अद्वय प्रतिभास के प्रत्यय के अभावमें ॥
१२. शुद्ध स्वभाव उत्पन्न ऋद्धि उगे, वियोग औ संयोग (हैं),  
निर्विकल्प बुद्धि से परे ।

गञिस्.मेद्. तोंगस्.व्यर्. स्क्ये.मेद्. युल्.दु. ऽग्युर् ।  
स्तोङ्.पर्. स्म्र.वस्. दे.जिद्. तोंगस्. मि. ऽग्युर् ।

१३. बलो.लस्.ऽदस्. म्नो.व्सम्. युल्. म. यिन्<sup>३</sup> मथऽ ।  
ग्सुम्.तंग्.ऽदोद्.दग्.गिस्. ज्<sup>३</sup>द्.पर्. द्गऽ ॥  
द्गऽ.वशि. दग्.ल. द्मिगस्. क्यङ्. दे.जिद्. द्कऽ ।  
छोग्स्.द्रुग्. रङ्.छस्. ये.शेस्. म्छोग्.ल्दन्.पस् ॥

१४. गञिस्.मेद्. व्चुद्.किय. स्नङ्.व. रङ्.ल. ऽछद् ।  
क्ये.हो. फ्यग्.ग्यं.छेन्.पो. तोंगस्.ब्रल्. कुन्.गिय्. गशि ॥

116b द्ङोस्.गुव्. ऽव्युङ्.वस्. डो.म्छर्. मंद्.दु. छे ।  
गञिस्.मेद्. वग्.छास्. सद्.नस्. रङ्.रिग्. ब्रल् ॥

१५. गसुङ्.ऽजिन्. ब्रल्.वऽि. फ्यग्.ग्यं.छेन्.पो. नि ।  
म्छन्.जिद्. वस्तन्.पस्. जन्.थोस्. ल.सोग्स्. स्क्रग् ॥  
च्<sup>३</sup>ग्.चिग्. ब्रल्तस्. न. योन्.तन्. म्थर्.थुग्.ल्दन् ।  
च्<sup>३</sup>ग्.चिग्. व्यस्. क्यङ्. चुङ्.सद्. व्स्मोम्.दु. मेद् ॥

१६. नंम्.तोंग. रङ्.ऽवर्. द्रन्. मेद्. ग्सोस्.सु. नि. ।  
द्रन्.मेद्. स्नङ्.मेद्. मे.लोङ्. ग्सुग्स्. वर्जान्.ऽद्र ॥  
थ.स्वाद्.ब्रल्.वस्. स्क्ये.मेद्. बलो.ऽदस्. लम् ।  
म्छन्. म.जि. द्रन्. द्रि. मेद्. वग्. छाग्स्. वस्तन् ॥

१७. थोग्.मथऽ.ब्रल्.शिङ्. स्ङ्.फियऽि. दुस्. मि.द्मिगस् ।  
क्ये.हो. फियर्. द्ङोस्.मेद्. ये<sup>३</sup> शेस्. तोंगस्.पऽि. लम् ।  
जि.ल्लर्. वग्.छाग्स्.ब्रल्.वऽि. छुल्. शे. न ।  
गञिस्.सु. म. ग्सुङ्. ग्दोद्.मथऽ.ब्रल्.वस्. शि. ॥

१८. वग्.छाग्स्.ब्रल्.वस्. फ्योग्स्.मेद्. र्यु.व. स्तोङ् ।  
सुङ्.दु. ऽजुग्.प. सङ्स्.ग्यस्. डो.बो. जिद् ।  
शेस्.रब्. नंम्.ग्सुम्. युल्. दङ्. थवस्.सु. ग्सुङ्स् ।  
द्वे<sup>३</sup>.दङ्.ब्रल्.वस्. म्छोन्.पऽि. युल्.लस्.ऽदस् ॥

अद्वय कल्पनीय अज विषय में होइ, शून्यता वादी सोई लखा न होइ ॥

१३. बुद्धि-अतीत से समाधिचित्त-विषय का नहीं हूँ अन्त,  
तीन नित्यकामनाओं से लहै आनन्द ।  
चारो आनन्दों में उपलभ भी सोई कठिन,  
छ परिपद् स्व-भाग से वरज्ञानवानों को ॥

१४. अद्वयरस का प्रतिभास अपने में विच्छिन्न,  
अहो महामुद्रा निर्विकल्प सबका अधिकरण ।  
सिद्धि होनेसे से आश्चर्य महा, अद्वयवासना नाश स्वसंवेदन-रहित ॥

१५. ग्रहण-धारणरहित महामुद्रा, लक्षण बतानेसे श्रावक आदि डरें ।  
एकाग्र देखे तो गुण अंतावस्था का,  
एकाग्र करके भावना में कुछ भी नहीं ।

१६. विकल्प स्वयं-ज्वलित विस्मृति प्रत्यय (भैषज्य),  
विस्मृति प्रतिभासै नहीं दर्पण में रूप-प्रतिविंब सी ।  
निव्यवहार से अज बुद्धि से परे मार्ग, निमित्त-स्मृति निर्गंध वासना कहिए ॥

१७. आदि-अन्त-रहित (जहाँ), पूर्व-पर काल न उपलभै,  
अहो अपर वस्तु नहीं ज्ञान अवबोध-मार्ग ।  
जिमि वासना रहित शील आसक्त,  
द्वैत ना गहै प्रथम अनन्त से शान्त होइ ॥

१८. वासनारहित से निष्पक्ष कारण शून्य, कल्प?—प्रवेश करना है बृद्धत्व ही ।  
त्रिविध प्रज्ञा विषय औ उपाय में गहै, उपमारहित लक्षण-विषय से परे ॥

१६. स्व्ये.व. ऽदि.ल. दम्.पडि. स्विङ्ग.पो. मिन् ।  
 थव्स्.किय. स्व्योर्.वस्. छोग्स्.द्रुग्. रङ्ग.सर. शि ॥  
 फुङ्ग.पो.लङ्ग.सोग्स्. योन्.तन्. दग्.पडि. शिङ्ग ।  
 कुन्.मख्येन्. गञ्जिस्.मेद्. स्नङ्ग.युल्. शेन्.दङ्ग.ब्रल् ॥
२०. दोन्.दम्. स्म्र.मेद्. कुन्.जोव्. तोग्.गे. चम्<sup>५</sup> ।  
 म्य.ङन्.ऽदस्. लम्. ऽखोर्.वडि. स्नङ्ग.ब. जिद् ॥  
 ब्ल.म.दम्.पडि. द्गोङ्ग.प. थुग्.फद्. दु ।  
 जोद्.नस्. ऽखोर्.वडि. लम्.लस्. ग्रील्.वर्. ऽय्युर् ॥
२१. नैल्.ऽव्योर्. द्गोङ्ग.पडि. जाम्स्.जोद्. जोग्स्. सङ्ग.गं.यस्. ।  
 म.नोर्. लम्.दु. ल्हन्.चिग्. खो.न. यिन् ॥  
 क्ये.हो. गञ्जिस्.मेद्. दोन्.दु.<sup>५</sup> ग्सङ्ग.स्ङ्ग.वर्द.यिस्. ब्कोल् ।  
 योन्.तन्. मि.सद्. र्थ.मछो. नोर्.बु. मछुङ्ग.स्. ॥
२२. थव्स्.मछोग्. सिन्.न. ब्चु.बशिडि. स.ल. गन्स् ।  
 गङ्ग.दु. गन्स्. क्यङ्ग. ये.शेस्. रङ्ग.लस्. जोद् ॥  
 ग्तेर्.जोद्.बद्ग. गशन्. गञ्जिस्.कडि. दोन्. ल. मीङ्ग.स् ।  
 स्विङ्ग.गि. गडु.नि. पद्.मडि. मे.तोग्. द्कियल् ६ ॥
२३. थव्स्.दङ्ग.लदन्.प. स्व्योर्.व. दे.नस्. ग्येद् ।  
 ऽखोर्.लोडि. फ्योग्स्.किय. च्.गन्स्. गङ्ग.दु. यङ्ग ॥  
 ऽदोद्.दङ्ग.ब्रल्.वस्. छग्स्.मेद्. नम्.मखड.ल ।  
 ग्येन्.थुर्. ऽद्रेन्. दङ्ग. ऽखोर्.लो. ब्स्कोर्.व. यङ्ग ॥
२४. थव्स्.किय. ऽद्रेन्.छुल्. दोन्.गिय. ग्तिङ्ग. मि. जोद् ।  
 ग्मुङ्ग. दङ्ग. ऽफङ्ग. दङ्ग. स्व्यर्.७. दङ्ग. स्व्यर्. व. यङ्ग ॥
११७. बलुन्.पो. द्बुग्स्. मि.व्दे. दङ्ग. ख्यद्.मेद्. मछुङ्ग.स् ।  
 तोग्स्.पर्. ऽदोद्.पस्. दे.जिद्. तैग्.तु.वल्त ।
२५. गुस्. दङ्ग. दङ्ग.वस्. ब्ल.म. द्कोन्.मछोग्. बर्तेन् ।  
 ग्सङ्ग.वडि. योन्.तन्. ब्ल.म.मछोग्.लस्. ऽव्युङ्ग ॥

१९. इस उत्पत्तिमें अच्छा सार नहीं,  
उपाय के योगसे छ ममग्री? स्वभूमि में शान्त ।  
पंच स्कन्ध आदि शुद्ध गुण का क्षेत्र,  
सर्वज्ञ अद्वय प्रतिभाम विषय आमक्ति-रहित ॥
२०. परमार्थवाद नहीं संवृति<sup>१</sup> नरुं मात्र (है),  
निर्वागमार्ग (है) संसार का प्रतिभास भी ।  
सद्गुरु आशय त्रित-संसारमें, लाभ से संसार-मार्गसे मुक्त होइ ॥
२१. योगी आशय अनुनाम? कर संवृद्ध,  
अविपरीत मार्गमें सह(ज) सोई है ।  
अहो अद्वय अर्थ में मंत्र संकेत से रोकना?,  
गुण न नाशै सागरमणि तुल्य ॥
२२. वर-उपाय गहि चौदह भुवनमें वसै, जहाँ वसि भी ज्ञान स्वयं लहै ।  
कोश लहै आत्म-पर दोनोंके अर्थ मूढ़, सारके संतुष्ट कमल-पुष्प के अन्दर ॥
२३. उपायवान् उस योग से सरम्भ, चक्र-पक्षका मूल-स्थान जहाँ भी ।  
इच्छा न रहनेसे राग विना आकाशमें,  
ऊपर-नीचे कर्षण औ चक्रपरिवर्तन भी ।
२४. उपाय के कर्षण से शीलके अर्थ की थाह न लहे,  
धारण औ क्षेपण जोड़ना औ जलना भी ।  
मूढ़ श्वासरोग औ अविशेष तुल्य, अवबोध इच्छासे सोई सदा देखै ॥
२५. सत्कार औ प्रसन्नता पूर्वक गुरु-रत्न का आश्रय ले,  
गुह्य गुण वरगुरुसे उपजै ।



दोन्.ल्दन्. म्छन्.ञिद्. ऽोन्.मोङ्स्<sup>१</sup> ग्युल्. लस्.ग्यल् ।  
 ग्सङ्.बडि. दोन्. ञिद्. दोन्. दङ्. रब्.ल्दन्.पडि ॥

२६. ब्ल.म. स्लोब्.दपोन्. लुङ्. दङ्. रब्.ल्दन्.नस् ।  
 मि. गिस्. सगो.नस्. ऽओ.ब. ओल्.ऽग्युर्. शोग् ॥

थुग्स्.ख्यि. म्जोद्. स्केथे.मेद्. दो.जोडि. ग्लु. स्त्रिङ्.पो. ग्सङ्.बडि दोन् ।  
 द्पल्.स. र. ह. डि. शल्. स्ङ्. नस्. ग्मुङ्.स्.प. जोग्स्. सी. <sup>२</sup> ॥

---

इच्छुकके लक्षण (हैं) क्लेश-युद्धमें विजयी, गुह्य अर्थ ही अर्थ औ उत्तम ॥

२६. गुरु आचार्य आगम औ प्रकर्ष से, दो मनुष्य द्वारों जगत् मुक्त हो ।

इति चित्तकोश 'अजवज्रगीति' गुह्य तारार्थ श्रीसरह के श्रीमुख से भाषित समाप्त ॥

-----



द. काय-वाक्-चित्त अमनसिकार  
( भोट हिन्दी )

## ८. स्कु.ग्सुङ्.थुग्स.यिद्.ल.मि.व्येद्.प\*

( भोट )

मछन्.म. रब्.तु.मि.ग्नस्.प.ल. फ्यग्.ऽछल्.लो ।

दो.जे.ऽजिन्.प.ल. फ्यग्.ऽछल्.लो ।

१. गङ्.शिग्.स्कु.यि.ख्यद्.पर्.बुद्.बशि.रब्.तु.ऽजोम्स्<sup>३</sup> मसद्.चिङ् ।  
नैल्. ऽव्योर्. नैम्. पर्. ग्रेल्. पस्. म्जद्. प. गङ्.गिस्. नि ॥  
ऽदोद्.पडि. दोन्. नि. यङ्.दग्.स्वियन्. पर्. गङ्. ऽग्युर. ब ।  
ग्रोल. व्यम्स्.पडि. छ. लुग्स. म्छोग्. गि. दोन्.स्तोन्.प ॥
२. दोन्.दम्. रब्.तु.मि.ग्नस्. द्गोङ्.प. र्ग्यल्. बडि. थुग्स ।  
गङ्. गि. सेम्स्. ल. ऽदि. कुन्<sup>३</sup>. ब्सम्. दु. मेद्.दो. वये ॥  
ख्योद्. फिन्.लस्. यन्.लग्. मङ्.पो. स्तोन्. म्जद्. चिङ् ।  
दग्.येस्. शिङ्. नम्.मखडि. खम्स्. कुन्. थम्स्.चद्. ऽगोङ्.प. व्येद् ॥
३. ग्सुङ्. म्छोग्. यन्.लग्.द्रुग्. चुस्. स्त्र. स्कद्. स्न.छोग्.स्. स्त्रोग्.स् ।  
थुग्स.किय. ख्यद्. पर्. द्गोङ्.प. द्द्विङ्.लस्. मि. ब्स्वयोद्.क्यङ् ॥  
थम्स्.चद्. छिम्. शिङ्. म्गु.नस्. रब्.तु. ब्स्तोद्.पर्. व्येद् ।  
व्यम्स्.दङ्.स्त्रिङ्.जेडि. ग्दुग्स.किय. द्कियल्.ऽखोर्. ग्सल्.बर्.स्तोन् ॥
४. म.हा.दे.व. उ.म.दे.व. रब्.तु.ऽजोम्स्.पर्. व्येद् ।  
फ्योग्स.बचु. दुस्.ग्सुम्. सङ्.र्ग्यस्. कुन्.गिय. ब्दग्.जिद्.दे ॥  
थर्.पडि. सगो. नि. नैल्.ऽव्योर्.नैम्स्.किय.<sup>३</sup> लम्. ऽदि. जिद् ।  
गङ्.यङ्.ग्.चो.म्छोग्.ल्दन्.पडि. स्व्योर्.ब.दग्.गिस्.रब्. तु.मि.द्व्ये.बर् ॥

\* स्तन्. ऽग्युर. र्ग्यद् शि. पृष्ठ ११७ क ३-१२२ क ३

# ८(ख) कायवाक्चित्त अमनसिकार

(हिन्दी)

नमो ऽप्रतिष्ठितनिमित्ताय । नमो वज्रधराय ।

१. जो काय-विशिष्ट चार मारों का प्रमर्दक,  
विमुक्त योग किया कृत जिममें ही ।  
इच्छित अर्थ को सम्यक् देवै जो,  
जगत मैत्री वर वेप का अर्थ बतावै ॥
२. परमार्थ अप्रतिष्ठित-आशय जिसकी करुणा,  
जिसके चित्त में यह सब भाव नहीं रे ।  
तूने समुदाचार अंग बहुत बखाने,  
मुदित सब आकाशनातु सर्व-विजयकारी ॥
३. वर वचन के साठ अंग से नाना शब्द भाषा घोष,  
करुणा-विशिष्ट आशय धातुतः अचल भी ।  
सब अतृप्त आह्लाद से संस्तुति करै,  
मैत्री औ करुणा प्रकट छत्रमंडल बतावै ॥
४. महादेव उमादेवी प्रमर्दन करै,  
दश दिशि तीन काल सर्व बुद्धात्मा वह ।  
मोक्षद्वार योगियों का यही मार्ग  
जो भी सर्वस्व (?मुख्यवर) या प्रयोगों से प्रभिन्न नहीं ॥

५. नैल्.ऽव्योर्.छेन्.पो. थ.मि.दद्.प. यिन् ।  
 गङ्.गिस्. दे. ति. मि. शेस् पडि ।  
 द्वि.मडि. छुल्.ग्यिस्. गङ्. यङ्. म्थोङ्.व. मेद् ।  
 गङ्.गिस्. दे.कुन्.ऽछङ्.वर्. व्येद्.प. दे.यिस्. ति ॥
६. ग्जिस्. म्दङ्.स्.<sup>९</sup> ग्जिस्.लस्. वर्तेन्. ते. लस्. कुन्. स्तोन्.पर्. व्येद् ।  
 ब्दग्.मेद्. रो. ग्चिग्. ख्यब्.पर्. व्येद्.पडि. ग्सुग्.ल्दन्. नि ॥  
 ऽदि. न. मि. ग्न्स्. कुन्. क्यङ्. ऽग्रो.वर्. ब्येद् ।  
 सङ्गस्. दङ्. म्दो.स्दे. कुन्.ग्यि. ग्यैल्.पोर्. द्बङ्.व्स्कुर्.वस् ॥
७. ऽदि.दग्. कुन्.ग्यि. च्. व. यिद्. ल. मि. व्येद्.पर् ।  
 व्येद्.क्यिस्.<sup>१</sup> ग्चिग्. दङ्. ग्जिस्.ल. म. सेम्. स्.क्ये ॥  
 कुन्. जौब्. द्रन्.पडि. छो. ऽफुल्. स्न.छोग्.स्.पर्. स्तोन्.प. ।  
 दोन्.दम्. मि.द्मिग्.स्.प.यि. द्ब्यिङ्.स्.सु. रो. ग्चिग्. जिद् ॥
८. दुग्. लङ्. ल.सोग्.स्. नद्.क्यिस्. ज्ञेन्.पडि. मुन्.प.सेल् ।  
 थोग्.मडि. म्थऽ. दङ्. थ. मडि. द्ङोस्. ग्शि. म. म्थोङ्.वर् ॥  
 दुस्.<sup>३</sup> म. व्यस्.ल. यिद्.क्यि. द्मिग्.स्.सु. मेद्.दो. क्ये ।  
 गसुङ्.ऽजिन्. ग्जिस्.क्यि. वर्. न. मिङ्. दङ्.व्रल्. ऽदुग्.प ॥
९. यन्.लग्. लोग्.न. ग्चिग्.गि. डो.वो. जिद् ।  
 शेस्.पर्.व्य. दङ्. व्यऽो. चिग्.गि. थ.स्जद्. कुन् ।  
 ऽदि.लस्. ग्शन्. दु. ल्त.व. म्.छन्.मन्. म्योङ्.वर्. ग्युर् ।  
 स्र.चन्.सिन्.ग्यिस्. स्.ल<sup>३</sup>. व्सेस्.प. जि. व्शिन्. ते ॥
१०. म. म्थोङ्.व. जिद्. ब्यिस्. दङ्. वर्.नस्. शोर्.वर्. ऽग्युर् ।  
 येङ्.स्. दङ्. ग्न्स्.पडि. वर्.न. डो.वो. ऽदि. शेस्. मेद् ॥  
 ग्यु.मेद्. क्येन्.व्रल्. स्क्ये.व.मेद्.प. ग्जिस्.पर्. न ।  
 लोग्.पर्. ल्त.वडि. छोग्.स्.क्यिस्. ऽदि. ल. ग्शोल्. दु. मेद् ॥
११. गि.वङ्. गुर्.गुम्. चन्दन्. थिग्.ले.<sup>५</sup> त्रिस्.प. व्शिन्. ते ।  
 स्.ल.व. व्स्ङ्.पो. ग्यु.स्कर.ऽोद्.क्यिस्. ऽगोव्.स्.प. जिद् ॥

५. महायोगी अभिन्न है, सो न जानै,  
मलस्वरूप द्वारा जो भी दीनै नहीं,  
जो सो सब धारै (बह) सोई ॥
६. तेज कान्ति दोनों के आश्रय सब कार्य आदेशै,  
अनात्मा एकरम व्यापक रूपवाला ।  
इसमें न वमि नभी गमन करे,  
सब मंत्र औ मूत्र-राज में अभिपेक से ॥
७. इस सबका मूल अमनसिकार है,  
तू एक औ दो को ना चिन्तै रे ।  
संवृति स्मृति का नाता प्रातिहार्य कहै,  
परमार्थ अनुपलब्ध धातु में एक रस ही ॥
८. पंचविष इत्यादि रोग से दोषतम नाशै,  
आदि के अन्त औ अपर वस्तु-अधिकरण न देखै ।  
असंस्कृत में मनका आलंबन नहीं रे,  
धारणग्रहण दोनों के बीच नामरहित रहै ॥
९. मिथ्या-अंग में एकका ही स्वभाव,  
ज्ञोय औ कर्तव्य का सर्व व्यवहार ।  
इससे अन्यत्र दृष्टि-निमित्त से अनुभव होइ,  
जिमि राहु चन्द्र को ग्रसै ॥
१०. न देखे ही बालक औ बीच से गिरै,  
उठने औ बसने के बीच यह वस्तु ना जानै ।  
अकारण अप्रत्यय अज दूसरा (हो) तो,  
मिथ्या-दृष्टि समाज यहाँ निम्न होवै नहीं ॥
११. गोरोजन-कुंकुम, चन्दनकेतिलक का लेप जिमि,  
भद्र चन्द्र नक्षत्र का किरणों से ढंकना ही ॥



- स्विङ्ग.पोडि. ऽोद्.कियस्. यन्. लग्. सिल्.गियस्. ग्नोन्.पर्. ग्युर् ।  
 ऽदि.नस्. ऽदि.रु. सद्. चेस्. ऽदि. व्यु.ङ्. वर्तग्. द्कङ्. जिद्. ॥
१२. गङ्.गिस्. नम्.मूखऽ. दग्. ल. लोङ्गस्. स्प्योद्.पडि ।  
 ऽदोद्.पडि. योन्.तन्. ऽदि.ल.<sup>५</sup> ऽफेल्.ऽग्निव्. मेद्.पर्. व्युङ्ग.  
 गङ्.शिग्. नोर्.बु. द्वि.म.मेद्.प. ऽछङ्ग.ब.यि ।  
 सेम्स्.किय. योन्.तन्. अग्तेर्.छेन्. ऽदि.लस्. व्युङ्ग ग्युर. ते ॥
१३. म्थोङ्ग.व.मेद्पडि. छुल्.गियस्. तंग्.तु. बल्त.ब. जिद् ।  
 छोस्.जिद्. म्छोन्.पडि. ङो.बो. ऽदि.बश्.स्. ऽदस्.ऽग्युर्.ब ॥  
 बलो.म्छोग्. नंम्स् कियस्<sup>६</sup>. क्यङ्. नि. फिगस्.पर्. नुस्. म. यिन् ।  
 ग्जिस्.मेद्.छल्.गियस्. दे.व्शिन्. ग्शे.ग्स्.गङ्.जिद्. ॥
१४. दि.नस्. सोङ्ग.व. गङ्. यङ्. मेद्पर्. शेस्.प. दे ।  
 ऽदि. नि. मि. ग्नस्. गङ्. नऽङ्. ग्नस्.प. मेद् ॥  
 युल्.मेद्. ऽदि.ल. तंग्.तु. ल्त.ब. दङ्.ब्रल्. जिद्  
 ऽदि.नस्. गङ्.दु. ऽग्रो.बडि. फ्योग्स्. म्छम्स्<sup>७</sup>. दे. कुन्.न ॥
१५. ऽजिगस्.पर्. व्येद्.पडि. स्प्र.यिस्. म. ख्येर्.बर्. ।  
 चि. व्दे. दङ्. ल्हन्.चिग्. दग्.तु. व्योस्. ॥  
 क्ये.हो. ग्शोग्स्.दग्. ऽदि.ल. सेम्स्.ग्जिस्. योद्. दे. मेद्.  
 किय. वर्तग्. प. कुन्. ।  
 नंम्.तोग्. लुङ्ग.गिस्. व्स्म्योन्.पडि. छिङ्ग.तु. ऽग्युर् ॥
१६. स्म्यो.बर्. ग्युर्.नस्. ग्यं.म्छोर्. ल्हङ्ग.ब. जिद् ।  
 छङ्गस्.प. डुल्. दङ्. म्छन्.मडि. मुन्.प.दग्. दङ्. म. ब्रल्.ब ॥  
 दे. जिद्. ग्जिस्.ब्रल्. तोग्स्.पर्. ऽदोद्.प. दङ् ।  
 ग्यं.म्छो. स. दङ्. ग्शग्.मर्. नोर्.बु. ग्युर्. म्थोङ्ग. जिद् ॥
१७. वर्तुल्.शुगस्. म्य.ङ्गन्.ऽदऽ.बडि. स्प्योद्.प. गङ्. व्येद्.प ।  
 ऽदि. नि. मि.शेस्. दे.ऽद्वर्. स्तोन्.पर्<sup>८</sup> व्येद् ॥  
 व्देन्.प.ग्जिस्.ब्रल्. स्यो.स्कुङ्ग.मेद्. पडि. ग्जुग्.म. गङ् ।  
 गङ्.दु. म्थोङ्ग.व.मेद्.प. दे. यिन्. ते ॥

- मारकी प्रभा मे अंग लीपै,  
इससे यहाँ नाशै यह होना दुष्परीक्ष्य ही ॥
१२. क्योंकि शुद्ध-आकाश में भोग्यकी,  
कामना का, गुण की वृद्धि-क्षय का यहाँ अभाव होइ ।  
जो निर्मल मणिधारी,  
चित्त के इस गुणमहाकोश से उपजा ॥
१३. अदृष्ट स्वरूप से ही सदा देखै,  
लखेकी वस्तु यह धर्मता ज्ञानातीत हुई ।  
वरवुधि भी बेधन ना कर सकें,  
जो ही अद्वय स्वरूप सो तथागत है ॥
१४. यहाँ से गमन कहीं नहीं, सो ज्ञान (है),  
यहाँ न वसै तो कहीं भी रहै नहीं ।  
निर्विषय यहाँ (है) सदा दृष्टि-रहित ही,  
यहाँ से कहीं गमनकी दिशा, सो सब सीमा में ॥
१५. भयंकर शब्द ना ले जावै,  
क्या है सुख औ सह(ज) शोधो (सो) ।  
अहो साथियो यहाँ दो चित्त के अभाव नहीं की सारी परीक्षा,  
विकल्प पवन ने उन्मत्त शब्द किया ॥
१६. उन्माद होनेसे सागरमें गिरै ही,  
ब्रह्म-रज औ निमित्त-तिमिर शुद्ध औ अन्तरहित ।  
सौई अ-द्वैत अवबोध की इच्छा औ,  
सागर-भूमि में रखी मणि हुई देखते ही ॥
१७. व्रत निर्वाणी की चर्या जो करै,  
यह ना जानि वैसी देशना करै ।  
सत्त्यद्वय विना गुप्त फलक-रहित जो निज,  
जहाँ नहीं दीखै (बह) सो है ॥

१८. डेस्.पर्. शुब्.चिङ्. ऽदि.ल. रङ्.बृशिन्. मेद्.पर्. ग्युर् ॥  
 गङ्. गिस्. म. म्थोङ्. व. लस्. दे. नि. र्ग्यल्. पर्. ऽग्युर् ॥  
 थेग्.प.ग्सुम्.गियस्. म्य.ङन्.ऽदस्. स्तोन्प ।  
 ऽदि.रु. म. शेस्. ३ दे. जिद्. म्थोङ्.व. मेद् ॥
१९. नैम्.श्रोल्.लम्. स्तोन्. व्ये.ब्रग्. गङ्. दुऽङ्. प्ये.व. मेद्.  
 ब्यिस्.प.नैम्स्.क्रियस्. शेस्.पर्. ऽग्युर्. म.यिन् ॥  
 गङ्.शिग्. ऽदोद्.छगस्.ब्रल्ब. तौगिस्.पर्. ऽदोद्.प. दे ।  
 स्टुग्.स्ङल्.ग्सुम्. मम्.बर्ग्युद्. ल.सोग्स्.प. कुन्.स्पङ्ग्.जिद् ॥
२०. ब्देन्.प.गञिस्. ४ लस्. मि. ऽदऽ. थब्वस्. छुल्. स्न.छोग्स्.क्रियस् ।  
 श्रो.बडि. दोन्. मज्जद्. ऽोद्.सेर्.ग्यस्. ग्योन्. रब्.तु. ऽग्येद् ॥  
 बुम्.रिल्. ख.स्वुब्. म.दग्.प. जिद्. दग्. स्तोन्. प ।  
 छङ्. छिङ्. ऽब्रेल्बडि. युल्.द्गुग्.ल.सोग्स्. रब्. तु. ऽजोम्स्. ॥
२१. थम्स्.चद्.मुख्येन्.ल्दन्. सुस्. क्यङ्. म्थोङ्.व.मेद्. प<sup>५</sup>दे ।  
 अगस्.प.ल.सोग्स्. कुन्.गियस्. ब्स्तोङ्. दङ्. ब्स्क्य.ऽोद्. प. मेद् ॥  
 क्ये.हो. ऽदि.ल्लर. गन्स्.न. कुन्.गियस्. शेस्.ऽग्युर्. ते ।  
 थोग्.मथऽ.मेद्.नस्. सिद्.पडि. र्ग्यग्म्छो. ग्येङ्ग्.ग्युर्. व ।
२२. स्टुग्.स्ङल्.जिद्.क्रियं. चै. ब. ऽदि.रु. व्यस् ।  
 ऽदि. ल. शेस्. जोन्.मोङ्ग्. ल.सोग्स्.पडि ।  
 द्वि.मस्. म्गोस्.ऽदम्. गियं. पद्.म. बृशिन् ।  
 श. ऽद्रस्. युल्. ल. सो. सोर. स्नङ् ॥
२३. स्यु.मर्. तोग्स्. चम्. गर्.मुखन्. मिग्.ऽप्युल्. बृशिन् ।  
 ऽदु.व्येद्. स्न.छोग्स्. गङ्.ल. ब्सग्स्.प. दे. ॥

१८. नियत मिद्ध इसका स्वभाव नहीं होइ,  
जिससे अ-दृष्ट कर्म सोई जिन होइ ।  
तीनों यान निर्वाण बनावै,  
यहां अज्ञात सोई अ-दृष्ट ॥
१९. विमुक्ति-मार्ग देशना-व्युत्पत्ति जहां भी अभिन्न,  
सोई वालोंको ज्ञात नहीं होइ ।  
जो वीतराग बोध के इच्छुक, सो  
तीनों दुःख या आठ इत्यादि सब छोडै ॥
२०. सत्यद्वय सें न परे नाना उपायस्वरूप  
जगतके अर्थ करै दाहिने बायें बहु संग्राम ।  
घट करक चुककड़ अशुद्धही, को शुद्ध बतलावै,  
इन्द्रिय-अनुबंधी छ विषय इत्यादि भूलै ॥
२१. किसी सर्वज्ञ ने भी उसे न देखा,  
कीर्ति इत्यादि सबके द्वारा स्तुति औ नित्दा नहीं ।  
अहो ऐसे रहै तो सब जानै,  
आदि-अन्त के अभाव से भवसागर मत्त होइ ॥
२२. दुःख ही का मूल यहां बनाया, इसे जान औ क्लेश इत्यादि को ।  
मंले शिर से पंके पद्म जिमि, रंग न खींचै विषय में पृथक् प्रतिभा से ॥
२३. माया कल्पना मात्र नट के इन्द्रजाल जिमि नाना संस्कार, जहां से,

ऽदि. गोम्स्. गङ्.यङ्. शेस्.पर. मि. १ज्युर्. ते ॥  
ग्लो.वुर्तेन्. ऽत्रेल्.दग्.लस्. गोम्स्.पडि. स्तोव्स् ॥

२४. म.गोम्स्.पस्.न. थम्स्.चद्. शेस्.पर. १ज्युर्. ।  
ऽद्रस्.पडि. छोस्. नि. ग.ङ्.यङ्. ग्नस्.पर. मि. व्येद्. दो ॥  
स्कु.ग्सुम्. थुगस्. दङ्. फ्यग्.र्ग्य.ल.सोगस्. रिम्.प. कुन् ।  
ऽदि.ल. स्कद्.चिग्. चम्. दु. तोग्स्.पर. म.व्येद्. चिग् ॥
२५. ऽजिग्.तन्. व्स्तन्.ब्चोस्.दग्. दङ्. ग्लग्स्.बम्.गियस् ।  
ग्सुङ्.गि. ब्दग्. जिद्. ब्जोद्.पर. व्य्.व. मिन्. जि. म. र.ल ।  
जि.म.ऽल व. ग्जिस्. सु. ग्नस्. १ज्युर्. वं ।  
दे. दङ्. ग्चिग्.तु. ऽद्रस्.पर. म्युर्. नस्. नि ॥
२६. गङ्.गिस्. गङ्. स्प्योद्. दे.यिस्. रब्.तु.बर्ग्यन् ।  
स्वये.व. मेद्.पडि. नम्.पर.ङ्.स्.ब्जोद्.पडि ॥  
द्बुस्.सु. ब्जोद्.पस्. म्थऽ.नम्स्. रब्.तु. स्पङ्स् ।  
जिल्तर. व्स्तन्.पस्. गो. पर. मि. १ज्युर्. वडि ॥
२७. ऽजिग्.तेन्. खम्स्. सु. ग्तन्. ऽव्यम्स्.रिग्स्. छद्. दे ।  
बग्.छग्स्.लस्.कियस्. म्नर्.व. म्छोर्. वस् ।  
छोस्.जिद्. द्वि.म.मेद्.पडि. दोन्. मि. म्थोङ् ।  
गङ्. यङ्. ऽदि. दङ्. ब्रल्. व. मेद्. प. दे ॥
२८. द्रन्.ऽजिन्. लुस् लस्. म्युर्.दु. स्कद्.चिग्. ग्लो ।  
दो.र्जेडि.सेम्स्. नि. योङ्.सु.वर्तग्. दकऽ.व. ॥  
सेम्स्.ल. सेम्स्.सु. म्थोङ्. रो. स्जोम्स्. स्जोम्स्.नस् ।  
फिय. नङ्. व्सम्.ग्तन्. च्.मोस्. वर्तग्स्.पस्. स्तोङ् ॥
२९. नैल्.मडि. दोन्.ल. ग्नस्.पडि. नैल्.ऽव्योर्. नि ।  
ये.शेस्. शेस्.रब्. ग्सङ्.बडि. द्ब्विङ्.ल. जर्.गिस् ॥  
रङ्. गिस्. म.म्थोङ्. म्छन्.जिद्. कुन्. त्दन् प ।  
शेस्. नि. ब्स्ङ्.गस्.प. ब्जोद्.पर. १ज्युर्.बडि ॥

अकस्मात् शुद्ध आश्रय से भावना-बल, यह भावना कोई भी ना जानै ॥

२४. भावना न हो तो सब ज्ञात होइ, संकीर्ण धर्म जो भी न स्थापित करै ।  
काय-वाक्-चित्त मुद्रा इत्यादि सब क्रम, इसकी क्षण-मात्र कल्पना न करै ॥
२५. लौकिक शस्त्र औ वाचन-ग्रंथ से वाणी आत्मा कहा न जाइ ।  
रवि-शशि दोनों में बसि, उसके साथ एकत्र मिश्रित होने से ॥
२६. जिससे जो आचरै उससे बहु-भूषिन, अज्ञ के विनिश्चय कहनेके ।  
मध्यमें कहने के अन्तों को खूब छाड़, जिमि शासनसे जाननै नहीं ॥
२७. लोकघातुमें सदा भ्रमण जाति उच्छीजै, वासना कर्म से पीडा सहै ।  
निर्मल-अर्थ धर्म ही न देखै, जो भी इसके बिना सो नहीं ॥
२८. स्मृतिधर शरीरसे तुरंत क्षण-मुक्त, वज्रसत्त्व की परीक्षा कठिन ।  
चित्तको चित्तमें देख समरस, बाहर-भीतर नाम धिक्खर से परीक्षा-शून्य ॥
२९. समाप्ति अर्थमें बिहरै योगी, ज्ञान प्रजा गुह्य-धातु में समापै ।  
स्वयं अ-देख सर्वलक्षण, इति' मंत्र वर्णित ॥

३०. द्रन्.मेद्. सञ्जम्. पडि. द्ब्विङ्गस्. ल. स्कुर्. ग्सल्. मोस्.प.  
मेद्. पर्. स्प्योद् ।  
थुग्स्. जेस्. मि.ग्सिग्स्. स्कु. ग्सुङ्. थुग्स्. क्विस्. म. गोस्. प ॥  
गञ्जिस्. सु. म.मथोङ्. ग्सुम्. गिय. द्वि.म.ब्रल् ।  
स्न.छोर्गस्. पर्. स्नङ्गङ्. ल. डोस्.ग्सुङ्.मेद्.प. स्ते ॥
३१. लुस्. ड्ग. यिद्. ग्सुम्. ऽवद्. पडि.चर्. ल. बस्. ग्दुङ्. बर्. म. ब्येद्. चिग् ।  
डस्. नि. दो.जेडि. ग्लु. दङ्. लोङ्. ग्तम्. ग्योव्. सोद्. दङ् ॥  
ऽप्रो.ब. कुन्.गियस्. शेस्.प. दग्. दङ्.गर्. ब्देर्. स्प्योद्  
मि.स्त्रिम्. मि.त्त. मि.स्प्योद्. ऽदि. दङ्.ऽब्रल्. म. म्योङ् ।
३२. ये.नस् म. ब्चोस्. थम्स्.चद्. ऽव्युङ्. ऽजुग्. गो. ऽफङ्. यङ् ।  
क्ये.हो. स्न. छोर्गस्. गङ्. यङ्. रुङ्.व. ऽदि. ल. ब्स्म्. पडि.  
सेम्स्. ब्रल्. बस् ॥  
यिद्. क्वि. तोर्ग. प. स्न.छोर्गस्. ऽदि. नि. डन्. पडि. सेम्स्. यिन्. ते ।  
गङ्. यङ्. ग्सुग्स्. दर्च. ड्. व. मेद्. प. दग्. लस्. स्क्येस्. प. यिन् ॥
३३. थ.मल्. शेस्. प. म. ब्सङ्. ब्दे.छेन्. ग्यल्.पो.<sup>१</sup> जिद् ।
- 119a म्छन्. जिद्. चिर. यङ्. म. मथोङ्. पयोग्स्. छ. कुन्. दङ्. ब्रल् ॥  
ख्रुल्.पस्. बर्तग्स्.पडि. बर्जोद्. ऽदि. नि. ग्लो.वुर्. ते ।  
ब्लो. लस्. व्युङ्. पियर. ब्लो.यिस्. ब्स्मोम्. दु. ग. ल. योङ् ॥
३४. गङ्. ल. यन्.लग्.मेद्.प. दे. जिद्. कुन्.गिय.ख्यिम्. दु. ल्हुङ्.बर्.ऽग्युर्. ।  
गो.बडि. छे. न. चि. यङ्. मद् प. स्ते ।  
दङ्. ल. कुन्. चि. यङ्. ग्सल्. मथोङ्. व. मेद्. ।  
गङ्. ल. म्य.डन्.ऽदस्. दङ्. स्त्रिद्.प. ख.स्व्यर्. व. ॥
३५. गञ्जिस्.सु. स्नङ्. व. ख्योद्. ल. तेन्. दङ्. ऽव्युङ्. बर्. ऽग्यु र्.ब. यिन्. ।  
ग्यल्. व. ल. सोग्स्. कुन्.दु. स्त्रुल्. प. स्न. छोर्गस्. स्तोन्. म्जद्. प. ।  
दग्.पडि. रिग्स्.नेम्स्. कुन्.ल. ख्योद्.क्विस्. स्प्योद्. ।  
मि.ब्सम्. थुग्स्.जे. रङ्. ऽव्युङ्. स्त्रल्.प. नि.

३०. विस्मृति समधातु में अम्ल प्रकट<sup>२</sup> अभिलाषा विना चरै,  
करुणा से ना निध्यावे काय-वाक्-चित्त से अनपेक्षित ।  
द्वैत ना देखै तीन मलहित, नाना प्रतिभास जहाँ संधारै नहीं ॥
३१. शरीर वाणी चित्त तीनों यत्न-व्यायाम से ना जलावै,  
अहंसे वज्रगीति अन्धकथा औ तारण-मारण<sup>३</sup> ।  
सब जग जानै बुद्ध नृत्य मुख आचरै,  
न यतन करै न देखै न आचरै इमके विना न अनुभवै ॥
३२. प्रथमतः<sup>४</sup> ना खोले सर्व-भव-प्रवेग का कपाट भी,  
अहो नाना जो भी विहित यहां आशयके अचित्तसे ।  
मनकी नाना कल्पना है यह दुष्ट चित्त,  
जो भी रूप औ अमूल से उपजै ॥
३३. प्राकृत ज्ञान ना गहै महासुख-राज ही,  
लक्षण क्यों ना देखै सर्व दिशांगसे रहित ।  
भ्रान्तिसे परीक्षा वचन यह उलटी,  
बुद्धिसे संभव होनेसे बुद्धिद्वोरा भावनामें कहाँ आवै ॥
३४. जिसका अंग नहीं सोई सबके घरमें गिरै,  
समझने के समय कुछ भी नहीं,  
सारी वस्तु कुछ भी स्पष्ट ीखै नहीं,  
जहां निर्वाण औ भव मुंह जोड़े(हैं) ।
३५. द्वैत-प्रतिभास तुझे आधारके साथ उत्पन्न हुआ,  
जिन इत्यादि सर्वत्र नाना निर्मित करै ।  
सब बुद्ध न्यायसर्वत्र तू आचरै,  
अचिन्त्य स्वयंभू करुणा निर्मित<sup>५</sup> ॥

२ स्फुर ग्सल् ३ र्थोब् सोद् ४ ये-नस् ५. ऋद्धि-निमित्त पुरुष ।



३६. नोर्.बु.रिन्.छेन्. ल्त.बुर्. ऽफेल्. ऽग्रिब्. मेद्.पर्.ब्युङ्. ॥  
 द्ङोस्.पो.मेद्.पस्. नम्स्. क्यङ्. तौगस्.मिन्.पस्. ।  
 ब्तङ्. ग्शन्. मेद्. चिङ्. रङ्. व्शिन्. नम्.पर्.ग्ल. ।  
 ऽजिन्.मेद्. यिद्.ल. व्य.मेद्. नैल्.ऽब्योर्.बस्. गतन्. जिद्. ॥
३७. गङ्.ल. मि. ब्स्वोम्. गङ्.दुऽङ्. ब्चल्.ब.मेद्.प. दे. ।  
 ब्स्वम्.दु. मेद्.पस्. यिद्.ल. मि.व्येद्. रो.स्वोम्स्. क्ये. ।  
 ये. ब्तङ्. रङ्. यन्. छोग्स्. द्रुग्. ल्हग्.पऽि. स्प्योद्. प. ऽदि. ।  
 छोग्स्.द्रुग्. जैस्.सु.स्प्योर्.बऽि. म्खस्.पस्. ब्तङ्. ग्शग्. मेद्. ॥
३८. खो. न. जिद्. किय.नैल्. ऽब्योर्. ल्हग्. ब्स्वम्. ब्रल्. बस्.  
 दे. व्शिन्. जिद्. ल. मि. गन्स्. गङ्. ल. रङ्. व्शिन्. मेद्.पर्.ग्ल. ।  
 ऽोद्. ग्सल्. जौगस्. दङ्. थिम्. दङ्. ऽगग्स्. पर्. ऽग्युर्. ब. गङ्. ।  
 जि. ल्तर. ब्स्वोम्स्. दङ्. छग्स्. पर्. ऽग्युर्. प. म्छन्. म. स्ते. ॥
३९. फुङ्.पो. खम्स्. दङ्. स्व्ये. म्छेद्. यन्.लग्. थम्स्.चद्. कुन्. ।  
 ग्चिग्.गि. द्व्यिङ्गस्. न. मि. म्ङोन्. फ्र.वऽि. छुल्.दु. गन्स्. ।  
 गंय. म्छोऽि. द्व्यिङ्गस्. नस्. नोर्. बु. रिन्. छेन्. जौद्. ऽग्युर्. ब ।  
 छु.सिन्. द्रुङ्. दङ्. गदुग्.प.चन्. गियस्. म्थोङ्. मि. ऽग्युर्. ॥
४०. फग्. दोग्. सिद्.पऽि. ऽोन्. मोङ्गस्. ल.सोग्स्.पऽि. ।  
 म्छन्.मऽि. द्व्यिङ्गस्.नस्. ङोस्. व्सुङ्. मेद्.पर्. म्थोङ्. ॥  
 ग्सुम्.ल.सोग्स्.पऽि. सगो.नस्. ऽजुग्.पर्. व्येद्.प. नि. ।  
 नम्.रिग्. ब्देन्.प. ग्जिस्. किय. सगो.नस्. चोल्.बर्.व्येद्. ।
४१. जि. ल्तर. स्नङ्. व्शिन्. ऽजिग्.तेन. थ.स्वद्. लम् ।  
 नैम्. थर्. सगो. ग्सुम्. ब्स्लब्. प. नैम्.प. ग्सुम्. ।  
 म्छन्. मऽि. यिद्. ल. व्येद्. पऽि. नैल्. ऽब्योर्. ते ।  
 नैल्. ऽब्योर्. छेन्. पो. ऽदि. ल. गग्स्. मि. व्येद्. ॥
४२. गङ्. शिग्. शोल्. सगोङ्. दग्.प. ल्त. बुर्. नि ।  
 रिन्. पो. छे. ल्तर. दगोस्. ऽदोद्. थम्स्.चद्. ऽब्युङ्. ॥

३६. जिमि बृद्धि-क्षय विनु, मणि-रत्न संभवै वस्तुविना भी निर्विकल्प ।  
अनन्य त्याग विमुक्त-स्वभाव अधार क मनमें निष्क्रिय योगी ध्यावै ॥
३७. जहां न भावना विक्रम भी जहां नहीं  
सो आशय अभावसे अमनसिकार समरस रे ।  
प्रथम छाड स्व अंग छ समाज मुक्त चर्या यह,  
अनुयोग-चतुर छाडै नहीं ।  
खसम ज्ञान भावना विनु अमथित सारार्थ ।  
यहां बुद्धि से आवै बोलै नहीं रे ॥
३८. तत्त्व-योग अध्याशय विना, तैसे ही में  
न वसै, जहां स्वभाव अभाव होइ ।  
प्रभा समाप्ति औ लय औ निरोध जो,  
जैसे भावना से राग होना निमित्त है ।
३९. स्कन्ध धातु औ आयतन सर्वांग सारे,  
एक धातुमें प्रकट सूक्ष्म स्वरूपमें रहै ॥  
सागर धातु से मणिरत्न लाभ होइ, मकरशंख औ विषधर देखै नहीं ॥
४०. ईर्ष्या भव-क्लेश इत्यादिके निमित्त धातुसे वस्तुग्रहण नहीं दीखै ॥  
त्र्यादि द्वारसे प्रवेश करै, दो विज्ञप्ति सत्य द्वारसे यतन करै ॥
४१. यथा सदृश लोकव्यवहार-मार्ग, तीन विमुक्ति द्वार शिक्षा तीन प्रकार ।  
निमित्त के मन में करने का योग, महायोगी यहां वास नहीं करै ।
४२. शुद्ध काच कोश जिमि कोई, रूत जिमि प्रयोजन इच्छा सब संभवै ।

- योङ्स्.सु. सद्. प. सद्. फियर्. म्छन्. ञिद् ।  
 द्ङोस्. मेद्. व्देन्. प. ग्ञिस्. ब्रल्. ग्चिग्. गि. द्ङो. स्स. पो. सतोङ्
४३. म्छन्. म. थम्स्. चद्. ये. नस्. मेद्. पडि. फियर् ।  
 म्थोङ्. थोस्. ल. सोग्स्. म्थऽ. यि. तोंग्. प. मेद् ॥  
 मेद्. ल. मेद्. पर्. ऽजिन्. प. थ. स्ञाद्. दे ।  
 ऽदि. नि. छोर्. बर्. नुस्. प. म. यिन्. दो ॥
४४. ऽदि. नि. च्. व. कुन्. ग्यि. जेस्. सु. तोंग्. पर्. म. व्येद्. चिग् ।  
 ऽदि. ल. गङ्. छे. तोंग्. पर्. व्येद्. प. दङ् ।  
 व्स्कल्. पर्. व्ग्रङ्स्. क्यङ्. दे. ञिद्. ञोद्. प. मिन् ।  
 म्गल्. मे. गचुब्. शिङ्. ल्त. बुर. म्छेद्. ऽवर्. व. ब्शिन् ।
४५. ऽदि. कुन्. म्छेद्. नस्. थम्स्. चद्. स्त्रेग्. पर्. व्येद् ।  
 क्ये. हो. ग्गोस्. दग्. ग्ये. म्छो. नोर्. बु. ल्त. बुडि. सेम्स्. नि. ऽदि.  
 ञिद्. यिन्. ते. क्ये ॥  
 म. हे. वं. रुर्. सेङ्. गेडि. ऽो. म. गङ्ग. व्लुग्स्. प ।  
 नोर्. बु. रिन्. छेन्. ऽवर्. व. दे. यिस्. थोब्. पर्. ग्युर् ॥
४६. ञोन्. मोङ्स्. प. मस्. रव्. तु. स्कम्स्. पडि. ऽोद्. सेर्. ऽदि ।  
 डन्. ऽप्रो. ल. सोग्स्. लोग्. पर्. ल्त. वस्. ऽजिग्स्. प. मेद्. प. दे ॥  
 गङ्. दग्. ञोद्. प. दे. दग्. ग्शल्. ग्यिस्. मि. लङ्. डो ।  
 जि. ल्तर. छोस्. क्यि. द्ब्यिङ्स्. सु. स्नङ्. व्दे. सिद्. दु ॥
४७. सग्. प. मेद्. गङ्. थमस्. चद्. दे. यिस्. स्प्यद्. प. यिन् ।  
 दुग्. स्त्रुल्. फग्. गोद्. ग्लङ्. छेन्. सेङ्गोस्. सोस्. प. ब्शिन् ॥  
 दे. ब्शिन्. ञिद्. दङ्. म्यङ्न्. ऽदस्. प. ख्युर्. मि. ऽदस् ।  
 व्स्कल्. प. ब्जोद्. दु. मेद्. पर्. ब्ग्ये. स्तोङ्. दु. म. रु ॥
४८. ञोन्. मोङ्स्. ल. सोग्स्. व्सग्स्. पडि. स. बोन्. नि ।  
 सेम्स्. ग्चिग्-स्नङ्. बर्. ऽग्युर्. वस्. ऽन्नस्. बु. ग्चिग्. तु. लोग्. पर्. ऽग्युर्

परिक्षय क्षय होनेसे लक्षण, नहीं

अवम्नु मत्यद्वय-रहित क शून्य-वस्तु ॥

४३. सर्व निमित्त प्रथमतः न होनेसे,

देखना सुनना इत्यादि अन्तकी कल्पना नहीं ।

अभाव में अभाव धारै सो व्यवहार, यह वेदना शक्ति नहीं है ॥

४४. यह मवका मूल के अनु (वि)तर्क न करै, औ जब यहां तर्क करै ।

कल्प (भर) गिन भी सो लहै नहीं,

अलात-अरणी जिमि अग्नि जिमि जलना ॥

४५. यह सब दहै सब जलावै, अहो माथियो मागररत्न जिमि चित्त यही है रे ॥

भैंस की सींगमें सिंही का क्षीर गिरै जो, मणिरत्न ज्वाला सोई पावै ॥

४६. मूढ़ोंकी प्रतापक क्रिण यह

दुर्गति इत्यादि मिथ्यादृष्टिसे भय नहीं सो ।

जो लहै सो अमित (है), जिमि धर्मधातु-प्रतिभासी सुख भवमें ॥

४७. जो सब अनास्रव सो आचरित,

विषसर्प शूकर मत्त-गज सिंह द्वारा खाया जिमि ॥

तिमि भव औ निर्वाण गोष्ठीसे परे नहीं, अनेक शतसहस्र

अवचनीय कल्पमें ।

४८. क्लेश (मल) इत्यादि संचित बीज,

एक चित्त प्रतिमाससे एक फलमें परिवर्तित ॥

१११

स्योन्. मे. खड्. बुर्. नोर्.बु. ग्नस्. ग्युर्. पडि ।

ऽोद्.कियस्. थ्म्स.चद्. सिल्. गियस्. म्नन्. पर्. ऽग्युर् ॥

४९. द्मन्. पडि. ल्त. स्प्योद्. ज्ञन्. थोस्. ल्.सोग्स्. पडि ।

सेम्स्. दे. यङ्. दग्. ब्लङ्स्. नस्. ऽजुग्. पर्. ग्युर्

ऽदि. ल. गङ्. न. व्यङ्. छुब्. सेम्स्. द्पर्. ग्युर्. प. दे ।

जर्गोस्. पडि. सङ्स्. र्ग्यस्. दकऽ. बर्. ग्युर्. व. म. यिन्. नो ॥

५०. सेम्स्. किय. स्कद्. चिग्.ऽदि. ल. म्थऽ.यस्. मु. मेद्. दे ।

यन्. लग्. थम्स्. चद्. स्कद्. चिग्. ऽदि. ल. लोग्. पर्. ऽग्यु.

छोस्. नम्स्. थम्स्.चद्. खो. न. जिद्. ल. जोग्स्. पर्. ग्युर्. व. यि.

गशन्.मेद्. गङ्. शिग्. गङ्. नस्.ऽोङ्स्. पर्. ऽग्युर्. प. म. यिन्. नो ॥

५१. स.ल.बडि. स्त्रिङ्. पो. मुन्.पडि. ग्युल्. लस्. र्ग्यल्. बर्.ऽग्युर्. व. गङ् ।

ऽजिग्. तेन्. मि. लम्. ल्त. बु. ऽदि. ल. यङ्. दग्. जर्द्. पर्. ऽग्युर् ॥

120a बर्जुन्. प. गङ्. यिन्. ऽदि. ल. यङ्. दग्. सुस्. म्थोङ्. व ।

ब्लर्. मेद्. दे. ल. ग्स्.गुस्. सु. म्थोङ्. बर्. ग.ल. ऽग्युर् ॥

५२. दोन्.दम्.पर्. नि. गङ्. यङ्. योद्. पर्. ऽग्युर्. व. म. यिन्. न ।

फ.रोल्. गशन्. दु. म्थोङ्. नस्. ऽग्रो. बर्. ऽवोद्. पडि. गङ्. सग्. दे ।

ऽदि. लस्. गशन्. दु. ऽग्रो. बडि. ख्यद्. प र. स. द्रि. चन्. ब्शिन्. नो ।

ऽदि. नि. फ.रोल्. बर्तोल्.बस्. गङ्. दु. म. बोर्. बर् ॥

५३. ग्चिग्. क्यङ्. फियन्.प. मेद्.पर्. ऽदिस्. बर्तोल्. लो ।

क्ये. हो. गङ्. ऽदि. थ.स्त्रिङ्. लम्.ऽदिस्. ब्चल्. म.यिन् ।

थर्. प. तर्गु.तु. प्यि.ल. ल्त. बुडि. म्छोङ्स्. पस्. नग्स्. सु. ल्तुङ्.

बर्. ऽग्युर् ॥

गल्. ते. स्तग्. दङ्. व. मो. ल्त. बुडि. स्तोव्स्. नि. गो. ब्स्लोग्. न ॥

५४. दे.जिद्. योद्.पस्. दे.ल. चि. शिग्.फन्. पर्. मि. ऽग्युर्.रो ।

दे.जिद्. शेस्. न. मि. ब्स्म्. मि. तर्गु. पर्. ।

दीप कोठरी में स्थापित मणि-प्रभासे सर्व (तम) पराभूत होइ ॥

४९. श्रावक इत्यादिकी हीनदृष्टि चर्या, सो चित्त ठीकसे लेकर प्रविशै ।  
यहां जहां बोधिमत्व हो, सो, संबुद्ध होवै दुष्कर नहीं ॥

५०. चित्तका क्षणिक (होना) यहां अनंत अपर्यत्त,  
सब अंग क्षणिक यहां मिथ्या होइ ।  
तत्वमें सब धर्म समाप्त, अन्य नहीं जो जिससे आया नहीं ।

५१. चन्द्रगर्भ तम-युद्धमें जो विजयी हुआ,  
लोक स्वप्न ज़िम्मा यहां सु लाभ हुआ ।  
जो झूठा है उसमें ठीक किसने देखा,  
उस असदृशमें रूप देखना कहां हुआ ॥

५२. परमार्थमें जो सद्भूत नहीं है,  
परे अन्यत्र देखि जानेका इच्छुक पुद्गल सो ॥  
यहां से अन्यत्र छेदन दुर्गन्ध ज़िम्मा, यह परे ले जानेसे कहां न छाड़ै ।

५३. एक भी पहुंचा नहीं डमका ले गया,  
अहो, जो यह व्यवहार-मार्ग(है) इससे ना ढूँढ़ै ।  
मोक्ष सदा विडाल ज़िम्मा लांघके वनमें पीवै,  
यदि वाघ औ द्वापद सदृश बल बायें ॥

५४. सोई होनेसे उसको क्या अहित होइ,  
सोई जाने तो ना ध्यावै ना तर्क करै ।

ग्सुग्स्. म्थोङ्. चिर. यङ्. स्नङ्. वडि. युल्. नि. दे. रु. स्तोङ्. पर्. ऽग्युर्.।  
ऽदि. ल. येङ्स्. नस्. दे. ल. ग्नस्. पर्. ग्युर्. व. म्छोर्. रो ॥

५५. द्रन्. दङ्. शोस्. ब्शिन्. ग्जिस्. नि. बर्. गिय. दे. ल. गङ्. यङ्. म.

म्थोङ्. स्ते ।

छोस्. कुन्. स्तोर्. न. ऽदि. यि. खोङ्. नस्. ग्नस्. पर्. ऽग्युर्. व. यिन् ।

दि. ल. दङ्गो. पो. मेद्. चिङ्. ब्सम्. दु. मेद्. प. दे. ।

ख्योद्. कियस्. च्. व. म्छोग् चम्. दु. ग्जिस्. क. मेद्. पर्. व्योस् ॥

५६. क्ये. हो. सङ्ग्. गँ. यस्. कुन्. गिय. यन्. लग्. ब्शि. यि. ऽदि. कुन्. ग्सुम्.

दु. स्तोन्. पर्. नि ।

ख्योद्. कियस्. यङ्. नस्. यङ्. दु. ब्सम्. पस्. म्थोङ् ब. गङ् मेद्. मोद्. क्ये

ऽखोर्. वडि. द्रन्. पस्. तँन्. ऽब्रल्. दग्. लस्. ऽव्युङ्. व. नि ।

स्न. छोर्. गोस्. बर्. स्नङ्. रङ्. गि. डो. बो. म. स्वयेस्. फियर् ॥

५७. मि. ऽग्युर्. ब्दे. व. छेन्. पोडि. रङ्. ब्शिन्. दग्. दङ् लहन्. चिग्. स्वयेस् ।

सेम्स्. किय. दोन्. दङ्. दे. ब्शिन्. ग्शोग्स्. प. थम्स्. चद्. किय ।

रङ्. ब्शिन्. नँम्. पर्. दग्. पडि. योन्. तन्. जिद् ।

छोस्. नँम्स्. थम्स्. चद्. ग्जिस्. सु. ग्दोद्. नस्. म. व्युङ्. स्ते ॥

५८. ग्जिस्. दङ्. ग्चिग्. गि. द्रन्. पस्. डु. म. दङ्. ब्रल्. बर्. ऽग्युर् ।

गङ्. यङ्. ब्रजोद्. पर्. व्य. वडि. दङ्गोस्. पो. गङ्. शिग्. रङ्. गिस्. स्तोङ्. प. स्ते

ब्लो. लस्. ऽदस्. फियर्. म्छन्. म. रव्. तु. ऽजोम्स् ।

दे. मेद्. प. दे. गङ्. न. ग्नस्. पर्. मि. ऽग्युर्. रो ॥

५९. र्ग्युन्. मि. ऽछद्. पडि. ब्सम्. ग्तन्. गङ्. छे. थोब्. पर्. ऽग्युर्. व. ल ।

ब्रल्. वस्. ऽदि. लस्. ग्शान्. दु. सो. ङ् वस्. म. म्थोङ्. डो. ॥

ग्सङ्. स्प्रग्स्. ऽदि. कुन्. च्. व. दे. लस्. ब्स्वयेद्. पर्. नि ।

दे. मेद्. प. लस्. ऽव्युङ्. बर्. ऽग्युर्. व. गङ्. यङ्. योद्. प. म. यिन्. क्येः ॥

६०. सु. शग्. ऽदि. ल. तोग्. पर्. व्येद्. पडि. ब्रुन्. पो. दे ।

120b ब्स्कल्. प. बर्ग्युर्. यङ्. म्छोग्. गि. दोन्. मि. म्थोङ् ॥

रूपदेखे क्यों प्रतिभाम-विषय वहां शून्य होइ,  
यहां उद्धतसे वहां वास छोड़ै ॥

५५. स्मृति औ ज्ञान जिमि दो ही बीचमें वहां कुछ भी ना देखै,  
सर्व धर्म भ्रमि इसके अन्धसे वास होइ ।  
यहां(जो) वस्तु अभाव आशयमें अभाव सो,  
तू उत्तम मूल मात्रमें दोनों अभाव करे ॥

५६. अहो मर्व बुद्धका चतुरंग यह मव तीनमें आदेश,  
पुनःपुनः आशय दर्शन कितु कुछ भी नहीं रे ।  
संसार-स्मृतिद्वारा आश्रयसे संभूत,  
नाना अन्तर् प्रतिभास स्वभाव अनुत्पत्ति से ॥

५७. निर्विकार महासुख का स्वभाव शुद्ध औ सहज (है),  
चित्तका अर्थ औ सर्व तथागतका ।  
स्वभाव विशुद्ध गुण ही, द्वैतमें सर्व धर्म प्रथमसे नहीं संभूत ॥

५८. दो औ एककी स्मृतिसे अनेक रहित होइ,  
जो भी वाच्य वस्तु सो स्वयं शून्य (है) ।  
बुद्धिसे परे अतः निमित्त प्रमर्दित, उसके विना वह कहीं न रहै ॥

५९. अविच्छिन्न सन्तान ध्यान जब पावै,  
तो इस वियोग से अन्यत्र गमन न दीखै ।

यह सब मंत्र उस मूलसे उत्प ,  
उसके विना संभव जो सत्ता नहीं है, रे ॥

६०. जो यहां तर्क करै मूढ़ सो, कल्प सौ में भी उत्तम अर्थ ना देखै ।



गङ्. शिग्. यिद्. ल. व्येद्. पडि. म्छन्. मस्. बर्ग्यल्. व. कुन् ।  
 ब्तङ्. ग्शग्. व्रल्. दङ्. थोब्. पर्. मि ङ्युर्. र्ग्यल्. स्त्रिद्. वशिन् ॥

६१. चुङ्. सद्. द्रोद्. थोब्. व्यङ्. छुब्. सेम्स्. द्पऽ. दग्.

गङ्. दु. ग्योब् प. मेद्. प. म्छोर्. रो ।

नम्. पर्. तोंग्. चन्. लम्. दु. शुग्स्. पडि. फ्रियर् ।

व्यङ्. छुब्. सेम्स्. किय. थिग्. ले. लुङ्. ल. गङ्. व्स्क्योन्. प ॥

६२. स. बोन्. देस्. नि. ङ्खोर्. व. ङदि. रु. सग्स्. पर्. ङ्युर् ।

यङ्. दग्. प. यि. दे. ङ्दि. थोब्. पर्. मि. ङ्युर्. शिङ् ।

छङ्. छिङ्. द्र. वडि. ग्सेब्. तु. ङ्वेल्. बर्. ङ्युर् ।

शेस्. रब्. मिग्. गिस्. लोग्. पर्. छर्. व्चद्. न ॥

६३. ग्शन्. ग्यि. लोग्. पर्. ल्त. व. रङ्. गि. दे. रु. श्रोल् ।

दकऽ. थुब्. ल. सोग्स्. ग्शन्. दु. ङवद्. प. मेद् ॥

व्दग्. मेद्. पर्. नि. रङ्. व्युङ्. यङ्. नम्. प. स्न. छोर्. ग्स्. ङिद् ।

र्ग्यु. र्ग्येन्. ल. सोग्स्. ङ्वेल्. प. ङदि. रु. स्तोङ्. पर्. व्योस् ॥

६४. नल्. ङ्व्योर्. ङदि. ल. व्दग्. गि. ग्न्स्. सु. ङ्दुग्. प. म. म्थोङ्. डो ।

स. दङ्. फ. रोल्. फियन्. पडि. लोङ्. व. गङ्. ङ्छल्. ङदिस् ।

स्त्रिद्. पडि. द्र. व. खुङ्. नस्. र्ग्य. म्छोर्. म्छोङ्. बर्. व्येद् ।

दे. ल. ग्रु. मेद्. र्ग्य. म्छोर्. सव्स्. सु. सग्. पर्. ङ्युर् ॥

६५. थोग्. म्थऽ. मेद्. पडि. फ्यग्. र्ग्य. छेन्. पो. ङदि ।

स्त्रिद्. दङ्. म्य. डन्. ङदस्. श्रोल्. ङोन्. मोङ्. स्र. र्ग्य. म्छो. स्केम्स्. पर्.

ङ्युर्. ।

दे. ल. सेम्स्. र्ग्युन्. ङ्छद्. दो. स्जाम्. दु. सेम्स्. शिङ्. स्तोङ्. पर्. यिद्.

ल. म. व्येद्. चिग् ।

गङ्. ल. दोन्. ग्यि. वर्तुल्. शुग्स्. छन्. पो. ङदि. ङिद्. म. थोब्. पर् ॥

जो मनसिकार-निमित्त से सब जीते,

त्याग-रूप विना औ अप्राप्त राज्य जिमि ॥

६१. किंचिद् उष्म पाई बोधिसत्व, जहां अर्कापत अवतरै ।

विकल्पमार्ग अवगाहन के लिये, बोधिसत्व-तिलक जो पवनमें दोष ॥

६२. उस बीजसे इस संसारमें च्युत, सम्यक् (तत्त्व) सोई न पावे ॥

लतासदृश बीच में वद्ध, प्रज्ञा नेत्रसे मिथ्या नाश करै तो ॥

६३. अन्यकी मिथ्यादृष्टि स्वयं यहां छूटै, तप इत्यादिक अन्यमें न यत्न करै ।

अनात्मा स्वयंभू जो नाना विध,

हेतु-प्रत्यय इत्यादि संबंध यहां शून्य करै ॥

६४. इस योगी को अपने स्थान में बैठा न देखै

भूमि औ पारमिता अन्ध इस वनसे ।

भवजालछिद्रसे सागरमें छलांग मारै,

वहां नाव विना सागरकी गहराइमें जा लगै ॥

६५. आदि-अन्त-रहित यह महामुद्रा,

भव औ निर्वाण मुक्त, क्लेशसागर सूख ।

वहां चित्तस्रोत ठूटा ओ चित्तवृक्ष शून्य मनमें ना करै,

यहां अर्थमहाब्रत सोई ना पावै ॥

६६. बर्तुल्. शुग्स्. स्प्योद्. पडि. द्बड्स्. गिस्. दे. ल. म. रेग्. क्ये ।  
 ब्यिन्. ग्यिस्. बर्लबस्. दड्. बर्लव्. व्य. मेद्. पस्. डो. म्छर्. छे. ब.  
 जिद्. ।  
 ग्जिस्. मेद्. सप्रो. स्कुर्. ब्रल्. व. ऽदि. ल. ग्नस्. प. गड् ।  
 तैन्. दड्. ब्रल्. बडि. छुल्. ग्यिस्. ग्नस्. पर्. ऽयुर् ॥
६७. ऽप्रो. व. कुन्. ग्यिस्. दे. ल्तर. शेस्. पर्. ऽयुर्. गड्. नि ।  
 स्त्रिद्. दड्. म्य. डन्. ऽदस्. पडि. छोस्. नैम्स्. रड्. गि. सेम्स्. यिन्.  
 पर् ।  
 ग्शन्. दु. वल्त. व. मेद्. पर्. थग्. छोद्. बसम्. मेद्. बलो. ऽदस्.  
 जिद्. ॥
६८. दे. ल. व्स्गोम्स्. दड्. म. व्स्गोम्स्. नैम्. पर्. तौग्. प. दड् ।  
 म्छन्. म. दग्स्. दड्. स्पड्. वर्. ब्य. ब. मि. द्गोस्. ते ।  
 दे. ल. चि. ब्य. गड्. यड्. म. ब्यस्. दे. जिद्. ग्सल्. बर्. ऽयुर् ।  
 जि. ल्तर. नैम्. तौग्. म. व्कग्. म. स्पड्स्. पर् ॥
६९. ग्शन्. दु. म. म्थोड्. दे. जिद्. ग्सल्. ऽयुर्. न ।  
 121a दे. नि. गड्. ल. ग्नस्. क्यड्. ग्शन्. दु. म्थोड्. बर्. ऽयुर्. ब.  
 म. यिन्. नो ।  
 म. व्स्गोम्स्. छेद्. दु. ब्यस्. ऽब्रल्. व. मेद्. पडि. रड्. वाशन्. ते ।  
 दुस्. नैम्स्. कुन्. दु. ऽदि. दोन्. शेस्. पडि. म्छन्. म. ऽदि. ल. तौग्. पर्.  
 म. ब्येद्. चिग् ॥
७०. ल्हन्. चिग्. ग्सल्. बडि. स्नड्. स्त्रिद्. ऽदि. ल. तौग्. मेद्. चिड् ।  
 दे. लस्. ग्शन्. दु. तौग्स्. पडि. बूलो. चन्. ऽदिस्. नि. ग्यं. म्. छो. नड्.  
 गि. नोर्. बु. मेद्. मि. ऽयुर् ।  
 गड्. नस्. ब्युड्. शिड्. गड्. दु. ग्नस्. पडि. ऽजिन्. प. ऽदि. नि. स्वये. ब.  
 मेद्. ऽयुर्. न ।  
 ग्युन्. दु. ऽगग्. प. मेद्. पस्. ग्सुड्. ऽजिन्. दे. म. स्वयेस्. पस्. ये. शेस्. जिद्. ।

६६. व्रतचर्या के वश वहां ना लग रे,

।. अधिष्ठान औ शिक्षा विना महा अद्भुत ।  
अद्वय गमन विनु यहां जो वैठा, निराश्रय स्वरूपसे वैठ गया ॥

६७. सर्व जगत ऐसे जो जान गया,

भव-निर्वाण सबका अर्थ (सो) जान गया ।  
भव-निर्वाणका धर्म अपना चित्त है तो,  
अन्यत्र देखे विना समाप्त अचिन्त्य बुद्धि से परे ॥

६८. वहां भावना औ अभावना विकल्प,

और निमित्तका प्रवारण करना ना चाहिये ।  
वहां क्या करना, जोई अकृत सोई प्रकटा,  
जैसे विकल्प अ-वारित अ-त्यक्त ॥

६९. अन्यत्र ना देखा सोई प्रकटै तो, कहीं वैठ भी अन्यत्र देखै नहीं ।

अभावना नाशे अकृत अभावस्वभाव (है),  
सब कालों इस अर्थज्ञके निमित्त परतर्क ना कर ।

७०. सहज प्रकाश प्रतिभास इस भावमें अतर्क्य,

उससे अन्यत्र कल्पनावुद्धि सागर में मणि ना पावै ।  
जहांसे उत्पन्न जहां का यह वासी अजन्मा हो जो,  
संकेतमें अनिरोध से धारण-ग्रहण अजन्मा से ज्ञान ही ॥

७१. डो.बो. दे. ल. द्वि.म. म.स्पङ्गस्. दे. जिद्. म. ब्स्पोम्स्. पर्. ।  
 नग्स्. खोद्.दग्.न. ग्नस्.पडि. ग्लङ्ग.पो. यन्. पर्. ख्ये ।  
 म्छन्. मडि. युल्. ग्यि. नम्. ग्येङ्. तोग्. प. ब्स्म. ग्यिस्. मि. ख्यब्. पस् ।  
 ग्नोद्. चिङ्. दे. ल. ग्येङ्. बर्. मि. ग्युर्. ते ॥
७२. म्छोन्. छ. ब्रल्. वडि. छोम्. कृन्. दग्. गिस्. ग्स्द्. ब्चद्. म. यिन्. नो ।  
 म्छन्. म. दे. जिद्. स्जिङ्. पो. मेद्. ऽग्युर्. ब ॥  
 स्ग्यु. मडि. द्पे. बर्ग्यद्. ल्त. बुर. रङ्. ब्शिन्. मेद्. पर्. ब्योस् ।  
 गङ्. म्थोङ्. सेम्स्. यिन्. दे. ल. द्ङोस्. पो. मेद्. ऽग्युर्. पस् ॥
७३. द्रन्. मेद्. ब्लो. ल. मि. ग्नस्. छोस्. नम्स्. थम्स्. चद्. नि ।  
 दे. लस्. व्युङ्. शिङ्. दे. रु. स्नङ्. नस्. दे. जिद्. ऽदस्. ऽग्युर्. बस् ॥  
 ऽदि. लस्. ग्शन्. दु. ग्यो. ब. गङ्. यङ्. मेद्. प. जिद् ।  
 दे. ल. दे. जिद्. चम्. दु. म्ख्येन्. ग्यिस्. यिद्. ल. म. व्येद्. क्ये ॥
७४. क्ये. हो. गोग्स्. दग्. ब्लो. ल. चि. स्वयेस्. सेम्स्. दे. नि ।  
 दुङ्. नम्स्. कुन्. दु. ग्मल्. व. म. यिन्. नो ॥  
 दे. ल. ग्स्ल्. र्ग्यु. चि. यङ्. मेद्. प. स्ते. ।  
 बर्चद्. प. कुन्. दङ्. ब्रल्. बर्. नि ॥
७५. रङ्. ग्नस्. पस्. नि. ग्रोल्. बर्. ऽग्युर्. जि. ल्तर. ।  
 छुल्. छोस्. व्यस्. पडि. सङ्गस्. ग्यस्. ऽदि. कुन्. नि ॥  
 द्गे. स्लोङ्. म. यिन्. र्ग्यु. म्छोडि. नङ्. दु. ल्तुङ् ।  
 दि. जिद्. लस्. नि. ग्शन्. दग्. तु ॥
७६. ग्चिग्. क्यङ्. ल्त. बर्. मि. व्येद्. प ।  
 देस्. नि. थम्स्. चद्. म्थोङ्. वडि. द्गे. स्लोङ्. यिन् ॥  
 गङ्. शिग्. बर्जुन्. ल. गोम्स्. पडि. ग्नस्. बर्तन्. देस् ।  
 सिद्. प. जाम्. थग्. ऽदि. लस्. ऽब्युङ्. बर्. नुस्. म. यिन् ॥
७७. गङ्. गिस्. सिद्. पडि. छु. बो. ऽदि. बर्जुन्. पर् ।  
 शेस्. प. दे. नि. ग्नस्. बर्तन्. म्छोग्. थोव्. ऽग्युर् ॥

७१. उस वस्तुमें मल ना छाडे ना सोई भावै,  
वनप्रस्थोंमें वसा गज स्वानन्द सुत ।  
निमित्त-विषय का विपक्ष तर्क से चित्तसे अव्याप्त,  
उस वाधा में उद्धत ना होइ ॥
७२. शस्त्ररहित दस्युओं द्वारा मारण-छेदन नहीं, सोई निमित्त निस्सार होइ ।  
जिमि माया के आठ दृष्टांत निःस्वभाव कर,  
जो दर्शक चित्त, वहाँ वस्तु का अभाव हुआ ॥
७३. स्मृति बुद्धिमें धर्म सारे न स्थित,  
उससे संभूत वहाँ प्रतिभासनसे सोई अतीत ।  
इससे अन्यत्र चंचल कोई(वस्तु) नहीं, वहाँ सो मात्र जान मनमें ना कर रे ॥
७४. अहो साथियो, बुद्धि में जो उपजै सोई चित्त, भूयें ना सर्वत्र प्रकट ।  
वहाँ प्रकाशहेतु कुछ भी नहीं, (जो) सर्व वाद से हीन ॥
७५. स्वयं स्थिति से मुक्त होइ जिमि, शीलधर्म किया यह सब बुद्ध ।  
भिक्षु नहीं है सागरके भीतर गिरा, इसीसे अन्यों में ॥
७६. एक भी दृष्टिमें ना करै, तिससे: (सो) सर्वदर्शी भिक्षु है ॥  
जो झूमे ध्यानी स्थविर, अतः इस बेचारे भव से संभ ना हो सकै ॥
७७. जिसने इस भवसरिता को झूठ जाना, उसने उत्तम दृढ स्थान पाया ।

नँल्. ऽव्योर्. दे.यि. स्प्योद्. युल्. नि ।  
 ल्ह. दङ्. ऽङ्गस्. दङ्. फ्यग्. र्ग्यि. यन्. लग्. कुन् ॥

७८. दि. कुन्. शेस्.न. द्बब्.तु. योद्.प. म. यिन्. नो ।  
 दे.जिद्. शेस्.प. दे.ल. दे. कुन्. म्थोङ्. ब. मेद् ॥  
 दे. ल्त्. ऽदि. लस्. म. तौगस्. पडि. ।  
 ऽद्.शेस्. युल्.गशन्. दग्.लस्. नि ।

121b७९. स्क्ये. वर्. ऽयुर्.ब. योद्. म.यिन् । युल्. चन्. गङ्. गि. फ्योग्स्. दग्. तु ॥

ग्जिस्.सु. म्थोङ्. ब. मेद्.पर्. ग्युर्.ब. दे ।  
 नँम्.प. स्त. छोग्स्. दे. जिद्. गोल्.ब. यिन् ॥

८०. गङ्. शिग्. फ्योग्स्.सु. ल्त.वर्. ग्युर्.प. दे ।  
 म्छन्.मडि. द्रन्. रिग्. फ्र. रग्स्. गोम्स्. मिन् ॥  
 गङ्.शिग्. ऽदि.लस्. गोम्स्. ऽयुर्. पस्. ।

स्प्योद्.प.जि. स्तर्. व्यस्. प. कुन् ॥

८१. दोन्.दङ्.ल्दन्.पर्. ऽयुर्.ब. म.यिन्.ते ।  
 जम्.थग्. म्छन्.मस्. म्युर्.दु. ऽछिङ्. पर्. ऽयुर् ॥  
 गङ्.शिग्. ऽदि.दङ्. फ्योग्स्. सु.नि । ग्तङ्. ल.गोम्स्. सु. योद्. म.यिन् ॥

८३. ब्सम्.मेद्. यिद्.ल. गोम्स्.सु. मेद् ।  
 क्ये.हो. गोग्स्.दग्. रिग्.पडि. ये.शेस्. ग्जिस्.सु. मेद्.प. नि ॥  
 ये. शेस्. ब्ल.न.मेद्.पडि. द्बङ्. ब्स्कुर्. छेन्.पो. स्ते ।  
 जौगिस्.ल्दन्. द्पल्. ल्दन्. ब्ल.म.दग्.गिस्. नि ॥

८३. ब्स्कुर्. दु. मेद्. पडि. छुल्.ग्यिस्. थोव्.पर्. ब्येद्.छु.प. नि ।  
 म्छोग्.गि. नँल्.ऽव्योर्.नँम्स्.क्यिस्. द्बङ्.ब्स्कुर्. ते ॥  
 थोव्.ब्य.मेद्.पडि. छुल्.ग्यि. थम्स्.चद्. जौगिस् ।  
 दे.जिद्. म.शेस्. लोग्. स्नेद्.चन्.ग्यि. द्बङ्. नँम्स्. नि ॥

८४. म्छन्.मडि. तौगि.प.दग्.गिस्. ग्सुम्.दु. सग्.पर्. ऽयुर् ।  
 ऽदि.ल. जौन्.मोङ्स्. शेस्. व्यडि. स्त्रिब्.प.लस्. ब्सगस्. कुन् ॥

उम योगी के गोचर(हैं), देव, मंत्र औ मुद्रा के मारे अंग ॥

७८. यह सब जानि पनन होवै नहीं, सोई जान (जो) उसे सो सब देखना नहीं ।  
तथा इससे निर्विकल्प, अन्य संज्ञा-विषयोंसे ॥
७९. उपजा हुआ है नहीं, जिम विषयी की दिशाओंमें ।  
द्वैत देखना सो लुप्त हुआ, नाना विध सोई मोक्ष है ॥
८०. जो दिशाओं में देखै सो, निमित्त की स्मृति-विद्या सूक्ष्म स्पर्श ध्यान है ॥  
जो इससे ध्यावै, (उसने) चयां अनुरूप सब किया ॥
८१. अर्थसहित होवै नहीं, बेचारे निमित्त से तुरत बद्ध होइ ।  
जो इसके साथ दिशा में, त्याग ध्यान में नहीं ॥
८२. ध्यान-रहित मनमें भावना नहीं,  
अहो साथियो, विद्या का ज्ञान अद्वय (है) ।  
अनुत्तर ज्ञान का अभिषेक महान्, निष्पन्न (हो) श्रीगुरुओं से ॥
८३. व्याख्यान-रहित शीलसे पावै, उत्तम योगियों द्वारा अभिषिक्त ।  
अप्राप्य (कुछ) शीलका सब समाप्त,  
सोई ना जान मिथ्यालोभी अधिकारी \* ।
८४. निमित्तकी कल्पनाओंसे तीनमें आसक्त होइ,  
यहां ज्ञेयके आवरण क्लेश से सब ढंका ॥



शेस्. रब्. त्रिङ्. ऽजिन्. मि.द्गोस्. नम्. पर्. ओल्. वर्. ऽय्युर् ।  
 खो. ग्जोर्. मेद्. पस्. सुग्. दु. थम्स्. चद्. ऽजोम्स्. पर्. नि ॥

८५. म. स्क्येस्. प. यि. छुल्. ग्यिस्. ऽजिन्. पर्. मि. व्येद्. दो ।  
 स्नङ्. व. ऽगग्. प. ऽदि. ल. ग्सल्. वडि. तौग्. पस्. यिद्. लम्. व्येद्. चिग् ।  
 फ्यिन्. चि. लोग्. दङ्. नम्. पर्. तौग्. प. थमस्. चद्. नि ।  
 जोन्. मोङ्स्. लङ्. यि. ग्नस्. सु. थमस्. चद्. पर्. ऽय्युर्. व. यिन् ॥

८६. ग्शन्. दग्. ऽदि. जिद्. शेस्. पस्. ऽखोर्. वडि. द्र. व. दग्. गिस्. स्तोङ्. प.  
 जिद् ॥

उ. दुम्. व. रडि. ल्त. बुर्. द्कोन्. ऽय्युर्. वडि ।  
 मोङ्स्. पडि. मुन्. सेल्. स्विङ्. पो. ग्सङ्. वडि. दोन् ।  
 सुस्. क्यङ्. शेस्. प. मेद्. पर्. कुन्. ल. ग्सल्. ऽय्युर्. व ॥

८७. स्विङ्. गर्. ग्नस्. पडि. दोन्. ल. द्वि. म. मेद्. ऽय्युर्. ते ।  
 वर्तुल्. शुग्स्. स्थोद्. पस्. गङ्. दे. म्थोङ्. व. म. यिन्. नो ॥  
 ऽदि. नम्स्. जौग्स्. ल. स्व्योर्. वर्. नुस्. प. दे ।  
 यन्. लग्. थिम्. नस्. स्तोङ्. प. जिद्. दु. ग्नस् ॥

८८. क्ये. हो. ओग्स्. दग्. ग्यद्. दङ्. जे. रिग्स्. जि. ब्शिन्. दु ॥  
 गङ्. गिस्. खेङ्स्. पर्. म्युर्. दु. थोव्. पर्. ऽय्युर् ॥  
 रिम्. पर्. स्व्यद्. प. गङ्. यङ्. योद्. प. म. यिन्. नो ।  
 छोस्. नम्स्. थम्स्. चद्. स्तोङ्. प. जिद्. दु. रो. ग्चिग्. दङ् ॥

८९. ख्योद्. क्यिस्. जौग्स्. पर्. ऽय्युर्. वस्. थोव्. प. म. यिन्. नो ।  
 122a गङ्. छे. ऽदि. ल. चर्. व. मेद्. पर्. तौग्स्. प. नि ॥  
 द. ल्त. जिद्. दु. ग्जिस्. मेद्. डेस्. पर्. ऽय्युर्. व. यिन् ।  
 जि. ल्तर. सिन्. बु. स्थोद्. पस्. ब्चिङ्स्. पर्. गङ्. ऽय्युर्. व ॥

९०. ऽदि. नम्स्. रो. ल. छग्स्. पस्. ऽछिङ्. वर्. ऽय्युर्. प. स्ते ।  
 छङ्. छिङ्. ऽदि. ल. स. वर्. नुस्. प. गङ्. गिस्. नि ॥

प्रज्ञा समाधि न चाहिये मुक्त होइ, उर्मि विना सारी पीड़ा नशै ।

८५. अजात रूपसे ग्रहण ना करै,

इस प्रतिभास-निरोधमें स्फुट कल्पनासे मानस-मार्ग बनावै ।  
बाहर जो मिथ्या सब ही विकल्प, पंच क्लेश के स्थानमें सब गिरा ।

८६. दूसरे यही जानि संसारजालोंसे शून्यता, उदुंबर(पुष्प) जिमि दुर्लभ ।  
मोहतमनाशक गुह्य सार अर्थ को, कोई भी न जाने (सो) सब प्रकाशै ॥

८७. दोनों स्थानके अर्थ में निर्मल होइ, व्रतचर्या से जो उसे देखै नहीं ।  
इनकी समाप्तिमें जोड़ सकै, सो अंग के लय से शून्यतामें वसै ॥

८८. अहो साथियो, विक्रमी वैश्य जिमि, जिसने अति शीघ्र पाया ॥  
क्रमसे धोने (से)कुछ भी होवै नहीं, सारे धर्म शून्यता में एकरस (हैं) ।

८९. तू समाप्ति से पावै नहीं, जब इसमें निर्मूल कल्पना ।  
अभी अद्वय निश्चित होई, जिमि कृमि जो चर्यासे वेष्टित हुआ ॥

९०. ये रसके रागसे बंधे, इस लतामें जो खा सकै ।

ज्वोर्. लो. थम्स्. चद्. ग्युन्. दु. ब्स्कोर्. बर्. ऽग्युर्. ब. यिन् ।  
सङ्गस्. ग्युम्स्. नम्स्. क्यि. स्कु. ग्सुङ्. थुग्स. ग्सल्. व ॥

९१. ऽदि. कुन्. गङ्. गिस्. यिद्. ल. म. ब्यस्. पर् ।

स्तोन्. पडि. ब्ल. म. दो. जे. ऽजिन्. ल. ऽदुद् ॥

॥ स्कु. मसुङ्. थुग्स. यिद्. ल. मि. ब्यद्. पडि. पयग्. ग्यु. छेन्. पो. शेस्. ब्य. ब. सङ्गस्.  
ग्युम्स्. गङ्गिस्. प. त्त्. ग्गस्. प. नल्. ऽब्योर्. ग्यि. द्बङ्. पयुग्. छेन्. पो. दपल्. स. र. ह.  
पडि. शल्. सङ्. नस्. ग्सुङ्. प. जोग्स्. सो ॥

॥ ब्ल. म. नग्. पोस्. रङ्. ऽग्युर्. दु. नङ्. गबडो । गु. य. स. म. प. त. मि. थि ॥

सर्व (संसार) चक्र स्रोतमें घूमा है,  
बुद्धोंके काय-वाक्-चित्त (का) प्राकट्य ॥

६१. यह सब जिसने मनमें न किया, (उस) शास्ता-गुरु वज्रधर को नमः ॥

॥ इति कायवाक्चित्तअभनसिकार महामुद्रा(उपदेश) द्वितीयबुद्ध जिमि प्रसिद्ध  
महायोगीश्वर श्री सरह के श्रीमुख से भाषित समाप्त ॥  
गुरु कृष्ण ने स्वयं अनुवादित किया । गु(ह्)यसमाप्तमिति ॥



६. दोहाकोश महामुद्रोपदेश  
(भोट, हिन्दी)

# ६. (क) दो.ह. मज्जोद्. फयग्.ग्यं. छेन्.पोडि. मन्.डग्\*

(भोट)

- 122a दपल्. दों. जें. नैल्. ऽव्योर्.म.ल.फयग्. ऽछल्. लो । ल्हन्. चिग्. स्क्येस्  
पडि. ये. शेस्. छोस्. किय. स्कु. व्दे. व. छेन्. पो. ल. फयग्. ऽछल्. लो ।
१. जि. ल्त्. द्ङोस्. दङ्. द्ङोस्. मेद्. स्नङ्. स्तोङ्. दङ् ।  
ग्युं. दङ्. मि. ग्युं. ग्यो. दङ्. मि.ग्यो. व ॥  
थम्स्.चद्. म. लुस्. नम्.मखडि. रङ्. ब्शिन्. लस् ।  
दुस्.नम्स्. कुन्.दु. नम्.यङ्. ग्यो. व. मेद् ॥
२. नम्.मखऽ. नम्.मखऽ. शेस्. नि. रव्. ब्जोद्. क्यङ् ।  
नम्. म्खडि. डो.वो. चिर्. यङ्. ग्नुव्.प.मेद् ॥  
योद्. दङ्. मेद्. दङ्. योद्.मिन्. मेद्.मिन्. दङ् ।  
दे.लस्. ग्शन्.दुऽङ्. म्छन्. पडि. युल्. लस्. ऽदस् ॥
३. दे. ल्त्. नम्.मखऽ. सेम्स्. दङ्. छोस्. जिद्. ल ।  
थ.दद्. चुङ्. सद्. योद्.प. म.यिन्. ते ॥  
थ.दद्. मिङ्. नि. ग्लो. बुर्. व्तग्स्.प. चम् ।  
दे. ल. दोन्. मेद्. व्जुन्. ग्यि. छिग्. तु. सद् ॥
४. छोस्.नम्स्. थम्स्.चद्. रङ्.गि. सेम्स्. यिन्. ते ।  
सेम्स्.लस्. म.ग्तोग्स्. छोस्. ग्शन्. डुल्. चम्. मेद् ।  
गङ्.गिस्. ग्दोद्.नस्. सेम्स्.मेद्. तोग्स्.प.यिस् ।  
दुस्.ग्सुम्. ग्यैल्.बडि. द्गोङ्स्.प. दम्.प. जौद् ॥

\* स्तन्. ऽग्युर, शि, पृष्ठ १२२ क ३—१२४६

# ६. (ख) दोहाकोश महामुद्रा-उपदेश

(हिन्दी)

नमो वज्रयोगिन्यै । नमः सहजज्ञान र्मकायमहामुखाय ।

१. जिमि वस्तु औ अवस्तु प्रतिभान-शून्य,  
कारण औ अकारण चल औ अचल ।  
तिमि सकल अशेष आकाशस्वभाव,  
सब कालोंमें कभी न चल ॥
२. आकाश आकाश इति प्रोक्त भी,  
आकाश-स्वभाव कुछ भी ना सिद्ध ।  
है नहीं औ न है-न नहीं,  
इससे अन्यत्र भी निमित्त-विषयसे परे ॥
३. जैसे आकाश चित्त औ धर्मतामें,  
भेद कुछ भी है नहीं ।  
भेद नाम आकस्मिक गौण मात्र,  
उसे अर्थहीन मिथ्यावाक्य में ढालै ॥
४. सारे ही धर्म अपना चित्त (है),  
चित्तसे अतिरिक्त अन्य धर्म कुछ भी नहीं ।  
जिसने प्रथम से अचित्त कल्पना की,  
(उसने) त्रिकाल जिनेके अभिप्राय पा लिया ।



५. छोस्. किय. स. म्तोग्. चेस्. योङ्स्.सु. ग्दग्स् ।  
 दे. यङ्. लोग्.पडि. छोस्. ग्शन्. म.यिन्. ते ॥  
 ग्सोद्.नस्. ल्हन्. चिग्.स्क्येस्.पडि. रङ्. ब्शिन्. नो ।  
 122b दे.यि. दे.जिद्. ब्स्तन्.दु. योद्. मिन्. ते ॥
६. ब्जोद्.मेद्.पस्. सुस्.क्यङ्. गो.ब. मेद् ।  
 गल्.ते. ब्दग्.पो. योद्. न. नोर्. योद्. दे ॥  
 ये.नस्. ब्दग्.मेद्. दे.ल. चि. शिग्. योद् ।  
 सेम्स्. योद्. ग्युर्. न. छोस्.कुन्. योद्. रिग्स्. ते ॥
७. सेम्स्.मेद्.प.ल. छोस्. शिग्. सु.यिस्. तोग्स्. ।  
 सेम्स्. दङ्. छोस्.सु. स्नङ्. व. थम्स्.चद्. नि. ॥  
 ब्चल्. न. मि. जौद्. छोल्. म्खन्. गोङ्.नस्.मेद्. ।  
 मेद्.प. हुस्.गसुम्. म.स्क्येस्. मि. जग्.पस्. ॥
८. दे. जिद्. ग्शन्.दु. ऽग्युर्.ब. मेद्.प. नि. ।  
 रङ्.ब्शिन्. ब्दे.ब. छेन्.पोडि. ग्नस्.लुग्स्. यिन्. ॥  
 दे.फियर्. स्नङ्.ब. थम्स्.चद्. छोस्.किय. स्कु. ।  
 ऽप्रो.ब.सेम्स्.चन्.नम्स्. नि. सङ्स्.ग्येस्. जिद्. ॥
९. ऽदु.ब्येद्.लस्. कुन्. ये.नस्. छोस्.किय. द्ब्यिङ्स्. ।  
 ब्त्तग्स्.पडि. छोस्.नम्स्. रि.बोङ्. वं. दङ्.ऽद्र. ॥  
 क्ये.म. जि.म. स्प्रिन्.ब्रल्. ऽोद्.सेर्. कुन्.ख्यब्. क्यङ्. ।  
 मिग्. मेद्. नम्स्. ल. मुन्. प. नम्स्. सु. स्नङ्. ॥
१०. ल्हन्.चिग्.स्क्येस्.पस्. कुन्.ल. ख्यब्.ग्युर्. क्यङ्. ।  
 मोंङ्स्.प. दग्.ल. दे. जिद्. शिन्. तु. रिङ्. ॥  
 ऽप्रो.ब.नम्स्.कियस्. सेम्स्.मेद्. म. तोंग्स्. पस्. ।  
 ब्त्तग्स्.पडि. सेम्स्.कियस्. सेम्स्.जिद्. रब्. तु. ब्चिङ्स्. ॥
११. जि.ल्लर्. ग्दोन्.गियस्. ब्र्लब्स्.पडि. स्म्योन्.प. दग्. ।  
 द्बङ्.मेद्. दोन्.मेद्. स्दुग्.स्ङल्. ब्येद्.प. ल्लर्. ॥

५. धर्म-करंडक इति परिहास\*, सो भी मिथ्या धर्म (छोड़) अन्य नहीं।  
आदि से सहज स्वभाव (है) उसका, सोई उसके शमन में नहीं ॥
६. अकथ को कोई ना जानै, यदि पति है (कहै) तो भ्रम है।  
आदितः अनात्मा वहाँ क्या है, चित्तसत्ता हो तो सर्व-धर्म सत्ता-युक्त ॥
७. चित्त के अभाव में धर्म किसने समझा, चित्त औ धर्म में सारा प्रतिभास।  
ढूँढे तो न लहै गवेषक पूर्व से नहीं, अभाव त्रिकाल (में) अजान अनिरुद्ध ॥
८. सोई अन्यत्र निर्विकार, (उसका) स्वभाव महासुख की व्यवस्था है।  
अतः सर्व प्रतिभास धर्मकाय (है), जगत् प्राणी (सारे हैं) बुद्ध ही ॥
९. संस्कार सारे आदि से धर्म-धातु, गौण धर्म (हैं) शशशृंग से।  
अहो निरभ्र में सूर्य किरण (से) सर्वव्यापी तोभी, नेत्रहीनों को  
अन्धकार प्रतिभासै ॥
१०. सहज सब में व्याप्त भी, मूढों को सोई अति दूर।  
सांसारी अचित्त को न समझ (अतः) गौण चित्त से चित्त अतिबद्ध ॥
११. जिमि आप्रह से शिक्षा-उन्मत्त, अनधिकार अनर्थक दुख करें।

- दङ्गोस्. ऽजिन्. नंम्. तौग्. ग्दोन्. छेन्. सिन्. प. यि. ।  
 स्क्ये. वो. दोन्. मेद्. स्दुग्. व्स्डल्. ऽवऽ. शिग्. ब्येद्. ॥
१२. ख. चिग्. व्लो. यि. द्व्ये. वस्. मोंडस्. नंम्स्. व्चिङ्गस्. ।  
 ब्दग्. पो. ख्यिम्. दु. ब्रशग्. नस्. ग्शान्. दु. छोल्. ॥  
 ख. चिग्. ग्सुग्स्. वर्चान्. दग्. ल. ग्दोन्. दु. ऽजिन्. ।  
 ख. चिग्. चर्. व. वोर्. नस्. लो. ऽदब्. ऽज्रेग्. ॥
१३. जि. ल्तर. व्यस्. क्यङ्. व्स्तुस्. प. म. छोर्. रो. ।  
 क्ये. हो. बुस्. व. नंम्स्. क्यिस्. दे. जिद्. म. रिग्. क्यङ्. ॥  
 दे. जिद्. डङ्. लस्. ग्योस्. मेद्. ड्. यिस्. तौग्स्. ।  
 ड्. यिस्. यिर्. थोग्. (प.) म्थऽ. शेस्. ग्युर्. पस्. ॥
१४. ड्. यिस्. म्थोङ्. रङ्. जिद्. ग्चिग्. पुर्. लुस्. ।  
 ग्चिग्. पो. जिद्. ल. व्लत्स्. पस्. ग्चिग्. म. म्थोङ्. ॥  
 म्थोङ्. ब्य. म्थोङ्. व्येद्. ब्रल्. वस्. व्जोद्. दु. मेद्. ।  
 व्जोद्. दु. मेंद्. प. सु. यिस्. गो. बर्. ऽग्युर्. ॥
१५. ग्जुग्. मडि. यिद्. ल. गङ्. छे. स्व्यङ्गस्. ग्युर्. प. ।  
 दे. छे. रि. ख्रोद्. ड्. यि. तौग्स्. पर्. ऽजुग्. ॥  
 सेङ्. गेडि. ऽो. म. स्नोद्. डन्. फल्. बर्. मिन्. ।  
 जि. ल्तर. नग्स्. न. सेङ्. गेडि. ड्. रो. यिस्. ॥
१६. रि. दग्स्. फ. मो. थम्स्. चद्. स्क्रग्. ग्युर्. क्यङ्. ।
- 123a सेङ्. फ्रुग्. नंम्स्. नि. द्गऽ. वस्. बर्ग्युग्. प. ल्तर. ॥  
 ग्दोद्. नस्. म. स्क्येस्. ब्दे. छेन्. ऽदि. व्स्तान्. पस्. ।  
 मोंडस्. प. लोग्. तौग्. चन्. नंम्स्. स्क्रग्. ग्युर्. क्यङ्. ॥
१७. स्कल्. ल्दन्. रब्. तु. द्गऽ. बस्. पु. सिङ्. ब्येद्. ।  
 क्ये. हो. म. येङ्गस्. सेम्स्. क्यिस्. रङ्. ल. ल्तोस्. ॥  
 रङ्. गि. दे. जिद्. रङ्. गिस्. तौग्स्. ग्युर्. म. ।  
 येङ्गस्. पडि. सेम्स्. क्यङ्. फ्यग्. र्ग्ये. छेन्. पोर्. ऽछर्. ॥

वस्तुग्राही विकल्प महाआग्रह-बद्ध, पुरुष निरर्थक केवल दुख करै ॥

१२. कोई बुद्धि-भेद से मूढ़ों को बांधें, स्वामी घर में रहे और अन्यत्र हूढ़े ।  
कोई प्रतिरूपों में आग्रह पकड़ै, कोई मूल छाड़ि पत्ते को सींचै ॥
१३. की गई बंचना जिमि ना वेदन करै, अहो शिशु सोई ना जानै ।  
हंससे अकंपित सोई मैं समझूं, मैंने आदि अन्त जाने ॥
१४. मैंने स्वयं ही अकेले देखा शरीर, अकेले में ही देखते क न दीखै ।  
दृश्य-दर्शन रहित (होने) से कथन में नहीं (आवें), अकथ को किसने जाना ॥
१५. अपने मन में जब घोष हुआ, तब शबर मेरी कल्पना में पड़ठा ।  
सिंहिनी का दूध कुपात्र में (रखना) ठीक नहीं,  
जिमि वन में सिंह की गर्जन से ॥
१६. सारे छोटे मृग भीत होवें, सिंह शिशु आनन्द से दौड़ें जिमि ।  
प्रथमतः यह अज महासुख बताने से, मूढ़ मिथ्या तार्किक भीत होवे ॥
१७. भव्य प्रमुदित रोम हर्ष करै, अहो अनुद्धत चित्त अपने ही अपने देखै ।  
अपने सोई अपने से समझे तो, उद्धत चित्त भी महामुद्रा में उदित होइ ॥

१८. म्छन्म. रङ्गोल्. ब्दे.व. छेन्.पोडि. दङ्ग. ।  
 मि.लम्.दग्.गि. व्दे. दङ्ग. स्दुग्.ब्सङ्गल्. कुन् ॥  
 सद्.पडि. दुस्.न. रङ्ग.ब्सिन्.मेद्.पडि. पियर्. ।  
 रे. दङ्ग. द्गोस्.पडि. व्सम्.पस्. कुन्. व्स्लङ्ग. नस्. ॥
१९. द्गग्. दङ्ग. स्युब्.पडि. व्सम्.प. सु. शिग्. ब्येद्. ।  
 ष्कोर्. दङ्ग. म्य.ङ्गन्.ऽदस्.पडि. छोस्.र्नम्स्. कुन्. ॥  
 दे. जिद्. म्थोङ्ग. बस्. रङ्ग. ब्सिन्. मेद्.पडि. पियर्. ।  
 रे. दङ्ग. द्गोस्.पडि. ब्लो. नि. सद्. ग्युर्.पस्. ॥
२०. स्पङ्ग. दङ्ग. ब्बङ्ग. बडि. वद्. चोल्. चि. व्यर्. योद्. ।  
 स्नङ्ग. ग्रग्स्. थम्स्. चद्. स्यु.म. स्मिग्.ग्यु. दङ्ग. ॥  
 ग्गुग्स्. व्चान्. दङ्ग. म्छुङ्गस्. द्ङोस्.पो. म्छन्. म. मेद्. ।  
 स्यु.मर्. स्नङ्ग.म्खन्. सेम्स्. जिद्. नम्.म्खडि. स्ते. ॥
२१. म्थऽ.त्रल्. द्बुस्.मर्. सुस्. क्यङ्ग. शेस्. मि. ज्युर्. ।  
 गङ्ग.गा. ल.सोग्स्. छु.क्लुङ्ग. स्न.छोग्स्. प. ॥  
 व. छ.चन्.गिय. ग्य.म्छोर्. रो.ग्चिग्. ल्तर. ।  
 व्तग्स्.पडि. सेम्स्. दङ्ग.सेम्स्. ब्युङ्ग. स्न.छोग्स्. कुन्. ॥
२२. छोस्.किय. द्ब्यिङ्गस्.सु. रो.ग्चिग्. शेस्.पर्. व्योस् ।  
 गङ्ग. शिग्. नम्. म्खडि. खम्स्. नि. योङ्गस्.व्चल्. क्यङ्ग ॥  
 म्थऽ. दङ्ग. द्बुस्.मेद्. म्थोङ्ग.ब. योङ्गस्.सु. जग ।  
 दे.ब्सिन्. सेम्स्. दङ्ग. छोस्. नि. योङ्गस्.व्चल्. बस् ॥
२३. स्विङ्ग.पो. डुल्. चम्. जेद्.पर्. मग्.युर्. ते ।  
 योङ्गस्. सु. छोल.वडि. सेम्स्. क्यङ्ग. मि.द्मिग्स्.पस् ॥  
 चि. यङ्ग. म. म्थोङ्ग. ब. जिद्. दे. म्थोङ्ग. यिन् ।  
 जि.ल्तर. ग्सिङ्गस्.ल.ऽफुर्.बडि. व्य.रोग्. नि ॥
२४. फ्योग्स्.र्नम्स्. व्सकोर्.शिङ्ग. स्लर्. यङ्ग. दे. रु. षव् ।  
 ऽदोद्.पडि. सेम्स्.कियस्. वस्तन्.पडि. जेस्. व्चद्. क्यङ्ग ॥

१८. स्वयं मुक्त निमित्त महामुख और, स्वप्नों के मुख और दुख मारे ।  
 प्रातः काल स्वभाव-रहित होने से, आशा और अपेक्षा की बुद्धि नष्ट होइ ॥
१९. निरोध और साधन में चित्त कौन करै, संसार और निर्वाण सारे धर्म ।  
 सोई देखने से निःस्वभाव के लिये, आशा और अपेक्षा की बुद्धि नष्ट होइ ॥
२०. त्याग-ग्रहण का यत्न-व्यायाम करे क्या होवे,  
 प्रतिभाम प्रसिद्धि मारी माया-मरीचि (हैं) ।  
 प्रतिविव-तुल्य निर्निमित्त वस्तु, माया प्रतिभासी चित्त ही आकाश-सम ॥
२१. अन्तरहित मध्य को कोई भी न जान पाया,  
 गंगा इत्यादि नाना नदी,  
 लवण-सागर में एकरस (होइ),  
 जिमि, गौण चित्त और चैतसिक नाना सारे,
२२. धर्मधातुमें एकरस जानो,  
 जिमि आकाशधातु परिगवेषै भी अन्त और मध्य-रहित में दृष्टि रुकै ।  
 तिमि चित्त और धर्म परिगवेषै तो सार अणु-मात्र वहां ना लहै ॥
२३. परिगवेषक चित्त भी ना मिलै, कुछ भी ना देखै सोई देखना है ।  
 जिमि नावमें उड़ता काक,
२४. दिशाओंमें घूमि पुनः वहां उतरै ॥  
 राग चित्तसे शासन अनुच्छिन्न भी, प्रथम चित्त निज में ही उतरै ।

- दङ्.पोडि. सेम्स्. जिद्. गञ्जुग्.म. जिद्.दु. ऽवव् ।  
 कर्णेन्.गियस्. मि.ऽगुल्. रे.वडि. यि. छद्. प ॥
२५. दोग्स्.पडि. स्कुग्स्. स. शिग्स्.पस्. दौ.जे.सेम्स् ।  
 च्.ब. छोद्.पडि. सेम्स्. जिद्. नम्.मखऽ.ऽद्र ॥  
 स्गोम्.दु. मेद्.पस्. यिद्.ल. मि. व्य. स्ते ।  
 थ.मल्. शेस्.प. रङ्. लुग्स्. गञ्जुग्.म. ल ॥
२६. ब्चोस्.मडि. द्मिग्स्.प. दग्.गिस्. ब्स्लङ्.ब. दे ।  
 123 a रङ्.ब्रिन्. दग्.पडि. सेम्स्.ल. ब्चोस्. मि.द्गोस् ॥  
 म. ब्सुङ्. म.वत्.ङ्. रङ्.द्गऽ.जिद्.दु. शोग् ।  
 गल्.ते. म.तौग्स्. ब्लो.ल. स्गोम्.ग्यु. मेद् ॥
२७. तौग्स्.प.चन्.ल. व्स्गोम्.व्य. स्गोम्.व्येद्. मेद् ।  
 जि.ल्लर्. नम्.मखस्. नम्.मखऽ. द्मिग्स्.सु. मेद् ॥  
 दे.ल्लर्. स्तोङ्.पस्. स्तोङ्.प. व्स्गोम्.दु. मेद् ।  
 ग्जिस्.मेद्. शेस्.पस्. छु. दङ्. ऽो.म. ल्लर् ॥
२८. स्न. छोग्स्. रो.गचिग्. ब्दे.छेन्. ग्युन्. छद्. मेद् ।  
 दि.ल्लर्. दुस्.ग्सुम्. नम्.प. थम्स्.चद्. दु ॥  
 यिद्.ल्. व्य.ब.मेद्. चिङ्. म.ब्रल्. गञ्जुग्. मडि. दङ् ।  
 दे. जिद्. स्क्योङ्. ल. स्गोम्. शेस्. थ.स्जद्. ग्दग्स् ॥
२९. लुङ्. नि. मि. ब्सुङ्. यिद्. नि. मि. ब्चिङ्. बर् ।  
 म. ब्चोस्. शेस्.प. बु.छुङ्.ल्ल.बुर्. शोग् ॥  
 द्रन्. तौग्. व्युङ्. न. दे. जिद्. रङ्.ल. ल्लोस् ।  
 छु. दङ्. ल्वस्. ग्जिस्. थ. दद्.म.तौग्स्. शिग् ॥
- ३० यिद्.ल. मि. व्येद्. फ्यग्.ग्यु.छेन्. पो. ल ।  
 स्गोम्.ग्यु. डुल्. च्म्. मेद्.पस्. मि. व्स्गोम्. स्ते ॥  
 स्गोम्.मेद्. दोन्. दङ्.ब्रल्.मेद्. स्गोम्.पडि. छोग् ।  
 ग्जिस्.मेद्. ल्हन्.चिग्. ब्दे.ब.छेन्.पोडि. रो ॥

प्रत्यय द्वारा अकम्प आशा में (चित्त-) लयन ॥

२५. शंका राजपथ भूमि विचारसे<sup>१</sup> वज्रसत्त्व तीक्ष्ण-छेदक चित्त खसम ही ।  
अभावना मनमें ना करै, इत्वर जानना निजमें स्वमर्यादा ॥

२६. कृत्रिम अवलम्बनों से उसे ना उठा,  
स्वभाव युद्ध चित्तको पकाना ना चाहिये ।  
ना पकड़ै ना छोड़ै स्वच्छन्द ही रहै,  
यदि निर्विकल्प बुद्धि में भावना करै नहीं ॥

२७. कल्पनावान्को ध्येय औ धारणा नहीं,  
जिमि आकाशका आकाश अलंबन नहीं ।  
तिमि शून्यतासे शून्यता भावना नहीं, अद्वय ज्ञानसे नीर-क्षीर इव ॥

२८. नाना एकरस महासुख-स्रोत अनुच्छिन्न, तिमि त्रिकाल सर्व प्रकार ।  
अमनसिकार अविरहित निज औ, सोई रक्षामें भावना इति व्यवहार गीण ।

२९. पवन ना गहै मन ना बांधै, जान ना पकाये शिशु जिमि रहै ।  
स्मृति तर्क उपजै तो सोई अपने में देखै,  
जल औ बेला दो भिन्न ना समझै ॥

३०. मनमें ना करै महामुद्रा को, भावना अभाव से अणुमात्र ना भावै ।  
अभावना निरर्थक नहीं भावना उत्तम, अद्वय सहज महासुखका रस ॥



३१. जि.ल्लर्. छु.ल. छु. गृशग्. रो.गृचिग्. ल्लर् ।  
 जि.बृशिन्. डङ्क.दु दे.बृशिन्. गृनस्.पडि. छे ॥  
 द्मिगस्.ज्जिन्. शेन्.पडि. यिद्. नि. रब्.तु. शि ।  
 क्ये.हो. गृजिस्.मेद्. गृजुग्.मडि. नैल्.ज्व्योर्. गङ्क. दे. ल ॥
३२. स्पङ्क. दङ्क. बृलङ्क. वडि. द्ङो.स्.पो. चि. शिग्. योद् ।  
 डस्. नि. छोस्.कुन्. म. बृतङ्क. वस् ॥  
 बु. ख्योद्. ज्दि. यिस्. व्य.व. मि. स्मडो ।  
 जि.ल्लर्. नोर्.बु. दे. द्ङो.स्.मेद्.प. ल्लर् ॥
३३. नैल्.ज्व्योर्. स्प्योद्.प. दे. द्ङो.स्.मेद्.प. स्ते ।  
 दु.व्येद्. स्न.छोर्गस्. चल्.चोल्. गङ्क. स्मस्. क्यङ्क ॥  
 नैल्.ज्व्योर्. बृलो. नि. गृचिग्.लस्. मि. ज्दो ।  
 गृचिग्. जिद्. न. नि. गृचिग्. क्यङ्क. योद्. मिन्.पस् ।,
३४. नैम्.प. स्न.छोर्गस्. चर्.ब. बृल्.ग्युर्. ते ।  
 स्म्योन्.प. बृशिन्. दु. चैस्.मेद्. यन्.प.ल ॥  
 व्यर्.मेद्. स्प्योद्.प. बु.छुङ्क. बृशिन्.दु. गृनस् ।  
 ओ.म. स्त्रिद्.पडि. ज्दम्.स्कथेस्. पद्.म. ल्त.बुडि. सेम्स् ॥
३५. ज्ञेस्.प. गङ्क.गि गङ्क.ल. गोस्.प. मेद् ।  
 स. शिङ्क. ज्युङ्क. ल. गृजिस्. स्प्रोद्. बृदे. व. दङ्क ॥  
 गल्.ते. लुस्. सेम्स्. रब्.तु.गृदुङ्क. ग्युर्. दङ्क ।  
 नैम्.प. स्न.छोर्गस्.गङ्क. ल. स्प्योद्. ग्युर्.प ॥
३६. गङ्क.गिस्. म.बृचिङ्कस्. म.ग्रोल्. गोस्.प. मेद् ।  
 तौर्गस्.पडि. रङ्क. स्प्योद्. चिस्.मेद्. दङ्क. दे.नस् ॥
- 124a मोंङ्कस्.पडि. ज्ग्रो.व. जम्.थग्. म्ङोन्. ग्युर्. छे ।  
 मि. बृसोद्. स्त्रिङ्क.जैडि. शुग्स्.क्यिस्. म्छिम्.व्युङ्क ॥
३७. वृदग्. गृशन्. वृस्लो.गृ.नस्. फ्रन्.प. जिद्. ल. ज्जुग् ।  
 दोन्.बृर्तगस्.प. न. द्मिगस्.प. गृसुम्.बृल्.वस् ॥

३१. जिमि जलमे जल डाले रस एकसा, जेसे चंचल तिमि स्थिरकाले ।  
आलम्बनमें आसक्त मन प्रशान्त, अहो, अद्वय निज जो योगी उसे ॥
३२. छोड़ने-लेने की वस्तु क्या है, मैंने सर्व धर्म ना छोड़ा ।  
 बच्चे अतः तू क्रिया मत कहूँ, जिमि वह मणि अवस्तु तिमि ॥
३३. योगचर्या सो अवस्तु (है), नाना संस्कार जो कहना भी वेकार ।  
 योगबुद्धि एकसे ना अतीत, एक तो एक भी है नहीं ।
३४. नाना विधमूल-रहित होइ, पागल जिमि अनगिनत विनु स्वानंद में ।  
 चर्या निष्क्रिय शिशु जिमि रहै, अहो भव पंकमें उपजै पद्म सा चित्त ॥
३५. जिसका दोष जिमको चाहिये नहीं, खाओ पीओ दोनों दान औ सुख ।  
 यदि काय-चित्त प्रतप्त, नानाविध जहां चर्या होइ ॥
३६. जिसे न बंधन औ न-मोक्ष ना चाहिये,  
 कल्पनाकी अगणित स्व-चर्या उससे ।  
 मूढ़ जगत् वेचारा साक्षात्कार-काले, अ-च्युत कृष्णा-बलसे न अ-तृप्त गया ॥
३७. स्व-पर निवारि हित में ही निमग्न हो,  
 अर्थप्रत्यवेक्षण तो तीन आलंबन-रहित ।

- यङ्.दग्. म. यिन्. मि.लम्. स्ग्यु.ऽद्र. स्ते. ।  
छग्स्. थोग्स्.<sup>१</sup> ब्रल्.वस्. द्क्ऽ.शिङ्. स्क्य.मेद्. प. ॥
३८. स्ग्यु.म. म्खस्.प. स्म्यु.मडि. दोन्. व्येद्. मछुङ्स् ।  
ग्दोद्.नस्. दग्.प. नम्.म्खडि. रङ्.ब्रशिन्. ल॥  
स्पङ्स्. दङ्. थोब्.पडि. द्ङोस्.पो. ऽगऽ. यङ्. मेद् ।  
यिद्.ल. व्यर्.मेद्. फ्यग्.र्ग्यं. छेन्.पो. नि ॥
३९. ऽब्रस्. बु. गङ्.दुऽङ्. रे. व. म. व्येद्. चिग् ।  
रे. बडि. सेम्स्.<sup>२</sup> नि. ग्दोद्.नस्. म. स्क्येस्. पस् ॥  
र.पङ्स्. दङ्. थोब्.पडि. द्ङोस्.पो. चि. शिग्.योद् ।  
गल्.ते. गङ्.गिस्. थोब्.पडि. द्ङोस्.पो. चि. शिग्. योद् ॥
४०. गल्. ते. गङ्. गिस्. थोब्. पडि. द्ङोस्. योद्.न ।  
बस्तन्.पडि. फ्यग्.र्ग्यं. नम्.ब्रशिस्. चि. शिग्. व्येद् ॥  
जिज. ल्त्. रि.दग्स्. ऽह्रुल्.पस्. ग्दुङ्स्.प.यिस्<sup>३</sup> ।  
स्मिग्. र्ग्युडि. छु.ल. रब्.तु. बर्ग्युग्.प. ल्त् ॥
४१. मोंङ्स्.प. गङ्.शिग्. ऽदोद्.पस्. रब्.ग्दुङ्स्.पस् ॥  
जि.ल्त्. ऽबद्. क्यङ्. स्लर्. नि. रिङ्. बर्. ऽयुर् ॥  
ये. नस्. म. स्क.येस्. रङ्. ब.शिन्ऽर्नम्. दग्. पस् ।  
दे.लस्. ख्यद्.पर्. चुङ्.सद्. योद्. मिन्. ते ॥
४२. ब्रतग्स्.पडि. यिद्. नि. द्ब्यिङ्स्. स्रु.<sup>४</sup> दग्. ऽयुर्. प ।  
दे. ल. दो.जं. ऽह्रङ्. शेस्. ब्रतग्स्.प. चम् ॥  
जि.ल्त्. ए.थङ्. स्कम्.पोडि. सि.मग्.र्ग्यु. दग् ।  
छुर्.र.नङ्. छु. नि. ग्ञिस्.सु.मेद्.प. ल्त् ॥
४३. ब्रसोद्.नस्. दग्.प. ब्रतग्स्.पडि. यिद्. सङ्स्. प ।  
दे.ल. तं.छद्. ग्ञिस्.स्रु. ब्रजोद्.दु. मेद् ॥  
यिद्.ब्रशिन्. नोर्.बु. द्पग्.ब्रसम्.<sup>५</sup> शिङ्. ब्रशिन्. दु ।  
स्मोन्.लम्. द्बङ्.गिस्. रे. ब. योङ्स्. स्कोङ्. ब ॥

सक्यग् नहीं स्वानमाया सदृश,

काम उपादान से रहित कठिन क्षेत्र उत्पन्न नहीं ॥

३८. मायाकुशल के माया-अर्थ करने तुल्य, प्रथम से शुद्ध आकाश स्वभाव सदृश ।  
त्यक्त औ प्राप्ता वस्तु कोई नहीं, अमनसिकार महामुद्रा ॥
३९. किसी फल में भी आशा ना करै, आशा-चित्त प्रथम से, न उपजावै तो ।  
त्यक्त औ प्राप्त वस्तु क्या है, जिसके द्वारा प्राप्त वस्तु क्या हो ॥
४०. यदि जिसके द्वारा प्राप्त वस्तु है तो, शासन की चार विध मुद्रा क्या करै ।  
जिमि मृग भ्रमसे सन्तप्त ? (माया) मरीचि जल में बहुत भागै ॥
४१. मूढ जो राग से सन्तप्त, निरत भी पुनः जिमि दूर होइ ।  
आदि से अजन्मा स्वभाव विशुद्ध, उससे विशेष कुछ है नीं ॥
४२. गौण मन धातु में शुद्ध भूत, वहाँ वज्रपाणि इति गौण मात्र ।  
जिमि शुष्क मरु की शुद्ध मरीचिका, जल प्रतिभासी जल अद्वय (है) ॥
४३. आदि से शुद्ध गौण मन शुद्धेति, वहाँ नित्य उच्छेद दोनों कहने को नहीं ।  
चिन्तामणि कल्पलता सदृश, अधिष्ठान वश आशा परिपूरै ।

४४. दे. यङ्. ऽजिग्.तेन्. थ.स्ञाद्. कुन्.जोव्. स्.ते ।

दम्.पडि. दोन्. दु.ऽगऽ यङ् दोन्. स. यिन् ॥

दो. ह. म्जोद्. च्.स्. ब्य. फयग्.र्य. छेन्. पोडि. मन्. डग्. द्पल्. रि. ह्योद्. प. छेन्  
पोस्. स. र. हडि. शल्. स.ङ्. नस्. मज्जद्. प. जोग्.स सो ॥

र्ग्य. गर्. ग्यि. म्खन्. पो. श्री. वै. रो. च्. न. र. क्षि. तस्. रङ्.ऽभ्युर्. दु. म्जद्.पऽो ॥

-----

४४. सो भी जगव्यवहार संवृति (है), परमार्थ में कोई भी अर्थ नहीं ।

॥ इति दोहाकोप महामुद्रोपदेश महाशबर सरह के श्रीमुखसे रचित समाप्त ॥

भारत के उपाध्याय श्री वैरोचनरक्षित ने स्वयं अनुवादित किया ॥

---



१०. द्वादश उपदेशगाथा  
(भोट और हिन्दी)



# १०. मन् डग्. छिग्स्.सु. व्चट्.प. व्चु.गजिस् प.१

(भोट)

दपल्.दो.र्जे.सेम्स्.दपऽ.ल. फ्यग्.ऽछल्.लो ॥ .

- 124b १. व्यङ्. छुब्. सेम्स्.०नि. शि. व. स्ते ।  
दे. ल. ग्नस्. प. गङ्. यिन्. प ॥  
नम्. मुखऽ. ब्शिन्. दु. शि. वर्. ऽग्युर् ।  
लुस्. दङ्. यिद्. लस्. व्युङ्. व. यि ॥
२. दे.ल. चुङ्.सद्. ऽग्युर्.व. मेद् ।  
यङ्.दग्. ये.शेस्.लस्. ऽदस्.प ॥  
नम्.पर्. मि.तोग्. शि.बर्. ऽग्युर् ।  
तोग्.प. शि.वस्. सङ्स्.र्ग्यस्. जिद् ॥
३. दे.जिद्.१ नम्.प.मुख्येन्. जिद्. दो ।  
दङ्गोस्.पो. दङ्गोस्.पो. म्थोङ्.नस्. नि ॥  
दे.ल्लर्. नम्.तोग्. गङ्. व्युङ्.व ।  
दे.नि. तोग्.मेद्. ये.शेस्. यिन् ॥
४. ऽग्नो.व. थ.दद्. ऽजिन्. फियर्. रो ।  
दङ्गोस्.पो. कुन्.ग्यि. रङ्.ब्शिन्. नो ॥  
थम्स्.चद्. दु. नि. सो.सोर्. ग्नस् ।  
दे.दग्.ल. नि. ख्यद्.पर्.दु ॥
५. ड्.र्ग्यल्.मेद्.२ चिङ्. मोंङ्स्.प. मेद् ।  
दे. फ्योग्स्.ग्चिग्. प. दङ्गोस्.पो. ल ॥

१. स्तन्.ऽग्युर्. र्ग्युद्, शि, पृष्ठ १२४ क७—१२५क. ३

## १०. द्वादश उपदेशगाथा

(हिन्दी)

नमो वज्रसन्वाय

१. बोधिचित्त शान्तं है, वहाँ रहनेवाला जो ।  
आकाश जिमि शान्त होइ, काया औ मन मे भये का ।
२. वहाँ कुछ भी विकार नहीं, सम्यग् ज्ञान से परे ।  
निर्विकल्प शान्त होइ, कल्पना शान्त मे (है) बुद्ध ही । ।
३. सोई प्रकार—विज्ञता, वस्तु वस्तु देख कर ।  
तिमि जो विकल्प (उत्पन्न) होइ, सोई निर्विकल्प ज्ञान है ॥
४. जग (के) भेद ग्रहण के कारण, सब वस्तु का स्वभाव (है) ।  
सब में पृथक् रहे, उनके विशेष में (कर) ॥
५. निरहंकारी मूढ नहीं, सो एकपक्षी वस्तु को ।

- बृद्गत्. तु. ऽजिन्.प. जि.ल्लर्. गङ्. ब्युङ्.ब ।  
 दे. नि. तौग्.मेद्. ये. शेस्. यिन् ॥
६. दुद्.ऽप्रो. ल.सोग्स्. रङ्.बृशिन्. नो ।  
 फ्योग्स्. म्चिग. चम्.लस्. गङ्. ब्युङ्. व ॥  
 दे.यि. ङो.बोर्. बृशद्.पर्. ब्य ।  
 यङ्. दग्. सेम्स्.कियस्. ग्सुङ्. बर्. व्योस् ॥
७. स्तग्. नि. फ्रुग्. न.<sup>३</sup> ग्न्स्. प. दङ्. ।  
 स्वल्. प. स्तोङ्. प. छेन्. पो.दङ् ॥  
 ब्यि. ल. ब. स्पु. ल्दङ्. व. दङ्. ।  
 ब. लङ्. ल. सोग्स्. लुस्. पो. स्पृग् ॥
८. स्बुल्. ल. ब्स्ऽ. ब. मेद्. प. दङ् ।  
 ब्य. नैम्स्. म्खऽ. ल. ऽप्रो. ब. दङ् ॥  
 सिन्. बु. मे. ख्येर्.ऽोद्.ऽप्रो. दङ् ।  
 ङ्.मो. स्बुल्. नैम्स्. ऽगुग्स्.प. दङ् ॥
९. मँ.ब्य. स्कोम्. लस्. गँ.यल्.ब.दङ् ।  
 बुङ्. बस्. दुग्. नैम्स्. सौस्. प. दङ् ॥  
 छु. ब्यस्. द्बङ्. पो. ब्स्.ङ्.म्स्. प. दङ् ।  
 सेङ्. गो. ऽजिग्स्. प. मेद्. प. दङ् ॥
१०. ऽगु. पस्. म्छिन्. मडि. म्थोङ्. ब. दङ् ।  
 ब्य. गौद्. रिन्. छेन्. तौग्स्.प. दङ् ॥  
 स्बुल्. ग्यि. दुग्. नि. व्येद्. प. दङ् ।  
 मँ. ब्यस्. दुग्. नैम्स्. सँ. ब.<sup>५</sup> दङ् ॥
११. दूर्. प. म. ऽोङ्स्. शेस्. प. दङ् ।  
 नि. छे. छिग्स्. ल. म्खस्. प. दङ् ॥  
 स्त्रङ्. बुस्. जैस्. नैम्स्. स्तुद्. प. दङ् ।  
 ऽदुद्. ऽप्रो. ल. रङ्. रिग्. ऽप्रो ॥

आत्मग्रहण-सा जो हुआ, सो निर्विकल्प ज्ञान है ॥

६. पशु इत्यादि स्वभाव एकपक्ष मात्र मे जो हुआ ।  
उसका(स्व) भाव कथनीय, सम्यक् चिन्त मे कथन कर ॥
७. बाघ गुफा में बसना औ, मंडक महायून्य (में) ।  
मूष कंत्रललोम उडै औ, गाँ इत्यादि शरीर धोत्रै ।
८. साप का खाना नहीं औ, चिड़ियोंका आकाशमें जाना ।  
जुगनू की स्फुट किरण औ, ऊँट साँपों (का) आमंत्रण ॥
९. मोर प्यास विजयी औ, भ्रमर विषों को खाता ।  
जलपक्षी (बगला) का इन्द्रिय-संयम और, सिंह का निर्भय होना ॥
१०. उल्लू का रात में देखना औ, गिद्ध का रत्न समझना ।  
साँपका विष बनाना औ, मोर का विषों का खाना ॥
११. चकवे का भविष्य जानना औ, तोतेका शब्द में पण्डित (होना) ।  
मधुमक्खी का मधु-संचयन औ, तिर्यक् इत्यादि का स्वसंवेदन ज्ञान ॥

१२. डङ्. पस्. छु. दङ्. ङो. म. व्रयेद् ।

बुङ्. वडि. स्कद्. नि. शिन्. तु. स्ञान् ॥

छु. स्कयर्. म्छिल्. मस्. सेम्स्. चन्. ऽजिन् ।

स्त्रुल्. गि्य. मिग्. गिस्. थोस्. प. दङ् ॥

१३. रि. दग्स्. लस्. नि. ग्ल. त्रि. ऽव्युङ् ।

गु. नस्. नि. जिद्. मिग्. गिस्. स्नोम् ॥

छु. यि. नङ्. न. ग्नस्. पडि.ञ ।

सोग्. दङ्. चोल्. वस्. ङोग्. पर्. व्येद् ॥

१४. छुल्. ङन्. व्स्लस्. प. त्रम्. से. यिस् ।

ये. शेस्. म्छोग्. तु. थल्. वर्. ऽग्युर् ॥

125 a स्तग्. ल. सोग्स्. पडि. सोग्. छग्स्. कुन् ।

स्ङ्. मडि. वग्. छग्स्. लस्. व्युङ्. वडि ॥

१५. रङ्. व्शिन्. योन्. तन्. ऽव्युङ्. वर्. ऽग्युर् ।

दे. दग्. ऽजिग्. तेन्. ये. शेस्. चन् ॥

दकऽ. थुब्. म. यिन्. भोल्. व. मिन् ।

स्ङ्. मडि. वग्. छग्स्. लस्. व्युङ्. वडि ॥

१६. दे. दग्. सो. सोर्. ग्नस्. प. यिन् ।

दे. चम्. ये. शेस्. यिन्. न. नि ॥

दुद्. ऽप्रो. न्मस्. क्यङ्. भोल्. वर्. ऽग्युर् ।

दे. ल्तर. शेस्. ते. शेन्. स्पङ्स्. नस् ॥

१७. यङ्. दग्. ये. शेस्. स्प्यद्. पर्. वय ।

गङ्. गिस्. ब्यङ्. छुब्. दम्. प. दग् ॥

दङ्गोस्. श्रुब्. दम्. प. ऽव्युङ्. वर्. ऽग्युर् ।

मन्. डग्. गि. छिग्न्. सु. ब्चद्. प. ब्चु. ग्जिस्. प. जम्. से. छेन्. पंग. सन्. र. हडि.  
शल्. नस्. ग्सुङ्स्. प. नोग्स्. सो ॥

१२. हंस का नीर-धीर पृथक् करना, भ्रमर का जट्ट अनि मधुर ।  
बगला रान थूक से प्राणि धरं, साँप आँख से मुनं ॥
१३. मृग से कम्तूरी होइ, घुन (?) आँख से मूँघें ।  
जलके भीतर बसती मछली, ध्वाम औ ध्यायाम से रोघें ।
१४. दुःशील जपी ब्राह्मण, उत्तम ज्ञान में प्रसक्त होइ ।  
वाघ आदि सारे प्राणी, पूर्वकी वासना से उत्पन्न ।
१५. स्वभाव गुण (से) हुआ, सो संसारी ज्ञानी ।  
तपस्या नहीं मोक्ष नहीं पूर्व की वासना से उत्पन्न ॥
१६. वे सब पृथक्-पृथक् रहें, उतना मात्र ज्ञान है तो ।  
पशु भी मुक्त होवें, ऐसे ज्ञान (हो तो) आसक्ति त्याग से ।
१७. सम्यग् ज्ञान चर्या कर, जिससे परमबोधि शुद्ध ।  
परम सिद्धि होइ ॥

इति द्वादश-उपदेश गाथा, महान् ब्राह्मण सरह के श्रीमुख से भाषित समाप्त ॥



## ११. स्वाधिष्ठान-क्रम

(भोट और हिन्दी)



# ११. रङ्. ब्यिन्. ग्यिस्. ब्र्लब्.पडि. रिम्-प\*

## (भोट)

दपल्.दों.जें. सेम्स्.दपऽ.ल. फ्यग्.ऽछल्. लो ।

१. ब्दग्. ल .ब्यिन्. ग्यिस्. ब्र्लब्. पडि. ख्यद्. पर्. ब्स्तन्. पस्. स्.प्रुल्.<sup>५</sup>  
प.स्म्यु. मडि. ब्दग् ॥

दपल्. ल्दन्. दों. जें. स्मोग्. मो. जिद्. ल. ल्हग्. पर्. रोल्. पडि. रो.  
गङ्. चि. यङ्. रुङ् ॥

दों. जें. ब्दुद्. चि. द्पल्. ल्दन्. गङ्. ल. गङ्. गिस्. ब्स्तोङ्. प.दे.  
ल्तऽङ्. ऽध्रुल्. पडि. रङ्. ब्र्लिन्. न ॥

जि. ल्तर. ब्र्लोद्. प.ऽदि. लस्. ग्शन्. सु. ब्र्लोम्. ल्दन्. दे. ल. कुन्. नस्.  
फ्यग्. ऽछल्.<sup>४</sup> लो. ॥

२. गङ्. यङ्. म्ङोन्. द्गडि. ग्यल्. वडि. स्कु. म्जोस्. ग्चिग्. पु. जिद्. ॥  
सु. यङ्. म्खस्. नंम्स्. स्त्रिङ्. सद्. मि. ऽग्युर्. व. ॥

गङ्. शिग्. शर्. बस्. म्जान्. पडि. दुस्. न. द्बङ्. पो. दङ्. ।  
युल्. नंम्स्. ब्र्लस्. प. नुब्. प. दे. ल. फ्यग्. ऽछल्. लो. ॥

३. गङ्. ल. स्प्रोस्. प. द्पल्. ल्दन्.<sup>५</sup> ब्दे. वडि. रङ्. ब्र्लिन्. दों. जेंडि.  
म्छोन्. ऽजिन्. चिङ्. ।

गङ्. शिग्. छ. ब्यद्. स्प्रोस्. ब्र्ल. त्रि. मेद्. शेस्. रब्. रङ्. ब्र्लिन्.  
कुन्. दु. ऽप्रो. ॥

द्पग्. ब्र्लम्. ल्चुग्. मस्. म्ङोन्. म्छुङ्. ग्न्स्. ग्शुम्. ज्जोन्.  
मोङ्. द्र. व. ग्चोद्. प. गङ्. ।

द्पल्. ल्दन्. दों. जें. छिग्. म्छन्. ब्र्लन्. मो. दे. ल. कुन्. नस्. फ्यग्.  
ऽछल्.<sup>६</sup> लो. ॥

\* स्तन्-ऽग्युर्, ऽग्युद्, शि, पृष्ठ--१२५ क ३-१२६ क ६ ।

# ११. स्वाधिष्ठानक्रम

(हिन्दी)

नमो वज्रसन्वाय

१. आत्मा-अधिष्ठान के विशेष आदेशसे निर्मित माया-पति  
श्री वज्रशृंगारिणी ही में अधिक ललित रस जिसे कुछ पसन्द ।  
वज्रामृत श्री जहाँ, जिसे दृश्य, सो दृष्टि भी भ्रम-स्वभाव,  
यथा कथित इससे अन्य भगवान् को सर्वतः नमस्कार ॥

२. जो भी अभिनन्दित जिन (प्रभु) के अकेला मुन्दर शरीर ही,  
कोई भी पंडित हृदय विवृद्ध नहीं हुआ ।  
जो उदय से श्रवणकाल में इन्द्रिय औ,  
विषयों के सहित अस्त हुआ. उसे नमस्कार ॥

३. जिसका प्रपंच श्रीसुखस्वभाव (जो) वज्रायुधधरा,  
अंशकर निष्प्रपंच निर्मल प्रजास्वभाव सर्वगामिनी ।  
कामना से साक्षात्तुल्य त्रिभूमिक' क्लेश-जाल-छेदिका जो,  
श्रीवज्रपदलांछन उस पटरानी को सर्वतः नमस्कार ॥

- . गङ्. शिग्. दौ. जे. यन्. लग्. म. शेस्. कुन्. नस्. दन्. पस्. क्यङ्. ।  
 जौन्. मोङ्स्. ब्रल्. बडि. ब्दे. व. ङ्वऽ. शिग्. सेर्. नि. ब्दे. ङ्रो. व. ॥  
 दे. ल. मि. फ्येद्. गुस्. पडि. खूर्. ग्यि. ल्विद्. क्यिस्. म्ग्रिन्. स्नङ्. नस्. ।  
 दे. यि. शब्स्. क्यि. पद्. मडि. ड्ल्. ल. स्प्यि. बोस्. फ्यग्. ङ्छल्. लो. ॥

- 125b५. गङ्. गिस्. ब्कऽ.<sup>7</sup> द्विन्. सेर्. ग्यिस्. स्रप्रोस्. प. ब्दग्. गिस्. दे. जिद्. नि. ।  
 रिन्. छेन्. ङोद्. क्यिस्. ब्स्कोर्. बस्. मुन्. पडि. छोग्स्. नि. रब्.  
 ब्चोम्. शिङ्. ॥  
 जौग्. मेद्. मिग्. गिस्. रङ्. गि. नम्. पर्. रोल्. प. रिङ्. म्थोङ्. बडि. ।  
 ब्ल. म. नम्. पर्. स्नङ्. व्येद्. दे. ल. यङ्. दुग्. ङ्दुद्. ॥

६. गङ्. शिग्. सिद्. प. दङ्. नि. शि. ग्नस्.<sup>1</sup> ङ्रम्. दु. द्गऽ. ग्यु. म्थन्. ङ्वब्. ।  
 ये. शेस्. नम्. म्खडि. छु. बोस्. यिद्. ग्यिस्. द्पल्. ल्दन्. ब्ल. म.  
 ग्सुम्. प. जिद्. ॥  
 द्पल्. ल्दन्. दौ. जे. सोग्. मो. ब्चुन्. मोडि. छोग्स्. नम्स्. शेस्.  
 रब्. फ. रोल्. फ्यिन्. रङ्. ब्शिन्. ।  
 गङ्. शिग्. ग्नस्. ग्सुम्. स्तोन्. प. ग्चिग्. पु. दम्. पडि. द्बङ्. फ्युग्.<sup>2</sup>  
 दम्. पडि. सेम्स्. ल. ब्दग्. स्क्यब्स्. म्छि ॥

७. गङ्. गिस्. सेम्स्. नि. म्जाम्. प. जिद्. क्यि. युल्. दु. ङ्जोग्. चिङ्.  
 दुग्. ङ्द्र. बडि. ।  
 ङ्खोर्. व. ब्चुद्. क्यिस्. लेन्. ग्यि. नम्. पर्. म्जद्. प. रङ्. द्बङ्.  
 ङ्ङ्गस् ङ्द्र. व ॥  
 गङ्. गिस्. स. स्तेङ्. द्बङ्. पोडि. ब्लो. यिस्. मिन्. ङ्रो. ग्सुम्.  
 खङ्. छुङ्. गि. ।  
 द्वि. म.<sup>3</sup> ङ्खुद्. नस्. ग्चिग्. पु. ब्ल. म. दम्. पडि. ङ्ग. ल. फ्यग्. ङ्छल्. लो. ॥

८. गङ्. गङ्. द्रन्. पर्. यङ्. दग्. ग्नस्. पस्. स्त्रिङ्. ग. पद्. मडि. म्दुद्. प. नि. ।  
 द्बुग्स्. ङ्ब्यिन्. प्रोल्. बर्. स्ब्योर्. बडि. ब्ल. मडि. ब्कऽ. लुङ्. दे. ङ्स्. नि. ।

४. जो वज्रांगिनी रति सर्वतः स्मृति द्वारा भी,  
निःकलेश मुख केवल भूमि में मुखगामी ।  
वहाँ न अर्थ-भक्तिभार भरसे कंठ प्रतिभास से,  
उसके चरणाकमलरजको ललाट से नमस्कार ॥
५. जिसने करुणाकिरणसे प्रपंचित किया,  
मैंने उसी रत्नप्रभामंडल से तनसमूह प्रध्वस्त किया ।  
अनाविल नयन से स्वविलाम दीर्घदर्शी,  
उस वैरोचन गुरुको सम्यक् नमस्कार ॥
६. दो भवके साथ शान्त वसि आनन्दहेतु अनुकूल तटपर उतरा,  
ज्ञान आकाश नदी से विपुलहृदय तृतीय श्रीगुरु ।  
श्रीवज्रशृंगारिणी (जिसकी) अग्रमहिषी प्रज्ञापारमितास्वभाव,  
जो तीनों स्थानोंके अकेले शास्ता परमेश्वर परमचित्त (उस) की मैं शरण हूँ ॥
७. जिसका चित्त समता-विषय में प्रविष्ट विष समान,  
संसार रसायनग्रहण का निर्माण स्ववशमंत्रसम ।  
जो भू-पर इन्द्रिय-वृद्धि से अग्रम तीन कोठरी का,  
मल धोवे अकेला सद्गुरु (उस) के वचन को नमस्कार ॥
८. जौ जो स्मृति में सम्यक् रहने से हृदय-पद्म की ग्रंथि,  
स्वास के ग्रहण मोक्ष की योजक गुरुकी आज्ञा को ।

जि. फ्येद्, ऽोद्. छोग्स्. क्यिस्. ग्नस्. ग्मुम्. खङ्. बुडि. <sup>४</sup> मुन्. ऽज्मेस्.  
शिङ्. ।

मोङ्स्. दङ्. ऽगल्. ल. व्दग्. नि. दुल्. बर्. ब्चस्. पस्. फ्यग्. ऽछल्. लो. ॥

६. बल्. मडि. श्बस्. क्यि. डुल्. ऽदि. चुङ्. सद्. व्रन्. प. यि ।  
योन्. तन्. स्प्रोस्. प. योङ्स्. सु. ग्युर्. पस्. द्पल्. ल्दन्. प ॥  
मि. व्दे. व. यि. व्दग्. जिद्. क्यङ्. नि. म्छोग्. व्दे. वर् ।  
गल्. तं. <sup>५</sup> ग्रुव्. न. ऽदि. लस्. व्स्त्रुव्. व्य. ग्शन्. मेद्. दो ॥

१०. व्दग्. नि. बल्. मडि. श्बस्. क्यि. डुल्. ल. गुस्. दङ्. ल्दन्. पस्. र्गं. शि. दङ् ।  
नद्. दङ्. स्टुग्. व्स्डल्. स्नु. छोग्स्. म्दऽ. ऽद्रडि. सुग्. डुडि. छोग्स्.  
ऽदिस. डल्. व. मेद् ॥  
लुस्. चन्. नैम्स्. ल. ये. शेस्. व्दुद्. चि. स्कल्. ब. म. ब्गोस्. मि. नुस्.  
पस्. <sup>६</sup> । गङ्. शिग्. व्दग्. गिस्. स्व्यद्. प. दे. नि. योङ्स्. सु. ग्दुङ्. व. छे ॥

११. बलो. यि. युल्. मिन्. देस्. न. गङ्. गि. स्प्योद्. युल्. मिन् ।  
ग्शि. यि. ग्तम्. ग्यि. रिम्. प. बल्. मस्. ग्स्डुस्. प. रिङ् ॥  
दे. यि. रिम्. पस्. स्ञिङ्. जे. ल. सोग्स्. योन्. तन्. दग् ॥  
दद्. ल्दन्. नैम्स्. ल. स्ञिङ्. गि. ग्नस्. सु. रङ्. जिद्. स्व्य ॥

126a१२. दङ्गोस्. पो. ऽदि. कुन्. ग्चिग्. प. दङ् ।  
डु. मडि. रङ्. ब्शिन्. छ. ब्रल्. ते ॥  
ऽदि. नि. शेन्. पडि. स्व्योर्. ब्रल्. बस् ।  
चौल्. बडि. नैल्. ऽव्योर्. नैम् पर्. ऽग्युर् ॥

१३. स्पु. लङ्स्. म्यु. गुडि. छोग्स्. क्यिस्. रब्. द्गऽ. यि ।  
म्छिम्स्. मिग्. गङ्. ज. म. वक्नुस्. नस्. सु <sup>७</sup> ॥  
छेस्. व्स्तन्. गुस्. पडि. खूर्. ग्यिस्. म्गो. ऽजिन्. नि ।  
द्पल्. ब्सम्. बल्. म. दम्. ल. ऽदुद्. दो ॥

१४. ग्गल्. बर्. स्प्यि. बोर्. लग्. स्ङर्. च्ङ. सद्. ब्येद् ।  
रब्. द्गऽ. ब्चस्. पस्. नोर्. ऽजिन्. यन्. लग्. ऽव्युङ् ॥

मध्यान्ह रश्मि सा समूह से त्रिभूमिक कोठरी के तमका नाशक,  
(उस) मूढ(ता) विरोधी को विनयसहित नगस्कार ॥

९. यह गुरुचरणरज थोड़ी स्मृति, गुणप्रपंच परिभूत श्रीमान् ।  
असुखी भी उत्तम सुखे यदि सिद्ध, (तो) इससे अन्य साध्य नहीं ॥

१०. मैं गुरुचरणरेणुमें भक्तिमान् जरामरण औ,  
रोग-दुःख के नानावाण-शल्यसमूह से अशान्त ॥  
शरीरियों को जान-अमृत भागी न (कर) सके,  
जो मैंने आवग सो महापरिदाह ॥

११. बुद्धि का विषय नहीं वह, जिसका गोचरविषय नहीं,  
मूलकथा का क्रम गुरु-कथित दीर्घ ।  
उसके क्रमसे करुणा इत्यादि गुण,  
भक्तिमान् के हृदयस्थान में स्वयं उपजै ॥

१२. यह सारी वस्तु अकेली औ, अनेकस्वभाव अंशरहित है ।  
यह व्यसनयोगरहित अभ्यासी योगी होइ विकारी ॥

१३. रोमांच अंकुरसमूहसे बहुआनन्दित, निर्झरे जो रोम धोवै ।  
अति शासनभक्ति के भारसे (नमित) कन्धा, श्रीचेतन सद्गुरुको नमस्कार ॥

१४. उज्ज्वल मुर्धा में पहिले थोड़ा हाथ कर, प्रमोदसहित वसुधा को अंग लंगा ।

यङ्. दग्. गुसु. पडि. स्कुद्. पस्. यिद्. किय. मे. तोग्. नि ।  
 म्दुद्. पर्. <sup>२</sup> ब्ग्युस्. पडि. ब्दग्. गि. फ्रेङ्. ब. ऽदि. ब्शेस्. शिग् ॥

१५. म्गोन्. पो. ख्योद्. किय. ब्कऽ. ग्नद्. ज्जुङ्. ऽदुस्. शेस्. रब्. नि ।  
 र्ग्यल्. पोडि. बु. मो. छ. लस्. म्खस्. ऽद्र. द्बङ्. दु. व्येद् ॥  
 ऽप्रो. व. न्मस्. किय. रङ्. ब्शिन्. रोल्. पडि. रो. यि. ब्दे. व. नि ।  
 ऽबऽ. शिग्. ज्से. स. म्योङ्. ब. दे. नि. यिद्. ग्चिग्. <sup>३</sup> ब्सोद्. नम्. चन् ॥

१६. लङ्. छोडि. स्त्रिङ्. जेस्. ब्र्लन्. पस्. ख्योद्. कियस्. स्ङो. न्. मेद्. लम्.  
 ग्स्. ङ्स्. प ।  
 ऽप्रो. व. ब्प्रोद्. ब्य. मेद्. दङ्. ऽप्रो. मेद्. च्से. व्य. डो. म्छर्. छे ॥  
 गङ्. दु. गोम्. प. वोर्. ब. च्म. ग्ग्यस्. म्जम्. मेद्. व्द. बडि. र्ग्यन्. व्चस्.  
 गङ्. छे. स्त्रिद्. दङ्. शि. व. चुङ्. सद्. थ. <sup>४</sup> दद्. म. म्थोङ्. डो ॥

न्ल्. ऽव्योर्. गिघ. द्बङ्. पयुग्. द्पन्. स. र. ह. हन्. पोस्. म्जद्. प. ब्दग्. विदन्.  
 गियस्. ब्र्लन्. प. गृब. प. जोग्स्. सो ॥

पण्. डि. त. छेन्ः पो. प. शा. न्त. भ. द्रडि. शल्. रङ्. नस्. दङ्. बोद्. विय. लो.  
 च. ब. सं. वन्. छोस्. ऽबर्. गियस्. ब्स्ग्युर्. चिङ्. श्शुस्. ते. गतन्. <sup>५</sup> ल. फब्. पडो ॥

तृतीय सम्यक् सूत्रसे मनके पुष्प को,  
गूँथ मेरी यह माला ग्रहण करो ॥

१५. नाथ तुम्हारी आशा अल्प समये प्रज्ञा,  
राजकन्या-अंश चतुर-सम स्ववश करै ।  
जगतीके स्वभाव ललित-रस का मुख,  
केवल अनुभवै सो एकमना पुण्यवान् ॥

१६. तरुण करुणा से आर्द्र तुमने अतूर्व मार्ग बताया,  
जग अपथ नहीं औ अगम नहीं इति महाआश्चर्य ।  
जहाँ पद त्याग मात्रसे (होइ) विषम मुखसन्तान सहित,  
जब भव औ शान्ति में कुछ भेद न दीखै ॥

॥ इति योगीश्वर श्रीमहासरह-कृत स्वाधिष्ठानक्रम साधन समाप्त ॥

॥ महापंडित प्रशान्तभद्र के श्रीमुख से भोट के लो.च.ब<sup>१</sup>. मं. वन्. ॥

छोस्. बर् द्वारा अनुवादित पृष्ठ कर निर्णीत ॥

-----





१२. तत्त्वोपदेशशिखर दोहागीति  
(भोट और हिन्दी)

# १२. दे.खो.न.जिद्.किय. मन्.डग्. चर्. मो. दो. हडि. ग्लु.\*

( भोट )

ऽफग्स्.प. ऽजम्. द्पल्. ल. पयग्.ऽछल्.लो. ।

१. म. ग्यो. स्कु. ग्सुङ्. थुग्स्. किय. रङ्. १ ब्शिन्. ल. ॥

दो. जे. चर्. मो. चिग्. चिर्. ग्लु. ब्लङ्स्. दोन्. ।

गङ्. छे. ल्हन्. चिग्. स्वयेस्. प. दग् ।

गो. व. द्गु. यिस्. तोग्स्. पर्. व्य. ॥

२. ग्यु. म्छन्. ग्शल्. व्य. ल. सोग्स्. मेद्. ।

दङ्गोस्.पो.र्नम्स्. किय. खो. न. जिद्. ।

12bb द्गग्. दङ्. स्युब्. प. मेद्. प. स्ते. ।

द्व्य. व. ल. सोग्स्. मेद्. पर्. १० ब्शद्. ॥

३. मि. म्थुन्. फ्योग्स्. नम्स्. ग्जोन्. पो. मेद्. ।

ऽछल्. पडि. छुल्. छिम्स्. सेर्. स्न. दङ्. ॥

ले. लो. खोङ्. खो. नम्. पर्. ग्येङ्. ।

म. रिग्. स्पङ्. व्य. ल. सोग्स्. दङ्. ॥

४. स्पोङ्. व्येद्. फरोल्. फियन्. प. मेद्. ।

दङ्गोस्. कुन्. मेद्. पर्. ब्शद्. प. स्ते. ॥

तोग्. मेद्. स्जम्. सेम्स्. कुन्. १ दङ्. ब्रल्. ।

ऽखोर. ब. लस्. ग्शन्. पयग्. र्ग्य. छे. ॥

५. ग्चिग्. क्यङ्. पोग्. पर्. म. ब्शद्. गङ्. ।

दे. जिद्. जोग्स्. पडि. सङ्स्. र्ग्यस्. लम्. ॥

\*स्तन्. ऽग्युर्, र्ग्युद्, शि, पृष्ठ १२६ क४-१२७ ख १.

# १२. तत्त्वापदेशशिखर दोहागीति

(हिन्दी)

नम आर्यमंजुश्रियै ।

१. अचल कायवाक्चित्त-स्वभाव, वज्रशिखर मद्यः गीत गाने के अर्थ ।  
जब सहज शुद्ध, नौ से अवबोध करै ॥
२. कारण लक्षण प्रमेय इत्यादि नहीं, (यही) वस्तुओं का तत्त्व ।  
बाधन औ साधन नहीं है, भेद इत्यादि का अभाव कहो ॥
३. प्रतिपक्षों का बन्धु कुंछ नहीं, औ दुःशीलता पीत-प्रतिभास ।  
आलस्य प्रतिहिंसा विद्वेष, औ अविद्या प्रहाण इत्यादि ॥
४. प्रहाणपारमिता नहीं, (क्योंकि) सर्व वस्तु का अभाव कहा है ।  
निर्विफल सर्व समचित्त से रहित, संसार से अन्य (है) महामुद्रा ॥
५. एक भी धप(?) जो न कहना, सोई संबुद्ध का मार्ग ।

- ऽदोद्. योन्. ल.सोग्स्. म. स्मद्. पस्. ।  
 ऽन्नस्. बु. रे. ब. मेद्. प. स्ते.<sup>३</sup> ॥
६. स्कु.ग्सुम्. लम्.गिय. डो.बो. गङ्. ।  
 च्चि. फियर्. शौ. न. मि. तौग्. स्ते. ॥  
 खो. न. ञ्चिद्. नि. जि. ल्तर. तौग्स्. ।  
 ग्शन्. ल. मि. रे. गङ्. गिस्. पर्. ॥
७. रिन्. छेन्. गृतेर्. दङ्. र्ग्यल्. पोऽि. द्कोर् ।  
 फल्. प. यि. नि. बङ्. म्जोद्. ब्शिन्. ॥  
 म्छोग्. तु. ग्चेस्. प. रङ्. ल. ग्न्स्. ।  
 सेम्स्. लस्. म. गृतोग्स्. फिय. रोल्. दोन्. ॥
८. ग्चिग्. क्यङ्. योद्. प. म. ब्शद्. दे<sup>३</sup>. ।  
 सेम्स्. ञ्चिद्. कुन्. दु. ऽोद्. ग्सल्. बऽो. ॥  
 दे. बस्. सेम्स्. लस्. ग्शन्. पऽि. छोस्. ।  
 यङ्. दग्. पर्. मि. बर्तग्स्. न. मेद्. ॥
९. दङ्कोस्. कुन्. सुङ्. ऽजुग्. रङ्.ब्शिन्. ल. ।  
 स्क्ये. बऽि. रङ्. ब्शिन्. योद्. म. यिन्. ॥  
 डो. बो. म. स्क्येस्. स्.तोङ्. प. गङ्. ।  
 ग्शन्. योद्. प. म. यिन्. ते.<sup>५</sup> ।
१०. ग्चिस्. दङ्. योद्. मेद्. थ. स्ञद्. ब्रल्. ॥  
 ग्चिग्. दङ्. दु.म. ल. सोग्स्. क्यिस्. ।  
 बर्तग्स्. न. मेद्. प. म. यिन्. ते. ।  
 योद्. प. म. यिन्. मेद्. म. यिन्. ॥
११. रिग्स्.पस्. ऽजुब्.प. म.यिन्. नो ।  
 दङ्कोस्. पोर्. स्नङ्.बऽि. छोस्. नैम्स्. कुन्. ॥  
 डो.बो. ञ्चिद्.लस्. म.ऽदस्. ते. ।  
 र्ग्य. म्छोङ्.<sup>६</sup> सुग्स्. ब्जान्. मे. लोङ्. ब्शिन्. ॥

इच्छा गुण इत्यादि ना निन्दै, है फल (की) आशा नहीं ॥

६. त्रिकाय मार्ग का स्वभाव जो, क्यों आसक्त बिना समझै ।  
तत्त्व जिमि समझै, अन्यत्र ना आशा जिससे अन्तराल में ॥
७. रत्ननिधि औ राज-धन, प्राकृत (जन) का मंजूषाकोश जिमि ।  
उत्तम प्रिय अपने में बसै, चित्त से अन्यत्र बाह्य अर्थ, ॥
८. एक भी है (यह) ना कह, चित्त ही सर्वत्र आभासै ।  
ततः चित्त से अन्य धर्म को, सम्यक्<sup>१</sup> निरूपण ना करै ॥
९. सर्व युग वस्तु उतरै स्वभावमें, उत्पत्ति का नहीं स्वभाव है ।  
भाव<sup>२</sup> ना उपजै जो (है) शून्य, अन्य सत्ता है नहीं ॥
१०. द्वैत औ अभाव (हैं) व्यवहार-रहित, एक औ अनेक इत्यादि से ।  
निरूपण (हो) तो अभाव नहीं, भाव नहीं अभाव नहीं है ॥
११. युक्ति से सिद्ध नहीं हैं, वस्तु के तौर पर प्रतिभासी सारे धर्म ॥  
भाव ही से न (हैं) परे, सागर प्रतिबिम्ब दर्पण में जिमि ॥

१. भला, ठीक २. वस्तु

१२. द्रन्.मेद्. द्ब्यिङ्गस्. नस्. कुन्. ऽब्बुङ्. वस्. ।  
 रङ्. व्शिन्. जिद्. दु. दुस्. देर्. रिग्. ॥  
 ग्जिस्.मेद्. ग्जिस्. सु. मेद्. मिन्. पस्. ।  
 म. ऽदस्. द्ब्येर्.मेद्. रो.ग्चिग्. ल. ॥
१३. ग्चिग्. तु. ग्शग्. पर्. व्य. बऽङ्. मेद्. ।  
 द्ङ्गस्. म. दे. जिद्. म. ब्स्लद्. पऽि. ६ ॥  
 खो. न. जिद्. क्यिस्. गर्. म. ग्योस्. ।  
 खो. न. जिद्. क्यि. शेस्. प. ल. ॥
१४. ऽजिन्. प. मेद्. दे. डो. बो. ब्रल् ।  
 चिर्. यङ्. मि. ऽजिन्. छोस्. क्यि. स्कु ॥  
 डो. बो. जिद्. ल. द्ब्य. व. मेद् ।  
 ऽजिन्. पऽि. छ. नस्. वर्तग्स्. प. गङ् ॥
१५. स्वये.मेद्. द्ब्यिङ्गस्. क्यि. रङ्. व्शिन्. ल ।  
 सुङ्. दु. ऽज्जुग्. पस्. थ. मि. दद्<sup>७</sup> ॥
- 127a स्प्रो. स्कुर. ब्रल्. वस्. ग्जुग्. मर्. व्शद् ।  
 ग्शल्. यस्. खङ्. दङ्. म्छन्. द्पे. दङ् ॥
१६. स्न. छोग्स्. स्प्रुल्. स्कु. गङ्. स्तोन्. प ।  
 ग्दुल्. व्य. लम्. ल. श्गुस्. पऽि. स्तोब्स् ॥  
 म्दऽ. ब्स्मुन्. दग्. गिस्. गङ्. स्मस्. प ।  
 ऽदि.ल. द्मिग्स्. सु. डुल्. चम्. मेद्<sup>१</sup> ॥
१७. फ्यिन्. चि. लोग्. गि. रुक्ये. बो. ल ।  
 जोन्.मोङ्गस्. युल्. ग्यि. दुग्. ऽय्युर्. ते ॥  
 जि. ल्तर. स्नङ्. बऽि. रिम्. प. यिस् ।  
 द्ब्येर्. मेद्. छुल्. दु. ग्नस्. प. स्ते ॥
१८. ऽोद्. ग्सल्. व. जिद्. नम्. पर्. व्शद् ।  
 रङ्. व्शिन्. मेद्. पऽि. डो.बो. ब्रल् ॥

१२. विस्मृति धातु से सर्वभू (होने) से, स्वभाव ही में काल वहाँ विदित (है) ।  
द्वैत नहीं अद्वैत नहीं, परे नहीं भेद नहीं एकरस में ॥
१३. एक में स्थापनीय नहीं, अच्छा सोई न कलुषित ।  
तत्त्व से लोह ना हिलै, तत्त्व के ज्ञान में ॥
१४. धारणा नहीं सो निःस्वभाव, क्यों ना धारै धर्मकाय ।  
(स्व)भाव में भेद नहीं, धारण-अंश से निरूपित जो ॥
१५. अजात धातु के स्वभाव को, बंधन में उतरने से भेद नहीं ।  
पक्ष प्रेषण विना निजहि कहै, कूटागार औ लक्षण इव<sup>३</sup> ॥
१६. नाना निर्माण-काय जो शास्ता, विनेय मार्ग में आरूढ़ बल ।  
में सरह ने जो कहा, इसमें आलम्बन अणु मात्र नहीं ॥
१७. विपर्यास (वाले) पुरुषको, क्लेश-विष का विष होइ ।  
जिमि प्रतिभास के क्रम से, अभेद स्वरूप में रहै ॥
१८. आभास्वर ही बखानै, निःस्वभाव (है) वस्तुरहित ।



- थ. दद्. म. यिन्. ग्जिस्. सु. मेद् ।  
 खम्स्.<sup>२</sup> ग्सुम्. ब्लो. ऽदस्. ये. शेस्. ल. ॥
१९. ऽदि. शेस्. व्य. वडि. मिङ्. डम्. बर्द ।  
 म्दऽ. ब्स्मुन्. दम्. गिस्. ग्सुङ्. दु. मेद् ॥  
 द्ब्येर्. मेद्. रो. ग्चिग्. म. तौग्स्. न ।  
 ग्जिस्. सु. स्नङ्. बडि. छोस्. नमस्. क्यिस् ॥
२०. गल्. ते. ब्स्कल्. पर्. जेद्. मि. ऽयुर् ।  
 म्छोग्. गि. गो. ऽफङ्. मि.<sup>३</sup> ऽथोब्. स्ते ॥  
 खो. न. जिद्. क्यि. रङ्. ब्शिन्. ल ।  
 द्गग्. दङ्. स्पुब्. प. डङ्. गिस्. ब्रल् ॥
२१. ग्जिस्. मेद्. डङ्. लस्. म. ग्योस्. पस् ।  
 गङ्. ऽदिर्. यिद्. क्यि. ये. शेस्. नि ॥  
 ग्चिग्. क्यङ्. ब्रल्. ब. म. यिन्. नो ।  
 ल्हन्. चिग्. स्वयेस्. गङ्. ब्दे. बडि. रो ॥
२२. ग्युन्. मि. ऽछद्. पडि. ब्दग्. जिद्. दे<sup>४</sup> ।  
 छु. बोडि. ग्युन्. दङ्. नम्. म्खऽ. ब्शिन् ॥  
 मि. ऽयुर्. दुस्. नमस्. कुन्. दु. ग्तस् ।  
 तौग्. पडि. जस्. ब्रङ्ग्. म्छन्. मडि. ब्लोस् ॥
२३. नम्. यङ्. शेस्. प. म. यिन्. नो ।  
 ब्सम्. मेद्. युल्. लं. वर्तगू. तु. मेद् ।  
 युल्. मेद्. ब्स्गोम्. पर्. ग. लस्. ऽयुर् ।  
 ब्स्गोम्. मेद्.<sup>५</sup> जिद्. क्यङ्. योद्. म. यिन् ॥
२४. द्पे. यि. दोन्. ल. गङ्. द्विस्. प ।  
 सङ्ग्. ग्यस्. कुन्. ग्यि. थुग्स्. लऽङ्. म्जम् ॥  
 ब्रो. गर्. ग्लु. दङ्. रोल्. सो. यिस् ।  
 ष्योग्स्. नमस्. कुन्. दु. स्प्र. स्प्रोग्स्. शिङ् ॥

भेद नहीं द्वैत नहीं, तीन भुवन बुद्धि से परे ज्ञान में ॥

१९. इस ज्ञेय का नाम या संकेत, मुझ सरह को कहना नहीं ।  
अभेद एकरस निर्विकल्प तो, द्वैतप्रतिभासी, (है) धर्मों से ॥

२०. यदि कल्प (भर) लाभ न होइ, उत्तम पद ना पावै ।  
तत्त्व के स्वभाव में, बाधन साधन साथ रहित ॥

२१. अद्वय संग से ना काँपै, जो यहाँ मन का ज्ञान ।  
एक भी वियोग नहीं, सहज जो सुख का रस ॥

२२. अविच्छिन्न स्रोत अपने ही सो, नदी-स्रोत औ आकाश जिमि ।  
अविकार सब कालों में रहै, तर्क के अनुसारी निमित्त की बुद्धि से ॥

२३. कदापि ज्ञात नहीं, अचिन्त विषय में तर्क नहीं ।  
विषय-रहित भावना कहाँ से होइ, अभावना भी है नहीं ॥

२४. उपमा के अर्थ जो पूछै, सर्व बुद्ध के चित्त में भी समान ।  
नट नाटक गीत औ वाद्य से, सब दिशाओं में निर्वोष (करै) ॥

२५. नल्. ऽब्योर्.मस्. नि. ग्योन्.नस्. ब्स्कोर् ।  
 द्मिगस्. ग्तङ्. ब्रल्.बऽि. रङ्.ब्रशिन्. ग्यिस् ॥  
 ऽवद्.प.मेद्. पर्. कुन्.दु. स्प्यद् ।  
 ग्जिस्.सु. स्तङ्.बऽि. तोर्. प. थम्स्. चद्. ब्चोम्. ग्युर्.नस् ॥  
 ब्जर्.दि. मेद्. नम्. मेद्. ऽन्नस्. वु. थोब्. ऽग्युर्. शोर् ।

नल्. ऽब्योद्. क्यि. द्बङ्. पयुग्. छेन्. पो. ब्पल्. स. र. हऽि. शल्. नस्. ग्स्.ङ्ग. प,  
 पयुग्.ग्यं.छेन्.पो. दे.खो.न.ञिद्. चं.मो. दो. हऽि. ग्लु. शस्. व्य. ब. जर्.गिस्. सो ॥  
 कृष्णपण्डितस्. रङ्. ऽग्युर्. दु. म्जद्. पऽो ॥

२५. योगिनी बायें से घूमै, ग्रहण-त्याग विनु स्वभाव से ।  
प्रयास विना सर्वत्र आचरै, द्वैत प्रतिभासी सब कल्पना मर्दित (होने)से ॥  
अवाच्य अप्रकार फल प्राप्त होइ ।

॥ इति महायोगीश्वर श्री सरह के श्रीमुख से भाषित 'महामुद्रातत्त्वोपदेशशिखर'  
दोहागीति समाप्त ॥

कृष्ण पण्डित द्वारा स्वयं अनुवादित ।



## १३. वसन्ततिलक दोहागीति (भोट और हिन्दी)

# १३. दृष्यिद्. किय. थिग्. ले. दो. ह. म्जोद. किय. ग्लु\*

(भोट)

दपल्. हे. रु. क. ल. फ्यग्. ऽछल्. लो ॥

१. सो. भु. स्कु. ग्सुम्. ल. सोग्स. किय ।  
सोस्. कडि. मे. तोग्. म्थोङ्. व. यि ॥  
ग्शोन्. नु. ब्दग्. २ नि. म्योस्. पर्. ऽय्युर् ।  
हे. रु. क. ल. छग्स्. प. यिस् ॥
२. सोस्. कडि. दङ्. पो. दङ्. ऽदिर्. (न) ।  
व्योद्. कियस्. ब्दग्. नि. ब्सुङ्. बर्. म्जोद् ॥  
ग्दुङ्. वस्. ऽगुम् पर्. म. म्जद्. चिग् ।  
मे. तोग्. अं. भ. क. रु. ण. ॥
३. द्वि. ब्सुङ्. ल्दन्. पस्. द्ग्येस्. पर्. ऽय्युर् ।  
श. रिस्. पस्. नि. ब्दुङ्स्. पस्. ब्दुङ्स् ॥  
मे. मर्. खूर्. नस्. च. णड. ली. ।  
रि. मो. ब्दग्. ल. बव्. बो. शेस् ॥
४. क. न. प. नि. ग्शेग्स्. पर्. रे ।  
सो. गडि. दङ्. पो. दृष्यिद्. दुस्. ल ॥  
व्योद्. कियस्. ब्दग्. नि. ब्सुङ्. बर्. म्जोद् ।  
ग्दुङ्. वस्. ऽगुम्. पर्. म. म्जद्. चिग् ॥

\* स्तन्. ऽय्युर्. भुद्, छि, पृष्ठ ५ ख २-६

# १३. वसन्ततिलक दौहागीति

(हिन्दी)

नमः श्रीहेरुकाय ।

१. सेभू त्रिकाय इत्यादि ग्रीष्म पुष्प देखनेवाला ।  
तरुण पति मस्त होइ, हेरुक के राग से ॥
  
२. ग्रीष्म में पहिले यहाँ, तू अपने को रक्षित कर ।  
दाह से च्युति ना कर, पुष्प अंभ करुणा ॥
  
३. प्रश्नभाणक मुदित होइ, सर्षप-कुटान कुटाया ।  
आग घी ढो कर, चंडाली, चित्र पति में उतरी इति ॥
  
४. कँपा गया, ग्रीष्म के पहिले वसन्त काल में ।  
तू अपने को रक्षा कर, दाह से च्युति ना कर ॥



५. फयोग्स्. ब्चुर. ब्ल्तस्. न. ब्दग्.गिस्. नि ।  
 ख्योद्.लस्. ग्शन्. नि. म्थोङ्क.ब. मेद् ॥  
 ग्दुङ्क. ५ बडि. मो. यिस्. ब्दग्.गिस्. नि ।  
 ब्दग्.गि. लुस्. क्यङ्क. ब्सम्. प. मेद् ॥

६. नैल्.ऽव्योर्.म. बर्ग्यद्. लस्. ब्शि. नि ।  
 ब्दग्. चग्. ग्सोल्.ब. ब्त्तब्.प.यिस् ॥  
 ब्चोम्. ल्दन्. ऽदस्. नि. ब्शङ्कस्. पर्. म्जोद् ।

इत्थिद्. किय. थिग्. ले. दो. ह. म्जोद्. किय.ग्लु. शेस्. ब्य. ब. स्लोब्. द्पोन्. नग्. पो.  
 नस्. ब्ग्.युद्. प. स्लोब्. द्पोन्. त. र. हस्. ५ म्जद्. प. जोग्स्. सो ॥

-----

५. दश दिशि देखे अपने ही, तुझसे अन्य दीखै नहीं ।  
दाहिका ने अपने ही, स्वकाया की भी चिन्ता नहीं ॥

६. आठ योगिनियों में से चार, हमने प्रार्थना की,  
भगवान् उत्थान करो ॥

॥ इति आचार्य कृष्ण-परंपरा से 'वसन्ततिलक' दोहाकोशगीति आचार्य सरह कृत समाप्त ॥

---



१४. महामुद्रोपदेश वज्रगुह्यगीति  
(भोट और हिन्दी)

# १४. फ्यग्. ग्यञ्. छेन्. पोडि. मन्. डग्. दी. जैडि ग्लु\*

(भोट)

बचोम्. ल्दन्. ° ऽदस्. शोस्. रब्. क्वि. फ. रोल्. दु. फियन्. प. ल. फ्यग्. ऽछल्. लो ।

१. क्ये. हो. ग्यल्. पोडि. रिग्स्. ग्युद्. बु. यिस्. ऽजिन्. ऽयुर्. ग्यि ।  
गसेर्. ऽयुर्. चि. यि. रिग्. ब्येद्. ऽछद्. गिस्. तौग्स् ॥  
ग्यै. म्छोडि. लम्. ग्युस्. रिग्. ल्दन्. देद्. दपोन्. म्खस् ।  
छि. स्त्रान्. मिग्. गिस्. नोर्. ° बुडि. नुस्. प. ल्त ॥

२. रि. लु. ग्रुब्. पस्. ब्रम्. सौडि. ब्य. ब. जौग्स् ।  
गङ्गस्. लस्. बब्. पडि. छु. ल. द्वि. म. मेद् ।  
मु. द्र. लस्. व्तोन्. गस्. गुस्. नैम्स्. थ. मि. दद् ।  
गसेर्. ल. द्ङुल्. ग्यि. र. मेद्. स. ले. स्त्रम् ॥

३. म्खन्. ब्से. म. ब्यस्. ब्से. रु. ग्शग्स्. पडि. गस्. गुस् ।  
जिङ्गस्. क्वि. थग्. प. ° लु. गु. ग्युद्. दु. स्त्रल् ॥  
म. ग. ध. प. द्कोर्. म्जोद्. बु. ल. ऽवोग्स् ।  
म्दऽ. व्दग्. छिग्. ल. ब्चुन्. मो. स्रु. मि. ग्यो ॥

४. म्छङ्. शोस्. द्क्ऽ. ब. म. यिन्. स्म्यु. मडि. ऽफ्रुल् ।  
स्त्रद्. गौद्. ऽथुङ्गस्. पडि. नुस्. पस्. युन्. मि. थोग्स् ॥  
क. ऽजि. मि. द्गोस्. रङ्गिस्. ब्सग्स्. पडि. गसेर् ।  
द्मुस्. लोङ्. मिग्. ° फ्ये. युल्. नैम्स्. रङ्ग. डोस्. सिन् ॥

\* स्तन्. ग्युर्. ग्युद्. छि, पृष्ठ ५५ क ७-६२ क ५

# १४. महामुद्रोपदेश वज्रगीति

(हिन्दी)

नमो भगवत्यै प्रज्ञापारमितायै ।

१. अहो राजवंशि ऋ पुत्र से गृहीत, सुवर्णभूत औषधि-वेद अन्तर ममज्ञै ।  
सागरपथ पता जानै सार्थदाह चतुर, ।  
दश-सहस्र-कलनेत्र से मणिसामर्थ्य जिमि ।
२. गुटिका-सिद्ध ब्राह्मण की क्रिया समाप्त. हिम-स्रवित जल में मल नहीं ।  
मुद्रा से निर्गत रूपों का भेद नहीं, सोने में रजत का छाग नहीं सुवर्णपिंड ॥
३. पंडित-ग्रास न हुआ गैंडे का पाटित रूप,  
वापी की रज्जु मेष-सन्तान में सर्प ।  
मागध धनकोश बाल ऋका प्रावरण<sup>३</sup>, वाणपति शब्द में रानी कोण न चलै ॥
४. ब्रह्मज्ञान कठिन है ना माया, मधुमत्त पान में समर्थ काल (है) अव्याहत ।  
पट न चाहिए अपना संचित सुवर्ण,  
जन्मांध नेत्र के बाहर विषयों को गहै निज पास ॥

५. रिन्. छेन्. ग्सेर्. ग्यि. स्कुद्. प. खब्. शुल्. ऽग्रिम् ।  
 गिलङ्. लस्. स्क्योल्. बडि. देद्. द्पोन्. थे. छोम्. ब्रल् ॥  
 द्रङ्. स्रोङ्. गिस्. नि. ग्सो. रिग्. म्छद्. न्मस्. गो ।  
 र्ल. ब. म्थोङ्. बडि. रि. बोङ्. स्ञोम्स्. लस् श्रोल् ॥
६. लम्. नोर्. डो. शेस्. दे. दुस्. ग्जिद्. दु. ल्दोग् ।  
 ग. बुर. नुस्. प. छद्. पडि. स्तेङ्. दु. र्ग्युग् ॥  
 नोर्. बु. लुस्. ल. ब्तग्स्. न. ऽदु. व. ऽव्युङ् ।  
 ल्तो. श्रोस्. द्वि. छोर्. म्तिग्. ल. ऽन्नोस् ॥
७. फ्युग्स्. ब्दग्. म्थोङ्. बस्. उ. म्चोद्. प. न. ब्क्रोल् ।  
 मं. ब्यडि. फ्रु. गु. दङ्. पोडि. छङ्. मि. ऽदोद् ॥  
 देद्. द्पोन्. गिलङ्. लोन्. नोर्. ल. शे. मि. ग्दुङ् ।  
 ऽडं. ड. बोडि. ब्चे. ग्दुङ्. श्रोग्स्. क्यिस्. ब्स्लुस्. छे. शिग् ॥
८. डल्. बर्. मि. ऽदुग्. ग्सेर्. छोन्. ज्द. पडि. मि ।  
 देद्. द्पोन्. गन्. पोडि. गिलङ्. दोन्. ग्शन्. ग्यिस्. फ्येद् ॥  
 सुर्. म. मिग्. नस्. ब्तोन्. पडि. जग्. थग्. म्ञोन् ।  
 बं. लस्. ऽव्योल्. बडि. शु. प. यन्. लग्. ब्रेल् ॥
९. नोर्. बुडि. ऽोद्. ल. लुद्. गिस्. ग्नोद्. मि. ऽग्युर् ।  
 नग्स्. ल. ग्नस्. पडि. ग्लङ्. पो. रङ्. द्बङ्. थोब् ॥  
 ऽछि. बडि. दुस्. देर्. र्ग्यल्. स्त्रिद्. चुङ्. शिग्. बय् ।  
 ग्दन्. सेर्. ब्युङ्. बडि. ल्ह. स्रस्. र्ग्यल्. स. थोब् ॥
१०. द्वि. म. दग्. पडि. ग्सेर्. बुम्. गङ्. न. म्जस् ।  
 खोङ्. ग्सेर्. ब्रल्. बडि. देद्. द्पोन्. ल. ल्तोस्. दङ् ॥  
 गर्. छद्. ऽथुङ्स्. पडि. ग्यद्. क्यि. यङ्. स्तोर्. ब ।  
 लेम्. सेम्स्. मि. स्क्ये. र्ग्यल्. डो. शेस्. पडि. मि ॥
- 56b११. दद्. प. क्येन्. ग्यिस्. ब्स्कुल्. बु. शिडि. म ।  
 द्वि. मोन्. नङ्. दु. ग्सेर्. स्प्रोग्. चि. शिग्. व्य ॥

५. महार्घ सुवर्णमूत्र सूई के छिद्र में पिरो, द्वीप से चलित सार्थवाह सन्देहरहित ।  
ऋषि कुटिल चिकित्सा विद्या जानें, चन्द्र में दीखता शश अतुल ॥
६. भूले मार्ग का परिचित उसी समय लौटै, कपूरकी सामर्थ्य ज्वर के ऊपर दौड़ै, ।  
मणि काया पर फेंके तो धुआँ उपजै, भक्षित कंटक गंध की ओर दौड़ै ॥
७. पुशुपति के देखने से उमा विवाद रोपै, मयूरशावक प्रथम मद्य ना चाहै ।  
सार्थवाह द्वीप के धन की आसक्ति से अपीडित ।  
पूर्व दया पीड़ित साथी से बंचन काले लुप्त ॥
८. थका नहीं सुवर्णवर्ण लाभी पुरुष,  
बूढ़े सार्थवाह के द्वीप के अर्थ अन्य ने आधा (किया) ।  
मृदु कटाक्ष से निर्गत एक रस्सी कोमल, तटसे भागते नाविक के अंगको बांधै ॥
९. मणिप्रभा पवन से बाधित ना होइ, वन का वासी गज स्वच्छंदता पावै ।  
मरणकाले तंह राज्य अल्प करै, पीठभूमि उत्पन्न देवपुत्र राजधानी पावै ॥
१०. शुद्ध सुगंधी सुवर्णकलश जहँ सोहै,  
औ सो सुवर्णहीन सार्थवाह को दीखै ।  
नृत्य मद्यपान के ओज में पुनः भ्रमै,  
अजात पत्र चित्त राजपरिचित पुरुष ॥
११. श्रद्धा कारण प्रेरित मृत-पुत्र की मां,  
राजकिरात<sup>१</sup> के भीतर सुवर्ण घोषणा कैसे करै ।

१. शिख.मोन् = सिंहासनीय किरात



- गृसिङ्गस्. किय. स्तेङ्. दु. देद्. दपोन्. मिग्. वस्. गृचेस् ।  
 ग्लिङ्ग. लस्. बूलङ्गस्. पडि. नोर्. बु. गृचेस्. स्प्रस्. थोब् ॥
१२. गृसिङ्गस्. किय. वसो. छर्. देद्.दपोन्. शोल्.मि. थेब्स्. ।  
 छ. ग्रङ्. गृञ्जिस्.क. सेल्. व. सेङ्.गेडि. स्कु ॥  
 बस्ड. व्तुङ्. मि. द्रन्. द्गुन्.<sup>१</sup> छु. ऽथुङ्गम्. पडि. स्प्रुल् ।  
 सो. व्तङ्. बुम्. पर्. गृसेर्. गिय. स्नोद्. क्यङ्. व्तुब् ॥
१३. रि. ब्रगस्. बर्. गिय. सेङ्. गे. स्.ल. मि. स्जाग् ।  
 ह्यु. म्छोग्. थोङ्. म्खन्. शिङ्. गि. म्थड. मि. म्थोङ् ॥  
 गृञ्जिग्. पुर्. गृन्स्. पडि. बसे.रु. स्दुग्. बस्ङल्. ब्रल् ।  
 द्रङ्. स्रोङ्. र्ग्यल्. म्छन्. म्गोन्. वस्तुङ्. स्वोम्.प. मेद् ॥
१४. ऽग्रो. बर्. म्छद्. ग्लिङ्ग.<sup>२</sup> लस्. बोद्. प. मि. ऽग्युर् ।  
 ञोङ्. ल. बर्चे. बडि. स्प्रेडु. सिञ्जङ्. रे. जे ॥  
 ऽदव्. गृशोग्. र्ग्यस्.पडि. फु.गु. नद्. नस्. ऽफुर् ।  
 स्क्युग्. नद्.चन्. देस्. सस्. किय. ऽखि. व. छोद् ॥
१५. रब्. पु. ब्युङ्. छे. द्मन्. प. ऽदोर् ।  
 रि. दगस्. नद्. प. ह्यु. नस्. ऽगर्. न. ब्दे ॥  
 रिगस्.ङन्. बु.मोस्. ऽजे. सोग्. स्पङ्गस्. नस्. ऽदुग् ।  
 दुर. स्रुङ्. मि. ल. म्जड. बोस्. चि. शिग्.<sup>३</sup> ब्य ॥
१६. रब्. शुब्. म. बृचस्. दपड. बोस्. ग्युल्. मि. ल्दोग् ।  
 ल्जोन्. शिङ्. ग्रिब्. ल. दुब्. पडि. सेम्स्. डल्. सोस् ॥  
 र्ग्यन्. गियस्. स्प्रस्.पडि. बृचुन्. मोस्. गृशन्. यिद्. ऽफ्रोग् ।  
 ऽदोद्. द्गुडि. ऽब्युङ्. गृन्स्. रिन्. छेन्. गृतेर्. गिय. स्प्रोम् ॥
१७. थबस्. ल. मि. रे. ऽव. ल. ऽवर्. बडि. नद् ।  
 दपोन्. ल. मि. बर्तेन्. रिग्. ब्येद्.<sup>४</sup> छर्. बडि. मि ॥  
 रङ्. गि. म्थेब्. म्जुब्. गृशन्. गिय. लग्. प. मिन् ।  
 गर्. थङ्. ब्दे. व. लङ्. छो. र्ग्यस्. पडि. लुस् ॥

पोत के ऊपर सार्थवाह नेत्र-प्रिय,

द्वीप से उठी प्रिय उज्ज्वल मणि पावै ॥

१२. पोत निर्माण समाप्त सार्थवाह फलक न गिरै,

शीत-उष्ण दोनों नाशक सिंह-काया ।

खान-पान विस्मृत हेमन्त-जल-पायी सर्प,

दांत लगा कलश के सुवर्ण-पात्र को भी काटै ॥

१३. शैल के सिंहचन्द्र ना बाध, वृषभ देखे क्षेत्र का अन्त न देखै ।

अकेले बैठा गैडा निर्द्वन्द, ऋषिध्वज नाथ राखै ना बंधै ॥

१४. गमन टूटा द्वीप से ना पुकार, कंपन में अनुकंपा वानर की करुणा ।

महा पक्ष बच्चा रोग से उडै, वमन-रोगी भोजन कर खाट कटावै ॥

१५. प्रभव काले हीन त्यक्त, रोगी मृग बैल से नाचै सुखी ।

कुजाति कन्या नाच छोड बैठी.

श्मशान-रक्षक पुरुष को प्रिय से वया करना ॥

१६. बहु निन्दा सहित वीर युद्ध से ना फिरै,

वृक्षछाया थके का चित्त-श्रम हरै ।

अलंकृत रानी दूसरे का हृदय हरै,

नौ कामनाओं की आकर रत्ननिधि-मंजूषा ॥

१७. चूल्हे को अग्नि-ज्वाला जलने की व्याधि,

स्वामीको अनाश्रित वेद समाप्त पुरुष ।

अपनी तर्जनी दूसरेके हाथ में नहीं,

जहां भी सुख फुल्ल तरुण शरीर ॥

१८. म्थोङ्क.वस्. छोग्.प. चि. म्छोग्. ग्सेर्. ऽग्युर्. व्सो ।  
 ख्यिम्. मि. द्गऽ. व. वु. मोऽि. ब्लो. मि. ऽफोग्स् ॥  
 उ. ग्ंयन्. दुर्. ख्रोद्. स्निन्.मो. ख्रोस्. पऽि. स ।  
 थुब्. पऽि. व्शग्स्. स. मि. तुब्. दो. जेऽि.<sup>५</sup> ग्दन् ॥
१९. द्गोस्. पऽि. क्येन्. छोग्स्. क. लिङ्क. कऽि. ग्न्स् ।  
 र्ग्ये. म्छोऽि. वस्. म्थर्. स्त्रल्. ग्यि. दुग्. मि. ऽव्युङ्क ॥  
 रिन्. छेन्. जोद्. ल. ऽजिग्स्. पऽि. यङ्क. नि. ब्रल् ।  
 ग्यो. स्ग्यु. स्पङ्कस्. प. म. ग. घ. पऽि. मि ॥
२०. स्म्र.वर्. मि. फोद्. व्चुन्. मो. व्स्तोल्. ग्यि. म्छङ्क ।  
 ग्दिङ्क. ल. डर्. थोग्स्. ग्चन्. ग्सन्. सेङ्क. गेऽि. वु ॥  
 थुर्. ग्शोल्. लम्. दु.शिङ्क. तं. ऽग्रो. वर्. व्चोन् ।  
 मे. ल. च्चेऽि. वर्. मेद्. वु. ग्चिग्. फ. यि. म ॥
२१. र्ग्ये.म्छोऽि. लम्. बर्ग्यग्स्. देद्.दपोन्. जम्स्. ल. द्विस् ।  
 ग्सो. रस्. छर्. व्सुङ्क. गिलङ्क. लोन्. खोम्. पर्. ग्चोस् ॥
- 57a. ग्सिङ्कस्. क्यि. छ. क्येन्. देद्. दपोन्. खो. छग्स्. ब्येद् ।  
 युल्. ग्यि. ऽख्रि. व. जग्.<sup>६</sup> थग्. व्चद्. दुस्. शिग् ॥
२२. ऽदोद्. पऽि. लुङ्क. व्युङ्क. देद्.दपोन्. बलो. सेम्स्. व्दे ।  
 ग्लिङ्क. दोन्. म. प्रुब्. देद्.दपोन्. फियर्. मि. ल्दोग् ॥  
 ऽग्युर्. व. मेद्. प. र्ग्यल्. पोस्. ग्सुङ्कस्. पऽि. छिग् ।  
 स्त्रङ्क. छङ्क. ज्वेब्स्. दुस्. यिद्. ल. गो. छ. ब्येद् ॥
२३. गर्. छङ्क. बलुङ्क. पो. ऽछम्. पऽि. तंग्स् ।  
 मिग्.<sup>७</sup> ग्सेर्. म्थोङ्क. वऽि. लस्. मिस. व्दे. स्दुग्. स्पङ्कस् ॥  
 दर्. ग्यि. स्निन्. वु. ख. छ. सग्स्. पस्. फुङ्क ।  
 दे. नि. ग्शन्.ग्यिस्. म. लन्. रङ्क.लस्. स्क्येस् ॥
२४. छङ्क. ल. जेस्. स्क्योन्. योद्. पद्. म. यिन्. नो ।  
 म. रिग्. स्तोब्स्. क्यिस्. ख. छु. मङ्क. दु. स्क्युग् ॥

१८. देखने से पर्याप्त उत्तम-श्रीषधं सुवर्णं शिल्प,  
घरमें अप्रसन्न लड़की की बुद्धि ना हरै ।  
ओडियान श्मशान राक्षसी की क्रोधभूमि,  
मुनिका निवास वज्रासन न अस्त (होइ) ॥
१९. प्रयोजन प्रत्यय-समूह कलिंग स्थान,  
सागर के छोर पर सर्प-विष ना उपजे ।  
रत्नदुर्ग में भी निर्भय,  
वलात्कार-त्याग मागध मानुष ॥
२०. कहने में ना उत्सहै रानी वक्र गति,  
आस्तरण में मृणालधारी श्वापद सिंह-शिशु ।  
निम्न-उन्नत मार्गें रथ गमन प्रयास,  
अग्नि-शिखा निरन्तर एकपुत्र पिता माता ॥
२१. सागर मार्ग मत्त सार्थवाह विनाश पूछै,  
उपल-वर्षा रक्षक द्वीप-गामी क्षण प्रिय ।  
पोत अंश हेतु सार्थवाह सो पादुका करै,  
विषय दीवा पीठ-रज्जु छेदते समय नष्ट ॥
२२. कामवायु होइ सार्थवाह बुद्धि चिन्तै सुख,  
द्वीप-अर्थ ना साधि सार्थवाह वाहर ना लौटे ।  
ना बदलै राजा की कही बात,  
मधुमद्य आवेश के समय मन का कवच बनै ॥
२३. नृत्य मद्य गायन नृत्य-चिह्न,  
कामला-दृष्टि कर्मी सुखदुख छाड़ै ।  
रेशमकीट की च्युत-राल की राशि,  
सो अन्य से ना ले अपने उपजावै ॥
२४. मद्य में दोष पाप है नहीं,  
अविद्या बश थूक बहुत बमन करै ।

- रङ्. जिद्. फुङ्. बर्. बस्. क्रियस्. ग्शन्. दु. मिन् ।  
 ल्चगस्. खेग्.<sup>३</sup> म. ग्शि. मे. छोग्स्. म. ब्स्वयेद् ॥
२५. व्यर्. चि. डो. शेस्. छेद्. दु. च्. व. ग्लेन् ।  
 स्मिग्. र्ग्यु. छुर्. म्थोङ्. रि. दग्स्. स्त्रिङ्. रे. जे ॥  
 थिग्. ले. म. यल्. र्ग्यु. खोल्. दल्. मि. ऽय्युर् ।  
 बेर्. क. गर्जिस्. फोग्. मि. दे. चि. रु. रुङ् ॥
२६. गृतेर्. ग्यि. ब्दग्. पो. मि. रे. रिग्स्. डन्. बु ।  
 दुद्. पस्. मि. ऽजिग्स्. चि. मेद्. स्त्रङ्.मडि.<sup>३</sup> छङ् ॥  
 ऽछि. ब्दग्. ख. रु. म्छुङ्. स्वये. ऽप्रो. व. गङ् ।  
 लुस्. ल. ऽब्युङ्. व. म. ऽरुग्स्. दो. जे. यि. मि ॥
२७. मिङ्. नस्. बोस्. पस्. शि. व. ल्दोग्. गम्. चि. ।  
 म्थोङ्. स्तङ्. द्ग्र. रु. रेद्. प. दुग्. स्त्रुल्. मिग् ॥  
 ख्योद्. ल. शिङ्. लोस्. ग्नोद्. प. स्वयल्. व. मेद् ।  
 ब्रग्. चडि. स्प्र. ल. बुस्. प. व्स्तन्. स्दुग्. चिस् ॥
२८. मि. लम्. गृतेर्.<sup>४</sup> जेद्. सद्. छे. म्य.डन्. व्येद् ।  
 ग्योद्. खेङ्स्. लङ्स्. पडि. स्प्यद्. कि. र. ल. र्मुग्स् ॥  
 वग्स्. पडि. रिग्स्. चन्. द्ग्र. ल. बु. रु. ल्त ।  
 ग्नोद्. प. स्वयल्. दुस्. स्लर्. ल. ग्चेस्. पर्. ऽजिन् ॥
२९. फन्. लेन्. म. ब्तग्स्. स्वये.ऽप्रो.र्नम्स्.क्रियस्. मेद् ।  
 ख्यि. ख्रोस्. दो. ल. ऽछऽ. व. स्त्रिङ्. जेडि. युल् ॥  
 च्.व. मे. रुम्. दु. बस्. दुस्.<sup>५</sup> दु. व. ऽछद् ।  
 म्थोङ्. स्तङ्. लोग्. पडि. रि. दग्स्. ब्दे. व. स्तोर् ॥
३०. लुस्. ल. रङ्. द्वङ्. म. थोव्. स्दुग्. ब्स्डल्. वर्तेन् ।  
 छे. म्थऽ. रिङ्.पस्. फुङ्.व. द्म्यल्. बडि. लुस् ॥  
 ऽदि. ल. ब्दे. बडि. बर्. म्छम्स्. ऽदुग्. गस्. चि ।  
 स. बोन्. म. रुल्. न्य. प्रो. लो. ऽत्रस्. र्ग्यु ॥

- स्वयं ही राशि अतिथि अन्यत्र नहीं,  
लोहा तप्त भूमि आधार अग्निसमूह ना उपजावै ॥
२५. क्रिया औषधि परिचय हेतु खेलै अन्न,  
मृग मायाजाल देखि अहो करुण ।  
तिलक ना बड़ी शाखा मन्थर दास न होइ,  
दो लाठी पातै सो आदमी क्यों उचित ।
२६. निधि-पति मानुष कुजाति-पुत्र,  
धूप से ना डरै औषध बिना मधु-मदिरा ।  
यम-मुख से समुत्पन्न जो, देह जन्मा मिवाय डरै बज्र-पुरुष ॥
२७. नाम पुकारे (से) मृत लौटे क्या,  
दृष्टि प्रतिभासी रिपु में है बैठी सर्प-चक्षु ।  
तुझे पत्र से बाधा प्लवन में नहीं,  
प्रतिध्वनि-शब्द फूंक दिखावे प्रिय औषध ॥
२८. स्वप्न में निधि लहि जागते समय शोक करै,  
शठता मद से उठि सियार बकरे को काटै ।  
आर्य रिपु को पुत्र (सा) देखै,  
बाधा दीर्घ-काल में पुनः (वि-)चित्र धरै ॥
२९. हित-ग्रहण अलख ना जगवालों से,  
क्रुद्ध कुक्कुर पत्थरको काटे(अहो) करुण विषय ।  
तृण को अग्नि बीच मारते समय धुआँ फूटै,  
मिथ्या-दृष्टि प्रतिभा से मृग सुख से भ्रमै ॥
३०. शरीर को स्वच्छन्द न पा दुख आलंबै,  
दीर्घ-जीवन-अन्त से व्यर्थ नरक शरीर ।  
यहाँ सुख के भीतर सीमा हो तो क्या,  
बीज बिना सड़े वट के फल का कारण ॥

३१. देद्.दपोन्. स्विङ्ग. खग्. ऽथुङ्गस्.प. स्कल्.बर्.ल्दन् ।  
 थिग्स्. प. ब्स्गस्. पडि. र्ग्यं.म्लो. डो.म्लर्. छे ॥  
 नम्.मखऽ. म्थोङ्.बस्. द्बिङ्गस्.किय. फ्योग्स्. ऽजिन्. शि ग् ।  
 युद्. चम्. म्थुद्.पस्. ब्स्कल्. (प.) ऽजद्. पर्. ल्तोस् ॥
३२. र्ग्यस्.स्कुद्. लम्. स्न. ऽखिद्. प. फग्.र्गोद्. स्फु ।  
 खि. स्चान्. पग्स्.प. म.गोन्. द्रङ्.सोङ्. मिन् ॥  
 57b घ्रु.ब. प. यन्. लग्.° ब्रेल्. व. रङ्. गि. छेद् ।  
 दब्.ग्शोग्. र्ग्यस्.छे. छङ्. न. दुग्. क्यङ्. म्खऽ ॥
३३. यिद्.ब्रिन्.नोर्.बुडि. द्गोस्. प. गङ्. यिन्. ल्तोस् ।  
 मे. तोग्. लस्. व्युङ्. स्गङ्. बु. दुस्. सु. स्मिन् ॥  
 बुम्. प. ब्स्ङ्. प. द्गोस्. ऽदोद्. ऽव्युङ्. बडि. स्तोद् ।  
 मर्. गिय. ग्यु.नि. ऽो. म. यिन्.पर्. डेस् ॥
३४. ज्जोद्.पर्. मि. ऽयुर. सेर्. पो. दोर्. बडि. ग्सेर् ।  
 जि. मडि. सेर्. गियस्. मुन्. पडि. ग्य. रुम्. ऽजोम्स् ॥  
 ग्सेर्. दु. स्नङ्. बडि. द्ङुल्. छु. ग्शान्. दु. मिन् ।  
 छु. ल. छु. ब्रग्. थ. दद्. मि. स्नङ्. डो ॥
३५. मर्. ल. मर्. ब्रग्. दे. च्शिन्. जिद्. दु. बस् ।  
 म्थऽ. थन्. न. र. ग्जिस्. सु. गङ्. गिस्. ऽव्येद् ॥  
 र्ग्यं. म्लोडि. लङ्गस्. प. सिप्रन्. गिय. डो. बोर्. ग्चिग् ।  
 म्खऽ.² ल. ल्चग्स्. द्ब्युग्.शुल्. ल. ख्यद्.पर्. मेद् ॥
३६. चि. लेन्. प. यि. स्त्रङ्. म. ल. ल्तोस्. दङ् ।  
 ग्लङ्. पोडि. र्ग्यं. खल्. शोग्. मडि. ल्तो. रुं. ऽजद् ॥  
 र्ग्यल्. पोडि. स्कु. द्वि. मस्. गङ्. छे. ऽगोस्. ऽगोस् ।  
 फ. रब्. डुल्. गिय. नुस्. प. डो. म्लर्. छे ॥
३७. म्खस्.पडि. ब्सो. नि. रिम्. प. ब्रिन्. दु. छर् ।  
 थब्स्. ल्दन्. शिङ्. प.³ रिग्स्. स्नङ्. म्लु. रु. ब्रिङ् ॥

३१. सार्थवाह हृदय-रक्त पीवै भाग्यवान्,  
विन्दु से संचित सागर महाश्चर्य ।  
आकाश देखि स्वर-धातु-दिशा पकड़,  
क्षण मात्र कटे से कल्प-समाप्ति देख ॥
३२. कारण-सूत्रमार्ग ना क पकड़ना शूकर-रोमांच,  
मृदु आस्तरण चर्म ना पहिने ऋषि नहीं ।  
नाविक अंग-संबंध स्वयं हेतु,  
बहु पत्रछद्म समय पंक्ति में रहै आकाश ।
३३. चिन्तामणि चाहै जो (उसे)  
देख, फूल से उत्पन्न वाल समय पके ।  
भद्रघट प्रयोजन की इच्छा से उत्पन्न पात्र,  
घीका का कारण दूध है निश्चय ॥
३४. लाभ न होवै पीत त्यक्त सुवर्ण,  
सूर्यकिरण तमपुंज नाशै ।  
सुवर्ण दीखना पारद अन्यत्र,  
जल में जलफेन भिन्न ना दीखै ॥
३५. घी में घृत-फेन तैसे ही अतिथि, अन्त ग्राह(अन्.) उचित जो द्वैत करै ।  
सागर-वाष्प मेघ का एक (स्व-)भाव,  
आकाश लौहदंड मार्ग में निर्विशेष ॥
३६. औषध लेनेवाली (मधु-)मक्खी को देख औ,  
गज पीठ पलान में चींटी का पेट समाप्त\* ।  
राजा के शरीर को गंध जब चाहिये,  
परमाणु रेणु की शक्ति महा अद्भुत ॥
३७. चतुर का शिल्प (कर्म) यथाक्रम समापै,  
उपाययुक्त किसान कुलभासी चंचुओठ में बंटै ।



- ख्योद्. क्यिस्. युर्. ब. ऽगग्स्. प. फ्यर्. सोल्. चिग् ।  
दुस्. पडि. खम्. शिङ्. ऽज्जस्. बु. ल. ल्तोस्. दङ् ॥
३८. चन्दन्. स्दोङ्. बो. स्पुल्. ग्यि. स्क्वब्स्. ग्नस्. स ।  
छु. थिग्स्. र्ग्यं. म्छोर्. बोर्. ब. स्कम्. मि. ऽग्युर् ॥  
र्ग्यन्. नंम्स्. ऽव्युङ्. ब. श्रुन्. स्व्यङ्स्. छर्. पडि. ग्सेर् ।  
बु. छिस्.<sup>४</sup> मि. द्रन्. र्ग्यं. म्छोडि. ग्यु. शिग्. मि ॥
३९. स्प्र. मि. स्जान्. प. नोर्. ल. शि. मि. ग्दुङ् ।  
गलिङ्. दोन्. मिग्. ज्ञोर्. देद्. द्पोन्. चि. रु. रुङ् ॥  
सु. शिग्. ब्दे. ऽदोद्. र्ग्यब्. क्यि. खुर्. छ. बोर् ।  
द्मुस्. लोङ्. फ्ये. बडि. मि. ल. द्विन्. ब्सो. रिग्स् ॥
४०. बं. ऽखोर्. फ्योग्स्. नस्. ब्स्लोग्. पडि. देद्. द्पोन्. ब्कुर् ।  
मुन्. रुम्. नङ्. दु. म्खऽ. ल. स्. ल. ब. ग्च्स् ॥  
ऽदम्. नस्. ऽदोन्. पडि. मि. ल. सु. शिग्. गौल् ।  
गलिङ्. बलन्. देद्. द्पोन्. सिप्य. बोर्. लोङ्. शिग्. दङ् ॥
४१. शर्. नस्. न. बुन्. उत्पल्. छु. ल. मेद् ।  
थद्. कर्. मि. ग्नस्. म्खऽ. ल. शर्. बडि. ऽजऽ ॥  
डिङ्. गि. छु. नि. फिग्. पर्. ग्युर्. छे. ऽजद्. ।  
छुनि. थुर्. ग्शोल्. ग्येन्. ल. ब्स्लोग्. मि.<sup>६</sup> ऽग्युर् ॥
४२. शो. दोन्. मि. म्जद्. थुब्. प. चि. फ्यर्. ऽदऽ ।  
स्मिग्. र्थुडि. क्लुङ्. ल. छु. यि. ऽदु. शेस्. बोर् ॥  
ब्देन्. प. म. यिन्. मि. लम्. ग्तेर्. जौद्. दुस् ।  
ऽख्रुल्. ग्यि. बु. मो. ऽदि. ल. म. छग्स्. शिग् ॥
४३. म्छङ्. चन्. ग्शेद्. मस्. सिन्. पडि. सेम्स्. दे. ल्तोस् ।  
ग्सेर्. दङ्. ग्रेस्. म. स्प्रेग्. गि. डो. बोर्. म्जम्<sup>७</sup> ॥
- 58a म. सोस्. बु. रम्. म्थोङ्. बस्. म्डर्. मि. ऽग्युर् ।  
म. द्कोग्स्. शो. यि. नङ्. नस्. मर्. मि. जौद् ॥

तू थाला-बाँधने के लिये बाहर रख ?,  
सामयिक जामुन वृक्ष फल को देख ॥

३८. चन्दन-वृक्ष सर्प का शरणस्थान,  
जलविन्दु सागर से निकाले सूख ना जावै ।  
भूषण-उत्पत्ति संदेह धातुनिष्ठ सुवर्ण,  
पुत्रमरण विसरे भग्न सागरपोत मनुष्य ॥

३९. भ्रमधुर शब्द के भ्रम में ना चित्त जरे,  
द्वीपार्थ अव्यवहार सार्थवाह कहाँ अभव्ब ।  
कौन सुखार्थी (सो) पीठ के महाभार को छाडै,  
जन्मान्ध नष्ट मनुष्य पर दया उचित ॥

४०. तट के आवर्त की दिशासे लौटे सार्थवाह,  
तनगर्भ के भीतर आकाशे चन्द्र प्रिब ।  
पंक से बंधे मनुष्य को कौन प्रेरित करै,  
द्वीप से लौटे सार्थवाह शिर में एक अन्ध ॥

४१. कुहरा उदय उत्पल-जल में नहीं,  
प्राकारे ना रहै आकाशे उदित चन्द्रधनुष ।  
तडाग जल भेदन होते समय समाप्त,  
जल-निम्न उभड ऊपर ना लौटे ॥

४२. जगहित न कर (सो) मुनि कैसे,  
माया-नदी में पानी की संज्ञा त्याग ।  
सत्य नहीं स्वप्ननिधि लाभ के समय,  
इस भ्रम की कथा में राग न करै ॥

४३. सुन्दर व्याध ने पकड़ा उस चित्त को देख,  
कंचन-रज्जु की साँकड़ में स्वभाव (एक) समान ।  
खाये विना गुड़ देखने से मीठा न होवै,  
बिना मथे दही के भीतरसे मक्खन ना लहै ॥

४४. म. ऽथुडस्. ग. बुर. छद्. प. सल्. लम्. चि ।  
 म्छोग्. गि. नोर्. बु. स्प. बर्. व्य. व. मिन् ॥  
 दुम्. बोडि. लग्. तु. स्त. रेडि. नुस्. प. स्तोर् ।  
 फोल्. ऽब्रस्. र्मल्. द्गोस्. पर्. म्थोड्. व. सु<sup>१</sup> ॥
४५. छु. शिड्. सिञ्जड्. पो. ज्जोद्. पडि. मि. दे. गड् ।  
 ग्सेर्. मेद्. प. यि. लस्. क. द्गोस्. प. मेद् ॥  
 म्थोड्. ब्शिन्. दु. नि. दोड्. दु. ऽप्रो. मि. रिग्स् ।  
 डुग्. छु. ऽथुड्. ऽफो. जाम्. छद्. ब्दे. मि. ऽय्युर् ॥
४६. ह. ल. सोड्. बडि. स्मन्. मर्. चि. रु. रुड् ।  
 दुस्. दे. जिद्. दु. स्त्रड्. छद्. ऽथुडस्. पस्. ब्सि ॥  
 ऽप्रो. दुस्. फुड्. पो. जि. यि. ग्सन्. लेन्.<sup>२</sup> व्यस् ।  
 मीडस्. प. सिन्. मोस्. चोद्. पन्. ब्चिडस्. ल. द्गऽ ॥
४७. म्छिल्. पस्. सिन्. पस्. ज्. यि. ब्दे. व. स्तोर् ।  
 ऽछि. ऽदोद्. नद्. ल. द्रड्. सोड्. डग्. मि. जन् ॥  
 दे. नि. ग्नोद्. पडि. ख. सस्. स्तेन्. ल. द्गऽ ।  
 फन्. पडि. स्मन्. ल. ग्चेस्. पडि. ऽदु. शेस्. बोर् ॥
४८. दु. व. व्स्. क्येद्. पडि. स्प्पोद्. लम्. छेद्. दु. व्येद् ।  
 स्मन्<sup>३</sup>. ल्. नुस्. प. मिङ्. च्चेस्. मी. मीडस्. प. स्त्र ॥  
 मि. ग्रुब्. खस्. ब्लड्. र्ग्यल्. पोडि. ब्कऽ. छद्. ग्न्स् ।  
 व. शेल्. र्जेस्. मि. सुड्. रड्. ल. ग्नोद्. पर्. वस् ॥
४९. नोर्. बुडि. नुस्. प. थल्. वस्. ब्यिवस्. छे. स्तोर् ।  
 सेङ्. गेडि. ऽो. म. ज्. यिन्. नड्. दु. मिन् ॥  
 छद्. मेद्. दु. बडि. बुस्. प. श. रे. छद् ।  
 ब्स्तेन्. ऽफो. ब्चद्. पर्. मि.<sup>४</sup> रिग्स्. फन्. पडि. स्मन् ॥
५०. स्तोद्. लोग्. मि. व्य. रिन्. छेन्. गिल्ड्. गि. मि ।  
 गल्. दु. मि. रुड्. ऽखोर्. लोस्. स्म्युर्. र्ग्यल्. ग्जऽ ॥

४४. विना पीये कपूर ना ज्वर विनाशै,  
उत्तम मणि को ना गोपन करै ।  
पागल के हाथ में कुठार का बल न ठीक,  
पुरुष के फल बर्तने का प्रयोजन देखै कौन ॥
४५. केला के साथ का लाभ सोई आदमी कहै,  
जो सोने के विना कर्म न चाहै ।  
देखते हुए जैसे गड़हे में जाना नहीं ठीक,  
विषजल पीकर साफ विच्छिन्न हो ना सुखी होई ॥
४६. हल ? गति की औषधि घी क्या चाहिए,  
उसी समय मधु के मद्य को पीने से मतवाला ।  
जाल स्वीकारै चलते समय स्कन्ध  
मूढ़ यक्षिणी द्वारा मुकुट बाँधने में प्रसन्न ॥
४७. बंसी से पकड़ी मछली का सुख जाई,  
मरण-इच्छुक रोगी ऋषि-वचन ना सुनै ।  
सोई हानिकर भोजन सेवन में प्रसन्न,  
हित-औषध के प्रिय ज्ञान को त्यगै ॥
४८. नाना वृद्धि की चर्या मार्ग का प्रयोजन करै,  
औषध में समर्थ नाम है, यह मूढ़ कहै ।  
असिद्ध स्वीकार कर राजाज्ञा तोड़ बैठे,  
स्फटिक न अपने को अनुरक्षै हानिकारक ॥
४९. मणि की शक्ति धूल से ढँके समय भ्रान्त,  
सिंह नीला दूध मिट्टी के बर्तन में न रहै ।  
निरन्तर धुआँ फेंकना मांस-छेदन,  
स्पष्ट उपदेश तोड़ना ना हित-औषध ॥
५०. झूठे शून्य ना करै रत्नदीप का मानव,  
तैरने में ना ठीक चक्र घुमाना राजचिह्न ।

मृच्छुर्. मेद्. ग्सेर्. गियस्. दडुल्. छु. ल्वगस्. मि. ऽय्युर् ।  
रङ्. जाम्स्. म. लोन्. ग्यद्. ल. ब्स्दो. मि. रिग्स् ॥

५१. ब्रस्. बु. सिमन्. पस्. ग्जुग्. मडि. चं. ब. बर्लग् ।  
फ्युग्स्. भ्दग्. लिङ्.<sup>५</sup> मृच्छोद्. पडि. द्वि. मस्. ख्येर् ॥  
ख्रुल्. पडि. र्ग्यल्. पो. बङ्गस्. क्रिय. ग्योग्. तु. गंस् ।  
ङो. मृच्छुर्. छे. व. ग्सेर्. मृच्छोग्. ग्सेर्. ऽय्युर्. चि ॥

५२. म्दोङ्गस्. ल. ल्त. बडि. र्म. व्य. गुद्. नस्. ऽछि ।  
दुग्. गि. छु. नि. ब्तुङ्. बर्. व्य. ब. मिन् ॥  
ब्रम्. स. छङ्. गिस्. ब्सि. ब्चोस्. व्यस्. दुस्. लद् ।  
मिग्. गि. रिन्. ल. चि. ब्तुब्. सोम्स्.<sup>६</sup> दङ्. क्ये ॥

५३. र्ग्युस्. मेद्. छोद्. ल्दोङ्. लुस्. ल. बेर्. क. ऽफोग् ।  
ब्सो. यि. रिग्. व्येद्. छोङ्. ल. ग्शुग्. प. मिन् ॥  
स्तग्. गि. रि. मो. ब्रक्बस्. ग्योद्. लग्. तु. गस् ।  
लुस्. ल. लुङ्. म्खिस्. फिय. नस्. शुग्स्. प. मिन् ॥

58b ५४. चल्. ग्सुम्. जोंगस्. पस्. फुङ्. व. सेङ्. गेडि. लुस् ।  
दोम्. गिय. स्दुग्. ब्स्डल्. स्त्रङ्. चि. जौद्. दुस्.<sup>७</sup> बल्ङ् ॥  
छोङ्. दुस्. द्बुस्. सु. दोन्. स्तोर्. दोन्. मि. ऽग्रुब् ।  
बसे. रु. छोल. बडि. मि. दे. स्दुग्. ब्स्डल्. छे ॥

५५. दोग्स्. पस्. न. बडि. खोङ्. न. दुग्. योद्. मिन् ।  
क्लु. मृच्छोग्. म्गो. बो. दे. जिद्. स्दुग्. ब्स्डल्. तें ॥  
द्वि. सडि. बु. नि. र्ग्युद्. मङ्गस्. स्प्र. यिस्. ब्चिङ्गस् ।  
स्त्रङ्. मडि. छङ्. नि. चि. मङ्. सोग्. पस्. फुङ् ॥

५६. थर्. लम्.<sup>१</sup> ऽदोद्. पस्. ख्यि. यि. स्त्रिङ्. फ्युङ्. चिग् ।  
ल्वगस्. क्यु. दङ्. व्रल्. ग्लङ्. पो. ब्दे. बर्. ग्नस् ॥  
र्ग्यल्. पोडि. श्बस्. तोग्. ब्स्डो. ब्रगङ्गस्. व्यस्. छे. यल् ।  
व्ये. यि. फ्रु. गुडि. ग्चेस्. ऽजिन्. द्गोस्. प. गङ् ॥

- सुवर्ण से पारा लोहा न होवै,  
स्व-निधन विना विक्रम चाहना नहिं ठीक ॥
५१. पका फल निज मूल में लगा,  
पशुपति द्वीप पूजा गन्ध से ले जावै ।  
झगडू राजा के बस में नौकर बूढ़ा,  
महाअद्भुत उत्तम सोना औषध होइ ॥
५२. मुख देखि मोर विपत्ति से मरे,  
विष का जल पीने योग्य नहिं ।  
ब्राह्मण मद्य से मतवाला होते समय,  
नेत्र के मूल्य को क्या काटै रे ॥
५३. अकारण वैश्य देह पर दण्ड मारै,  
शिल्प-वेद दूकान में न रहै ।  
बाघ का चित्र मंगल करता रक्खै,  
देह में खाना न खींच बाहर ना रहै ॥
५४. त्रिविक्रम निष्पन्न राशि सिंह का देह,  
भालू का दुःख मधुप्राप्ति के समय पावे ।  
विक्रय के समय बीच में अर्थ छाड़ि अर्थसिद्ध ना होई,  
गँड़े की गवेषणा आदमी के लिए महादुःख ॥
५५. शंका-रोग के भीतर विष है नहीं,  
उत्तम नाग सोई दुःख का आश्रय ।  
गन्धर्वकुमार वंशी शब्द से बंधा,  
मक्खी का मधु बड़ी औषध पयालपुंज ॥
५६. मुक्तिमार्ग की इच्छा से कुत्ते का हृदय,  
अंकुश विना गज सुख से रहै ।  
राजसेवक गवेषणा करते समय,  
पक्षिशावक का प्रिय चाहै जो ॥

५७. द्ङुल्, छु. स्तोद्. दु. सग्स्. पर्. ग्युर्. त. रे ।  
 स्त्रिन्. बु. मे. ख्येर्. द्रेग्स्. पस्. र्ग्यल्. रिन्. मेद् ॥  
 ने. छेडि. फ्रु. गु. स्म्र. म.<sup>२</sup> शेस्. पस्. म्छेद् ।  
 स्त्रङ्. छङ्. म्थोङ्. बडि. दोम्. मिग्. म्खऽ. ल. ल्त ॥
५८. दे. दुस्. सिम्. बुम्. म्योङ्. स्दुग्. व्स्ङल्. गंयु ।  
 ख. ब्रग्. लम्. दु. र्ग्युस्. मेद्. मि. थे. छोम् ॥  
 छु. क्लुङ्. मु. रन्. स्दोङ्. गृ. जाल्. बडि. सङ्स् ।  
 स्त्रङ्. चि. म्योस्. पस्. ड्. मोग्.योद्. ल. ग्तुगुस् ॥
५९. बग्. मस्. ल्तद्. मो. म. म्थोङ्. छेद्. दुस्. द्वुस् ।  
 सोस्.<sup>३</sup> व्शिन्. व्स्तेन्. न. स्मन्. म्छेोग्. दुग्. तु. ऽग्युर् ॥  
 दोन्. ग्चिग्. मि. ऽगुब्. ग्जिस्. ऽजिन्. चन्. गिय. ब्लो ।  
 ख्यिम्. लस्. म. ऽफग्स्. देद्.दपोन्. गिलङ्. मि. लोन् ॥
६०. बर्तंग्. पडि. म्छङ्. मेद्. नोर्. बु. द्ब्यिग्. ल. बदर् ।  
 स्तोद्. ल. म्नन्. पडि. स्प्रेऽु. कङ्. लग्. ब्रेल् ॥  
 नद्. डोस्. म. सिन्. ब्चोस्. क. खो. लोग्. व्स्ग्युर् ।  
 देद्.<sup>४</sup> दपोन्. म्जोद्. म्थोङ्. ख्यिम्. ब्दग्. र्दङ्. डो. ल्दङ् ॥
६१. सेङ्. गेडि. म्गो. डो. म्थुर्. गिय. फ्यर्. मि. ऽत्रङ् ।  
 म्खऽ. ल्दिङ्. ग्शोग्. जोग्स्. छङ्. ल. मिग्. मि. ल्त ॥  
 र्ल. बो. म्थोङ्. दुस्. ब्से. रु. गुद्. दु. गब् ।  
 ग्रोङ्. लस्. ग्निङ्स्. पडि. चे. र्प्यङ्. लुस्. सेम्स्. ब्दे ॥
६२. द्ग्र. यि. स्दुग्. व्स्ङल्. ब्रल्. व. ग्चेर्. बुडि. लुस्<sup>५</sup> ।  
 ऽबग्. गि. रिग्. व्येद्. ग्सो. यि.ब्सो. ल. ग्नोद् ॥  
 म. हेडि. स्मि. द्. ख्योल्. ऽग्री. लम्. थुर्. ग्शोल्. ब्दे ।  
 म्खस्. पस्. मि. छुन्. बलुन्. पोस्. स्ब्यङ्स्. पडि. ग्लङ् ॥
६३. ल्तो. रु. दुग्. सोस्. शु. जेस्. ब्दे. मि. ऽग्युर् ।  
 म्जोङ्स्. पडि. दग्. ल. जन्. फस्. ऽछेङ्स्. प. गङ् ॥

५७. पारे के बर्तन में च्युत होइ,  
जुगनू दर्प से महामूल्यवान् नहीं ।  
शुकशावक पूरा बोलना ना जानै,  
मधु-मद्य देखते भालू का नेत्र आकाश देखै ॥
५८. उस समय कोमल न अनुभवै दुःख-हेतु,  
शिलाकीर्ण मार्ग में अपरिचित आदमी निस्संदेह ।  
नदी पुरान काष्ठपोत शय्या उपधान,  
मस्त मक्खी ऊँट के ऊपर नवै ॥
५९. बहू का तमाशा ना देखै हाट बीच,  
लौकी आश्रय ले उत्तम औषध होवै विष ।  
एक अर्थ न साधि दूसरे को लेनेवाली बुद्धि,  
घरसे विना उठे सेठ द्वीप न लेइ ॥
६०. अपूर्ण परीक्षित मणि धन में प्रविशै ।  
उन्मार्ग में कूदता बानर हाथ-पैर से फँसै ।  
व्याधि स्वभाव न पकड़ै मिथ्या परिवर्तन ।  
सेठ-कोश देखै गृहपति सोपान चढ़ै ॥
६१. सिंह सिर के घूमै अनुसरै ।  
गरुड़ पक्ष-सहित पाँती में ना ढूँढ़ै ।  
चन्द्रदर्शनके समय गैड़ा सिकुड़ छिपै ।  
बस्ती से भागे सियार के देहचित्त में सुख ॥
६२. शत्रु के दुःख सै रहित नग्न का देह ।  
पुतली बेद चिकित्सा शिल्प बाधै ।  
भैंस-जाँघ विषम मार्गें सुखी ।  
चतुर न मानै मूर्ख महावत गज ॥
६३. उरग के विष को खा पचा कर सुखी ना होइ ।  
मूढ़ की बानी सुने कौम अर्थ ॥



- थर्. नस्. बर्चोन्. रर्. स्रज्गस्. प. स्त्रिङ्. जेडि. युल्<sup>१०</sup>  
 लु. गु. गर्मुद्. किय. खोङ्. स्त्रिल्. बर्चद्. पर्. द्कऽ ॥
६४. ल्ह. यि. शे. स्त्रिङ्. सक्ये. स. चूर्ब. ऽग्युर्. छल् ।  
 द्गो. स्लोङ्. दुग्स्. प. चन्. मोडि. खोद्. म. यिन् ॥  
 शग्स्. पस्. थेबस्. दुस्. स्प्रेऽ. नग्स्. दङ्. ब्रल् ।  
 सुन्. बश्निन्. दङ्. दु. लेन्. प. स्दे. बडि. द्पोन् ॥
- 59a६५. ग्सेर्. म्गर्. म्गुल्. दु. रङ्. गि. गर्यन्. म. थोग्स् ।  
 व्रन्.<sup>१</sup> मोस्. जेद्. क्यङ्. नोर्. बु. जे. बोस्. ऽख्येर् ॥  
 न. सो. र्गस्. पडि. देद्. द्पोन्. ग्लिङ्. मि. लोन् ।  
 बु. यिस्. बर्दुङ्ग्स्. क्यङ्. छ. बो. ग्चेस्. पर्. ऽजिन् ॥
६६. दुर्. खोद्. नङ्. दु. सेङ्. गेडि. चर्ल्. मि. ऽव्यङ्ग्स् ।  
 व. दोम्. स्प्योद्. पस्. स्देर्. छग्स्. सिल्. मि. नोन् ॥  
 शुम्. प. दङ्. ऽप्रोग्स्. स्त्रिङ्. स्तोबस्.<sup>१</sup> जाम्स्. ग्युर्. नस् ।  
 व्वि. मोस्. ऽब्रङ्ग्स्. फ्यि. युल्. मि. सिन् ॥
६७. गङ्ग्स्. दङ्. ब्रल्. बस्. ख्यि. यिस्. म्छे. व. ग्जेर् ।  
 ख. यिस्. देद्. पडि. स्क्यर्. मो. ज. यिस्. लन् ॥  
 द्वि. म. मि. छग्स्. ल्हुङ्. ब्सेद्. स्तोङ्. पडि. स्नोद् ।  
 ऽखोर्. लोडि. स्त्रम्. ग्यिस्. शिङ्. त. दल्. मि. स्तेर् ॥
६८. गर्यल्. पो. द्मङ्ग्स्. स्प्योद्. सु. यि. मिग्.<sup>२</sup> स्डर्. जेस् ।  
 चि. ल. छग्स्. पडि. स्त्रङ्. म. दुद्. पस्. ऽछल् ॥  
 पद्मडि. स्तेङ्. न. ऽफुल्. ग्यि. बुम्. प. म्जेस् ।  
 दुल्. ग्य. म्गोस्. ग्यऽ. मेद्. डस्. प. नि ॥
६९. स्क्योन्. दङ्. ब्रल्. बडि. ऽोद्. सेर्. र. व. चन् ।  
 लुङ्. थग्. म. ब्तग्स्. जि. स्लडि. गर्यन्. ग्यिस्. स्प्रेस् ॥  
 जेद्. पर्. द्कऽ. फियर्. बर्चोद्. पर्. फोङ्ग्स्. प. यिन्<sup>३</sup> ।  
 पद्मडि. लब. व. थुर्. ल. ख. मि. ऽव्ये ॥

मुवत हो कारा में डूबै अहो करुणा !

मेष-शावक का बन्धन तोड़ना कठिन ॥

६४. देवता के दोष उपजै परुषक वन ।

भिक्षु का निवास रानी का प्रकोष्ठ नहीं ।

पाश में पड़ते समय बानर बिना वन ।

दोष जिमि साथ लेवै सेनापति ॥

६५. सोनार अपने कण्ठ में भूषण न धारै ।

दासी पा भी मणि-स्वामी ले जावै ।

रुग्ण-दंत वृद्ध सेठ द्वीप ना लेवै ।

पुत्र ताड़ै तो नाती प्रिय धरै ॥

६६. गुहा में सिंह पराक्रम ना शोधै ।

मृग भालू की चाल से सेना-राग ना परिभवै ॥

दल और मित्र हृदय-बल के व्याघात से ।

मूषिका अनुसरि पितृदेश ना धरै ।

६७. कुत्ते खुले ओष्ठ में बलि लेइ ।

कौबे का साथ बक भीन छाड़ै ।

गन्ध अलिप्त पिण्ड पात्र सूना बर्त्तन ।

चक्का उतारि रथ क्षण न देइ ॥

६८. राजा हीना-चारी किसकी आँख में पहले सुन्दर ।

मधु-इच्छुक नम्र मक्खी का वन ।

पद्म पर माया का सुन्दर कलश ।

रज-अलिप्त अकट्टु चमकता ॥

६९. निर्दोष निष्प्रभ प्रकारवान् ।

नगर पास ना ढूँढ़ै रवि-शशि भूषण से सज्जित ।

दुर्लभ होने से प्रेरणा दरिद्र है ।

पद्म-कली मुख ना खोलै ।

७०. चन्दन्. छु. नि. स्क्योन्. ब्रल्. स्नोद्. दु. ब्र्लुगस् ।  
 द्ङुल्. ग्शोङ्. म. फियस्. र्ग्यल्. पोडि. ग्सङ्. मि. ऽद्रेन् ॥  
 म्खर्. मडि. स्प्यद्. दु. सो. व. ब्र्लुगस्. मि. व्य ।  
 छु. बो. व्शि. ऽबब्. र्ग्य. म्छो. रोमस्. मि. ऽग्युर् ॥
७१. देद्. दपोन्. जॉद्. दुस्. ग्लिङ्. दोन्. ब्स्त्रुब्. पर्. व्य ।  
 व्शि. म्दोडि. छोङ्. ऽदि. ग्सिङ्स्. क्यि. ऽप्रोस्. ल. ग्नोद् ॥  
 छेस्. ग्सुम्. र. ल. व. गँस्. पडि. दुस्. ल. ब्स्त्रोन् ।  
 छु. गङ्. ऽखोर्. मस्. देद्. दपोन्. दोन्. स्तब्स्. ग्चोग् ॥
७२. खि. मोन्. ख. रु. ल्ह. यि. स्रस्. मो. व्यर् ।  
 ग्लिङ्. ल. तौल्. बडि. छोङ्. पडि. ब्र्लो. मि. बर्तन् ॥  
 दुग्. स्त्रुल्. ग्चुग्. गि. नोर्. बु. ब्र्लङ्. मि. व्य ।  
 ग्यद्. फ्रुग्. चर्ल्. स्व्यङ्. सेमस्. दे. दोङ्. चिग्. दङ्<sup>५</sup> ॥
७३. ब्र्चुन्. मोडि. ब्र्सुङ्. म्छोन्. म. ल. ब्र्चोल्. व. मिन् ।  
 यर्. प. ऽदोद्. न. म्छल्. ग्यि. थिग्. ले. ब्र्सुब्स् ॥  
 दम्. योद्. प. छु. जॉग्. पस्. दङ्स्. मि. ऽग्युर् ।  
 ख्यि. गॉद्. म्थोङ्. दुस्. मि. स्रोग्. रङ्. ब्र्चोम्. स्क्युर् ॥
७४. द्वि. सडि. श्रोङ्. ख्येर्. ब्र्ल्त. बर्. व्य. व. मिन् ।  
 श्रोग्. मडि. स्प्योद्. प. बोर्. न. डेस्. पर्. ब्र्दे ॥  
 तिल्. ग्यि.<sup>६</sup> मे. तोग्. मि. ब्र्तोग्. ब्र्चद्. पर्. फङ्स् ।  
 शिङ्. लोडि. स्तेङ्. न. दुर्. सुङ्. यन्. लग्. दल् ॥
७५. बुद्. मेद्. ख्यिम्. ग्यिस्. सुन्. प. दे. ल. ल्तोस् ।  
 स्तोब्स्. क्यिस्. ऽखुल्. पडि. ऽखोर्. लोडि. ग्शोग्. प. ब्रेल् ॥  
 चि. यिस्. सिन्. पडि. ल्चगस्. ऽदि. ग्सेर्. दु. ऽग्युर् ।  
 ग्सेर्. लङ्स्. स. बोन्. योङ्स्. सु. ब्र्दो. मि. व्य<sup>७</sup> ॥
- 59b७६. नम्. मखडि. डङ्. ल. शर्. ल्हो. फ्योग्स्. म्छम्स्. मेद् ।  
 दर्. ग्यिस्. छोस्. क्यिस्. शेल्. गोङ्. दोग्. स्प्युर् ॥

७०. चन्दनजल निर्दोषपात्र में डालै ।  
 रजतनिधि न खोले राज-रहस्य ना खीचै ।  
 खेत के ऊपर घास ना डालै ।  
 चार नदी उतर सागर ना मिलै ॥
७१. सेठ लाभ समय द्वीप का अर्थ साधै ।  
 चार सूत्र पण्य यह संक्रम की शपथ बाँधै ।  
 तृतीया का चाँद जीर्ण होते समय सेवे ।  
 पूर्ण-जलावर्त में सेठ का अर्थबल खंडै ॥
७२. राजकिरात मुख में देवकन्या होइ ।  
 द्वीप छिद्रक वणिक् की बुद्धि अदृढ़ ।  
 विषसर्प की शिखामणि ना लेवै ।  
 बच्चा विक्रम पाल चित्त त्यागै ॥
७३. रानी की रक्षिका को प्रार्थे नहीं ।  
 मोक्षकामी वन-तिलक रक्षै ।  
 पंकिल पानी का स्पर्श स्वच्छ ना करै ।  
 चंड श्वान देखते समय मानव-प्राण स्वयं ध्वस्त ।
७४. गन्धर्व नगर दीखता नहीं ।  
 चींटी की चाल छाड़ि सुख निश्चय ।  
 तिल-पुष्प न खनि छेदै प्रिय ।  
 पर्ण के ऊपर श्मशानिक मन्द अंग ॥
७५. स्त्री गृह-दूषित वहाँ देख ।  
 बल-भ्रमित चक्र-पक्ष-हीन ।  
 पारस छूते लोहा सोना होइ ।  
 सुवर्ण उठ बीज ना अंकुरै ।
७६. आकाश की ओर पूर्व दक्षिण दिशा नहीं समान ॥  
 रेशमी रंग से काच वर्ण होइ ।



वण-आकृति भेद का लोपस्थान आकाश ।

बन्ध्यापुत्र की बहू मैंने ना देखी ॥

७७. कार्षापिण से शंख का वर्ण लखै ।

आकाश का जन्मदाता कौन ।

बहु भय-प्रीति से आकाश नच लै ।

श्वेत कृष्ण वर्ण से आकाश अनावृत ॥

७८. रजनीकाल से आकाश ना संभवै ।

आकाश कहां से उद्भूत, बताओ ।

इन्द्रधनुष का रंग समीप से भासै ।

पेटिका में जो ढूँढ़ै ना पावै ॥

७९. भाव-अभाव दोनों कौन कहि सकै ।

लोहे का मुद्गर किसने फेंका ॥

जाल इन्द्रधनुष यह आकाशे लुप्त ।

मेष-लोम का कम्बल किसका है ॥

८०. शिलाखण्ड यह शब्द किसके मुंह से निकलै ।

बानर जल-चन्द्र ढूँढ़ै अहो करण ॥

लोटे के भीतर क्षिप्त रोग यह नर से क्षुब्ध है ।

आकाश में इन्द्रधनुष उदित धर्मदेशना से समाप्त ।

८१. आकाश में विस्तारे न जा देख रे ।

अहो अस्त भी नहीं हुआ ॥

राग का आश्रय स्थान जहाँ से बना ।

इसका हेतु-प्रत्यय किससे किया ॥

८२. परस्पर भेद नहीं यह महा-आश्चर्य ।

अहो माया-पुरुष की संज्ञा भ्रम ॥

अर्थ-क्रिया में असमर्थ' स्वप्न-धन की पेटिका ।

शिलापुत्र की वेदना कहाँ गई ॥

१. "अर्थक्रिया समर्थ यत् तदत्र परमार्थसत्" -- धर्मकीर्ति (प्रमाणवार्तिक-२) ।

८३. ग्लङ्ग. पोडि. म्गोल्. वं. मेद्. छग्. दोग्स्. प. ब्रल् ॥  
 छु. शिङ्ग. स्त्रिङ्ग. पो. फिय. नङ्ग. ग्जिस्. कर्. मेद् ।  
 दुग्. स्त्रुल्. म. ब्रुत्स्. सगोङ्ग. ब्रुङ्ग. ब. मि. रङ्ग ॥  
 द्रङ्ग.स्रोङ्ग. नद्. किय. ग्गोग्स्. दङ्ग. ग्जन्. <sup>५</sup> पो. सेम्स् ।
८४. देद्. द्पोन्. बु. नि. यब्. ल. ग्लिङ्ग. र्ग्युस्. ऽद्रि ॥  
 ग्रु. छेन्. ल. ग्नोद्. द्ग्र. नम्स्. फिय. रु. सेल् ।  
 द्गोस्. पडि. क्येन्. दङ्ग. मि. ऽब्रल्. छर्. ब. ग्रिमस् ॥  
 ज. स्त्रुल्. श. नि. नोर्. जन्. छे. बस्. बर्तग् ।
८५. ग्गो.म्गोन्. ग्यिस्. क्यङ्ग. नम्. म्खडि. सु. म. ग्गसिग्स् ॥  
 द्म्यल्. बडि. लुस्. ल. छ्. ग्रङ्ग. गो. स्क्बस्. मेद् <sup>६</sup> ।  
 ख. दोग्. ब्स्म्युर्. सिन्. म्छुर्. दु. स्पङ्गस्. न. लङ्ग ॥  
 ग्गो. रस्. थल्. खुर्. ऽजुग्. प. द्रि. म. मेद् ।
८६. ि. छ्र शिङ्ग. लो. ऽब्रस्. स्मिन्. पर्. ग्युर्. छे. चर्गे ॥  
 गल्. नङ्ग. सस्. लेन्. दे. दुस्. जिद्. दु. फुङ्ग ।  
 छोङ्ग. खङ्ग. नङ्ग. गि. ऽग्रोन्. पो. स्ङ्ग. रिम्. ज्येस् ॥  
 सिन्. गिय. ख. छुस्. रङ्ग. जिद्. ऽछिङ्ग. बर्. ज्युर् ।
८७. चर्. व. यि. स्प्रोन्. मे. <sup>७</sup> म्छेद्. प. रब्. तु. क्येन् ॥  
 र्ग्य. म्छो. स्प्रोल्. बडि. ग्रु. ल. सग्. लहन्. ग्चिस् ।  
 द्रेग्स्. पस्. म्योस्. पर्. मि. ज्युर्. नद्. पडि. लुस् ॥  
 रङ्ग. स्रोग्. स्तेर्. बडि. द्रङ्ग. स्रोङ्ग. लन्. लोन्. चिग् ।
८८. फन्. पडि. स्मन्. मर्. ऽबोर्. बर्. व्य. ब. मिन् ॥  
 र्ग्य. म्छोडि. ल्बु. ब. यल्. बडि. जर्स्. मि. ल्त ।  
 ग्दन्. <sup>१</sup> स. म. स्पङ्गस्. र्ग्यल्. पोस्. छोस्. मि. ऽग्रुब् ॥  
 व्ह्यिम्. दोर्. नग्स्. सु. ऽदुग्. पडि. मि. दे. ब्दे ।
८९. दोम्. ग्यि. स्त्रिङ्ग. छग्. म. ऽथुब्. ख. ल. ल्तोस् ॥  
 मे. तोग्. चि. यिस्. स्त्रङ्ग. म. दल्. मि. स्तेर् ।

८३. गजके सिरमें सींग नहीं राग-रंग रहित ।  
केला में सार भीतर बाहर दोनों नहीं ॥  
विषसर्प न देखि अण्डा उठाना ना उचित ।  
ऋषि रोगमें सखा और मित्र समझै ॥
८४. सेठ का पुत्र पिता से द्वीप का पता पूछै ।  
महापोत-भंग शत्रु बाहर से मारै ।  
इच्छित प्रत्यय और अरहित लवण मग्न ?  
मीन सर्प का मांस धन अतिहृष्ट परखै ॥
८५. मार्गदर्शक भी अनेता आकाश निरेखै ।  
नरक-देहमें गर्मी-सर्दीका अवकाश नहीं ॥  
वर्ण-परिवर्तन ग्रहै वर्ण छाड़ि उठै ।  
भृंगी धूल धोइ निर्मल ॥
८६. लता वर्षफल पकते समय अशुद्ध ।  
जब भीतर अन्न ले तो राशि होइ ॥  
दूकान के भीतर की कौड़ी पंचक्रम होयो ।  
(रेशम) कीट थूकसे स्वयं बंधि जाइ ॥
८७. लुकारी जलानेका भारी हेतु ।  
सागरगामी पोत एक बार चुवै ॥  
मद से उन्मत्त न हो रोगी का देह ।  
स्वप्राणदाता ऋषि उत्तर दे ॥
८८. हित भैषज्य त्यागै नहीं ।  
सागरका फेन लुप्त हो फिर ना दीखै ॥  
आसन ना त्यगि नृप धर्म ना साधै ।  
घर छोड़ वनमें बसे आदमी सो सुखी ॥
८९. भालूका हृदय-रक्त न छेदि मुँह देखै ।  
पुष्प-औषधि में मक्खी क्षण नहीं गंवाती ॥



- बु. रम्. मुर्. गडि. कुग्स्. म. ख. रोग्. ऽदुग् ॥  
गिलङ्ग. ल. द्बङ्ग. बडि. र्ग्यल्. पो. बु. दङ्ग. ऽग्रोग्स् ।
६०. ऽखोर्. लोस्.<sup>२</sup> ब्चल्. बडि. लम्. ल. शुग्स्. पर्. व्य ॥  
खङ्ग. ब्सङ्ग. रिन्. छेन्. स्पङ्ग. दु. मि. रुङ्ग. डो ।  
द्रि. म. चन्. ग्यि. सस्. स्कोम्. मि. बर्तेन्. चिङ्ग ॥  
ख्यिम्. बद्ग. द्पऽ. बो. पिय. रु. मि. ब्स्कृद्. दो ।
६१. छे. ऽदिडि. छे. थव्स्. व. शिग्. प. दुर. स्रुङ्ग. मि ।  
गदोल्. पडि. म्गुल्. दु. रिन्. छेन्. र्यन्. मि. दोग्स् ।  
यब्. क्यि. स्प्योद्. लम्. स्जाग्.<sup>३</sup> प. देद्. द्पोन्. बु ॥  
स्म्योन्. पडि. स्प्योद्. प. ग्सब्स्. ग्तद्. ब्रल्. नस्. ऽदुग् ।
६२. ल्कुग्स्. मडि. ग्सङ्ग. छिङ्ग. ख. रु. मि. ऽदोन्. नो ॥  
ञो. व. दग्. ग्युर्. बलो. ग्रोस्. द्रि. युल्. शिग् ।  
ग्सुग्स्. क्यि. चोल्. स्पुब्. मि. व्येद्. लोङ्ग. बडि. ग्रोग्स् ॥  
फ्यग्. दर्. खोद्. प. थोङ्ग. ग्शोल्. जो. मि. ऽग्युर् ।
६३. नद्. प. छु. स्क्युग्. गङ्गा. ल. मि.<sup>४</sup> ल्त ॥  
गसेर्. ग्यि. म्गर्. व. व्य. व. ग्शन्. मि. स्पुब् ।  
दर्. छेन्. दर्. सव्स्. फग्. जि. गोन्. मि. ऽग्युर् ॥  
छङ्गस्. स्प्योद्. मि. नुस्. स्म्युग्. म. म्खन्. ग्यि. ख्यिम् ।
६४. स्म्र. म्खस्. थव्स्. ल्दन्. नि. छो. ख्यु. नस्. ऽब्योल् ॥  
ऽफ्येस्. पडि. ग्लिङ्ग. पो. बुर. शिङ्ग. ब्रेस्. मि. स्जोग्स् ।  
गसेर्. स्त्रोग्. ब्चुग्. क्यङ्ग. ऽछम्. ऽग्रोस्.<sup>५</sup> व्येद्. मि. नस् ॥  
देद्. दपोन्. बु. नि. ब्रे. स्रोङ्ग. ल. मि. ल्त ।
६५. ग्लिङ्ग. दोन्. खर्. ऽवतोन्. शि. यङ्ग. ख्यिम्. मि. ऽदुग् ॥  
छोङ्ग. फ्रुग्. ऽदुस्. छे. न. यङ्ग. जिङ्ग. स. ल. स्जाग् ।  
ऽदोद्. पडि. लुङ्ग. नि. रेस्. ग्सोर्. दग्. गिस्. ऽगुग्स् ॥  
जि. सिद्. नोर्. बु. म. लोन्. फियर्. मि. व्युङ्ग ।

- ऊखके छोर पर कौवा बैठा ।  
द्वीपमें शक्तिमान् राजपुत्र और साथी ॥
६०. वक्रसे ढूँढ़ने मार्गें बल करो ।  
सुन्दर गृहरत्न त्यागना ना ठीक ॥  
गन्धयुक्त खानपान ना आलम्बो ।  
शूर गृहपति बाहर ना प्रवासै ॥
६१. इस समय महाउपाय नष्ट श्मशानिक पुरुष ।  
चंडाल के कण्ठ में रत्नभूषण ना बँधै ॥  
पिताके आचरित मार्गमें मग्न सेठ का पुत्र ।  
पागल का आचरण त्याग दान विना रहै ॥
६२. गंगे का गुह्य शब्द मुख से न निकलै ।  
पास की शत्रु सी बुद्धि से गन्ध-विषय ध्वस्त ॥  
रूप-अध्यास ना साधि अन्धा साथी ।  
पाँसुकूलिक' हलका फाल न खरीदै ॥
६३. रोगी पानी थूक गंगा ना देखै ।  
सोनार दूसरा कार्य न साधै ॥  
रेशम का थान सूअर के बाल के मूल्य का ना होइ ।  
ब्रह्मचर्य ना कर सकै वसौरके<sup>२</sup> घर ॥
६४. वाक्चतुर उपायवान् शुक झुण्डसे भागै ।  
पंगु गज ऊख-पुंज ना पकड़ै<sup>३</sup> ॥  
कंचनशुंखला (बद्ध) नृत्य कर सकै नहीं ।  
सेठ का पुत्र आढक शकट को ना देखै ॥
६५. द्वीप के अर्थ बाहर जा मर भी घर ना रहै ।  
सेठ का पुत्र चिरकाल भी पुष्करिणी में डूबे ॥  
कामना-वायु कभी फूटनेसे रुकै ।  
जैसे मणि न पा बाहर से घर ना आवै ॥

१. गूदड़धारी । २. वंशकार । ३. स्त्रोत्रोत् ।

६६. ब्रग्. लस्. स्क्येस्. पडि. छु. व्य.मूछो. ल. स्वाग् ॥  
 नग्स्.<sup>६</sup> ब्यि. फ्र. ब. द्गुन्. ग्यि. च्.व. मि. सोग् ।  
 ग्दोन्. ग्यिस्. बर्लम्स्. छे. दोन्. दे. लम्. दु. स्तोर् ॥  
 ज्ञ. यिस्. बर्नडस्. पडि. स्क्यर्. मो. दग्. ल. ऽब्योल् ।
६७. ग्चिग्. तु. मि. ग्नस्. ग्नस्. स्तग्. मो. ग्रुस्. मडि. छड् ॥  
 श्रोन्. पो. लम्. श्. ग्स्. ग्सेर्. क्यल्. फियर्. मि. ऽखुर् ।  
 ग्चो. बोडि. ग्सड्. श्रोस्. खोम्. दु. बजोद्. मि. ऽग्युर्<sup>७</sup> ॥  
 स्प्रग्. पर्. मि. व्येद्. बड्. मजोद्. बर्कुस्. पडि. मि ।
६८. ब्रम्. सेडि. रिग्. व्येद्. बु. लस्. ग्शन्. दु. मिन् ॥  
 योन्. दोर्. मि. स्तेर्. चि. मूछोग्. ग्सेर्. ऽग्युर्. थबस् ।  
 मूछन्. दपेस्. रब. स्प्रस्. ऽखोर्. लोस्. स्ग्युर्. ग्यल्. लुस् ।  
 छड्स्. पडि. द्ब्यड्स्. ल. यन्. लग्. द्रुग्. चुर्. ल्वन् ।
६९. थुब्. पडि. थुग्स्. नि. योन्. तन्. कुन्.<sup>१</sup> ग्यि. मजोद् ॥  
 नोर्. बु. रिन्. छेन्. द्गोस्. ऽदोद्. ऽब्युड्. बडि. तन् ।  
 ग्यल्. पोडि. ब्शुल्. स्न. ग्सेर्. ग्यि. ऽखोर्. लोस्. द्रेन् ॥  
 गिन्. जडि. मे. तोग्. लुड्. गिस्. ब्स्क्योद्. पर्. स्ल ।
१००. दुस्. सु. स्मिन्. पडि. पद्म. ख. दोग्. ग्सल् ॥  
 ऽब्युड्. बडि. द्ग्र. नम्स्. ब्चोम्. प. दो. जेडि. स्कु ।  
 ग्रड्स्. पर्. स्क्येन्. प. ब्रस्. प. छु<sup>२</sup>ड्. बडि. ल्तो ॥  
 रंस्. दड्. ब्रल्. ब. दडुल्. छु. ऽथुड्स्. पडि. लुस् ।
१०१. स्मन्. मूछोग्. बसिल्. मडर्. थुन्. ल. छे. मि. द्गोस् ॥  
 चि. स्मस्. दोन्. दु. ऽग्युर्. ब. द्रड्. सोड्. छिग् ।  
 ग्लिड्. लस्. बलड्स्. पडि. मे. तोग्. द्गोस्. मेद्. मिन् ॥  
 द्गो. स्लोड्. छिग्. ल. ग्तम्. ग्यि. दोन्. मि. ब्युड् ।
१०२. स्मन्. ग्यि. ग्नस्. सु. दुग्. गि. स्क्ये.द्रुड्स्.<sup>८</sup> ऽगग्स् ॥  
 ऽफुल्. ग्यि. मे. लोड्. फिय. नड्. ग्जिस्. कर्. म्सल् ।

९६. शिला-उत्पन्न जलपक्षी सरोवर में डूबै ।  
 वनमूषिका जाड़े में तृण ना करै ।  
 आरम्भ से बाधा के समय वह अर्थ के मार्ग पर भ्रमै ।  
 मछली रोकने से छिद्र से भागै ।
९७. एकत्र ना रहै व्याघ्री की पूरी पाँती ।  
 अतिथि मार्ग में स्थित सुवर्णभाण्ड बाहर न ले जावे ॥  
 प्रधान रहस्य सचिव बाजार में न बोलै ।  
 चुपके ना करै पेटिका धन चोर आदमी ॥
९८. ब्राह्मण-माणवक से अन्यत्र नहीं वेद ।  
 छोड़ नहीं दे उत्तम औषध सोना होने के उपाय ।  
 लक्षण से ज्ञात चक्रवर्ती राजा,  
 ब्रह्मघोष में साठ अंग सहित ॥
९९. मुनि का हृदय सब गुणों का कोश ।  
 मणिरत्न इच्छा-आश्रित सम्भूत ॥  
 राजमार्ग नासा-सुवर्णचक्र खीचै ।  
 गिंजा का फूल वायु उड़ा चलै ।
१००. काले में पक्व पद्मवर्ण प्रकाशै । भूत शत्रु नाशक-वज्रकाय ॥  
 सर्दी से समुदित फूँक का कोश ।  
 निर्जर पारा पिये देह ।
१०१. उत्तम भैषज्य मधूर-प्रहार स्वभाव बड़ी ना चाहिये ।  
 जो कहै सार्थक सत्य ऋषिवचन ॥  
 द्वीप से ना उठावै अनिच्छित पुष्प ।  
 भिक्षुवचन में कथा का अर्थ नहीं होइ ।
१०२. भैषज्य के स्थान विषज मल रोके,  
 ऋद्धि-दर्पण का भीतर बाहर दोनों स्वच्छ ॥

मङ्ग. दु. बर्चोस्. क्यङ्. ग्स्गुस्. रर्जन्. ऽग्रिब. मि. ऽग्युर् ॥  
बुग्. प. योद्. बर्शिन्. सङ्. थल्. युल्. मि. ऽगग् ।

१०३. स्यु. चर्ल्. ऽव्योङ्स्. पडि. ग्यद्. नि. फिय. फियर्. रिम् ॥  
स्मिग्. र्गुडि. म्छङ्. शोस्. छु. यिस्. ऽदु. शोस्. शिग् ।  
शिङ्. ल. मे. योद्.<sup>४</sup> दे. छे.दु. व. ऽव्युङ् ॥  
ख. लँङ्स्. स्प्रोन्. मेर्. ग्युर्. प. मे. ख्येर्. यिन् ।

१०४. रि. ब्रग्स्. बर्. न. स्मिग्. र्गु. योद्. म. यिन् ॥  
ञ. र्ग्यस्. स्ल. व जि. मडि. ऽोद्. दङ्. ब्रल् ।  
रेग्. व्य. ग्स्गुस्. क्यिस्. स्तोङ्. प. खोल्. मडि. नङ् ॥  
स्ङ. ल्तस्. शर्. बडि. बु. मो. ब्चुन्. मोर्. ऽग्युर् ।

१०५. वि. चि. ऽथुङ्स्. पडि. मिग्. ल. म्छन्. मो.<sup>५</sup> मेद् ॥  
ल्ह. खङ्. सगो. फ्ये. दे. दुस्. स्कु. ग्स्गुस्. म्थोङ् ।  
फ्युग्स्. जिडि. लग्. बर्द. गङ्गाडि. फ्योग्स्सु. व्येद् ॥  
स्त्रङ्. चिस्. बसिङ्स्. पडि. छङ्. ऽथुङ्स्. लुस्. पो. स्त्रिद् ।

१०६. ग्शोर्. ल. बसिग्स्. पडि. स्बो. ग. ग्तिङ्. मि. ऽजुल् ॥  
ऽफ्योङ्. दो. ब्तग्स्. पडि. ग्सिङ्स्. ल. ग्यो. ल्दग्. मेद् ।  
द्ङुल्. गिय. मे. लोङ्.<sup>६</sup> फिय. न. ग्सल्. बर्. ऽग्युर् ॥  
शल्. त. छुङ्. पडि. मि. दे. स्ङर्. स्प्योद्. ऽदोर् ।

१०७. फ्योग्स्. म्छम्स्. कुन्. दु. ऽफुर्. क्यङ्. जाल्. सर्. छङ् ॥  
सो. व. खेङ्स्. दुस्. दे. छे. द्प्यद्. थग्. ऽद्रेन् ।  
श. छग्स्. मिस्. सिन्. दे. यि. शोस्. प. ल्तोस् ॥

61a फिन्. यिग्. लेग्स्. प. म्थोङ्. दुस्. सेम्स्. डल्. सोस् ।

१०८. मि. ऽग्युर्.<sup>७</sup> म्खऽ. ल. ल्देङ्. बडि. ग्शोग्. प. ब्रेल् ॥  
द्रेग्स्. पर्. बसो. बडि. बर्शिन्. दे. खोङ्. दु. छुद् ।  
व्यङ्. छुब्. शिङ्. दु. थुब्. पडि. स्प्योद्. लम्. ब्दे ॥  
शुस्. ल. बब्. पडि. ग्सेर्. म्गर्. ग्येङ्स्. दङ्. ब्रल् ।

बहुधा कूट भी रूप का आधार नहीं गन्दा ।

सच्छिद्र सा पीतल भस्म विषय ना रोकै ।

१०३. कला शोधन का प्रयास बाह्य क्रम ।

मृगजल में पानी की संज्ञा नष्ट ॥

काष्ठ अग्नि हो तो धुआँ निकले ।

दीपक प्रतिज्ञा ना होइ अग्निवाहक ।

१०४. पर्वतशिला के बीच मृगजल नहीं होइ ।

महामत्स्य चन्द्र-सूर्य प्रकाश-रहित ॥

वेदनीय रूप से खाली गवाक्ष के भीतर ।

पूर्व निमित्त में उदित मध्य-रात की रानी होइ ।

१०५. बी (?) औषधि पियेक आँख में रात नहीं ।

मन्दिरद्वार खुलते समय पूर्ति का रूप देखै ॥

पशु जम्बाल के हाथ का संकेत गंगा की दिशा में करै ।

मक्खी मधु-मद्य पी शरीर छींके पर ।

१०६. उठा फेंक फेन का नीचे ना डूबै ।

निकष-पाषाण परीक्षा पोत-गरुड़ नहीं ॥

रूपे के दर्पण बाहर स्पष्ट हुआ ।

चौकीदार वह आदमी, पहले-कर्म आचरण छोड़े ।

१०७. तुल्य दिशा में सर्वत्र उड़ के भी शयन स्थाने उड़ै ।

शिल्पकार तब निर्माणकाल समीप खींचै ॥

मांस-इच्छुक मनुष्य ने कहा उस हा ज्ञान देख ।

राजादेश देखते समय चित अभिमानी होइ ।

१०८. निर्विकार आकाश में गरुड़पक्ष का सम्बन्ध ।

मद हार जिमि सो भीतर रख ॥

बौधिवृक्ष के नीचे मुनिचर्या मार्ग का सुख ।

मांग के उत्तरा सोना किरण रहित ।

१०९. ग्युल्. दु. डल्. वडि. ग्लङ्. पो. ल्तोस्. दङ्. क्य ॥  
 ऽवऽ. यिस्. नोन्. पडि. रि. बोङ्.<sup>१</sup> चन्. मि. म्थोङ् ।  
 खोग्. चेस्. ब्कब्. पडि. मि. यि. दुद्. प. लुब्स् ॥  
 स्प्र. ब्सो. छर्. दुस्. म्थन्. पो. यङ्. यङ्. ल्त ।
११०. पर्. ति. क. न. गोग्स्. प. म्जऽ. दुस्. ऽवल् ॥  
 स्मन्. गिय. छोङ्. पडि. ऽगो. फ्योग्स्. ल्तोस्. शिग्. दङ् ।  
 गुन्. ऽब्रुस्. थङ्. म. मि. स्फुङ्. फ्योग्स्. ब्शिर्. बर्दल् ॥  
 ब्य. ब. सिन्. पडि. ज्. स्प्यद्. फिय.<sup>२</sup> छिस्. मिन् ।
१११. स्क्वेद्. मेद्. नद्. प. स्मन्. ग्शन्. ब्स्तेन् पर्. रिगस् ।  
 म्खस्. प. लङ्. पो. द्रग् दल्. गञ्जिस्. सु. स्प्योद्  
 बुस्. प. मि. सद्. शुन्. मर्. स्विन्. म. ब्य ॥  
 फग्. गि. ल्चे. यिस्. ख. म्ङर्. स्पङ्स्. नस्. ऽदुग् ।
११२. ब्रम्. स्. स्कुद्. प. ऽवल्. ब. ल्तोस्. शिग्. दङ् ॥  
 द्बऽ. क्लोङ्. ऽखुग्स्. दुस्. थब्स्. ल्दन्. ऽफ्योङ्.<sup>३</sup>दो. ऽदोग्स् ।  
 सु. शिग्. ब्दे. ऽदोङ्. स्त्रङ्. मडि. स्प्योद्. प. बोर् ॥  
 र्यल्. श्चिम्स्. छोस्. छे. ब्लोन्. पोडि. चर्ल् ब. शिग् ।
११३. नोर्. बु. लोन्. पडि. देद्. दपोन्. सेम्स्. लस्. ब्रल् ॥  
 र्यल्. पोडि. बु. मो. ग्शन्. गिय. र्यन्. मि. ल्त ।  
 स्वोङ्. दुम्. म. ग्सल्. शिङ्. त्तं. ऽगोर्. मि. ब्तुब् ॥  
 स्मन्. गिय. लो. ऽव्रस्. द्रङ्. स्रोङ्. बु. ल. स्तोन् ।
११४. ब्चो.<sup>४</sup> मडि. ऽो. ऽोद्. ल. ग्सेर्. म्खन्. म्दोग्. मि. ऽदोन् ।  
 स्फु. ग्नि. ति. ल. ल. दर्. ब्लुद्. मिग्. मि. ऽदोद् ।  
 बु. यि. स्त्रिद्. सिन्. र्यल्. पोडि. ब्य. ब. जोग्स् ॥  
 दुग्. छोर्. मि. द. ल्हग्. म. स. मि. ऽयुर् ।
११५. ब्रम्. स्. रिग्. ब्यद्. सोङ्. दुस्. ब्य. ग्शन्. ऽदोर् ॥  
 ब्चर्. मेद्. ब्स्त्रुब्. म. ब्स्कोर्. बर्. मि. ब्यऽो ।

१०९. देश में विनीत गज देख रे ।

मृग द्वारा विक्रान्त शश न देख ॥

महामंडप-मनुष्य को नमो कहै ।

समाप्ति समय आचार्य फिर-फिर देखै ।

११०. प्रतीक में प्रिय साथी काल-रहित ।

औषधि-बिक्रेता के जाने की दिशा देख ॥

द्राक्षा-स्थली पुरुष चारो दिशा स्थली असेचित ।

क्रियावान् द्रव्य चर्चा वाह्य संधि नहीं ।

१११. अपुत्पन्न रोग में अन्य औषधि कहना उचित ।

चतुर गज टहलते दोनों चलै ॥

फुफुकार न मार घरे दान न कर ।

शूकरजिह्वा से मधुर मुख छोड़े रखै ।

११२. ब्राह्मण का सूत्र पहनना देखै,

बेला वीचि प्रतिकूल काल में उठी ॥

जो कोई सुख चाहै मक्खी का आचरन छोड़ै ।

राजविधान के समय अमात्य बनौ ।

११३. मणि लेना सार्थवाह चित से छोड़े ।

राजकन्या दूसरे का भूषण ना देख ।

भंटा (रव) प्रकटे विना रथ नहीं जावै ।

औषध वर्ष का फल ऋषि पुत्र को बतावै ।

११४. जांबूनद पर सोनार रंग नहीं रंगैता ।

छुरा को तिल से तीक्ष्ण करने से छेद नही होवे ॥

पुत्र के राज्य संभाल लेने पर राजा का कार्य समाप्त है,

तीव्र विष आदमी जूठ ना खावै ।

११५. ब्राह्मण वेद पढ़ते समय दूसरा काम छोड़ै ।

निष्करण मथानी ना घुमावै ।



- ग्यल्. पो. ऽछि. दुस्. खिम्स्.<sup>५</sup> यिग्. ल. मि. ल्त ॥  
 नोर्. बडि. लम्. दु. ऽजुग्. पर्. मि. रिग्स्. सो ।
११६. नग्. छुर्. मि. द्गोस्. ऽजम्. बु. छु. बोडि. ग्सेर् ॥  
 पद्मं. ऽदम्. गिय. स्वयोन्. दङ्. ब्रलन्स्. ऽदग् ।  
 दग्. मेद्. रङ्. द्वङ्. थोब्. प. सेङ्. गडि. बु ॥  
 ग्ज्. शिङ्. ब्क्रोल्. बडि. म. ह. गर्. द्गर्. ऽग्रो ।
११७. र. म. शुग्स्. पडि. ग्सेर्. नि. गु. लङ्. म ॥  
 छे. र. म.<sup>६</sup> पियन्. पडि. शुल्. दे. ब्रु. ब. मिन् ।  
 चोर्. सो. प्येद्. पडि. दे. स्रोग्. मि. ऽदोन् ॥  
 शे. सो. शो. यिस्. ग्रङ्स्. प. ल. ल्तोस्. शिग् ।
११८. ग्सो. रस्. ड. वल्. ब्स्दम्स्. प. द्रग्स्. पस्. ऽछिङ्स् ॥  
 स्त्र. जन्. पडि. फग्. गोद्. ग्दम्स्. प स्तोन् ।  
 डन्. स्त्रस्. ब्स्तोद्. छिग्. ख्यद्. मेद्. दो. यि. मि ॥
- 61b स्मिग्. र्पुडि. क्लुङ्. न. छु.<sup>७</sup> थिग्स्. योद्. म. यिन् ।
११९. स्वये. दङ्. ऽछि. ब. मो. ग्शम्. बुस्. म. व्यस् ॥  
 म्दोग्. द्बिय्स्. थ. दद्. छु. ब्रन्. र्य. म्छोर्. ग्रोल् ।  
 नम्. म्खऽ. ल. नि. द्बुस्. दङ्. मु. म. म्छिस् ॥  
 रो. ग्जिस्. म्थोङ्. बडि. कङ्क. म्खऽ. ल. ल्दिङ् ।
१२०. स्तोब्स्. ल्दन्. सेङ्. गे. स्रोग्. गि. मेल्. छे. स्तोर् ॥  
 क्ये. हो. स्म्योन्. बडि. सो. स्कोस्. सग्म्.<sup>१</sup> दङ्. क्ये ।  
 च. स्प्यङ्. मिग्. ऽदि. डो. म्छोर्. छे. ब. यिन् ॥  
 म. ल. य. न. चन्दन्. मे. रु. ऽबुद् ।
१२१. सेङ्. गे. गङ्स्. दङ्. ब्रल्. बर्. मि. व्यऽो ॥  
 स्मन्. पडि. ग्यल्. पो. ग्सो. रिग्. लुङ्. दङ्. ऽग्रोग्स् ।  
 म्खन्. पोस्. लेग्स्. ग्सुङ्स्. द्गे. स्लोङ्. गिस्. मि. ग्तोङ् ॥  
 द्पऽ. बो. ग्युल्. दु. ऽजुग्. छे. गो. मि. ऽबुद् ।

- राजा की मृत्यु के समय विधान ना देखै ॥  
भूले मार्ग में रहना ना ठीक ।
११६. वनप्रान्ते न चाहिये जाम्बूनद सुवर्ण ।  
पद्मपत्र का दोष ना रहे ।  
शत्रु विना स्वतंत्रता प्राप्त सिंहकुमार ॥  
जूआ ढोता भैंसा नाचता जावै ।
११७. राम (जिसके) घुसा (सो) सोना हुआ है ।  
कंटक (निगल) जाने का सौ मार्ग वंचै नहीं ।  
चोर द्वार खोल के कई प्राण ना निकाले ।  
काचपात्र दही भरा दीखे ।
११८. भंग ऊँट केश से बँधा अहंकार बंधै ।  
शब्द सुन अरण्यशूकर बन्धन में बँधै ।  
दुहक्त स्तोत्रशब्द समान शिलापुरुष ।  
मृगतृष्णा नदी में जलविन्दु ना होइ ।
११९. जन्म-मरण बन्ध्यापुत्र ना करै ।  
वर्ण-आकृति-रहितहो नदी समुद्र में मुक्त ।  
आकाश के मध्य और सीमा नहीं ।  
दो शव देखता काक आकाश में उड़ै ।
१२०. बली सिंह को प्राण प्रहार समय का डर नहीं ।  
मैं अहो पागल देखता विचारो ।  
सियार की आँख यह महा आश्चर्य ॥  
मलय चन्दन आग में फूँकै ।
१२१. सिंह सर्दी का अभाव ना करै ।  
वैद्यराज चिकित्सा आगम औ साथी ॥  
पण्डित-सुभाषित (करना) भिक्षु ना छौड़ै ॥  
शूर युद्ध करते समय ना जानै फुफकारना ।

१२२. ऽप्रो.<sup>२</sup> व. व्सङ्. मोस्. ज्. व. सो. सोर्. ऽजिन् ॥  
 ग्येङ्. व. मेद्. प. दुर्. खोद्. द्बुस्. क्यि. मि ।  
 दुर्. खोद्. मि. यि. लुस्. डस्. थ. मल्. स्पङ्स् ॥  
 ल्तो. र्ग्यब्. शुग्स्. लस्. ऽव्युङ्. व. दुर्. खोद्. मि ।
१२३. दुर्. खोद्. मि. ल. फ. म. ख. म्छु. मेद् ॥  
 द्गोस्. प. म्दुन्. दु. ऽप्रुब्. प. दुर्. खोद्. मि ।  
 ग्लङ्. पोडि. ऽप्रो. स. ग्रम्. पडि.<sup>३</sup> ग्सेब्. म. यिन् ॥  
 मे. छुडि. द्ग्र. ल. छोद्. योद्. ब्यर्. मि. रुङ् ।
१२४. शिङ्. पस्. स. यि. म्दोग्. ल. लुद्. रिग्स्. स्व्योर् ॥  
 र्ग्यल्. पोडि. शब्स्. नस्. व्तेग्. छे. ब्कऽ. ल. ऽदोग्स् ।  
 क्ये. हो. स्तग्. छङ्. योद्. पडि. सर्. मि. ऽप्रो ॥  
 र्ग्यल्. पोडि. ब्कऽ. व्तग्स्. थोब्. दुस्. द्ग्र. दङ्. ब्रल् ।
१२५. न. छे. मेद्. पडि. दुस्. दे.<sup>४</sup> ब्दे. बर्. ग्नस् ॥  
 व्सङ्. डन्. ग्जिस्. ल. सस्. क्यि. म. छुन्. मेद् ।  
 म्य. डन्. ग्दुङ्. बस्. शि. बडि. बु. दे. म्थोङ् ॥  
 ब्जुन्. स्पङ्स्. द्रङ्. स्रोङ्. दग्. गि. फिन्. लस्. शुब् ।
१२६. ग्यद्. ल. रल्. ग्रि. व्तग्स्. ते. र्ग्यल्. पो. मञ्जेस् ॥  
 नग्स्. क्यि. स्त्रङ्. म. गि. वङ्. द्वि. ल. स्तोम् ।  
 म. गि. त. ल. व्सिल्. द्रोद्. नुस्. प. छङ्<sup>५</sup> ॥  
 चि. स्व्योर्. ऽथुङ्स्. पस्. लुस्. क्यि. सो. म्दोग्. ब्दे ॥
१२७. तिल्. छङ्. ल्तोर्. शोद्. रिग्. प. डर्. ग्यिस्. ख्योग्स् ॥  
 यिद्. व्शिन्. नोर्. बु. कुन्. ग्यिस्. ल्त. बर्. म्ज्जेस् ।  
 र्ग्यल्. नि. पो. ल. सु. शिग्. गोल्. बर्. नुस् ॥  
 बु. ग्चिग्. प. ल. म. स्त्रिद्. ग्दुङ्. सेम्स्. ल्दन् ।
१२८. शस्. छे. म्प्रोन्. ल. बोस्. प. गङ्. मि. ऽोङ् ॥  
 पङ्. दु. ऽोङ्. दुस्.<sup>६</sup> बु. ल. ऽ. म. द्गऽ ।

१२२. भद्र जगत परस्पर समीप गहै ।

ना बँधै गुहा के बीच का मानव ।  
गुहा मानव कायवाक् मल त्यागै ।

भक्षण पश्चात् शक्ति (युक्त) हुआ महामानव ।

१२३. श्मशानी मानव का चुगली मुकदमा नहीं ।

अभिलाषा सिद्ध श्मशानिक मानव ।  
गज गमन मार्ग में किनारा अन्दर नहीं ।

आग-जल-शत्रु को तप्त करना नहीं उचित ।

१२४. किसान भूमि के रंग-आगम-जाति से जुड़ा ।

राज-चरण से उत्क्षेप समये वचन-बद्ध ।  
अहा, बाघ की माँद की जगह न जावै ।

राजवचन पाये समय शत्रु नहीं ।

१२५. रोग न हो तो सुख से बसै ।

अच्छा बुरा दोनों में भोजन अजीर्ण नहीं ।  
शोकमग्न उस मरे पुत्र को देखै ॥

मिथ्या छोड़ि ऋषियों के आदेश से साधै

१२६. विक्रम में असि उठा राजा मुदित ।

वनमक्खी गोरोचन की गन्ध सूँघै ।  
मगित के शीतोष्ण में समर्थ चूलही ॥

श्रीषधयोग पीया देह के रचनावर्ण (से) सुखी ।

१२७. तिल शराब खाकर कुबिद्या स्वतः भागै ।

चिन्तामणि चारों ओर से देखने में सुन्दर ।  
राजा से कौन बाद कर सकै ॥

एक पुत्रवाली मौसी ज्वर चित्तयुक्त ।

१२८. पूछते समय पथिक को बुलावे, जो न आवै ।

गोद में आये समय पुत्र की माता खुश ।

नम्. म्खऽ. दडस्. पऽि. डड. ल. द्रि. म. मेद् ॥

छेग्स्. मेद्. ग्न्द. ऽफ्रोद्. रिग्. ब्येद्. ग्सेर्. ऽग्युर्. चि ।

१२६. ग्लड. पो. म. म्थोड. फग्. पऽि. लुस्. द्ब्यिबस्. लतोस् ॥

दम्न्. पऽि. लस्. ल. मि. शुग्स्. गंयल्. पोऽि. लुग्स् ।

बे. दऽि. ऽज्रस्. बु. सु. बोन्. दुस्. सु. ऽगुब् ॥

62a मं. ब्यऽि. म्दोडस्. ल. ऽद्रि. म्खन्. योद्. म. यिन् ।

३०. थुब्. द्बड. लग्. गि. दो. जे. ब्स्कयोड. मि. नुस् ॥

ऽदम्. नस्. ब्तोन्. पऽि. उत्पल्. लतोस्. दड. क्ये ।

ब्दे. व. दड. ल्दन्. सेर्. स्कयर्. ग्जिद्. लोग्. दुस् ॥

रड. ख. थोन्. प. ऽजम्. बु. छु. बोऽि. ग्सेर् ।

३१. छब्. रोम्. रड. ब्शिन्. छु. यि. डो. बो. यिन् ॥

स्बल्.<sup>१</sup> पऽि. स्पु. यि. ल. व. ग्सेर्. जिड. ब्रल् ।

दम्. ग्यि. क्येन्. ग्यिस्. पदम्. ख. दोग्. गुडस् ॥

थबस्. क्यिस्. छुन्. छे. दे. दुस्. द्ग्र. दे. ब्शेस् ।

१३२. र्ग्यल्. मो. क. रऽि. ग्स्. ग्स्. ल. थ. दद्. मेद् ॥

छु. जिद्. र्ग्यं. म्छोऽि. र्ग्यं. म्छो. दड. जिद्. छु ।

चि. यिस्. सिन्. पऽि. मि. दे. रि. बो. म्गुल् ॥

द्बऽ. लंबस्. छे. ऽज्रिड. ग्चड. पोऽि. द्ब्यिडस्. ल. थिम् ।

१३३. मुन्. प. दग्. पर्. ब्येद्. प. मर्. मेऽि. ऽोद् ॥

शग्. मिग्. प. ल. जि. म. मुन्. पर्. ब्स्त्रोस् ।

स्मद्. ऽछोड. बु. सु. यि. रिग्स्. र्ग्युद्. यिन् ॥

दुर. छ्रोद्. चे. स्प्यड. छड. ल. म्डोन्. शेन्. मेद् ।

१३४. ग्दोन्. ग्यिस्. बर्लम्स्. पऽि. ग्तम्. दे. स्त. छोग्स्. स्म ॥

ब्यिस्. पऽि. रड. ब्शिन्. ग्चिग्. तु. ऽदुग्.<sup>३</sup> मि. ऽग्युर् ।

नग्स्. क्यि. रि. दग्स्. शिड. ब्रुऽि. फ्योग्स्. रिस्. स्पडस् ॥

ल्ह. र्जस्. रिन्. छेन्. नुस्. प. सु. यिस्. ब्यिन् ।

अच्छे आकाश का हँस निर्मल ॥

निरुपद्रव पथ्य-वेद सुवर्ण होइ ।

१२९. गज न देख शूकर देह की आकृति देखै ।

वैद्यकार्य में रहे राजा की नीति ।

सुखफल बीज के समय सिद्ध ।

मोर की पिच्छ का चित्रकार नहीं होइ ।

१३०. मुनीन्द्र के हाथ का वज्र पाल ना सकै ।

पंक से निकला उत्पल देख रे ।

सुखावती कपिलवस्तु निद्रा से उठते समय ।

अपने मुख से निकला जाम्बूनद सुवर्ण ।

१३१. ओले का स्वभाव है जलवस्तु ।

मँढक के रोम का कम्बल न नया न पुराना ।

उपाय से जाने तो वह शत्रु है मित्र ।

पंक के कारण पद्म का वर्ण धुला ॥

१३२. रानी शक्कर के रूप में भेद नहीं ।

पानी हो समुद्र और ही पानी ।

औषधि ग्राही सो मानव पर्वत के समीप ॥

महामध्यम बेला नदी धातु में विलीन ।

१३३. तम शोधे दीप-प्रभा ।

अन्धे को सूर्य अन्धेरा करे ।

वेश्या का पुत्र किस जाति का है ।

गुहा में सियार पूरा अभी प्रविष्ट नहीं ।

१३४. सन्देही दुर्वचनकथा नाना कहै ।

बाल-स्वभाव एकत्र न रहै ।

वन-मृग फल की ओर झुण्ड त्यागै ।

देव द्रव्य रत्न को शक्ति कौन देवै ॥

१३५. नोर्. बु. रिन्. छेन्. थोग्. मर्. गङ्. नस्. ऽड्डस् ॥  
 यिद्. ब्शिन्. नोर्. बुस्. द्गोस्. ऽदोद्. स्तेर्. म. म्योङ् ।  
 म्छोग्. गि. नोर्. बुऽि. रिन्. थङ्. स्मोस्. क्यङ्. क्ये. ॥  
 नोर्. बुऽि. ब्दग्. पो. द्बुल्. बऽि. स्दुग्.<sup>४</sup> ब्स्डल्. ब्रल् ॥

गर्घं. छेन्. पोऽि. मन्. डग्. वीं. जें. गसङ्. बऽि. म्गुर्. शेस्. ब्य. ब.  
 नल्. ऽत्रोर्. गिय. द्बङ्. पयुग्. द्पल्. स. र. ह्. पऽि. शल्. नस्. गुसुङ्गस्. प. जोग्स्. सो ॥

गर्घं. गर्. गिय. म्खन्. पो. क. म. ल. शी. ल. वङ्., बोद्. किय. बन्दे. लो. च. ब. श. म  
 स्तोन्. प. सेङ्. गो. गर्घं. ल. पो. ब्दग्. चिङ्. श्. स्. ते. ग्. ल. फब्.<sup>५</sup> पऽो ॥

१३५. मणिरत्न आदितः कहाँ से आवै ।

चिन्तामणि लोभ की इच्छा नहीं छोड़े ।

उत्तम मणिका मूल्य सूचित करै तो रे ।

मणिका पति प्रदाने दुःख-विना ॥

॥ इति योगेश्वर श्रीसरहमुखकथित 'महामुद्रोपदेश' वज्रगुह्यगीति नाम समाप्त ॥

॥ भारतीय आचार्य कमलशील और भोट के वन्दनीय लो. च. व.श.म. स्वामी  
सिंहराज द्वारा अनुवादित लिखकर निर्णीत ॥

---





## १५. चतुर्गुह्य दोहा

(भोट और हिन्दी)

## १५. चित्तगुह्य दोहा

(१) स्तन्. ऽग्गुर्. ग्युद् (पृष्ठ ६७ क३—७१ क ७) में 'चित्तगुह्यदोहा' ('थुग्स्. किय. ग्स्ड. ब. ग्लुर्. ग्लडस्. प) ग्रंथ है, जिसमें निम्नलिखित सिद्धों और दूसरों की सूक्तियाँ हैं—

सरह, नागार्जुन, प्रराँफल, शांतरक्षित, स्थिरमति, वागीश्वर, वज्रघंटा, शंकर, शांतिपा, विरूपा, ज्ञानपाद, शान्तिदेव, ज्ञानगर्भ, निरुपा, कालपा, भूसुक, लुइपा, कृष्णपा, इन्द्रभूति, रत्नकीर्ति, कौकर्त, सहज, महागजचर्म वसुधर, हेरुक, कनकोति, रविमूल, रत्नवज्र, त्रेउत्र, अनंगवज्र, जवरीपा, कंबलपा, गुदरीया, डोम्बिहेरुक, रविगुप्त, गुण(म)ति, पद्मवज्र, ज्ञानश्री, परहित, कामश्री, मि. थुब्. स्. ल. ब (अलाभ चंद्र), जालन्धर, मैत्रीकमल, पद्मवज्र, नागबोधि, मंजुमित्र, राजहस्ति, भद्रश्री, लीलाभद्र, मधूतिय, दारुपर्ण, शबरीपा आदि ।

इसमें सरह का निम्नलिखित दोहा मिलता है—

(ब्रम.से. छेन्.पो. सरहस्. थुग्स्.किय.तोंग्स्.प. म्गुर्. डु. ब्शेडस्. प.)

१. क्ये. हो. ऽखोर. ऽदस्. कुन्. ग्यि. च्. व. सेम्स्. किय. रड. ब्शिन्. ते ।  
 तोंग्स्. न. स्गोम्. दु. मेद्. किय. म. ब्चोस्. लहुग्. पर्. शोग् ॥  
 रड. ल. ब्शग्. नस्. शन्. लस्. छोल्. ब. अ. रे. ऽश्रुल् ।  
 ऽदि. यिन्. ऽदि. मिन्. मेद्. दो. थम्स्. चद्. ग्ज्ग्. मडि. डड ॥  
 इस संग्रह में सबसे पहिले 'सरहपाद' का दोहा दिया गया है ।

अनुवाद के बारे में लिखा है—“थि ग्. ले. दग्. पडि. फ्रेड्. ब. शस्. व्य. ब.  
 गुब्. थोब्. ब्ग्ग्. चुडि. तोंग्स्. बज्जोद्. प. म्खऽ. ऽग्रो. मस्. यि. गेर्.  
 ब्तब्. स्ते. ग्स्ड. म्जोद्. न. ग्न्स्. प. लस्. द्द्विडस्. किय. च्. मो.  
 नम्स्. कियस्. बकऽ. ब्ग्रोस्. नस. ज्. दम्. प. र्थ. गर्. ल. ग्न्ड. ब. श.  
 म. लो. च. बस्. लेग्स्. पर. ब्स्गुर्. बऽो” ॥

(२) इससे आगे\* श. म. लोचव द्वारा अनुवादित “थुब्. थोब. लड. ब्चुडि.  
 तोंग्स्. प. बज्जोद्. प. थिग. ले. ऽोद्, किय. फ्रेड. ब.” (७१ ख १-७४  
 क ८) है, जिसमें निम्नलिखित सिद्धों और दूसरों की उक्तियाँ हैं—आर्यदेव,

\*पृष्ठ. ७१ ख १-७४ क ७ ।

## १५. चत्तगुह्य दोहा

(हिन्दी)

नमो मंजुश्रियै कुमारभताय ।

महान् ब्राह्मण सरह ने कर्णायुक्त (यह) अवबोध.गीत रचा ।

१. अहो संसार से परे सर्वमूलचित्त का स्वभाव सोह ।

समुझ ध्यान में मथे विन मुक्त होइ ।

अपने को रखके अन्य का अन्वेषण अरे भ्रम ।

'यह है', 'यह नहीं', सब निज टूटै ।

## १५. चित्तगुह्य दोहा (भोट)

नागार्जुन, वज्रघंटा, लूइ, शान्तिदेव, भिसपा, ग्योग्.पो. ल्जोन्.प. चन्  
 (दास गुहावाला), अवधूतिपा, शबरीश्वर, ज्ञानपाल, लीलापा, रविगुप्त,  
 धरणीधर, बिन्स, (?), दिङ्नाग, वज्रघंटा, लीलाभद्र, नागबोधि, तोग.  
 चे.प (कुदालिपा), कालपा, भिनपा, पद्मांकुर सरोरुहवज्र, (सरह), गुदरी  
 तिलोपा, नारोपा, कृष्णपा, भद्रुल, डोम्बिहरेक, कनपा, बग्धवज्र, कंबल,  
 प्रज्ञाफल, श्रीवत्स, अद्रद्यगुप्त, इन्द्रभूति, कपचरी, कुलमरि, रत्नबोधि,  
 पदमवज्र, रमफल, नागबोधि, कर्मवज्र, चन्द्रकीर्ति, सुकरसिद्ध, ज्ञानवज्र,  
 सरोरुहवज्र (?सरह), रत्रित तथा बहुत-सी डाकिनियाँ । सरोरुह सरह का  
 दूसरा नाम है, इसलिए यहाँ इस नाम से उद्धृत पद्य शायद सरह ही का हो ।  
 पद्य निम्नलिखित है—

१. ल्ते. व. म्खऽ. द्व्यिङ्स्. ग्रु. ग्सुम्. दु ।  
 रिग्. पडि. ल्ह. मोडि. स्कुर्. ग्सल्. ते ॥  
 ऽोद्. सेर्. स.प्रो. व्स्दुस्. ऽग्रो. दोन्. व्येद् ।  
 स्कु. ग्सुम्. ग्शन्. नस्. ब्चल्. मि. द्गोस् ॥

और

२. द्पे. यि. ये. शेस्. म्छोन्. दु. मेद् ।  
 दोन्. गिय. ये. शे. स्. स्पोम्. दु. मेद् ॥  
 थब्स्. किय. मन्. डन्. स.ग्र. रु. मेद्. ।  
 ब्ल. मडि. द्विन्. लन्. ऽखोर्. थब्स्. मेद् ॥

सरोरुहवचने--

१, नाभि गगन धातु के त्रिकोण में ।

अम्ल विद्यादेवी प्रकटै ।

प्रभा उत्साह का संग्रह जगत् के अर्थ करै ।

त्रिकाय को अन्यत्र ढूँढ़ना नहीं चाहिए ॥

२. उपमा ज्ञानवेदने नहीं,

अर्थज्ञान ध्याने नहीं ;

उपाय-उपदेश स्मरणे नहीं,

गुरु कृपा उत्तर चक्र उपाय नहीं ॥

—इति कहा

---

# १६. सरह के पद

(मूल, छाया)

## १६. सरह के पद

दाहा, चौपाई के अतिरिक्त सरहपाद ने कितने ही गीत भी रचे हैं, जिनकी संख्या काफी रही होगी, पर हमारे पास तक उनमें से थोड़े ही पहुँचे। गीतों के साथ उनके रागों को भी दिया गया है, जिससे यह भी पता लगता है, कि यह परिपाटी ईसा की आठवीं सदी में भी प्रचलित थी। राग गुंजरी शायद गुर्जरी है, भैरवी आज भी एक प्रसिद्ध रागिनी है, मालसी मालवश्री है, द्वेशाख भी एक पुराना राग था। भूमिका में हम बतला चुके हैं, कि सरह के साथ हमारे साहित्य में बहुत-से नये तत्व प्रविष्ट होते देखे जाते हैं। क्या इसी (अपभ्रंश-)काल से राग-रागनियों की परिपाटी तो शुरू नहीं हुई ?

चर्या-पदों के पुराने पाठ के लिए हम अधिक अच्छी स्थिति में नहीं हैं। नेपाल या भारत की जो प्रतियाँ मिली हैं, वह उस समय की हैं, जब कि भूतकाल का 'इल' प्रत्यय प्रचलित हो चुका था। सरहपाद से ५-६ शताब्दियों बाद उनके गीतों में भारी परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है। मीराबाई के शुद्ध राजस्थानी पद कैसे विकृत रूपों में मिलते हैं, यह मालूम ही है। 'चर्यापद' के लिए बहुत खींचातानी की आवश्यकता नहीं है। बोधि-चर्या की तरह सिद्ध-चर्या या वज्रयान-चर्या भी रही है। चर्या का अर्थ आचरण, अभ्यास या अनुष्ठान है; दिन-चर्या कहते हम उसी भाव को हिन्दी में देखते हैं। नेपाल के बौद्ध अपनी गुप्त पूजा को 'चर्या या 'चचा' कहते हैं, जिसमें ये पद गाये जाते हैं। इसीलिए इन्हें चर्या-पद कहा गया। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संपादित चर्यापदों में निम्नलिखित चार सरहपाद के हैं—



## राग-गुंजरी

(१)

अपणे रचि रचि भव-निर्वाणा ।  
 मिछें लोअ बन्धावइ अपणा ॥  
 अन्हें ण जाणहुं अचिन्त जोई ।  
 जाम मरण वि कइसन होई ॥  
 जइसो जाम, मरण वि तइसो ।  
 जीवन्ते मइलें नाहि विशेसो ॥  
 जा एथु जाम मरणे विसंका ।  
 सो करउ रस-रसानेरे कंखा ॥  
 जे सचराचर तिसअ भमन्ति ।  
 ते अजरामर किमपि न होन्ति ॥  
 जामे काम कि कामे जाम ।  
 सरह भणइ अचिन्त सो धाम ॥

(२)

## राग—देशाख

नाद न बिन्दु न रवि न शशिमंडल ।  
 चिअराअ सहावे मूकल ॥  
 उज रे उजु छाड़ि मा लेहु रे वंक ।  
 निअहि बोहि मा जाहु रे लंक ॥  
 हाथेर कांकण मा लेहु दापण ।  
 अपणे अपा बूझते निअ मण ॥  
 पार-उआरें सोई गाजइ ।  
 दुज्जण संगे अवसरि जाइ ॥  
 बाम दहिण जो खाल-बिख (१) ला ।  
 सरह भणइ बापा उज बाट भाइला ॥

(१)

निज मने रचि रचि भव निर्वाणा ।  
 वृथा लोक बँधावै अपना ॥  
 हम न जानै अचिन्त योगी ।  
 जनम मरण कैसा होई ॥  
 जैसा जनम मरणहु तैमा ।  
 जीवत मरत नाहि विशेषा ॥  
 जो यह जनम मरण की करे शंका ।  
 सो करै रस-रसयन काँछा ॥  
 जे सचराचर तृषित भ्रमन्ति ।  
 ते अजरामर किमपि न होन्ति ॥  
 जनमे कर्म कि कर्मो जन्म ।  
सरह भनै अचिन्त्य सो धाम ॥

(२)

नाद न बिन्दु न रवि न शशिमंडल ।  
 चित्तराज स्वभावे मुक्त ॥  
 ऋजु रे ऋजु छाडि ना लेहु रे वंक ।  
 नियरे बोधि, ना जाहु रे लंक ॥  
 हाथे रे कंकण ना लेहु दर्पण ।  
 अपने आप बूझहु निज मन ॥  
 पार-वार सोई गाजै ।  
 दुर्जन-संगे डूबे जाये ॥  
 बायें दाहिने जो खाल-बेखाला ।  
सरह भनै बप्पा ऋजु बाट भइला ॥

(३)

राग—भैरवी

काअ णावडि खाण्टि मण केडुआल ।  
 सद्गुरु-वअणे धर पतवाल ॥  
 चीअ थिर करि धरहु रे नाइ ।  
 आन उपाये पार न जाइ ॥  
 नौवाही नौका टानअ गुणे ।  
 मेलि मेल सहजे जाउ ण आणे ॥  
 वाटत भअ खाण्ट वि बलआ ।  
 भव उलोलें सब वि बोलिआ ॥  
 कूल लइ खर सोन्ते उजाअ ।  
सरह भनै गअणे समाअ ॥

(४)

राग—मालशी

सुइणेंहो विदारिअ निअ मन तोहरे दोसे ।  
 गुरु-वअण-विहारें रे थाकिब तइ घुण्ट कइसे ॥  
 एक ट भवइ गअणा ।  
 बड्गे जाया निलेसि परे भागेल तोहोर विणाणा ॥  
 अदभुअ भव मोहो रे दीसइ पर अप्पाणा ।  
 ए जग जलबिम्बकारे सहजे सून अपणा ॥  
 अमिअ अच्छन्ते विस गिलेसि रे चिअ परबस अपा ।  
 घरें परेक बुझ्झिले रे खाइब मइ दुठ कुण्डवाँ ॥  
सरह भणन्ति बर सून गोहाली कि मो दुठ बलन्दें ।  
 एकेले जग नाशिअ रे बिहरहु सुच्छन्दे ॥

(३)

काया नावड़ी खाँटी मन केडुआल ।  
 मद्गुरु-वचने धरु पतवार ॥  
 चित्त थिर करि धरहु रे नाव ।  
 आन उपाये पार न जाव ॥  
 नौवाहक नौका टानै गुणे ।  
 मेलि मेल सहजे जाहु न आने ॥  
 बाटते भय, दस्यु बलवान् ।  
 रव हिलोरें सर्व कंपमान ॥  
 कूल से खर स्रोते उजाय ।  
सरह भनै (ज.इ) गगने समाय ॥

(४)

सपने न विदारि अरे निज मन तोहरे दोसे ।  
 गुरु-बचन बिहारे रहव तैं मूढ़ कैसे ॥  
 अद्भुत हुंकार-भव (चित्त) गगने ।  
 (अद्वय) वंगे लीलेसि जाया परे भागल तोर विज्ञान ॥  
 अद्भुत भव-मोह रे दीसइ पर आपना ।  
 एङ्ग जग जल-बिम्बाकार सहजे शून्य अपना ॥  
 अमिय अछतै विष गिलेसी रे चित्त परवश आपा ।  
 घरे परैक बूझी रे खाइव मैं दुष्ट कुंडवा ॥  
सरह भनै बरु सूनी गोशाला कि मोर दुष्ट बलदा ।  
 अकेले जग नाशिय रे बिहरहु स्वच्छन्दे ॥  
 ॥ इति रहस्य सांस्कृत्यायन-सम्पादित सरह दोहाकोशावलि समाप्त ॥



## परिशिष्ट १

१. विनयश्री की गीतियाँ१-

(१)

2a निमूल तरुवर डाल न पाती ।

निभर फुल्लिल्ल पेखु विआती ॥ ध्रु० ॥१॥

भणइ विनयश्री नोखौ तरुअर । फुल्लए करुणा फलइ अणुत्तर ।

करुणामोदें सएलवि तोसए । फल संपतिएँ से भव नाशए ॥२॥

से चिन्तामणि जे जइ स वासए । से फल मेलए नहि<sup>२</sup> ए साँसए ।

वर गुरुभक्तिएँ चित्त पबोही । तहि फल लेहु अणुत्तरबोही ॥३॥

गेल्लिअहुं गिरिसिहर रि जात्ते<sup>३</sup> । तहि झपाविल्लि कलिके अन्ते ॥ ध्रु० ॥

हल कि करमि सहिएँ एकेल्लि । विसरे राउ लेल्लइ लिसु पेल्ली ।

तहि झपइ ट्ठे<sup>४</sup>ल्लि हेरुअ मेले । विसअ बिसइल्लि मा छाडिय हेले ।

भणइ विनयश्री वरगुरु बएणे । नाह न मेल्लप रे गमणे ॥४॥

(२)

राहुअें चान्दा गरसिअ जाबें । गरुअ संबेअण हल सहि ताबें ॥ ध्रु० ॥

भणइ विनयश्री नोख बिनाणा । रवि साँजोएँ बान्ह गहणा ।

वान्द गरसिल्ले आन्न न दिशइ । सएल बिएक रूअ पडिहारइ ॥

साब् गरासिउ आध राती । न तहि इन्दी विसअ बिआती ॥

कइसो आपु व गहणा भइल्ला<sup>२</sup> । सम गरसेँ अथवण गइल्ला ॥५॥

(३)

गिरिवर सिहरेहि लाला लाम्बए । तहि सो<sup>३</sup> केवटिणि रिभर जागए ॥

अरे भल्लि केवटिणि जाण विचारअ । माआ माच्छ निरन्तरें मारअ ॥

१. तालपत्र का फोटो-लेट मिलाओ ।

द्वतिश नाला साब्ब निरुन्धी<sup>४</sup> । मारअ माच्छा निसर वान्दी ॥  
माआ माच्छा आगे म विभाक्खी । आच्छइ चउमुह जाला राक्खी ॥  
अइसि केवटिणि सो पडिहा ।

(४)

4a खाने पाने जो कोइ राता । सरुअर हिअ बट भमइ उमता ॥ ध्रु० ॥  
भन्तिएँ रे भन्तिएँ जग अइसे वहिउ । आपणु रचि रचि बानुण लाइउ<sup>१</sup> ॥  
चउकोडि रहिआए सुखसाला । तथत रहिअ मूढ भमन्ति ते काला ॥  
मान छडिआ सदगुरु से कह । जे सो तथता सरूअं पावह ॥  
चउक खलभलि आ<sup>२</sup> एल विवहिउ । सदगुरु पुच्छिया आपाण न चाहिउ ॥ ० ॥

राग—बनाडी

जिम अन्धारें रज सो माया । तिम सो मुणहु रे सएलवि आपा<sup>३</sup> ॥ ध्रु० ॥  
परम विरम माअें जो कोइ लागा । आहवा णिअ जिम बोहिते भागा ॥  
जिम नउ भासइ विबिरपसि उदधि । तिम लोअ भासइ तथता रिद्धि ॥  
चउ खशमु हलहु रे ठाए एक वि ठाणा । तावें जइ पावहु सिरि माहाजा<sup>४</sup>णा ॥  
सरुअ भणइ हंसु मुअइसे नाइ ।  
पण्डिअ बएणें हत्थुअ हमें थाक ।  
किसे . . . भेअ भावाभाव । पडिबख रहिआ सहज सहाव ॥  
4b चउ धाउ पाञ्च कान्ध छअे बिसया । सअेल वि अमणेसि करि रे माया ॥ ध्रु० ॥  
गाह्य गाहक रहिअ त्रिहुण बिलसइ । सहज मुणेन्त पडिबख नासइ ॥  
शुनासुन भणिव न जाइ । सहज सहावे सो पडिहाइ ॥  
गाह्य गाहक जइ अेक न ठाणा । सावग कइसे<sup>२</sup> जिणधर राणा ॥  
अवधू भणइ अइस माण्डल चाका । ए जग सएल विसह जनि विता ॥  
तिहु ण फारिउं एवउ चाकें । पडिबख कम्म<sup>३</sup> मुणि सहज रे जाकें ॥ ध्रु० ॥  
अइसि चंडाली तिहुणे दिट्ठ । अहनिसि करुणा पीवइ बइट्ठ ॥  
आन समरोग निवारणें अतिनि । सएल साहारे<sup>४</sup> सहज भतिनि ॥  
जाव सो गएणें दाढा । पडिबखधाम तवे सएल वि भागा ॥

अइसि चण्डालिहि जइ हिअहि पसइ । पखापख सए हेल बिनासइ<sup>५</sup> ॥  
सरुअ भणइ दे बहु बिह भाङ्गगे । सदगुरु पुच्छि जाणहु चांगे ॥

(५)

6a खमणा खमणिअें बाला वाली । खमणएँ खमण्डल भाषअ हाली ॥  
विरही खमणी अइसु पमाणें । खुधी पइसइ घोर ममाणें ।  
भणइ विनयश्री खमणि दिठी । खमणा च्छाडि न खणवि संतुट्ठी ॥  
सिहर तलाम्बीचउ मुह घाटा । तहिं नइ बोधिए पडिल पाटा ॥  
भणए विनयश्री धोत्रिणि सेठी । सरुअ<sup>२</sup> पक्खाले सम्भोअें पइठी ॥ ध्रु० ॥

(६)

भैरम्भेहें पीउ सोहइ चौरस । पाञ्चै बान्ने पखालइ समरस ॥  
धोअे असेसवि नालइ मूल<sup>३</sup> । थूल सरुअ निखारअ तुल्य ॥  
गाल्लीअ च्छाडी अस मुह बोलअ । जान्तहि डीअ विसेसें गालअ ॥ १६ ॥  
उल्हसी घोर मसाण त्रि<sup>३</sup> माजअ । अणह! घणहण कीविउ वाजअ ॥  
अे भल्ल विनयश्री साम्भोअे नाचअ । जिण गुण सुन्दरि काण्ठें न मूचअ ।  
धीरवीरसरि गोन्दल बाटअ । साम्बइ नि भर चाक पएटअ ॥

6b निहर रमहु सो गुञ्ज न तुटअ । तहिं बल खाजइ नि<sup>६</sup> रांगुअ रजिअ ॥  
सुद्ध कलिजर दुदुर बजिअ ॥ २० ॥

(७)

आलि कालि जे करिआ दवडी । माथें गोआलिणि बेनिअ जोडी ॥ ध्रु० ॥  
दुट्ठ गोआलिणि<sup>१</sup> देइ न बिकए । भणइ विनयश्री आपणे भखए ॥  
ए घोल पाणी करिआ आसार । लेइ सिणेहा एकाकार ॥  
आपु वस हठाणें<sup>२</sup> गोआलिणि डोलअ । बिबरिअ करणे णवणी तोलअ ॥  
आन से मान्थअ भेद् दे नाली । अहन्निशि ससहर बहुअे खणाली ॥ २१ ॥

(८)

नअरवाहरें ताम्बोलिणी पाडा । चउपह माझे ताव पसारा ॥ ध्रु० ॥  
वइठी पसारए देइ न बिकए । भणइ विन(य)श्री आपणे<sup>४</sup> भाखअ ॥



सहिअे ताम्बोली ताम्बोल विलइअा । घरवि पोशइ पगरा दइअा ॥  
सएँ विकए सएँ आपणे कीणअ । सएँ कु आपान सो सएँ समाणअ ॥  
विशअे र माँझे मे पवराण । सदगुरु वोहे तासाम्भेएँ<sup>५</sup> जाणा ॥

(९)

7a मेहलि चण्डाली घरवि बाम्हण । जग बिटालन्ती ते दुइ लाम्बल ॥ ध्रु० ॥  
हल सहि का मञ्चिअचा भुअ दिट्ठा । वाह्माण मणुस चण्डालिएँ तुट्ठा ।  
अइसिनि राजक माणल दिशइ । माउग चण्डाली वाह्माणेँ पइसइ ॥  
देखु चण्डाली र वाह्माणेँ जार । पञ्चि वान नेल्ल एकाकार ॥ २३ ॥  
ते दुइ नासन्ति सम साँजोअे । भणइ विनयश्री सदगुरु वोहेँ ॥

(१०)

हे हेरु न जाणमिलाज्ज । शुनने अछिल्लाएँ किम काज्ज ॥ ध्रु० ॥  
उठ राउल माण्डल राज । ताञ्चि वि<sup>३</sup>णु हेर न सिज्झए काज्ज ॥  
पञ्चअ डाकिनी जे पञ्चअ संचोएँ । प्रलल आहेँ हेरुअ वोहए ॥  
विश डाकिणि<sup>४</sup> जे विशएँ राती । हेरुअ वोहए ले विआती ॥  
बेन्नि डाकिणि मीले करन्ती सो । ठार उठहु भव हीहीकार ॥  
भणइ विनयश्री हेरु<sup>५</sup>अ लाडका । धणु परहाथ कवाल खड्ड का ॥ ३४ ॥

(११)

देव राग :

आड् ना बेरी खाणि णिवाणी । होल बाहइ उज्झाइ पाणी ॥ ध्रु० ॥  
अणहा घणहण वाजइ तूर । पइसइ खाण्ठणी परच कपूर<sup>६</sup> ॥  
भजर भेलो सहि सासेँ वडिल्ली । समुद माझे खेल<sup>७</sup>इ नावा हेल्ली ॥  
काच्छि कण्हिला करिआउ घाडा । जिणि आपइ टोलि चउमुह डाढा ॥  
भणइ विनयश्री खाण्डिणि<sup>८</sup> लइअा । सुह भुञ्जहुं निराल होइअा ॥ ३५ ॥

(१२)

हल सहि घोर मंसाणविहारी । तहि पइसि नाचए नै<sup>९</sup>रामणि दारी ॥ ध्रु० ॥  
भणए विनयश्री पेख रे पेखुण । लाख ख लाख कनो ख विलासण ॥

नावए दारी करण विसेसे । इन्दी पाञ्च भूअ सम तोसें ॥  
सुह वस लोली ना लेन्ते सोहअ । विसअ विसइण्णा समर सबोहअ ॥  
सोन्ने रूपे बिभू<sup>३</sup>सिअ नारी । नाचए बिहारें से कुल दारी ॥३६॥  
चन्दा आदित जे समसरस जोए ।

( १३ )

मल्लार राग :

हउं बाह्मण गिरिकुंज निवासी । दुठ चण्डाली<sup>१</sup> ए लइल्लाहु पइसी ॥ध्रु०॥  
भणइ विनयश्री एकली काले । समरस भइल्लाहु वाह्मचण्डाले ॥  
वहिलि समिर<sup>२</sup>णें कुंजअ पइसअ । से आच्छे पिणे मो कुल नासअ ॥  
सहल सहिआ पुव पेखु इन्दि आली । हउं<sup>३</sup> बाह्मण से मेहलि चण्डाली ॥  
से आणुराती चण्डाली रे देख । वेनि संजोअे असेस वि एक ॥२०॥

( १४ )

गवरी राग : शबरी<sup>४</sup>

एकै ता मै नावग दित्ता । पाँच जण वाहिवा कएल्ला ॥ध्रु०॥  
भणइ विनयश्री हमु कण्णाहर । जिण आं जाए थम चउमु<sup>५</sup>ह पार ।  
ललना रसना बे न पाताका । णेहा घाल्ल लाइल चउचाका ॥  
खर सो आणहिं नरु बढिअ । अलि-कलि दुइ गुणे<sup>१</sup> कढिअ ॥  
हमु कण्डा हरण भिडि नलाधम । पाञ्चन वाहि तिण आवा हम ॥  
सोन रुपे हं भरल्लि नाव । कुञ्ज तवइ णिअ<sup>२</sup> रूप म लाव ॥३॥

( १५ )

बाहडी राग :

सर सांजोइअ विन्धहु लाख । तुट उपाए पाखापाख ॥ध्रु०॥  
भणइ<sup>३</sup> विनयश्री पखवि लाखण । बेह नवेह क समसुह लाखण ॥  
नीचण विनाणी लाख तवे जाए । गरुअ संबेअण आन कि सिज्झए ॥  
अइस विनाणी सो पडिहासअ । हल ख बिन्धी अण्प सवि तोसअ ।

२. सुमङ्गीत<sup>१</sup>—

अखंड पयंड मोह दण्ड खण्ड मज्जिलें । काण्ड कोदण्ड नीलोपपल सज्जिलें ॥  
जयपि देव मंज वज्जवीरा<sup>१</sup> । रापि जणु अण्ण दिण दीप सबोही ॥ ध्रु० ॥  
चंद चंदन मलिणें कुंकुम कत्थूरि णाणा वल लिणें<sup>२</sup> ॥ ध्रु० ॥  
भणयि सुमयि मयि तुहा पय सरणा ।

दहयि मोह महु तिण जिम दहणा ॥ ध्रु० ॥

रमणिजण मण रम<sup>३</sup>ण मंजरव वीरा ।

गयण सम जरामरण समर हर वधीरा ॥

अवनिनिहित जानु सव्यहस्ते कखड्गतदितर कर मुण्टौ तर्जनीसक्तपाशः  
निविड धन शरीरश्चण्डरुक्चण्डचक्षुःशमयतु तव विघ्नं विघ्नहर्ताऽचलोयं  
जयि मुणिराजदेव मंजहु मारा ।

रयिजणु<sup>४</sup> अणुरापप धम्मं गंभीरा ॥ ध्रु० ॥

गयि शरण सयल भय हरिह किअ बोही ।

उरु करुण गुरुचरण<sup>५</sup> णीमय गुण सोही ॥ ध्रु० ॥

३. लुइ गीति<sup>२</sup>—

[तालपत्र सवा ८ इंच लंबा, पौने दो इंच चौड़ा, एक ओर प्राग्-  
मैथिली (मागधी) में]

गुजरी राग :

ए वथु वाथु वस जन रे जाहा, णिअे सआण न होइ ।

तवे से पञ्चहु आअ चेर होइ बाए<sup>१</sup> र गण्ठि जइ पाइ ॥

अच्छि वञ्चु रे वसन्तव खाण्डी चाही, पास पडे सिंह में वसन्ते न देखल ।

ज्चुजा<sup>२</sup> न मोडि मोडि खाइ ॥ ध्रु० ॥

अचल कुल दल समुद साएर अचलें दश दिशि धाइ ।

एहे बाअें<sup>३</sup> बिलसइ सिद्धा पाङ्गु धरिआं वुलाइ ॥ ध्रु० ॥

१. कागज के एक पृष्ठ पर । २. ताल-पत्र फोटो-प्लेट

बावें उपजइ बावें निअजइ चाउखण्डी डोलिआ लगाइ  
बा<sup>४</sup> वेर वणिजारा बावे व सल्लाइआ बावे से मूदिल जाइ ॥  
निअम वरत हर हरे लोउ पूस्ट जमे रे<sup>५</sup> आही ।  
लूइ बोलन्ति अम्हे बाव खण्डे भूसहुं सङ्ग जाअ से पुलिन वशेइ ।

४. कण्ठपा गीति<sup>३</sup>—

वंञ्चि भव पांजर तोडिअ हेले । सो करुण बेलमाठइ लीले ।  
डमरुहि हुकारे वाजइ । व्रजू योगिनि लेइ हेरुअ नाचइ ॥ध्रु०॥  
फाडिअ गण चाम पसाहिउ । भैरव कालरातितणे पाडिउ ॥  
वामे खटाङ्ग दहिण करे डमरु । नाचइ हेरुअ आलम्बइ कमलू ॥  
टरिअ मेरु तरन्तरु मम ताकिउ । आठ मसाण पअ भे<sup>२</sup> चापिउ ॥  
यासु पयभार मेदिनि कांपइ । हेरुअरअ धरि कान्हिल नाचइ ॥४॥  
सन बसहिं रे तथता पाहारी । बोह भण्डारि लइ सअ राअ फरी<sup>३</sup> ॥  
धूमइ नाचइ बइस परविभाग । सहजे निदालू मोर कान्हिल लाग ॥  
चेवइ न वेवइ भान निदा गेला । सअ न मूकल करि सुह सूतला<sup>४</sup> ॥  
सोअणे देखिलहं चू तिहुअण सूनो । घोरि पडइ अवागमने विहूणो ॥  
साखि करहु गुरु जालन्धरि बाज । मोहे न बुझइ पण्डिअ आ (ज) ।  
सद्गुह वएणा । मूल सुन्न बाप्य स एल वासणा ॥२६॥



## परिशिष्ट २

सरः दोहाके श-गीतिदोहाधनुक्रमणी

(ह. हरप्रसादशास्त्रीके 'बौद्ध गान ओ दोहा'का पृष्ठांक), अन्यत्र दोहांक

(अइसे जइ	ह. ६५)	अप्पणु बाहिअ	८७
(अइसे बिसअ	ह १०७)	अप्पा दीसइ परहिं	४६
अक्खर वण्णा बज्जिअ	(ह.१०३) १४१	अप्पा परहिं	५४
(अइसे सो पर	ह.११०) ७६	अब्बुग्घाटी लोअणे	३१
अक्खर वण्णा बज्जिअ	(ह.१०३) १४१	अमणागमण ण एक्क	७५
अक्खर बाडा	(ह. ११४) २५	(अमणागमण ण तेन ह. १०७)	
अक्खरबाणी परम	६५	अमुसिआरह तत	१६३
(अक्खरमेक	ह. ११५)	अरे पुत तत (ह. १०१)	११६
(अक्खि डहाविअ	ह. ८२)	अरे पुत तोज्झ (ह. १०५)	५६
(अक्खि निवेसी	ह. ८४)	अरे बढ आसा	११३
आग्गे पाच्छें	५२	अरे बढ सहज (ह. ६६)	६४
(अणिमिस लोअण	ह. १०६) ६६	असमल चीअ (ह. ६२)	४३
अणु परमाणु ण भूअ	६८	(असरीर सरीरे	ह. ११४)
अण्ण तरंग	(ह. १०६) ७६	अहवा करुणा	१७
अण्णु तहि (ह. ८८) १०, १०८		अहवा मोहे सो	८६
अन्तो णत्थि सइउ	१३१	(अहिभाण दोसेण	ह. ६५) ३४
अदसण दसण जेत्ति	१६२	आग्गे अच्छअ	६६
(अद्वय चित्त	ह. ११६) १०७	आलअ तरु	१३५
अध उध माग्ग	५७	आलमाल बवहारें (ह. १०२)	६३
(अपणे रचि रचि	गीत ह. ३८)	(आवइ जाइ	ह. ११२) ८२
अप्पणु णाहो पर (ह. ११२) १२१		(आवन्त न दिस्सइ	ह. ११२) ८१

(इन्द्र दिवस	ह. ११४)	८७	ए मइ करहां पेक्ख	६३
इन्दी जत्थ वि		२६	ए मइ कहिउ	६७
इन्दी विसअ		४०	(ए मइ कहिजे	ह. १०४)
(उडी बोहिअ	ह. १०८)		ए मइ जोइ मूल	(ह. १०६) ७१
उप्पण उप्पाअ		१०३	एमे जइ आआस	३३
उञ्छे भोजण		८	एह णिअ मण	६४
(उब्भे भो.णे } ए अभिण्ण }	८७)	११०	एहु घरे ट्ठिअ	१५७
			एहु देव बहु	१२१
एक्क करु मा		५०	एहु संसारह	१०८
एक्क कहवि ण		७६	एहु संसारे	११२
(एक्कट पंडिअ	ह. ११०)		एहु सो अप्पा	ह. ११६) १०५
(एक्क देव	ह. १११)	७६	एहु सो परम	१४२
(एक्कुक बाहि	ह. ११२)		कअ पअ पाणी	१०१
एक्केम्बि		११०	(कण्णेहि खुसखुसाइ	ह. ८५)
एक्के रंगे		५०	(कन्धभूअ	ह. ११५) ६२
एक्के साँचिअ		१२१	कप्प रहिअ सुह	(ह. १०१) १०३
ए जे करुण मुणन्ती		१२६	कमणे सो गुणहि	१०३
ए ते चीअेहु		४५	कमल कुलिस	६४
(एत्थु पआग	ह. ६६)		करुण रहिज्ज	१६
एथ से सरसइ	६५, (ह. ६६)	६५	(करुणा फुल्लिअ	ह. ११६)
एव मुणेविणु सरहे	३६, (ह. ६७)	३६	कहि उअज्जअ	२७
एवहि बुद्ध रूअ		१०७	(काअ णावडि	ह. ५८)
एवहि बुद्ध रूअहु		१०८	(काम तत्थ खअ	ह. १००)
एवहि सिद्धि		४८	कामान्त सान्त	६८
एवहि सअल		४५	(काय बाक मन	ह. ११३) ८३
एव्वे तुं दीठ		५२	(काल गच्छन्ते	२१
एव्वे लभण		१४४	(कासु कहिज्जइ	ह. १०६) ७३
ए मइ करहा	(ह. ६८)	२६	किन्तहि दीवे	१२

(कुलिससरोरुह	ह. ५२) ४६	(घर अचछन्त	ह. ७२)
(कोइ स्वतःत	ह. ८६)	(घरबइ	ह. ११३) ८४
कोणहि बइसी	८४	(घररइ	ह. ११३) ८५
(को तं रमइ	ह. ११६)	(घरहि बइसी	ह. ८४)
को पत्तिज्जइ किअउ	५८	(घरहि बसन्ते	ह. ६०)
को पुज्जइ कह	१५०	(घरहि म थक्कु	ह. ११८) १०३
कोवि चित्तें	८६	(घरे अछ्छ	ह. १०५) ब ६२
(खज्जइ दिज्जइ	ह. ११४) ८६	घरें घरें कहिअअ	(ह. १११) १२८
(खणउ बाअ	ह. ११६) ६५	(घोर अंधारे	ह. ११७) ६७
खणखणें किव	१३३	चन्द सुज्ज घसि	३५
खण्ड सरावे	१११	चित्त थिर जो	१२०
(खबणेहि जान	ह. ८६)	चित्त देव जे	११६
खाअन्ते पीवन्ते	(ह. ६२) ४८	चित्तह पसर	८१
खेत्त पिट्ठ	(ह. १००) ६६	चित्तह मूल	(ह. ६५) २७
(गअण गिरी	ह. ११८)	चित्तहिं चित्त जइ	१२०
गअण दुहुहु	१५६	(चित्तहि चित्त निहालह. ११७)	६६
(गंभीरअइ उआ	ह. ६७) ६६	चित्तहिं सअल जग	११६
गम्मागम्म ण	१३६	चित्ताचित्त ण	११२
गहि गुण धम्म	१०६	चित्ताचित्तवि	(ह. १०३) ६४
गाढालिंगमाण	५५	चित्तेक सअल	(ह. ६८) २३
गुंजरअण मज्झें	१६३	चित्ते बज्झइ	६
(गुरु उबएसे	ह. १०८)	चेऴु भिक्खु	६१
(गुरु अबए	ह. १०२)	च्छाआ च्छाआहिं	१२६
(गुरुअ पसाअे	ह. ११६) ६५	च्छाडहु जे सहजे	७६
गुरु बअण अमिअ	४४	च्छाडहु बेण्णि म	(ह. १००) ६७
गुरु बअणमं	८४	च्छाडहु रे	१३
गुरु बअणे दिठ	६४	ज . . .	१५
(घंभीरइ ह. ६७, ११७)		जइ उआअ उआअं	३२



जइ कहमि तो जूझ	१११	जहि मण पवण	(ह. १५, ६३)	४६
जइ गुरु कहइ	(ह. १०५) ७०	जहि मण मरइ	(ह. ६३)	३०
(जइ गुरु बुत	ह. ६०) १५	(जाउ ण इन्दिअ	ह. १०७)	६७
जइ चंडालघरे	११२	(जाणउ अप्पा	ह. १०५)	
जइ जग पूरिअ	१३६	जाणह परमात्थ		८७
जइ ट्ठाण ण	१२५	जाणिउ तें सि		४१
जइ णउ बिसअहिं	१००	जाव ण अप्पउं	(ह. १०४)	६७
(जइ णग्ग विअ	ह. ८७)	जिणवर बअणें		११७
जइ पञ्चक्ख कि	(ह. ६१) १६	जिम जलमज्झें		११८
जइ पमाएँ बिहि	११२	जिम जलेहिं ससि		१३०
जइ पुण बेण्णवि	१७	जिम केलितरु		१५१
जइ पुणु अहणिसि	३८	जिम तिसि	(ह. ११५)	६१
जइ पुणु वेप्पहु	१३७	जिम पडिबिम्ब		१४२
(जइ भिडि विसअ	ह. ६०) १८	(जिम बाहिर	ह. ११४)	८६
जइ मण सहज	१०८	जिम लोण त्रिलिज्जइ		४६
जइ रसाअलु पइसरहु	६०	(जीवन्तह जो	ह. १०८)	६६
जक्ख रूअ जिम	८१	जेण पसवइ		१५३
जग उपपाइणे	१०३	जो अत्थी अण	(१३३)	१११
(जग बाहिअ	ह. ६०)	(जो अबाच	ह. ६१)	
जत्तइ चित्तहु	७६	जो ए अवत्थ		१३२
जत्तइ पइसइ	(ह. ११०) ७८	(जो गुरु बअणे	ह. ११६)	
जत्तवि चित्तह	(ह. १०६)	जो जसु जे		१२
जत्थवि तत्थवि	१०१	जो दुज्जअ पडिअ		१४५
जब्बें तहि मण	(ह. १०४) ६६	जोबइ चित्त		४७
जब्बे मणु अत्थ	(ह. ६६) ६५	जो दढ मूलह		१६४
जम्बाण आइ	१४६	(जो भव सो णिब्बाण	ह. ११८)	१०२
जल्लइ उबज्जइ	२०	जो भावइ मणु		१४१
जहिं इच्छइ तहि	३१	जो मण गोअरें		११४

जो वि कवाड (ह. ११८)		णिअ सहाव ण लद्धउ (ह. ६०, ६५) ६०	
जो सो जाणइ	१२६	णिजिअ साहो	१२६
(क्षाण मोख कि ह. ६४)	८६	णिट्ठुर सुरअ	१३२
क्षाणरहिअ कि (ह. ६१)	४२	णिब्बाणें ट्ठिअ	१२७
क्षाण हीन	१८	णिपुंखो बाणो	१५४
क्षाणे जा किअ	७३	(णिल पास ह. ११३)	
(क्षाणे मोख ह. ६४)		णे उणे विअार	१५१
क्षाणें मोहिअ (ह. ६५)	३४	तं चिन्तामणि (ह. ६८)	२३
(णउ अणु णउ ह. १०४)		(तत्तरहिअ काआ ह. ८७)	
णउ करावइ णउ करई	१४८	तक्खे समरस (ह. ६६)	६४
(णउ घर णउ बणें ह. ११६)	१०४	तरअर मूल ण जाणिआ	५६
णउ जाइअइ णउ	१४७	तसु कहि किज्जइ	१४६
(णउ णउ दोहा व ११६)		तसु चाहेन्ते	३७
णउ तस दोस (ह. ६६)	६१	(तसु परिआणे ह. ८६)	
णउ तहि णिन्दा	१४६	(तह बेवि रहिअ ह. १३१)	
णउ भव णउ णिब्बाण	१४०	(तहि तहि जीवइ ह. ६५)	
णउ सो ज्ञाणें णउ	१२७	तहि पुणु किम्प	१३८
णग्गल होइअ	८६	तहि बढ चित्त (ह. ६३)	४६
णत्तं बाअें गुरु	७७	तहि भासिअ	१११
णादहु बिन्दुहु	१६४	तहि सो वि	१०६
णामेहि सण्ण	४७	तहु वि ण तुट्टइ	७२
(णाहि सो दिट्ठि ह. ८६)		ताव सं अक्खर (ह. ११४)	२५
णिअ चित्तन्ते काल	४०	तिम भुअ तत्त	१४२
णिअ मण साच्चे	३६	तिम सो मंडल चक्कडा	११८
णिअ मण मणहु (ह. ६४)	८६	(तिल तु समत्त ह. ११०)	
(णिअ मण सवे ह. ६७)		तुस कुट्टन्ते	५४
णिअ सहाव गअण	११५	(तेवि नु बन्ध ह. ११६)	
(णिअ सहाव णउ ह. ६६)		तेल्ल खिच्च	१६१

(तो वि ण तुट्टइ	ह. १०६)	(पवण बहइ	ह. १०७)		
(दीह खज्ज	ह. ८६)	पवणरहिअ	(ह. ६६)		
(दुक्खदिवाअर	ह. ११७)	६८	पसुघरें चोरह	१२५	
(दुट्ठसंग	ह. १०६)		पाणिचलण णिअ	२२	
देक्खइ रवि	१४०		पासें पास	१५८	
देक्खउ सुणउ	(ह. १०२)	६३	(पिच्छीगहणे	ह. ८७)	६
देव पुदिज्जअ	(ह. १०६)	७२	बक्खाणन्त पढन्ता(ह. १०१)	५६	
देस भमइ	(ह. १०५)	७०	बज्झइ कम्मणे	(ह. ६८)	२४
(देहा सरिसा	ह. १००)	६६	बज्झन्ति जेण जडा ह.	(६८)	६२
दोसगुणाअर चित्तडा(ह.११०)	७८		बंत्तिज्जइ काल	५७	
दोहाकोस	१११		बण्णआआर	१४६	
दोहा संगम मइ	१०६		बद्धो गमइ दस	६२	
धारिअउ हंस	७४		(बद्धो धावइ	ह. ६८)	
धेअ ण धारण	१४५		बन्द ण दीसइ	१५२	
नाहि सो दिट्ठ	१५		(बम्हणेहि ण	ह. ८१)	
(निम्मल चित्त	ह. ११६)		वरगुखअण पत्तिजइ	ह. ६४)	
पक्खविट्ठणे कहवि	७४		बहुसन्ताबें	१३५	
पंजरे जिम	१२३		बहुसात्ताथ	(ह. १०२)	
पंच कामगुण	१४३		बम्हविट्ठु तइलोअ	(ह. १००)	६८
पंडिअ सअल सत्थ	(ह. १०७)	७५	वाराणसि पआग	६५	
(पंडिअ लोअअ	ह. ११६)	६३	वाहरें साद	५३	
पढमे जइ आआस	(ह. ६४)	३३	विण वज्जे	११६	
तत्त मुसारिउ	४१		(विण्णवि बज्जिअ	ह. १०२)	
(परअप्पाण	ह. ११६)	१०६	बिद्धो धावइ	२६	
परउआर	११२		बिबिह पआरे	३६	
(परममहासुह एक ह.	११७)		विसअ रमन्ते	(ह. १०५)	७१
(परममहासुह सोज्झ ह.	११७)		(विसअ गजेन्द्र	ह. ११८)	१०१
पवण धरि अप्पाण	६३		(विसअ बिसुद्ध	ह. १०८)	७०

( विसम्रासत्ति	ह. १०६ )	७१	( मा परता	ह. ११३ )	
बुज्झहो जो		१२४	( माणही पव्वज्जे	ह. ६० )	
बुद्धवि वज्जणें		१०६	मा रे करु सम्रल		४२
बुद्धसंयोग परम		१५३	( मिच्छेहि जग	ह. ८४ )	
बुद्धह सम्रल मणे		८७	( मीण पय	ह. १०६ )	
बुद्धि विणासइ	( ह. १०१ )	६१	( मुक्कउ चित्त	ह. ११८ )	१००
वेइ विवज्जिअ		६२	मुक्कावथि जे		८०
वेण्णवि पन्था		२२	मूढहि मोह		८०
वेवि कोडि ण		१३३	मूलरहिअ जो चिन्तइ	( ह. ६६ )	२८
( बेल्लु भिक्ख		८८ )	रंडी मुंडी	( ह. ८५ )	
( भणइ सरह भिडि	ह. १०४ )		रविससि बन्धण		१३६
भव उएक्खइ		६२	रविससि बेण्णवि		५५
( भवहि उअज्जइ	ह. १०२ )		रसु परिभुंज		१३४
( भव ( स ) मुद्धे सम्रलह.	६२ )		रिद्धिसिद्धि हलें		६१
भावहु चित्त		१३६	रुअणे		८३
भावाभावह भाव		७३	लक्खालक्ख विणा		१४६
भावाभाव णिबन्दणु		१४७	लोमोप्पाटणे	( ह. ८७ )	
भावाभावे जो	( ह. १०३ )	६६	( सम्रल णिरन्त	ह. ११८ )	
भावाभावेँ बेण्णि		३६	सम्रल तत्त सहावेँ		१०६
भिण्णाआर मुण		६०	सम्रल विसम्र ण		११६
भुअणे सम्रल	( ह. ११५ )		सम्रलहि तत्तसार		३८
( मट्टि पाणि	ह. ८२ )		सम्रलहो एहु		८२
मणतणें जो			सए संकप्पे		१०१
मण निम्मल सहजा		४५	सए संवित्ति मा	( ह. ६४ )	८८
मणमोक्खेण	( ह. ६८ )	२४	सएँ संबेअण तत्त		११४
( मण बाहिउ	ह. ११४ )		सगुण पइसइ		१५४
मन्त ण तन्त ण धेअ	( ह. ६२ )	४३	सण्ण पूअ	( ह. १०० )	
मरण मरन्त		१६०	सव्वाआरवरोत्तम		८५

सबूब धम्म जे खसम (ह. १११) १५३	सा गुणहीणो	३७
(सबूब रूअ ह. ११०) ७७	सांके खाद्धउ	१५८
समता कामिणि १३७	सा. हौण	१८
सम्बर चित्तराअ १२२	साद्धह साद्ध	५३
सरह कहिअ ४९	सा होह सद्बोच्छिन्न	८८
सरह भणइ अणुत्तर ८४	(सिद्धिरत्थु ह. ११५) ९०	
सरह भणइ एह दुइ १५७	(सीस सु वाहिअ ह. ८४)	
सरह भणइ कहिअउ ९०	सुअणे जिम वरकामिणि १०६	
(सरह भणइ खवण ह. ८७)	(सुइणाह अवि. गी. ह. ६०)	
सरह भणइ जग चित्ते (ह. १११) १२८	सुण्ण णिरंजण १३८	
(सरह भणइ जिण II. ३) १०७	सुण्णनिरंजण १४३	
सरह भणइ णिउत्तणे २८	सुण्ण तरुवर णि १०९	
सरह भणइ वड जा (ह. ९६) ६९	सुण्ण तरुवर फुल्ल १०८	
सरह भणइ भिडि ६८	सुण्णावि अप्पा ५९	
सरह भणइ मइ कहिआ १९	सुण्णहि मज्झे १५५	
सरह भणइ मुहु २०	सुण्णासुण्ण वि बुज्झइ १०५	
सरपुडअणि दलु ९८	सुद्धिँ जाणिअ ८५	
संसार अणुपलंभ १६२	(सुन्तहि संग ह. ११०) ७५	
सहज कप्प परे १०१	सेउ रहिअ णव ९९	
सहज च्छाडी १२	सेण्ण आदिउ १५७	
सहज सहज मु माणहु ११३	सो अणुत्तर बुज्झहि ८३	
(सहज सहाव ण भाव ह. ९१)	सो चित्त (ह. ११४)	
सहज सहाव सवसइ ९९	(सोइ चित्त ह. ११३)	
सहज सहावा हले ७७	सोइ ण अन्त ५१	
सहजाणन्द चंडठउ (ह. ११७) ११५	सो जइ लइअइ १२३	
सहजे सहज विवुज्झइ ८२	सो णव धम्मिअ १६०	
सहजे सहज वि वाहिअ ११७	सो परमेसर कासु (ह. १०३) ६५	
सहि संसरह १५०	सो परमेसर परम १६५	

( ३७६ )

सो मात्राममन्न परम (ह.१०१)	६१	हउ पुणु जाणमि	१४४
सोवि चीअ अचीअ	१५६	हत्थहि कंकण	८६
सोवि पतिज्जइ (ह. ८९)	१४	हिअहि काच	१२२
सो हल्ले सहजानंद	२९		

---



## परिशिष्ट ३

### अपभ्रंशभोट—शब्दानुक्रमणी

त. तिब्वती अनुवाद । स. सस्कप हस्तलेख । व. बागची संपादित दोहाकोश ।  
श. शहीदुल्ला ।

अञ्च (श. ७२, ७८, ८०) न के अर्थमें मि (श. ६८), म. यिन्. प. (श. ७६), मेद् (श. ८४, १०६)	अणु—ङुल् (त. ७४; स. ६७)
अइरि (अचार्य (श. वअ) स. ३ अइसे (ईदृश, द. ल्तर (त. ८१; ब. ६७) देल्तर (त. ६२; व. ७६)	अणुअर (अनन्तर, डेस्. पर्. मेद्. दे. (त. ४१; व. ४०)
अक्कट (आश्चर्य, ख्रुल्. प. शिग्. प. (त. ६३; व. ७६)	अणुत्तर (अनुत्तर, ब्. ल. मेद् (त. ७३; स. ६६)
अक्खर (अक्षर, यि. गे. (त. ७१, १२८; स. ६४, २५)	अण्ण, अण्णु (अन्य, ग्शन् (ब. ५ त. ६, ६६; स. ६७), ख. चिग्. (त. ११; स. १०)
अक्खि (अक्षि, मिग् (त. ३; व. २)	अण्णे (अन्यैः, छिग् गिस् (त. ३६; स. ३४)
अग्ग (अग्र, म्दुन् (त. २६; स. ५२)	अत्थमणु जाइ (अस्तं याति, ओ बर्. ऽगस्. ग्युर् (त. ५६; स. ६४)
अग्गि (अग्नि, मे. (त. २; व. १)	अत्थ गउ (अस्तंगतो, नुब्. प. (त. ११८; ब. ६८), गग्स् (श. ४८)
अच्छइ (अस्ति, ग्न्स्. (श. ६४, ६६)	अत्थि (अस्ति, ग्न्स् (त. ८१; व. ७, ६७)
अच्छन्त (सन्, दुग्. ग्युर् (त. १००; ब. ८१) ग्न्स्-शिङ् (त. २५; स. २३)	अत्थी (अर्थी, दोद् प. चन्. पो. (त. १३४; व. १११)
अच्छहु (अस्तु, छुल्. दु (त. ७०; स. ६२. यिन्. प. (त. ६४; स. ६२)	अत्थी अण (अर्थी जन, ० स्वये. बो. (त. १३४; व. १११)
अणवर (अनवरत, ग्दोद्. नस् (त. ७४; स. ६७; श. ६३)	अदअ (अद्वय, ग्जिस्. मेद्. (श. १००)



अन्धार ८अन्धकार, मुन्. नग्. (त. ११७; व. ६७, मुन्. प (त. २१; स. १६)

अँधार ८अंधकार, ल्कोग्.तु. ग्युर् (त. २१; स. १६)

अन्त-मथऽ ८त. २४; स. ५१)

अप्पउँ ८आत्मापि, ब्दग्. जिद्. (त. ७८; स. ७१)

अप्पउ अप्पा ८आत्मनि आत्मना, रङ्. गिस्. रङ्. ल. (त. ७४; स. ६७)

अप्पण ८आत्मनः, ब्दग्. (त. ७; व. ६)

अप्पणु ८आत्मनः, ब्दग्. जिद्. (त. ६६; स. १२१)

अप्प सहाव ८आत्मनः स्वभावः, रङ्. गि. डो. वो. (त. ३०; स. २६)

अप्पा ८आत्मा (आप), ब्दग्. जिद्. (त. ७६; स. ६६)

अप्पाण ८आत्मनः (आपन), रङ्. जिद् (त. २६, ५४; स. ५१, ८०)

अ-पुब्व ८अ-पूर्व, रङ्. न. (त. १०१; व. ८२)

अव्भन्तरु ८अभ्यन्तर, नङ्. (त. ११०; व. ८६)

अभिण्ण-मइ ८अभिन्न-मति, (श. ८६)

अमण ८आगमन, ङोङ्. (श. ७०)

अमिअ-रस ८अमृत-रस, ब्दुद्. चिदि. छु. (त. ६६; स. ४४)

अरे—अे.म.हो. (त. ५५; व. ४४ क्ये. हो. (त. ८६; व. ७१)

अरे पुत्त ८अरे पुत्र, क्ये. हो. वु. (त. ६१ व. ५१)

अवचेअण ८अवचेतन, तोग्.स्.प. (श. १८)

अवस्स ८अवश्य, नम्.स्. क्यङ्. (त. ६२; व. ७५)

अ-वाअ ८अ-वाच्य, ब्जोद्. दु. मेद्. (त. २३; स. २२)

अ-वाच्चें ८अ-वाच्ये, ब्जोद्. दु. मिन् (त. ३५; स. ८६)

अ-विआर ८अ-विकार, स्प्यद्. पर्. ब्य. ८त. १०३; व. ६४)

अ. विकल—मि. तोग्. प. (त. १२८; व. १०४)

अ-बेज्ज ८अ-विद्या, मि. शेस्. प. (त. ६१; त. ६१; व. ५१, श. ५३)

अ-समल—दग्. प. (त. २५; व. २३)

अ-सेस ८अ-शेष, म. लुस्. (त. २८; स. ५०)

अह ८अथ, गल्. ते. (श. २२)

अहवा ८अथवा, ङोन्. ते. (त. १६; स. १७) यङ्. न. (त. ११५; व. ६५)

अहिमाण ८अभिमान, म्ङोन्. पडि. ड. ग्यल्. (त. ६३; स. ६०)

आश्रयतन /आश्रयतन, (श. ६४)  
 आश्रासवि /आश्रयस्तव्य, गोस्.पर.  
 ग्युर् (त. ३६; स. ३४)  
 आश्रर /आकर, म्.म्.ल्दन्. (त.  
 ६०; स. ७६)  
 आइ /आदि, थोग्. (त. २४; स.  
 ५१)  
 आएस /आदेश, मन्. डग्. (त. ३८;  
 स. २८)  
 आच्छ-अ (है), (स. ६६)  
 आणन्द /आनन्द, द्गऽ. (त. ११६;  
 व. ६६)  
 आहास/आभास, रङ्. ब्शिन्. (त. ७६;  
 व. ७२)  
 आयत्त-ग्नम्.न. (त. ११६; व. ६६)  
 आयत्तः—द्वड्.गिस् (त. ११६;  
 व. ६६)  
 आलमाल-प्रलाप, चल्.चोल्. ग्तम्.  
 (त. ६५; स. ६३)  
 आलमाल करह-द्मिग्स्. पर.व्येद्.  
 प. (त. १३२; व. १०६)  
 आलें /अलम्, ख्लु. प. (श. २०)  
 मिङ्. (श. ३५), म्य. डन्. ग्यि.  
 (श. ५१)  
 आलिउल /आलिकुल, तंग्.तु. (त.  
 २५; स. ४८)  
 आवइ जाइ /आयाति याति, षोङ्.  
 षोङ्. (त. १०२; व. ८२)

आवइ /आगमति (आगच्छति), षोङ्स्  
 (श. ८४)  
 आवनन्त /आयान्त, षोङ्स् (त. १००;  
 व. ८१)  
 आस /आशा, रे.व. (त. ११४; व.  
 ६४)  
 आसत्ति /आसक्ति, शेन्. प. (त. ८६;  
 व. ७१)  
 आसन—स्क्वल्. (त. ५; व. ४)  
 इ /हि, (श. ३७, ७६)  
 इअ /इति, (श. ८६)  
 इच्छा—ऽदोद्.प. (त. ४३; स. २३;  
 ६८; व. ७६)  
 इति—शेस् (त. २०)  
 इँदि /इन्द्रिय, द्वड्.पो. (श. ६४)  
 इन्द्रिय /इन्द्रिय, द्वड्.पो. (त. ३०;  
 स. २६; त. १२१; व. १०१)  
 उ /च, (श. २०)  
 उअ-पिट्ठ /उपपीठ, ञो. वडि. ग्नस्.  
 (त. ५८; स. ६६)  
 उअल /उत्पल, पद्म (त. ७७; स. ६६)  
 उअर /उपकार, फन्. प. (त. १०३;  
 व. १०७)  
 उएस /उपदेश, मन्. डग्. (त. २७;  
 स. ४६) ब्स्तन्.प. (त. ३; व. २)  
 उज्जोअ /उद्योत, ष्छद्.पर.योद्. प.  
 (त. ५१; व. ६७)

उंछ—लङ्स्.ते. (त. ६; व. ८)  
 उड्डी /उड्डीय, फुर्. वडि. (त. ८५;  
 व. ७०)  
 उणो /पुनः, लल. (श. ४२)  
 उत्तिम /उत्तम, म्छोग्. (त. १६;  
 स. १६)  
 उद्दूलिय /उद्धूलित, ऽब्युग्स्. नस्.  
 (त. ४; व. ३)  
 उपाडण /उत्पाटन, ब्लोग्स्.पस्.  
 (त. ८; व. ७)  
 उपाडिअ /उत्पाट्य, वल्.वर्.  
 व्येद्. (त. ६; व. ५)  
 उबाएसे /उपदेशे, ब्स्तन् (त. ८४;  
 स. ६६) मन्. डग्. (त. ६६; व.  
 ५६)  
 उवरइ /उवजइ उत्पद्यत, (श. ८६)  
 उवाउ /उपाय, थब्स्. (त. ११५;  
 व. ६५)  
 उवाहरण /उदाहरण, (श. ६८)  
 उवेस /उद्देश्य, छेद्.दु. (त. ७; व. ६)  
 /उपदेश, व्स्तन्. प. (श. ३)  
 उवइ /उदयति, शर्. (त. ११८; व.  
 ६८)  
 उवज्जइ /उत्पद्यते, स्व्येस्.प.  
 (त. १०४; व. ८४), (त. ३८; स. २७  
 त. ६४; स. ६२; व. ५४) स्व्ये  
 प. (त. २२; स. २०) ञ्. वर्. स्व्ये.  
 व. (त. ६२; स. ५२)

उवरइ / स्व्ये.व. (त. १०४;  
 व. ८४)  
 उल्लाल—ऽब्युङ्. व. (श. ५६)  
 ए /हे (श. ६२)  
 /इदम्, दे. ल्तर्. (श. ६२  
 एक्वि /एकोपि, चिग्.सोग्स्. (त.  
 १४; व. ११)  
 एकाकार /एकाकार, ग्चिग्.गि. नम्.  
 प. (त. ६५; स. ६३)  
 एक्क /एक, चिग् (त. २७; स. ५०)  
 एक्क कर /एकं कुरु, चिग्.तु. ब्य.  
 व.स्ते. (त. २७; स. ५०)  
 एक्कु खाइ /एकः खादति, ग्चिग्.  
 सोस्. (त. ६६; व. ८०)  
 एक्कवि /एकोपि, चिग्. व्यङ्. (त.  
 ४१; स. ३६)  
 एत /एतावन्त (झ. ३६, ६३)  
 एत्तवि /एतावदपि, दे. चम् (त. ७८;  
 स. ६८)  
 एमइ /एवं हि, गङ्.ल्तर् (त. ७८;  
 व. ७१) गो. ब्स्लेग् (त. ५३; म.  
 ४३)  
 एरइ /आचार्य (शैव), (त. ४; व. ३)  
 एवं /एवं, ऽदि. ल्तर्. (त. ४१; स. ३६,  
 त. ११८; व. ६८)  
 एवइ /एवं हि, (त. ७४; स. ६७  
 दि.ल्त.बुस्. (त. २६; स. ४८)  
 ग्यि.न (त. २; व. १)

एहिं अत्र, अधिकरणप्रत्यय), बर्  
(त. ५; ब. ४)

एहु अयं, ऽदि. (त. १३५; ब.  
११२) दि. ल. (त. २६; स. ५१)

ऐसें ईदृश, दे. ल्त. वु. जिद् (त. ३६;  
ब. ३४)

ओ अौ (द्विवचन) दग्. (त. २; ब. १)

कज्ज अकार्यं, दोन्. (त. ३; ब. २)

कठ्ठ अकाष्ठ, शिङ्. (त. ५४; स. ४४)

कड्ढिअ अकषित, म्थोन्. पोस्.  
(त. २३; स. १६)

कण्ण अकर्ण, नै. बर्. (त. ५; ब. ४)

कप्प अकल्प, तोग्. (त. ६२; ब. ५२)

कवडिअार अकवडिकार. (हाथीवान)

ग्लङ्. पो. स्क्योङ्. (त. १२१;

ब. १०१)

कमल अपद्. म. (त. ११४; ब. ६४)

कम्म अकर्म, लस्. (त. ४१; स. २४)

कर-लग्. (त. १२१; ब. ११)

करइ अकरोति, व्येद्. पर्. सद्. (त. ६२;

ब. ७५)

(करतल)-म्थिन्. (त. १६; स. १५)

करहा अकरभ, ड. मो. (त. ५३; स.

४३)

करहु अकुरु, व्येद्. चिग्. (त. ३३;

स. ४४)

करि-ग्लङ्. छेत्. (त. ६, ८७, ६३;

ब. ८, ७१, ७६)

करिज्जअ अक्रियते, व्य. (त. ७८;

स. ७१) व्येद्. ऽग्युर्. न. (त.

६४; ब. ७७)

करिज्जइ अक्रियते, व्येद्. पर्. ऽग्युर्.

(त. ६३; ब. ७७)

कह अकुरु, व्येद्. चिङ्. (त. ८६;

ब. ७१) व्येद्. पर्. (त. २७;

न. ५०)

करुण-स्त्रिङ्. जे. (त. १५; स.

१६)

कल अकला, रङ्. ब्शिन्. (श. ५५)

कलङ्-ञोग्. प. (त. १००; ब.

८१)

कवण अकनु, गङ्. यन्. ते. १३५;

ब. ११२)

कहइ अकथयति, ब्स्तन्. चिङ्. (त.

७६; स. ६६)

कहाण सक्कइ अकथितुं शक्नोति, ब्स्तन्.

पर्. नुम्. प. (त. ६२; ब. ५०)

कहमि अकथयामि, (श. ६५)

कहाणा अकथानक, ग्त्तम् (त. ४७,

६५; स. १२७)

कहि अकुत्र, गङ्. यङ्. (त. १०१; ब.

८२)

कहिं अकुत्र, गङ्. दु. (त. ३८; स. २७)

अकथं, चि. शिग्. (त. ६४; स.

६१)

कहिअअ ऽकथितक, ब्जोद्.यिन्. ते.

(त. ६५; स. १२७)

कहिअउ ऽकथितो, ग्थिन्. म्छोन्.

(त. ७१; स. ६४) ब्जोद्.क्यङ्.

(त. ३६; स. ३८)

कहिज्जइ ऽकथ्यते, ब्स्तन्.ते.

(त. ८८; ब. ७३) ब्स्तन्.नुस्.

त.७२; स.६५) ब्स्तन्. पस्.

तोग्स्. (त. ६४; स. ६२)

कहहउ जाइ ऽकथयतु यात्वा, ब्स्तन्.

नस्. ऽप्रो (त. ३२; स. ३०)

काअ ऽकाया, लुम् (त. १०२; ब.

८३)

काअ-वाअ-मण ऽकाय्-वाक् मन, लुस्.

ङ्. यिद्, (त. १०२; ब. ८३)

काआ ऽकाया, लुस् (त. १०; ब. ६)

क ई ऽकथं, जि.ल्लर् (श. २४)

काउ ऽकाक, ब्य. रोग्. (त. ८५; ब.

७०)

काम-ग्दुङ्गस.प. (श. ५२) लस्.

(त. ८०; स. ६७)

काम.अ-ऽअ-कर्म, लस्. मेद्. (त. ८०;

स. ६७)

कारण-र्ग्यु. (त. २४; स. २३)

र्ग्यु. म्छन् (त. १३३; ब. ११०)

काल-दुस्. (त. ३६; स. ३४ छे

(श. ६८)

काल करइ (काल करोति, छङ्.ब.)

(त. ८०; ब. ६६)

कासु ऽकस्य, सु. ल. (त. ७२; स.

६५)

कोवि ऽकोपि, सु. ल. (त. ३०; स.

५२)

कासु ऽकस्य, सु. ल. (त. ७२; स. ६५

त. ८८; ब. ७३)

कि ऽकिम्. चि. (त. १४; स. १२)

चि. द्गोम्. (त. १४; ब. १२)

चि. ब्यर्. (त. ६६)

किज्जइ ऽक्रियेत, ब्य. (त. १५;

स. १२)

किम्पि ऽकिमपि, नम्. यङ्. (त. ६;

ब. ८)

की. ऽकथं, जि. ल्लर्. (त. २३;

स. २०)

कीअइ ऽक्रियते, ब्यर्.योद्. (त.

२३; स. २२)

कु-ङ्. प. (त. ११६; ब. ६६ ण)

कुन्दुर-(रति, मैथुन,) कु.न्दु.रु.

(त. ११३; ब. ६१)

कुमारी-ग्शोन्.नु.म. (त. ७२;

स. ६५)

कुस ऽकुश, कु. श. (त. २; ब. १)

(कृत)-म्ज्.प. (ग्रंथान्ते)

केणवि ऽकेनापि, सुस्. क्यङ्. (त. २४,

६५; स. २२, १२८)

- कौत्रज-ऽवऽ. शिऽ. (त. १६; स. १७)  
 (त. १०, ८४; ब. ६, ७०) चम्.  
 (त. १०; बबे. ६)
- केस लकेश, स्क्र. (त. ६; ब. ५)  
 केसर-गे.सर्. (त. ५६; स. ६७)
- को लकः, चि. स्ले. (त. ११४; ब. ६८)  
 कोइ लकोपि, गङ्.शिगु. (त. ८४;  
 ब. ६६) चिगु.क्यद्. (त. १०८;  
 स. २५)
- कोणहि लकोणे, म्छप्स्. सु. (त. ५;  
 ब. ४)
- कोले-वड्. दु. (त. ३४; व. ८६)
- कोवि लकोपि, सु. ल. (त. ३०; स. ५२)  
 ल. ल. (त. ११; स. १०)
- कोश-मजोद्.  
 (क्तवा-शिङ् (त. २; ब. १);  
 खज्जइ लखाद्यते, स. शिङ्. (त. १०५)  
 ब. ८६ त. १०३; ब. ८४)
- खण (क्षण, स्कद्. चिगु. म. (त. ११५;  
 ब. ६५), दुस् (त. ११६; व. ६६)  
 फ्यि. गोर्. बोर्. ब. (त. १३४;  
 ब. १११)
- खनअ लक्षणक, स्कद्.चिगु.म.  
 (श. ६७)
- खवण लक्षणण (जैनसाधु), नन्.  
 म्खडि. यिब्. चन्. (त. ७; ब. ६)
- खरडह-ब्स्ल् (श. १५)
- खलु-ङ्स्. (श. १०४)
- खसम-नन्.म्खडि.रङ्.बग्निन्. (त. ८८;  
 ब. ७२) म्खडि. जाम्. (त. ६३,  
 ६४; ब. ७७)
- खाअन्ते लखादन्त, स. शिङ्. (त. २५;  
 स. ४८)
- खाइ लखादित्वा, सोन्.प.यिस्  
 (त. ४०; व. ६०)
- खादहु लखाद, स. (त. ६५; ब. ५५)
- खीणु लक्षीण, क्लग्. तु. मेद्- (त. १०६  
 स. ४१)
- खुसखुसाइ- (फुसफुसाता), शुब्. शुब्.  
 (त. ५; ब. ४)
- खेत्त लक्षेत्र, शिङ् (त. ५८; स. ६६)
- गइ लगत्वा, सोङ्. नस् (त. ६६;  
 ब. ८०)
- गउ लगतो, ङ्ग्युर् (त. ३०; स. २६,  
 त. ८६; ब. ७३)
- गअन्द लगजेन्द्र, ग्लङ्. पो. (त. १२१;  
 ब. १०१)
- गंगासाअरु लगंगासागर, गङ्.गडि.  
 ग्य.म्छो. (त. ५७; स. ६५)
- गति-गुशेग्स् (त. ३३; स. ८८)
- गंध-द्वि (त. ५७; ब. ५६), स्त. चैर्.  
 (त. ५५; स. ४४)
- गम्भीरइ लगम्भीर, सब्. प. (त.  
 ११६; ब. ६६)
- गहण लग्रहण, (त. ८; ब. ७)

- गहिअ ऽगृहीत्वा, ब्लङ्गस्. नस्. (त. १२१; ब. ११)  
 गहिउ ऽगृहीतो, जिन्. (त. ७७; स. ६६)  
 गही ऽगृहे, ख्यिम्. न. (त. २०; स. १८)  
 गाइव ऽगात्वा, ग्ल्. लेन्. ते. (त. ४१ स. ३६)  
 गाम ऽग्राम, ग्रोङ्ग (त. ८०; स. ६७, ब. ६७)  
 गाहइ ऽगहते, शेस्. प. (त. ११३; ब. ६१)  
 गाहिइ ऽगाहितो, ख्यिब्. ग्नुब्. प. (त. ४८; स. १२७)  
 गाहिब ऽगाहित, म्थोङ्ग. डो. (त. ४१; स. ३६)  
 गिरि-रि. (त. १२०; ब. १००)  
 गिहवास ऽगृहवास, स्ख्यिम्. थब्. (त. १३५; ब. ११)  
 गुण-योन्. तन्. (त. ४०, ७१, ६०, स. ५, ३६, ६४, ७८)  
 गुणिज्जइ ऽगुण्यते, ऽजिन्. दङ्ग. स्गोम्. प. (त. १८; स. १४)  
 स्गोम्. प. (त. १८; स. १४)  
 गुरु-ब्ल. म. (त. ६४; स. ६२; ब. ५४ त. ८४; स. ६६, स्लोब्. दपोन्. (त. ३१; स. ३४)  
 गुरुपाअ ऽगुरुपाद, ब्ल. मडि. शल्. (त. १६, ३१; स. १५, २६)  
 गुरु. वर-ब्ल. म. दम्. प. (त. ३५; स. ८६)  
 गुहिर ऽगंभीर, म्थोन्. प. (श. २३) घण्टा-द्विल्. बु. (त. ५; ब. ४)  
 घर ऽगृह, ख्यिम्. (त. २; ब. १)  
 घरहि ऽगृहे, ख्यिम्. दु. (त. ५; ब. ४)  
 घरिणि ऽगृहिणी, ख्यिम्. व्दग्. मो. (त. १०३; ब. ८४)  
 घरे ऽगृहे, ख्यिम्. (त. ४७; ब. १२७)  
 घरें अच्छह ऽगृहे सति, ख्यिम्. न. ग्नन्. (त. ७५; ब. ६२)  
 घरे घरे ऽगृहे गृहे, ख्यिम्. दङ्ग. ख्यिन्. न. त. ६५; स. १२७; ब. ७८)  
 घोरान्धारें ऽघोरान्धकारे, मुन् नग्. छेन्. पो. (त. ११७; ब. ६७)  
 घोलिअइ ऽघूर्णित, रब्. तु. शेस्. (त. १०८; स. २५)  
 (च)-दङ्ग (त. २; ब. १)  
 चउजह ऽचतुर्दश, (श. ६१)  
 चउइठ ऽचतुर्थ, व्शि. प. (त. ११६; ब. ६६)  
 चक्क ऽचक्र, ऽखोर्. लो. (त. २५; स. ४८), ऽखोर्. लो. दम्. प. (त. ११८; ब. ६८)  
 चंग-चारु, मि. सून्. (त. ५५; स. ४५)  
 चंचल-मि. सून्. (त. ५५; स. ४५)

चदहभुवणें चतुर्दश भुवने, व्चु.  
बृशि. प. यि. स. ल. (त. ११०;  
ब. ८६)

चन्द्रमणि चन्द्रमणि, स्. ल. व. नोर्.  
बु. (त. ११७; ब. ६७)

चमर—व्यग, त. ८; ब. ७)

चरेइ/चरेत्, स्यद्. पर्. ब्य. (त. ८४;  
ब. ७०)

चल—ग्यो (त. ८०; ब. ६६)

चलउ/चलत, स्क्योद्. (त. ६५; स.  
६३)

चान्द/चन्द्र, स्. ल. व. (त. ५८; स.  
६६)

चार/चत्वारि, बृशि. (त. २; ब. १)

चाली/चलित्वा, ऽब्रोल्. (त. ५; ब.  
४)

चाहन्ते/इच्छन्त, पश्यन्त, बलतस्  
शिङ्. (त. ३५; स. ३४)

चाहिअ/दृष्टो. म्थोङ्. (श. ४१)

चाहिअ/दृष्टो, म्थोङ्. ङो. (त. ४१;  
ब. ३६)

चित्त—ब्सम्. (त. ७०; स. ६४;  
त. ४८; स. १२८)

सेम्स् (त. ३७, ७४, ६०; स. २७,  
६७, ७८; त. १३२; ब. १०८)

चित्तआ—ब्सम्. ग्यिस्. मि. ख्यव्  
(त. ४८; स. १२८)

चित्तह/चित्तस्य, सेम्स्. स्वये (त. ५४;  
स. ४४)

चित्ताचित्त—ब्सोम्. दङ्. मि. व्सोम्.  
(त. ६६; स. १२३)

चित्तेकरूअ/चित्तैकरूप, सेमेस् क्यि.  
छुल्. ऽजिन् (त. ११; स. १०)

चिन्तइ/चिन्तयति, सेम्स्. प. (त.  
३८; स. २८)

चिन्तामणि—यिद्. वृशिन्. नोर्. बु.  
(त. ४३; स. २३; त. ६३; ब.  
७६)

चेल्लु—श्रामणेर (चेला), द्गो छुल्.  
(त. १०; स. ६; ब. ६)

च्छइडइ—दोर्. रो. (त. १०१; ब.  
८२)

च्छइडहु—बोर् (त. १७; स. १३)

च्छाडी—ब्रल्. (त. १३; स. ११)

छ्यारें/क्षारेण, थल्. बस्. (त. ४;  
ब. ३)

च्छुप्पइ/स्पृशति, रेग्. वृशिन् (त.  
७७; स. ६६)

छिण्ण/छिन्न. व्चद्. प. (त. ७२; स.  
६५)

जइ/यदि, गङ्. छे (त. ७६; स. ६६)

जइ/यदि, गल्. ते. (त. ७; ब. ६)  
स्लर्. यङ्. (त. ११६; ब. ६५)

जंजं/यंयं, गङ्. गङ्. (त. २६;  
स. ५२)



- जग ऽजगत्, ऽग्रो (त. ४८; स. १२८)  
 ऽग्रो.कुन्. (त. ६५; स. १२८),  
 ऽग्रो.र्नम्स् (त. ४१; स. २४;  
 ऽग्रो.व. (त. ४, २४, १०८; स. ३,  
 २२, २५)
- जड—ब्लुन्. पो. (त. ४४, ६८;  
 स. ६१)
- जडा (जटा, रल्. प. (त. ४; ब. ३)  
 जण ऽजन, स्वये. वो. (त. ३६; स. ३५,  
 त. ५; ब. ४)
- जत ऽयद्, गङ्ग.जिग्. (श. २३)  
 जत्थ ऽयत्र, गङ्ग.दु. (त. ३०; स. २६)  
 जन्त ऽयान्त, फियन्. (त. १००;  
 ब. ८१)
- जब्बे ऽयदा, गङ्ग. छे. (त. ४१;  
 स. ३६; ब. ३६)
- जरइ ऽजरति, नैम्.पर्. (श. ७१)  
 जलेहि जल ऽजले जल, छु.ल.छु  
 (त. ३४; स. ८८)
- जसु ऽयस्य, गङ्ग. ल. त. १४; स. १२)
- जहि ऽयत्र, गङ्ग. (त. १२५; ब. १०३  
 गङ्ग.दु. (त. २६; स. ४६) गङ्ग.  
 ल. (त. ८१; ब. ६७)
- जा ऽजात, (श. ७५)  
 जाउ ऽयावत्, जि.सिद्. (त. ८०;  
 स. ६७)
- जाइ ऽयाति, ऽग्रो. (त. १५; स. १३)
- जाण ऽजानाति, म्योङ्ग.बर्.शेस्.  
 (त. ११६; ब. ६ ब. ६६ शेस्.  
 पर्.ब्य. (त. १०७; ब. ८७)  
 जाणअ ऽजानीत, तोग्स्. सो. (त. ८२;  
 स. ७४)
- जाणइ ऽजानाति, शेस्.पर्.ग्युर  
 (त. ११५; ब. ६५)
- जाणमि ऽजानामि, शेस्.सो. (त. १११  
 ब. ६०)
- जाणहु ऽजानीहि, शेस्. पर्. ब्योस्.  
 (त. ७६; स. ६६; त. ३६; ब. ३७)
- जाणिअ ऽज्ञात्वा, शेस्. पर्. शिङ्ग.  
 (त. ४; ब. ३)
- जाणिउ ऽजानीतो ज्ञातो, शेस्. पर्.  
 नुस्. (त. ६१; स. ५१)
- जाणी ऽज्ञात्वा, शेस्. ब्यम्. (त. ७६;  
 स. ६६)
- जानन्ती ऽशेस्. (त. २; ब. १)
- जाया ?—ब्लस्. बर्जोद्. (त. ७६;  
 स. ६६)
- जाल—ऽद्र. ब. (श. ३५)
- जाव ऽयावत्, गङ्ग. छे. (त. ७३; स.  
 ६६)
- जाली ऽज्वालयित्वा, बृत्तङ्ग.नस्.  
 (त. ५; ब. ४)
- जाहि ऽयाहि, ऽग्रो. (त. १२५; ब.  
 १०३)

- जिग्घउ ऽजिग्घ, स्तोम्.ख्यम्. (त. ६५; स. ६२)
- जिम ऽयथा, जि. ल्तर (त. ६३, १०१, ११७; व. ७६, ८६, ९७;)
- जुत्त ऽयूथ, (श. ७३)
- जुवइ ऽयुवती, बुद्.मेद्. (त. ८; व. ७)
- जे ऽयः (श. १६, ६१, ७६, ८६, ९३)
- जेण ऽयेन, गङ्. गिस् (त. ४४, १२३; स. ६१)
- जेत्तइ ऽयाव्, जि.ल्तर. (त. ८६६ स. ७७)
- जो ऽयः, गङ्. (त. १५; स. १६)
- गङ्. यिन् (त. १२६; व. १०२)
- गङ्. शिग्. (त. १४, २०; स. १२, २०; त. ८१, ८३; व. ७६, ७३)
- चि. स्ले. (त. ११४; व. ६८)
- जोअण ऽयोजन, स्व्योर्. व. (श. १७)
- जोअमि-ऽजोहूं, म्थोङ्. व. (त. २६ स. ५२)
- जोइ ऽयोगी, नैल्.ऽव्योर् (त. ५४; स. ४४)
- जोइणिचार ऽयोगिनिचार, नैल्.ऽव्योर्. स्प्योद्.प. (त. १०४; व. ८४)
- जोइणि माअ ऽयोगिनी माया, सग्यु. मडि नैल्. ऽव्योर्. (त. १०६ व. ८६)
- जोइ ऽयोगी, नैल्. ऽव्योर्. (त. ३४, १०५; स. ८८)
- जोडण ऽयोजन, स्व्योर्. व. (त. १६; स. १७)
- जो पुण ऽयः पुनः, गङ्. यङ्. (त. १६; स. १७)
- जोहि-रिग्. व्योद्. (त. ११२; व. ६१)
- झगड-झगडो, ग्दुङ्. व्येद्. चिग्. (त. २५; व. २३)
- झाण ऽध्यान, ब्सम्. ग्त्तन्. (त. १४ ३४, ६३; स. १२, ४१, ६१)
- ठविअ ऽस्थापित, ग्तेर्. (त. १६ स. १५)
- ठविअउ ऽस्थापित-तो, ग्न्स्. पडि (त. १६; स. १५)
- ठाइ ऽस्थापि, वर्त्तन्. पर्.ग्न्स्. (त. ५२; स. ४३)
- ठाण ऽस्थान, ग्न्स् (त. ६५; स. १२७ त. ४७; स. १२७)
- ठाणु वर.ऽस्थान वर, ग्न्स्. म्छोग्. (त. ६२; व. ५२)
- ठिअअ ऽस्थितक, ग्न्स्. (त. १२७; व. १०३)
- ठिअउ ऽस्थितको, ग्न्म्. (त. ११०; व. ८६)
- ठिउ ऽस्थितो, ग्न्स्.प. (त. १२८; व. १०४. ञ्.म्स्. पर्. ऽग्युर्. (त. ३०; स. २६)

ठीअउ ऽस्थितो, ओङ्गस्. पडि. छे.

(त. १३४; ब. १११)

डहाविअ ऽदग्ध्वा, ग्गोद्.प. (त. ३;  
ब. २)

णई ऽनदी, छू. (त. १२०; ब. १००)

णउ ऽनच, म.यिन्.ते. (त. २२; स. १६  
त. ११६; ब. ६६) मि. (त. १७;  
स. १७)

णख ऽनख, सोन्. मो. (त. ६; ब. ५)

णण्गल ऽनग्गल, गोस्. दङ्ग. ब्रल्.  
शिङ्ग. (त. ६; ब. ५)

णण्गाविअ ऽनग्गत्व, ग्चेर्. बु.  
(त. ७; ब. ६)

ण वाअे ऽन वाच्ये, ब्जोद्.मिन्.  
(त. ६७; स. ७७)

णाउ ऽनाम, मिङ्ग. (त. १३१; ब. १०७)

णाम ऽनाम, मिङ्ग. (त. १११; ब. ६०)

णाल ऽनाल, नैल्.म. (त. ५६; स. ६७)

णासइ ऽनाशयति, ऽगग्स्. (त. ६३;  
स. ६०)

णासग्ग ऽनासाग्र, स्त. चर्. (त. ५४;  
स. ४४)

णाह ऽनाथ, म्गोन्. पो. (त. ३०;  
स. ५२, त. ८७; स. ७५, त. ६०;  
ब. ७२)

णाहि ऽनहि, मेद्. (त. २६; स. ४६)

णि ऽनिस, मेद्. (श. ७०)

णिअ ऽनिज, गञ्जुग्.मडि. (त. १६;  
स. १६)

णिउण ऽनिपुण, ग्चिग्. तु. स्दोद्.  
(श. ३४)

णिक्करुण ऽनिष्करुण, दम्. पडि.स्त्रिङ्ग.  
जे. (त. १३१; ब. १०६)

णिक्कलंक ऽनिष्कलंक, तौग्. प.  
(त. १००; ब. ८१)

णिक्कोली-निर्मल, मि. लुस्. द्वि. मेद्.  
(श. ६३) ब्बुल्. पो. (त. ७६;  
स. ६८)

णिच्चल ऽनिश्चल, ब्त्तोन्.पर्. ग्युर्.प.  
(त. ५५; ब. ४५)

मि. ग्यो (त. ५२, ७३, ६६, ७७;  
स. ६६ ब. ८३)

णिवेसी ऽनिवेश्य, ब्बुम्स्.ते. (त. ५;  
ब. ४.)

णिव्वाण ऽनिर्वाण, म्य.ङ्गन्.ऽदस्.  
(त. १३, १७; स. ११, १७)

परम-म्य.ङ्गन्.ऽदस्. (त. ४२;  
स. २४)

णिम्मल ऽनिर्मल, द्वि. म. मेद्. (त. १२२;  
ब. १०२)

णिम्मिअउ ऽनिर्मितो, स्प्रुल्. वर्.  
स्प्रुल्. (त. ११८; ब. ६८)

णिमिस ऽनिमिष, ऽजम्स्. (त. ७६;  
ब. ६६)

णिर् ऽनिर्. मेद्. (श. ६०)

- णिरक्खर ऽनिरक्षर, यि.गे.मेद्. तन, तात्त ऽतत्त्व, दे. जिद्. (त. ३६;  
(त. १०८; स. २५) ब. ३५ त. ३८; स. २८)
- णिरबन्ध ऽनिर्बन्ध, मि.गोग्म्. तत्तइ ऽतावत्, दे. सिद्. (त. ८७;  
(त. ७६; स. ६४) स. ७२)
- णिरन्तर ऽनिरन्तर, तंग्. पर्. (त. १२५) तत्तरहिअ ऽतत्त्वरहित, दे. जिद्. ब्रल्.  
व. १०३) गंयुन्. दु. (त. १२३; ग्युर. (त. १०; व. ६)  
व. १०३ त. ११०; ब. ८६) गंयुन्. तन्त ऽतन्त्र, ग्युद्. (त. २८; ब. २३)  
दु. ग्नस्. प. (त. १२६; ब. १०६) तप-दक्, थुब्. (स. १३)
- णिरास ऽनिराश, रे.ब.मेद्. (त. १३४; तब्बे ऽतदा, दे. छे. (त. ४०; स. ३६  
व. १२१) तरंग-द्व. ज्लेब्स् (त. १००; स. ८१  
लैब्स्. दग् (त. ८८; स. ७६;  
व. ७२)
- णिरुद्ध ऽनिरुद्ध, गग्म्. पर्. ऽग्युर. तरुअर ऽतरुवर, स्दोङ्. पो. (त. १३०;  
(त. ३५; स. ३४) व. १ व. १०७), स्दोङ्. पो. दम्.  
प. (त. १३१; व. १०८)
- णिलज्ज ऽनिर्लज्ज, डो. छे. मेद्. तहवि ऽतथापि, दे. ऽद्रस्. (त. ७६;  
(त. ८३; स. ७५) स. ७२) दे. बस्. (त. १३५; व.  
१११)
- णिस्सरि जाइ ऽनिस्सृत्य याति, ल्दोग्. तहा ऽतथा, दे. जिद्. नस्. (त. १२१;  
पर्. ऽग्युर. प. (त. १२१; व. १०१) व. १०१)
- णिस्सर ऽनिस्सर, ल्दोग्. प. (त. १३१; व. १०१)
- णिहाल ऽनिहालय, बर्तग्स्. न. त्तेहि ऽतदा. दे. छे. (त. ६३; ब. ७७)  
(त. ११६; व. ६६) ऽतत्र, देर्. (त. २८; स. ५१)  
गेव्रज्ज ऽनैवेद्य, ल्ह. व्शस्. (त. १४; दे. ल. (त. ११; ब. १०, त. १३२;  
स. १२) व. १०६)
- णहुअं-ग्चिग्. तु. (त. ३४; व. ८८) ता-जिद्. (त. २२; स. २०)
- तइलोअ (ण) ऽत्रिलोचन, मिग्. तारा-स्कर्. म. (त. ११८; ब. ६८)  
ग्स्म् (त. ६०; स. ६६) ताव ऽतावत्, जि. सिद्. (त. १०८;  
तड ऽतट, ग्रम्. दु. (त. १२०; व. १००) स. २५) दे. छे. (त. ७३; स. ६६,  
तण ऽतनु, लुस्. (त. ३१; स. २६) त. १०२; व. ८३)

तावइ ऽतावत्, दे.सिद्. (त. ८०;  
स. ६७)

तिण्णवि ऽत्रीप्यपि, नम्.गुसुम्.  
ग्यि. (त. ३७; स. २७)

तित्थ ऽतीर्थं, मु. ग्नस्. (त. ५६; स.  
६७)

वब्. स्तेग्स्. (त. १५; स. १३)  
तिम ऽतथा, दे.ब्रिन् (त. ११०;  
ब. ८६)

तिल—तिल. (त. ६२)

तिसिअ ऽतृषित, स्कोम्. प. (त. ६६;  
स. ८८)

तिसिअो ऽतृषितः, स्कोम्.नस्.  
(त. ११३; ब. ६१), स्पोम्.पस्.  
(त. ११३; ब. ६१)

तिसित्तन ऽतृषितत्व, स्कोम्.(श. ६३)  
तिहुअण ऽत्रिभुवन, खम्स्.गुसुम्.  
(त. २४; स. ५०, ब. १३०; ब.  
१०७) स. गुसुम् (त. १०६,  
११४; ब. व. ८७, ६४)

तुट्टइ ऽत्रुट्यति, छद्. ते. (त. ७६;  
स. ७२) नम्.पर्.सछद्.पर्. ग्युर.  
(त. ५६; स. ६४)

तुरंग—र्तं. ऽत. ६; ब. ८)

तुल्ले ऽतुल्ये, म्जम्. (त. ४; ब. ३)

तुस ऽतुष, शुन्. प. (त. ६२; ब. ७५)

त्थिविर ऽस्थविर, ग्नस्.वर्तन्.  
(त. १०; ६)

त्रिदंडी—द्वयुग्. गुसुम्.लग्स्.ल्दन्.  
(त. ३; व. २)

थक्कु ऽतिष्ठ, ऽदुग्, (त. १२५; व. १०३)  
थल ऽस्थल, थङ्. (त. ६६; स. ४४)

थाक्कइ ऽतिष्ठति, ग्नस्.वर्तन्. प.  
(त. ७३; स. ६६)

थाक्कु ऽतिष्ठ, ऽदुग्. (श. १०५)  
दक्खिणा ऽदक्षिणा, ब्ल.मडि. योन्.  
(त. ६; ब. ५)

दंडी—द्वयु. गु. (त. ३; व. २)  
दत्त ऽदैत्य, वियन्.चिङ्. (त. ३६;  
स. ३५)

दलु ऽदत्त, स्तोङ्.पो. (त. ५६; स. ६७)  
दस ऽदश, ब्चु. (त. २६; स. ५२)  
दाण ऽदान, सूधियन्. प. (त. १३५;  
ब. ११२)

दिक्खिज्जइ ऽदीक्ष्यते, द्वङ्. नम्स.  
ब्सुर्. शिङ्. (त. ६; ब. ५)  
दिज्जअ ऽदत्त्वा, ब्यन्ि. नस्. (त.  
७८; स. ७१)

दिट्ठउ ऽदृष्टो, यङ्.दग्.मथोङ्.  
(त. ५६; स. ६७)

दिट्ठि ऽदृष्टि, ल्त. व. (त. ११६; ब. ६६)  
ल्त. बु. (त. १८; स. १५, मथोङ्.  
व. (त. ३५; स. ३४)

दिट्ठो ऽदृष्टो, म्योङ्. (त. ११; ब.  
१०)

- दिवाग्रर ऽदिवाकर, स्नङ्. ब्येद्. देक्खउ ऽप्रेक्षस्व, म्थोङ्. (त. ६५;  
 (त. ११८; व. ६८), व्सल्. ब्येद्. स. ६२)  
 (त. ५८; स. ६६)  
 दिसऽदिशा, फ्योग्स्. (त. २६; स. ५२)  
 दीग्रउ ऽदत्तो, स्तेर्. व. (त. १३५;  
 व. ११२)  
 दीप-मर्. मे. (त. १४; स. १२)  
 दीवा ऽदीप, मर्. मे. (त. ५; व. ४)  
 दीस्सइ ऽदृश्यते, म्थोङ्. (त. १००;  
 व. ८१)  
 दीसइ ऽदृश्यते, म्थोङ्. ङ्. (त. १६;  
 स. १५), म्थोङ्. स्ते. (त. ८१;  
 स. ६७)  
 दीह ऽदीर्घ, रिङ्. (त. ६; व. ५)  
 दु ऽदुर्, मेद्. (श. ८८)  
 दुक्ख ऽदुःख, स्दुग्. व्सङ्. (त.  
 ११८; व. ६८)  
 दुट्ठ ऽदुष्ट, जिः. सेर्. (त. ८६;  
 व. ७३)  
 दुरिअ ऽदुरित, स्दिग्. प. (त. ११७;  
 व. ६७)  
 दुल्लक्ख ऽदुर्लक्ष्य, म्छोन्.मेद (त.  
 १०६; व. ८६)  
 देइ ऽददाति, (दाति, स्तेर्. वर्  
 ब्येद्. प. यि. (त. ४३; स. २३)  
 देक्खइ ऽ देक्खति,प्रेक्षते, लतोस्  
 (त. १६; स. १५)
- देव—ल्ह, (त. ७८; स. ७१)  
 देस ऽदेश, युल्. (त. ७७; स. ७०)  
 देह—लुस् (त. ४; व. ३, त. ७३; स. ६६)  
 देर्हिं ऽदेहे, लुस्. ल. (त. ८२; स. ७४)  
 देहा सरिस ऽदेह सदृश, लुस्. दङ्.  
 ङ्. (त. ५६; स. ६७)  
 दोस ऽदोष, स्क्योन् (त. ६०; स. ७८;  
 व. १०३) ङोस्.प. (त. ४०;  
 स. ६०)  
 ग्ङोन्. पो. (त. ६०)  
 दोसे ऽदोषेण, स्क्योन्.ग्यिस्. (त.  
 ३६; व. ३४)  
 दोहा ऽदोधक, (श. ६४)  
 धण्णो ऽधन्यो, ग्तेर्. यिन्. (त. ८४;  
 व. ६६)  
 धंवा ऽद्वन्द, ब्रुल्. प. (त. ३३; स.  
 स. ४४) शोन्. प. (त. १७;  
 स. १३)  
 धंघी—स्लु. वर्. ब्येद्. (त. ६; व. ४)  
 धम्म ऽधर्म, छोस्. (त. ४; व. ३)  
 धम्म, अ- ऽअधर्म, छोस्.मिन्. (त. ४;  
 व. ३)  
 धरिज्जइ ऽधार्यते, ङिज्न्.प.यिन्.  
 (त. ६४; व. ७७)  
 धवहि ऽधावयित्वा, दोम्स्.पर्. (त. ६६;  
 स. ४४)

धारण-ब्रसन्-गतन्. (त. २४, ७६;  
व. ६६, २३)

धावद्/धावति, ऽप्रो.व.चोम्. (त. ५२;  
स. ४३) ङोर्गस्. ब्रिन्.  
(त. ११३; स. ६१)

धाविड /धावितो, ग्युग्. ब्येद्. चिङ्.  
(त. ११; स. १०)

धाहिज्जइ/ध्यायेत, ब्रसम्.गतन्.ऽग्युर्.  
(त. १००; व. ८१)

धेअ /धयेय, ब्रसम्.व्य. (त. २४, ७६;  
स. २३, ६६)

न-मि. (त. २; व. १)

न्हाइ /स्नात्वा, शुग्स्.प. (त. १५;  
स. १३)

पन्नंगम /पतंगम, स्फिय. लेब् (त. ७५;  
स. ७६; व. ७१)

पन्नाग /प्रयाग, प्र.य.घ. (त. ५८;  
स. ६६)

पइ /पति, खियम्. ब्दग्. (त. ७५;  
स. ६८)

पइसइ /प्रविशति, शुग्स्.प. (त. १६;  
स. १५) ऽजुग् (त. ८१; व. ६७)

ऽजुग्. पर्.ऽग्युर्. (त. ४०; स. ३६)

पईसइ /प्रविशति, शुग्स्. प. (त. १६;  
स. १५)

पउम /पढम /प्रथम, (श. ३६)

पच्चक्व /प्रत्यक्व, म्ङोन्.डु. ग्युर्.  
(त. २१; स. १६)

पच्छे /पश्चात् (पाछे), ग्यब्.  
(त. २६; स. ५२)

पडि /प्रति, यङ्. दग्. (त. ५५;  
स. ४४) रब्. तु. (त. १२२;  
व. १०२)

पडिपज्जइ /प्रतिपद्यस्व, यङ्.दग्.  
स्पङ्. (त. ५५; स. ४४)

पडिवण्ण /प्रतिपन्न, रब्.तु.तोर्गस्.  
(त. १२२; व. १०२), व्स्तेन्.प.  
(त. १२५; व. १०२)

पडिवेसी /प्रतिवेशी, खियम्छेस्  
(त. ७५; स. ६८)

पडिहाइ /प्रतिभाति, स्नङ्. व.  
(त. १०५; व. ८७)

पडिहाउ /प्रतिभातु, स्नङ्.वर्.  
ऽग्युर् (त. १२१; व. १०१)

पडिहासइ /प्रतिभासते, ग्सल्.वर्.  
स्नङ्. (त. ६८; व. ७६)

पडेइ /पतेत्, बब्. (त. ८५; व. ७०)

पढमे /प्रथमे, दङ्. पो. (त. १११;  
व. ६०) ग्दोङ्. नस् (त. ३५;  
व. ३४)

पढिअउ /पठितो, स्तोन्. (त. १११;  
व. ६०)

पढिज्जइ /पठ्येत, बल्कोग्.प.  
(त. १८; स. १४)

पढे /पठेत्, दोन् (त. २; व. १)

- पणमह ऽप्रणमत, फ्यग्. ऽछल्. लो.  
(त. ४३; स. २३)
- पण्डिअ ऽपण्डित, म्ख्स्. प. (त. ४२;  
स. ७४, त. ६३; व. ७६)
- पत्तिजइ ऽप्रतीयते (पतियाइ), यिद्.  
छेस्. पर्. (त. ३५; स. ८६)
- पब्वज्जा ऽप्रव्रज्या, रब्. तु. ऽव्युङ्क.  
व. (त. २०; स. १८)
- पब्वज्जिउ ऽप्रव्रजितो, रब्. व्युङ्क.  
नस्. (त. ६.; व. १०)
- पर-म्छोग्. तु. (त. ६४; स. ६७  
त. ११७; व. ७७) दम्. प. (श.  
६०, ७८) ऽोन्. क्यङ्क. (श. १६  
दे: (त. १०५; व. ८४), ग्शन्.  
(त. २६; स. ५६)
- परउआर ऽपरउपकार, ग्शन्. ल.  
फन्. प. (त. १०३; व. १०७)
- परत्त ऽपरत्र, फिय. म. (त. १३१;  
व. १०८)
- परमकल-म्छोग्. तु. तोग्स्.  
(त. ६३; व. ५३)
- परमत्थ ऽपरमार्थ, दोन्. दम्. (त. १३;  
स. ११)
- परमपउ ऽपरमपद, दम्. प. सेम्. स.  
(त. १०६; स. ४१), परमपद, गो.  
ऽफङ्क.
- परममहासुह ऽपरममहासुख, म्छोग्.  
तु. ब्दे. व. छेन्. पो. (त. ११६;  
व. ६६)
- परमेसर ऽपरमेश्वर, द्वङ्क. फ्युग्.  
दम्. प. (त. ७२; व. ६५)
- परमेसुरु ऽपरमेश्वर, द्वङ्क. फ्युग्.  
म्छोग्. (त. १००; व. ८१)
- परलोक-जिग्. तौन्. फ. रोल्. (त. २६;  
स. ४८)
- परि-योङ्ग्. सु. (त. ७२; स. ६५  
रब्. तु. (त. ७०; स. ६४)
- परिआण ऽपरिजान, शेस्. प. (त. २१;  
स. १८), योङ्ग्. सु. शेस्. (त. २५;  
स. १०३)
- परिआणसि ऽपरिजानासि, योङ्ग्.  
मु. शेस्. (त. ७३; स. ६६)
- परिआणहु ऽपरिजानीहि, तौग्स्.  
पर्. ग्युर. (त. १७; स. १४)
- परिआणिअ ऽपरिजाय, योङ्ग्. सु.  
शेस्. (त. ६५; स. १२७)
- परिभावइ ऽपरिभावयति, योङ्ग्.  
सु. ब्स्सोम्. (त. १२८; व. १०५)
- परिमुच्चंति-म्युर. दु. ग्गोल्. (त. ४४;  
स. ६१)
- परिहरहु ऽपरिहरत, रब्. तु. स्पङ्ग्.  
(त. ७०; स. ६४)
- परिसउ ऽस्पृश, स्तोम्. ख्यम्. (त. ६५;  
व. ५५)
- पलुट्ठिअ ऽपर्यस्य, स्कोर्. शिङ्क. स्लर्.  
(श. ७२)



- पवण ऽपवन, लृङ्. (त. २६, ३१, ४५, ५५; स. ४९, ३०, ४५, ७९; व. ६६)
- पविट्ठ ऽप्रविष्ट, ग्न्स्. प. (व. १४; स. १२)
- पवेश ऽप्रवेश, जुग्. पर्. ङ्युर्. व. (त. २७; स. ४९)
- पसु ऽपशु, ब्योल्. स्तोस्. (त. २३; स. २०)
- पसाञ्च ऽप्रसाद, द्विन्. (त. ११५; व. ९६)
- पसाञ्चै ऽप्रसादे, द्विन्. (त. ११५; व. ९५)
- पाणी ऽपानीय, छु. यिस्. (त. ७७; स. ६९), छु. (त. २; व. १)
- पाव ऽपाप, स्दिग्. प. (त. ७७; स. ६९)
- पावञ्च ऽप्राप्नोति, थोब्. ङ्युर्. (त. १६; स. १७)
- पावइ ऽप्राप्नोति, ञोद्. दम्. (त. १०; स. ९६), ञोद्. प. (त. १६; स. १६) ञोद्. प. यिन्. ते. (त. १६; स. १६)
- पावसि ऽप्राप्नोसि, थोब्. पर्. ग्युर्. (त. ७३; स. ६६)
- पावहु ऽप्राप्नुहि, ञ्फद्. (त. १०; व. ८२)
- पास ऽपार्षव, (श. ८७)
- पिञ्च ऽपिच, ष्युङ्. (त. १२०; व. १००)
- पिच्छी ऽपिच्छ, म्जुग्स्. स्फु. (त. ८; व. ७)
- पिञ्जइ ऽपीयेत, थुङ्. (त. १०५; व. ८६)
- पिवन्ते ऽपिवन्त, थुङ्स्. प. त. १११; व. ९०)
- पीठ—कुन्. ग्न्स्. (त. ५८ स. ९६)
- पीवन्त ऽपिवन्त, थुङ्. (त. २५; स. ४८)
- पुच्छ ऽपृच्छ, द्विस्. ल. (त. १२०; व. १००)
- पुच्छञ्च ऽपृच्छत, द्वि. (त. ७५; स. ६८)
- पुच्छइ ऽपृच्छति, ष्योल्. (त. ७५; स. ६२)
- पुच्छमि ऽपृच्छामि, द्वि. वर्. ब्यडो (त. ३०; स. ५२)
- पुञ्जि ऽपूज्यते, म्छोद्. प. (त. ७८; स. ७१)
- पुडञ्चणि—ऽपुरइत, पद्मिनी, दब्. ल्दन्. (त. ५९; स. ९७)
- पुणु ऽपुनः, फिय. नस् (त. ६४; स. ६१)
- पुण्ण ऽपुण्य, दर्ग्य. ल. (त. ११५; व. ९५)
- पुब्व ऽपूर्व, सङ्. न. (त. १०१; व. ८२)
- पूरइ ऽपूरयति, जोग्स्. पर्. ङ्युर्. (त. ११४; व. ९४)
- पुराण—स्त्रिङ्. (त. १८, ७७; स. १४, ६५)

परिभ्रज्पूर्णा, जोग्स्.पर्.ऽग्युर्(श. ६६)  
पेक्खइ ऽप्रेक्षते, लोस्. (त. १६;  
स. १५)

पेक्खु ऽप्रेक्षस्व, लोस्. (त. ५३;  
स. ४३)

पेक्खह ऽप्रेक्षस्व, ल्त.बर्.व्योस्.  
(त. ८७; व. ७१)

फरन्ते ऽस्फरन्त, गेङ्क् (त. २५, ५६;  
स. ४८, ६७)

फल—ब्रस्.बु. (त. ४३; स. २३;  
त. १३३; व. ११०)

फुड ऽस्फुट, यङ्.पो. (त. ६८; व. ७६)  
ग्सल्.बर्. (त. ३१, ३८; स. २६,  
२७)

फुल्ल ऽपुष्प, मे.तोग्. (त. १३०;  
व. १०७)

फुल्लिअउ ऽफुल्लितो, (त. १३; स.  
१०)

व. ऽएव, जिद्. (श. ७५)

वइठ्ठ ऽविष्ट, शुग्स्. (त. ११;  
व. १०)

वइसी ऽविष्ट्वा, ऽदुग्. नस्. (त. ५; व.  
ग्नस्. (त. ५; व. ४), ग्नस्.  
शिङ्. (त. २; व. १)

वईसउ ऽविश, ऽदुग्. प. (त. ६५;  
स. ६२)

वक्खाण ऽव्याख्यान, छद्.पर्.ब्येद्  
(त. ११; व. १०)

वक्खाणअ ऽव्याख्यायते, ऽ छद्. प.  
यिस्. (त. ८२; स. ७४)

वक्खाणिज्जइ ऽव्याख्यायते, ऽछद्.  
प. (त. १८; व. १४)

वज्जइ ऽवर्जयति, द्गोस्. प.  
(त. ६३; व. ७६)

वज्जइ ऽवध्यते, ब्चिङ्स्.ऽग्युर्.  
ते. (त. ४१; स. २४), ऽछिङ्स्.

ग्युर्. (त. ४३; स. ६१), छिङ्.  
व. (त. ६३; स. ६१)

वज्जन्ति ऽवध्यन्ते, छिङ्.ऽग्युर्.  
(त. ८८; स. ६१)

वज्जे ऽवद्धेन, ब्चिङ्स्.पस्. (त.  
४३; व. ४२)

वढ—मूढ, मि.शेस्. प. (त. २७;  
स. ४६), मीङ्स्. प. (त. ३६;  
स. ३७; त. ८६, ११६; व. ७१,  
६६)

वण ऽवन, नग्स्. (त. १२८; व. १०४)  
वण्ण ऽवर्ण, यि.गे.)

वद्ध ऽब्चिङ्स्. प. (त. ५२; स. ४३)  
वंदह ऽवन्दस्व, ऽदुग्. चिग्. (त. ५४;  
स. ४४)

वन्देहिअ ऽवन्द्याः, वन्दे.र्नम्स्. नि.  
(त. १०; व. ६)

वन्ध—छिङ्.व.स्ते. (त. ३३; स. ८८)  
वन्ध करु ऽवन्धनं कुरु, छिङ्स्.बर्.

ब्येद्. चिङ्. (त. ८६; व. ७१)

- बन्धण् √बन्धन, ऽछिङ्. व. (त. ५६;  
स. ६४)
- बन्धी √बध्वा, ऋङ्.बृचस्.नस्.  
(त. ५; ब. ४)
- बखाणं √व्याख्यायते, बृशद्.दु.योद्.  
(त. २३; स. २२)
- वरु √वर, रुङ्. (त. १३५; ब. ११२),  
बृस्द्.प. रुङ्. (त. १३५; ब. १११)
- ववहार √व्यवहार, लन्. (त. ६५;  
स. ६३)
- वस √वसत, गृन्स्-ङ्ग्युर् (त. ३८;  
स. २७)
- वसउ √वसतु, शोर्. चिर्. (त. १२०;  
ब. १००)
- वसन्त—(रहते), योद्. प. (त. ८२;  
स. ७४)
- वसिञ्जउ √वास्तव्य, गृन्स्. (श. ३८)
- वहइ √वहति, गृन्.योद्.दे. (त. ८०;  
ब. ३६)
- वहुलहु √वहुलो, यङ्.दग्. यङ्.दु.  
(त. २५; स. ४८)
- वाञ्च √वाक्, डग्. (त. १०२; ब. ८३)
- वाज्जइ √वाचते शि. गृन्. (त. २२;  
स. २०)
- वाज्जइ √बाध्यते, छुर्. (त. ७८;  
स. ७१)
- बाम्ह √ब्रह्मा, छृङ्स्.प. (त. ६०;  
स. ६६)
- बाम्हणं √ब्राह्मण, ब्रम्. स्. (त. ५७;  
स. ६५)
- वाराणसी √वाराणसी (त. ५८; स. ६६)
- बाल—बृयिस्. प (त. १६; स. १६),  
बु. छुङ्. (त. ७०; स. ६४)
- वासिञ्ज √वासित, बग्. छृङ्स्. गृन्.गृन्.  
(त. ६३; ब. ७६)
- बाहिञ्ज √वाहित, स्लु. (त. ७; ब. ६)  
बृस्लुस् (त. २०, २४; स. १६, २२)  
ऽब्रल्. वस्. (त. २३; ब. २२)
- बाहिउ √वाहितो, सुन्. बृयिन्. (त. ४८;  
ब. १२८), ख्रल्. ख्रुर्. व. त. ६५;  
स. १२८)
- बाहिञ्ज √वाहित, ख्रुर्.वर्.बृयेद्.  
(त. ४; ब. ३)
- बाहिर √बाह्य, फ्रि.रोल्. (त. ७५;  
स. ६२; त. ६०, ११०; ब. ८०, ८६)
- बि. √अपि, ऽोन्. क्यङ्. (त. १६; स. १५)
- बिट्ठु √विष्णु, ख्यब्. ऽजुर्. (त. ६०;  
स. ६६)
- बिडम्बिञ्ज √विडंबित, गृन्.ोद्. बृयेद्.  
लम्. (त. ७; ब. ६)
- बिणु √विना, म. तोर्. (त. ६७;  
स. ७२)
- बिणिण √द्वयं, गृन्.ोद्. (त. ६४;  
ब. ५४)
- बिणु √विना, म. तोर्. (त. १७;  
स. ७२)

- विणुअ ऽविज्ञक, (श. ३)  
 विरला ऽविरल, ङाऽ. यिस्. (श्र. ११५;  
 व. ६५)  
 विस ऽविष, दुग्. (त. ७८; स. ७१)  
 विसअ ऽविषय, युल् (त. २०; स. १८,  
 त. ८०; व. ६७)  
 विसम ऽविषम, शिन्.तु.ऽकऽ व. (श.  
 ६९)  
 विसरश ऽविस्मर, ब्रजोद्.पर्.ग्युर्.  
 (त. १११)  
 विसरिस ऽविसदृश, द्पे.दङ्.ब्रल्.  
 (त. १०४; १०६; व. ८४, ८६)  
 विसाम कर ऽविश्रामं कुरु, गुग्स्.  
 फ्युङ्. चिग्. (त. २७; स. ४९)  
 वीअ ऽबीज, स. बोन्. (त. ४२; स. २३)  
 बुज्जइ ऽबुध्यति, गो. (त. २३;  
 स. २०) व्स्लुस्. पर्. शेस्. व्य.  
 (त. ७४; स. ६७), गो. व. (त. ६७;  
 स. ७७), ज्जोद्. प. (त. ७७; स. ६९)  
 बुधा ऽबुधाः, म्खस्.र्नम्स्. (त. ४४;  
 स. ६१)  
 बुद्धि—ब्रलो. (त. ६३; स. ६०)  
 बेअणु ऽवेदना, स्टुग्.व्स्डल्. (त. ६२;  
 व. ७५)  
 वेइ ऽद्वैत, गोद्. (त. ६४; स. ६२)  
 वेणिम ऽद्विधा, व्ये.ब्रग्. (श. ५१)  
 वेणवि ऽद्वावपि, ग्जिस्. सु. ङाग्युर्.  
 व. (त. ११५; व. ६५)
- वेणिण ऽद्वैत, व्ये.अग्. (त. ६०;  
 स. ६७)  
 वेने ऽवेवे, ग्योग्स्. (त. ६; व. ५).  
 स्तोन्. (त. ६; व. ५), ग्मुग्स्  
 (त. ७; व. ६)  
 वोह ऽबोध, तोग्स् (त. ७६, ६६;  
 व. ६६)  
 वोहि ऽबोधि, व्यङ्.छुब्. (त. १२७;  
 व. १०३)  
 वोहिअ ऽबोहित, ग्सिङ्ग्. (त. ८५;  
 व. ७०)  
 भअ ऽभय, मोंङ्ग्.प. (श. २६)  
 भत्ति ऽभक्ति, व्स्त्रिम्.ते. (त. ७१;  
 स. ५७), रब्. ऽवद्. (त. ७१;  
 स. ६५)  
 भदठी?—ऽगोग्स्.मो. (त. १०५)  
 भणइ ऽभणति, न.रे. (त. ६; व. ८),  
 स्त्र. (त. २०; स. १६)  
 भणइ ण जाणइ ऽभणितु न जानाति,  
 स्त्र.रु. मि.व्तङ्, मणु. (त. ७२;  
 स. ६४)  
 भतार ऽभतां, ख्यिम्.व्दग्. (त. ६६;  
 व. ८०)  
 भन्तिअ ऽभ्रान्ति, डो. म्छूर्. (त. ६३;  
 स. ७६)  
 भमइ ऽभ्राम्यति, ब्रजोद्. चिङ्. (त. ७७;  
 स. ६६)  
 भमउ ऽभ्रमत, ङो. (त. ६५; स. ६३)

- भमर ऽभ्रमर, बुङ्. व. (त. ८७; व. ७१)
- भमिञ्च ऽभ्रान्त्वा, फियन्. ते. (त. ५८; स. ९६)
- भव—खोर. व. (त. १२२; व. १०२)  
सिद्. प. (त. २८; स. ५१)
- भवहि ऽभवे, द्ङोस्. पो. (त. ६४; स. ६१)
- भाज्जा ऽभार्या, छुङ्. म. (त. २०; स. १८)
- भान्ति ऽभ्रान्ति (त. ७४, १२६; स. ६७, फ. १०६)
- भार—खुर. वु. (त. ४; व. ३)
- भाव—द्ङोस्. पो. (त. २२; स. १६)
- भावइ ऽभावयति, योद्. प. (त. ६; व. ८)
- भावाभाव—दङोस्. दङ्. दङोस्.  
मेद्. (त. ३३, ७२; स. ८८, ६५)
- भाविउ ऽभावित, स्तोम्. ब्येद्.  
त. १३; स. ११)
- भावे—व्स्तन्. (त. १५; स. १२)
- भिव्खु ऽभिक्षु, इगे. स्लोङ्. (त. १०; व. ६)
- भिज्जइ ऽभिज्ञयत, द्वायेर्. प.  
(त. १०२; व. ८३)
- भिडि ऽदृढ, (श. २१)
- भिण्ण ऽभिन्न, द्वायेर्. (त. १३३; व. ११०)
- भुल्ले—(भूल), गोल. (त. ४; व. ३)
- भोअण ऽभोजन, स. व. (त. ६; व. ८)
- म. ऽमा, (त. १२५; व. १०३)
- मइ ऽमया, ड्. यिस्. (त. १२२; व. १०२), ब्दग्. गिस्. (त. ५३, ७१; स. ४३, ६४)
- मग्ग ऽमार्ग, लम्. (त. १६; स. १६)
- मज्झ ऽमध्य, वर. (त. ११४; व. ६४)  
द्दुस्. (त. २८; स. ५१, द्बुम्.  
न. (त. ५६; स. ६७)
- मट्टि ऽमृत्ति, स. (त. २; व. १)
- मण ऽमनः, यिद्. (त. ३४; स. ८८, त. ३१; स. ३०), (त. ६४; व. ७७),  
रङ्. ग्युद्. (त. ४२; स. २४),  
सेम्. (त. २६; स. ४६)
- मण्हु ऽमन्यतां, शेस्-पर्. ब्योस्. (त. ३४; स. ८५; )
- मणु ऽमनः, सेस्. (त. १०६; व. ८६; )
- मण्ड—खु. व. (त. १११; व. ६०)
- मण्डल—ब्वियल्. खोर. (त. ११८; व. ६८)
- मण्णहु ऽमन्यस्व, डेस्. (त. १२२; व. १०२)
- मति—ब्लो. गोस्. (त. ८४; स. ६६)
- मत—यम्. (त. ६२; व. ७५)
- मन्त ऽमन्त्र, स्ङ्गस्. (त. २४; स. २३)  
ग्सङ्. स्ङ्गस्. (त. १५; स. १२)

- मत्रीअइ ऽमीयते, ऽजन्. (श. २२)  
 मरइ ऽअियते, (त. ३१; स. ३०),  
 छि. यङ्. (त. ११३; ब. ६०)  
 मरिब्वो ऽमर्तव्यो, छि.वर्.सद्.  
 (त. ८६; स. ४४; व. ५६)  
 मरुत्थलर्हि ऽमरुस्थले, मङ्. म्य.ङ्.म्.  
 ग्यि. (त. ६६; स. ४४)  
 मरेइ ऽअियेत, फम्. ग्युर्. प.  
 (त. ६३; स. ६०)  
 मलिणो ऽमलिने, ऽद्रि. मस्. (त. ६;  
 ब. ५)  
 मसि—स्नग्. छि. (त. १०३; स. ४१)  
 महाजाण ऽमहायान,थेग्.छेन्. (त. ११;  
 ब. १०)  
 मा.—मि. (त. १७; स. १७)  
 माम्नाजाल ऽमायाजाल, (त. ३४;  
 स. ८६)  
 माम्नामअ ऽमायामय, स्न्यु. मडि रङ्.  
 ब्शिन्. (त. ६३; स. ६०)  
 मारइ ऽमारयति, ग्सोद्.प. (त. १२१;  
 ब. १०१)  
 मारी ऽमारयित्वा, छिङ्.ऽग्युर्.  
 (त. ७८; स. ७१)  
 माइ ये ऽमातः, हे, अ. म. (त. १०४;  
 ब. ८४)  
 मिअतिसणा ऽमृगतृष्णा, स्मिग्. गं.युडि.  
 छु. (त. ११३; ब. ६१)
- मिच्छेर्हि ऽमिथ्या, गर्जुन्. प. जिद्.  
 (त. ४; ब. ३)  
 मिलन्ते—ब्रशग्. (त. ८६; स. ७८;  
 ब. ७७)  
 मीण ऽमीन, ङ्. (त. ८७; ब. ७१)  
 मुक्कइ ऽमुच्यते, ओल्. ग्युर्. (त. ७३;  
 स. ६६)  
 मुक्को ऽमुक्तो, ओल्.वर्.ऽग्युर्.  
 (त. ११०; ब. ८६)  
 मुच्चअ ऽमुच्यते, ओल् (त. २०;  
 स. १८)  
 मुच्चहु ऽमुचत, थोङ्. (त. १७; स. १३)  
 मुणइ ऽमनुते, सेम्स्. प. (त. १३३;  
 ब. ६०)  
 मुणि ऽमत्वा, तोग्स्.नस्. श. ४१)  
 मुणिज्जइ ऽमन्यते, डो. शेस्. (त. १००  
 ब. ८१)  
 मुणेबि ऽमत्वा, तौग्स्. नस्. (त. ४१;  
 ८३; स. ३६)  
 मुण्डी—स्क्र.मेद् (त. ६; ब. ५)  
 मुत्ति ऽमुक्ति, ओल्. (त. ७; ब. ६)  
 मुद्दा ऽमुद्रा, फ्यग्. गं.यस्. (त. २४;  
 ब. २२)  
 मुसारिउ ऽमिश्रित, म्जेम्. प. (त.  
 १०६; स. ४१)  
 मूल—व. ब. (त. ३७, ७८; स. २७,  
 ७१, त. १३२; ब. १०६)

- मोक्खलमोक्ष, थर्.ब. (त. १४, ४१;  
स. १२, २४, त. ७, ९; ब. ६, ८)  
मोर लमयूर, मं. (त. ८; ब. ७)  
मोहिअ लमोहित, मीँडस्.ज्ग्युर्.  
(त. ३७; स. ३४)  
रज्जइ लराजते, म्जस् (त. ९४,  
१०२, १०४; व. ७७, ८३, ८४)  
रज्जह लरज्यतां, छग्स्.ब्योन्. (त.  
५५; स. ४४)  
रंजिय लरंजित, ख.दोग्.स्ग्युर्. चिग्  
(त. २८; स. ५६)  
रंडी—ख्यो.मेद्. (त. ६; व. ५)  
रमइ लरमते, व्स्तेन्. व्य. (त. ८४;  
व. ७०)  
रमन्ते—इअऽ वस्. (त. २०; स. १८)  
व्स्तेन्. पस्. (त. ७७; स. ६९),  
द्गऽ. शिङ्. (त. २५; स. ४८)  
रमन्तो—स्डग्स्. चन्. (त. ७८;  
व. ७१)  
रवि—ञि. म. (त. २६; स. ४९)  
रस—रो. (त. ४९, ६१; स. ५१)  
रसण लरसन, ओन्. चोँद्. प. (त. ६१;  
स. ५१)  
रहिअ लरहित, दङ्. ब्रल्. त. १०;  
१५; व. ९, १६), स्थित, व्य.  
(श. २३, ३३), रहित, स्पङ्. ते.  
(त. ६२; व. ५२)  
रहिअअ लरहितक, मेद्. (श. २१)  
रहिअउ लरहितो, ब्रल्. व. (त. ७१;  
स. ६४)  
राअविराअ लराग-विराग, छग्.दङ्.  
छग्. ब्रल्. (त. १०५; व. ८५)  
राग—छग्स्. प. (त. १०४; व. ८४)  
ऽदोद्. छग्स्. (त. २८; स. ५०)  
रव—ऽवोद्. प. (त. २२; स. १९)  
रस—रो. (त. ६७; स. ७७)  
रूअणे लग्दोल्. व. (त. ११२; व. ९१)  
रूअ, रुअ लरूप, डो.बो. (त. ३६;  
स. ३७) ऽद्र. (त. ४३; स. २३),  
छुल्. (त. ११; स. १०)  
रूअणेलरूपण, रङ्. ब्शिन्. (श. ९३)  
रे—क्ये.लग्स्. (त. १७; ५३;  
स. १३), क्ये. हो. (त. ३३; स. ८८)  
त. ३३, ५०, ८६, ११९; व. ८८, ०,  
७१, ९९)  
लअ ललय, नुब् (श. ३८)  
लअ जाइ ललयं याति, स्डस् ? (त. ३१;  
स. ३०)  
लइ ललात्वा, ब्शङ्. नस्. (त. २२;  
स. २०)  
लइउललातो, ज्जोन्. व्यस् (त. ७७;  
स. ६९)  
लक्ख ललक्ष, खि.फग्. (त. ७८;  
स. ७१)  
लक्खइ ललक्ष्यते, म्छोन्. प. (त. १८;  
स. १५)

लक्खिअइ लक्षयते, म्छोन्.ने.

(त. ३७; स. २७)

लक्खिअउ लक्षितो, म्छोन्.नुस्.

(त. ३६; स. ३५)

लक्खिअ लक्षयित्वा, म्थोड्.व.

(त. १६; स. १६), म्छोन्. नुस्.

(त. ३७; स. ३४)

लग्ग लग्न, ङुग्स्. (त. १५; स. १६)

लग्गहु लगत, ङोड्स्. (त. ५१)

लब्भइ लभ्यते, थोव्. (त. १४; स. १२)

लिप्पइ लिम्पति, गोस्. पो. (त. ७७;

स. ६६), लिप्यते, गोस्. सो. (त. ७७;

स. ६६)

लिरा ललाट, ग्शि. व्येद्. (श. ८५)

लीण लीन, थिम्. पर. ङ्ग्युद्. (त. ७२;

स. ६५)

लुक्को लुक्कायितो, स्वस्. प.

(त. ११०; व. ८६)

लोअ लोका, जिग्. तेन्. (त. २३, ३७;

स. २०, ३४)

लोअण लोचन, मिग्. (त. ७६; व. ६६)

लोडइ लोडणा, पंजाबी), छोल्.

(त. ६६; व. ८०)

लोम—स्पु. (त. ८; व. ७)

वअण वचन, ब्कऽ. (त.; स. ८६),

मन्. डग्. (त. ६६; स. ४४),

लुड्. (त. ७१; स. ५७)

वण्ण ववर्ण, ख. दोग्. (त. ७१; व. ६४)

(वद्)—शिड्. (त. ६; व. ५)

वर—म्छोग्. (त. ६२; व. ५२)

वरणाले वरनाले, शिन्. तु. फ व. नैल्.

म. (त. ५६; स. ६७)

वसन्त—ग्नस् शिड्. (त. २०; स. १८)

वि—नैम् (त. ६३; स. ६०), रब्.

तु. (त. ८०; स. ६७)

विअत्त व्यक्त, म्थोड्. व. (त. ३८;

स. २८), म्थोड्. वर ङ्ग्युर्. (त.

३६; स. ३७)

विअप्प विकल्प, यन्. दु. छुग्. (त.

१२०; व. १००)

विचित्त विचित्र, दु. मद्. ल्दन्. (त.

१३१; व. १०७) स्त. छोग्स्.

(त. ६२; स. ५२)

विचिन्ते ज्जइ विचिन्त्यते, व्स्. म्. दु.

ग्युर्. (त. १०५; व. ८६)

वित्थार विस्तार, कुन्. दु. ख्यब्. (त.

१३०; व. १०७)

विफुरइ विस्फुरति, रब्. तु. ग्. यस्.

(त. ८०; स. ६७)

विफुरति विस्फुरति, फोव्. (त. ४२;

स. २३)

विबन्ध—छिड्. दड्. वल्. (त. १२८;

व. १०५)

विविह विविध, स्त. छोग्स्. (त. १३१;

व. ६०)



- विभ्रम—खुल् परब्युद्प. (त. २४; स. २३)
- विमल—द्वि. मेद्. (त. ६४; ब. ६६)
- विमुक्क  $\Delta$  विमुक्त, नैम्. ग्गोल्. (त. १३४; ब. ११०)
- विमुक्कउ  $\Delta$  विमुक्तो, नैम्. पर्. ग्गोल्. (त. १२६; ब. १०५)
- विमुक्केण  $\Delta$  विमुक्तेन, ग्गोल्. न. (त. ४१; स. २४)
- विमुच्च  $\Delta$  विमुक्त, रङ्. ग्गोल्. ङ्ग्युर्. (त. ४२; स. २४; त. ११६; ब. ६६)
- विरहिभ्र  $\Delta$  विरहित, नैम्. पर्. स्पङ्गस्. (त. १२२; ब. १०२), मेद्. (त. ३; ब. २)
- विरुद्ध—नैम्. ङ्गल्. (त. ६६; स. १२१)
- विलभ्र गउ  $\Delta$  विलयं गतो, नुब्. ग्युर्. चिद्ध. (त. ३०, ८६; स. २६ व. ७३)
- विलभ्र जाइ  $\Delta$  विलयं याति, नुब्. (त. ३८, १०६; स. २७, ४१)
- विलास—नैम्. पर्. रोल्. प. (त. ११४; ब. ६४)
- विलासिणि  $\Delta$  विलासिनी, स्गो. मो. दङ्. फद्. (त. १०१; ब. ८२)
- विलीण  $\Delta$  विलीन, रङ्. तु. थिम्. पर्. ङ्ग्युर्. (त. ७२; स. ६५)
- विलीणउ  $\Delta$  विलीनो, ग्गिशिर्. ङ्ग्युर्. त. ६०; स. ६६)
- विवर्जिभ्र  $\Delta$  विवर्जित, मेद्. (त. ६४; स. ६७)
- विसम  $\Delta$  विषम, शिन्. तु. द्कऽ (त. ८१; ब. ६७)
- विसल्लता  $\Delta$  विशल्यता, सुग्. ङ्गुस्. (त. ६२; ब. ७५)
- विसुद्ध  $\Delta$  विशुद्ध, दग्. प. (त. ३५; स. ३४), नैम्. पर्. दग्. (त. ८४; ब. ७०)
- विसेस  $\Delta$  विशेष, ब्ये. त्रग्. (त. २७, ६८; स. ५०)
- वुत्त  $\Delta$  उक्त, स्म्रस्. प. (त. १६; स. १५)
- वेद—रिग्. स्. व्येद्. (त. २; ब. १)
- स  $\Delta$  स्व, रङ्. (त. १२०; ब. १००)
- दे. जिद्. (त. १०७; ब. ८७)
- सभ्र  $\Delta$  स्वक, रङ्. (श. ७८)
- सभ्रल  $\Delta$  सकल, कुन्. ग्यिम्. (त. ४२; स. २३), कुन्. (त. ४२; स. २३)
- थम्. चद्. (त. २४, ८२; स. ५०, ७४), म. लुस्. (त. ३७, ६८; स. ३४, २५, त. २२, ११३, १२५; ब. २२, १०३, ६१)
- सह  $\Delta$  स्वयं, रङ्. (श. ४६)
- सहच्छ  $\Delta$  स्वेच्छ, रङ्. द्गऽ. वर्. (त. १२०; ब. १००)
- सएसंवित्ति  $\Delta$  स्वकसंवित्ति, रङ्. रिग्. (त. ३३; स. ४४)

सक्कइ ऽशक्नोति, नुस्. प. (त. ६२;  
स. ५२)

संचरइ ऽसंचरति, गंय्. शिङ्. (त. २६;  
स. ४६)

सत्थ ऽशास्त्र, वृस्तन्. चोस्. (त. ११,  
१८; व. १०; स. १४)

सत्थत्थ ऽशास्त्रार्थं, वृस्तन्. वृचोस्.  
दोन्. (त. ६६; स. ४४)

सन्तुट्ठ ऽसन्तुष्ठ, मोस्. प. (त. १४;  
स. १२)

सन्देह—थे. छोम्. (त. ४३; स.  
६१)

सन्धि—गोङ्गस्. प. (त. ८१; व. ६७;  
त. १३०; व. १०६)

सब्व ऽसर्वं, कुन्. रङ्. (त. २४;  
व. २३), थम्स्. चद्. (त. १७;  
स. १४)

सब्ववि ऽसर्वं अपि, थम्स्. चद्. क्यङ्.  
; (त. ७६; स. ६६)

सम—म्ज्म् (त. ५७, ८६; स. ६५,  
७७)

समरसु ऽसमरस, रो. नम्ज्म् (त.  
५७, ८६; स. ६५, ७७)

समिट्ठउ ऽसमिष्ठो, वृत्तस्. पडि  
तोर्गस्. प. (त. ५८; स. ६६)

सरन्त ऽश्रयन्त, स्क्यब्स्. सु. ऽप्रो (त. ७८;  
स. ७१)

सरह—मूदऽ. वृस्मुन्. (त. ६; व. ८, १०,  
२०, २२, २३, ३८, ३९, ४१, ६३)

मगव ऽशराव, खम्. फोर्. वृलग्म्.  
(त. १३४; व. १११)

सरि ऽसरित्, गंय्. म्छो. (श. ४६)  
सरिस ऽसदृश, दङ्. ऽद्र. (त. ५६; स.

६७) द्पे. (त. १०४, १०६; व.  
८४, ८६)

सरीसो ऽसदृशो, वृशिन्. (त. ६३;  
व. ७६)

मएअ ऽसरूप, रङ्. वृशिन् (त. ८७,  
८८; स. ७५, ७३)

सलत्ता सल्लत, ऽशल्यता, सुग्. डुस्.  
(श. ७७)

संवर ऽसंवर, स्वोन्. प. (त. १०७;  
व. ८७)

संवित्ति—रिग्. (त. ३३; स. ४४),  
(त. ३३, ६५; स. ४४, ६२)

संवेअण ऽसंवेदन, ञ्. म्स् (त. ११६;  
स. ६८)

संसार—ऽखोर्. व. (त. १७, ७६;  
स. १७, ७२)

ससि ऽशशी, र्ल. व. (त. २६; स.  
४६)

सहज—रङ्. वृशिन् (त. १०४; व.  
८४) ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. (त. १३,

२१, ३७; स. ११, १६, २७,  
त. ६४; व. ७७)

- सहाव ऽस्वभाव, डो. बो. (त. ३०; स. २६), रङ्. वृशिन्. (त. १६; स. १६)
- सहावे ऽस्वभावे, डो. बो. क्यिस्. (त. १२६; व. १०६)
- सहि ऽसखी, (श. ४५, ६२)
- सहिअ ऽसहित, ल्हन्. चिग्. (त. २०; स. १८)
- सहिअउ ऽसहितो, दग्.दङ्.ल्हन्. चिग्. (त. २०; स. १८)
- सा-दे. यिस्. (त. ५५; व. ४५)
- साक्कअ, सक्कअ ऽशक्यते, नुस्. प. (त. १६; स. १७)
- साच्चें ऽसत्यं, ब्दे.वर. (त. ३५; स. ८६)
- साह ऽशाखा, लो. ऽद्व. (त. १३२; व. १०६)
- साहअ ऽसाधय, ब्स्गोम्स् (त. १६; स. १७)
- साहइ ऽसाधयति, द्कऽ. थुब्.ऽबऽ. शिग्. (त. १०; व. ६), स्पुब्. प.), (त. ११३; व. ६१)
- साहिउ ऽसाधितो, ब्लङ्गस्. प. (त. २४; स. २२)
- सिआल ऽशृगाल, व.सोग्स्. (त. ७; व. ६)
- सिअइइ ऽसिधयति, ग्रुब्. (त. २२; स. २०)
- सिद्धान्त—ग्रुब्.मथऽ. (त. ६६; स. १२८)
- सिद्धि—द्ङोस्.ग्रुब्.दम्. प. (त. ११६; व. ६६), ग्गोल्. (त. ८; व. ७)
- सिद्धि जाइ ऽसिद्धि याति, ग्रुब्. ऽग्युर्. ते. (त. २६; स. ४८)
- सिद्धि जोइणि ऽसिद्धियोगिनी, स्पुब्. पऽि नैल्.ऽब्योर्. (त. १०७; व. ८७)
- सिद्धिरत्थु ऽसिद्धिरस्तु, स्पुब्. यिग्. (त. १११; व. ६०)
- सिरि ऽश्री, द्पल्.ल्दन्. (त. ७६; व. ६६)
- सीस ऽशिष्य, स्लोब्.म. (त. ६७; स. ७७), शीर्षं, (त. ४; व. ३)
- सु-यङ्. दग्. (त. ६; स. ५१)
- शिन् तु. (त. ५५; स. ४५)
- सुक्क ऽशुक्र, (श. १००)
- सुगति—ब्दे. वर. ग्शेग्स्. प. (त. ३३; स. ८८)
- सुणइ ऽशृणु, थोस्. (त. ६५; स. ६२)
- सुणइ ऽशृणोति, थोस्. प. (त. ८८; व. ७३)
- सुणह ऽशुन ह, इवा, ख्यि. (त. ७; व. ६)
- सुण्ण ऽशून्य, स्तोङ्.प.ञिऽिद् (त. १५, ६१, १२३; स. १६)
- सुत्तन्त. ऽसूत्रान्त, म्दो. (त. ११; व. ११)

सुद्ध/शुद्ध, द्मन्.पडि.रिग्स्. (त. ५७;  
स. ६५)

सुद्ध/शुद्ध, दग्. प. (त. १२६;  
व. १०६)

सुरम्/सुरत, स्प्रोद्. किय. (त. २५;  
स. ४८)

सुरुंगा-ल्कुग्स्. प. (त. ८६; व. ७२)  
सुसण्ठिम्/सुसंस्थित, यङ्.दग्.

सुह/सुख, ब्दे. (त. २२, २५, ११५,  
११७; स. २०, २३; व. ६५, ६७)

सुह, परम-/परममहासुख, ब्दे. व. छेन्.  
म्छोग्. (त. २२; स. २०), ब्दे. व.

छेन्. पो. म्छोग्. (त. २६; स. ५१)  
सूर-ञि. म. (श. ४६)

से/स, ऽदि (त. ५७; स. ६५)

सेउ/सेव, ब्तेन्, तर्. डेस् (त.  
१२८; व. १०६), ञोस् (त. १२८  
व. १६५)

सो-दे. (त. ३०; स. २६), दे. (त.  
६६; स. १२८), दे. यिस्. (त.  
११०; व. ८६), देस्. नि (त. १६;  
स. १६)

सोज्झ/शुद्ध, (श. ८०)

सोबणाह/सोमनाथ, स्ल. व. गँय.  
म्छो. (त. ५७; स. ६५)

सोबि/सोपि, दे. यिन् ते. (त. १७; स.  
१४), दे. ञिद्. (त. २६; स. ५२)

सोहिम्/गोभित, स्व्यङ्गस्. ग्युर्  
प. (त. ४०; स. ३६)

हउ/भूतो, चिङ्. (त. ११; स. १०)

हत्थ/हस्त, म्थिल्. (त. १६; स. १५)

हत्थे/हस्ते, लग्.पडि. म्थिल्. दु.

(त. १६; स. १५)

हव-श्रीघ्र, ग्दुङ्.सेल्.व्सिल्.व.

(श. ५८)

हव्वास/अभ्यास, ग्दुङ्.वस्. (त. ७७;  
स. ६६)

हरन्त-ऽदब्. म.? (त. ७७; स. ६६)

हरिण-रि. दग्स्. (त. ८७; व. ७१)

हरेइ/हरेत्., फन.पर्.व्येद्.प.

(त. ११७ व. ६)

हले-प्रोग्स्.पो. (त. ६२)

हि-दु. (त. ५; व. ४, ञिद्.

(त. २; व. १)

हिम्/हि/हृदये, स्विङ्. ल. (त. १६,

४०, ८६; स. १५, ३६, व. ७२)

हु-अपि, (श. ६०, ८५)

हुणन्त/होमन्त, व्स्नेग् (त. २; व. १)

हे-(श. ३८)

होइ/भवति, ग्युर् (त. १४, ४३;

स. १२; व. ६६ त. ७; व. ६),

ऽव्युङ्ग बर् (त. ७१; स. ५७)

होम-स्ब्यिन्. स्नेग्. (त. ३;

व. २)



# परिशिष्ट ४

## दोहाकोश भोट-शब्दानुक्रमणी

अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
	६४		७७
	५०		
तप	१५	१३	
साहइ	१०		६
बअण	३५	८६	
खणे	११७		६७
खण	११५		६५
खणहि	११३		६१
तारा	११८		६८
सुरंगा	८६		७२
सअल	४२		
पीठ	५८	६६	
सअल	४२	२३	
वित्यार	१३०		१०७
कुन्दुदु (मैथुन)	११३		६१
सब्व	२४		२३
कुस	२		१
अन्धारे	२१	१६	
तिसिअो	११३		६१
तिसिअ	६६	८८	
पलुट्टिअ	८५		७०

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
स्कयब्स्.सु.ओ.	सरन्तो	७८	७१	
स्कियल्	आसन	५		४
द्विक्यल्.ओर्.	मंडल	११८		६८
क्ये.लग्स्.	रे	१७,५३	१३	
क्ये.हो	रे	३३	८८	
		५०		
		८६		७१
		११६		६६
	अरे	८६		७१
क्ये.हो.वु	अरे पुत्त	६१	५१	
स्कयेस्	उबज्जइ	१०४		८४
क्येन्.गि.यस्		१०६		
क्येन्.बल्.गुसुग्		११२		
स्कये.प	उबज्जइ	२२	२०	
	उबरइ	१०४		८४
स्कये.बो	जाण (?), जणु	३६	३५	
	जण	५		४
स्कये.बो.दम्.प.		८६		
स्कयेस्.	उबज्जइ	३८	२७	
स्कयेस्.प.	उअज्जइ	६४	६१	५४
स्कयोद्.	चलउ	६५	६३	
स्कयोन्.	दोस	६०, १२३	७८	१०३
स्कयोन्.गि.यस्.	दोसें	३६		३४
स्कयोल्.ब.		८८		
स्क्र	केस	६		५
स्क्र.मेद्	मुंडी	६		५

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ऋऊ. ब्चस्. नस्	बन्धी	५		४
ख. चिग्	अण्णु	११	१०	
	कोइ	११	१०	
ख. दोग्	वण्ण	७१		६४
		५६	६७	
ख. दोग्. सग्युर्. चिग्	रञ्जिया	२८	५०	
खम्. फोर्.		६६		
खम्. फोर्. ब्लग्स्	सराबे	१३४		१११
खम्स्. सु.		४७		
खम्स्. ग्सुम्.	तिहुअण	२४	५०	
ख. सङ्		४६		
म्खऽ. ञम्	ख-सम	६३, ६४		७७
खम्स्. ग्सुम्	तिहुवणें	१३०		१०७
म्खऽि. ल्त्		६४		
म्खऽ. ऽद्र		४५		
म्खस्. नंम्स	बुधा	४४	६१	
म्खस्. प	पंडिअ	४२	७४	
	"	६३		७६
खु. ब.	मण्ड	१११		६०
खुर्. वस्. ब्येद्	बाहिय	४		३
खुर्. बु	भार	४		३
ऽखोर्. ब	संसार	१७, ७६	१७, ७२	
	भव	१२२		१०२
ऽखोर्. लो	चक्क	२५	४८	
ऽखोर्. लो. दम्. प	चक्क	११८		६८
ख्यब्. शुब्. प	गाहिड	४८	१२७	



तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ख्यब्. ऽजुग्	विट्ठु	६०	६६	
ख्यि	सुणह	७		६
ख्यिम्	घरे	४७	१२७	
ख्यिम्. छेस्. दग्	पडिबेसी	७५	६८	
ख्यिम्. थब्	गिहवास	१३५		१११
ख्यिम्. ब्दग्	पइ	७५	६८	
	भत्तार	६६		८०
ख्यिम्. ब्दग्. मो	घरिणि	१०३		८४
ख्यिम्. दङ्. ख्यिम्. न	घरें घरें	६५	१२७	७८
ख्यिम्. दु	घरहि	५		४
ख्यिम्. न	घर	२		१
	गही	२०	१८	
ख्यिम्. न. ग्नस्	घरें अच्चइ	७५		६२
ऽख्युद्		३४		
ख्येद्. चग्		८१		
ख्यो. मेद्	रंडी	६		५
ख्रल्. खुर्. व	बाहिउ	६५	१२८	
ख्रि. फग्	लक्ख	७८	७१	
ख्रल्. प	धंधा	३३	४४	
ऽख्रल् ।		२०	१६	
	भान्ति	७४, १२६	६७	१०६
	आले	१३०		१०७
ख्रल्. प. शिग्. प.	अक्कड	६३		७६
ख्रल्. पस		२०		
ख्रल्पर्. व्येद्. प	विबभम	२४	२३	
ख्रो. वडि. रङ्ग ब्रशिन्.		३६		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	वागची दोहांक
ऽख्रूल्	चाली	५		४
गङ्ग	जो	१५	१६	
गङ्ग.गङ्ग	जं जं	२६	५२	
गङ्ग.गडि.गं.य.म्छो	गंगासाअरु	५७	६५	
गङ्ग.गिस्	जेण	४४,१२३	६१	
गङ्ग.ल्लर्	एमइ	७८		७१
गङ्ग.दु	जहि	२६	४६	
	जत्थ	३०	२६	
	कहिं	३८	२७	
गङ्ग.दुऽङ्ग		८३		
गङ्ग.छे	जव्वे	४०	३६	३६
	जाव	७३	६६	
	जइ	७६,१०२	६६,०	
गङ्ग.शिग्	जो	१४,२०,५१, ८१, ८३	१२,२०,०,	६७,७३
	कोइ	८४		६६
	कासु	८८		७३
गङ्ग.सग्स्		१०३		
गङ्ग.यङ्ग	जो पुण	१६	१७	
	कहि	१०१		८२
	जहि	१२५		१०३
गङ्ग.यिन्	जो	१२६		१०२
	कवण	१३५		११२
गङ्ग.ल	जसु	१४	१२	
	जहि	८१		६७
गङ्ग.लस्	कहि	३८	२७	
गर्	जहि	३१		३०

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
गल्.ते	अइ	७		६
जगस्. पर्.ज्युर्	णिरुद्धो	३५	३४	
जगस्.प		४६, ६६		
गँल्.नस्.	निसार	७६	७२	
द्गऽ.बस्	रमन्ते	२०	१८	
द्गऽ.बऽि.सेम्स्		१०४		
जगऽ.यङ्		४८		
जगऽ.यिस्	बिरला	११५		६५
द्गऽ.शिङ्	रमन्ते	२५	४८	
जगँल्.नुस्	निसार	७६	७२	
गुग्स्.फ्युङ्.चिगू	विसाम कर	२७	४६	
गेङ्स्	आवन्त	१००		८१
	फरन्ते	२५	४८	
द्गे.ब.		५६	६७	
द्गे.छुल्	बैल्लु	१०	६	६
द्गे.स्लोङ्	भिक्षु	१०		६
गे.सर्	केसर	५६	६७	
गो.	बुज्झइ	२३	२३	
सोग्.मो.दङ्.फद्.	विलासिणि	१०१		८२
गोग्स्. मि.	णिरवंभे	७६	६४	
गोङ्स्. प	सन्धि	८१		६७
	सन्धि	१३०		१०६
गो. ऽफङ्	परम पउ			
गो. ब	बुज्झइ	६७	७७	
गो. व्स्लोग्	एमइ (?)	५३	४३	
मृगोन्. पो	णाह	३०	५२	

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहांक	तालपत्र दोहांक	वागची दोहांक
	णाहु	८७, ९०	७५	७२
म्गोन्. पो. ब्दग्. जिद्	अप्पणु णाहो	९९	१२१	
म्गो. ल	सीससु	४		३
ऽगोल्.	भुल्ले	४		३
गोस्. दड. ब्रल्. शिड	णग्गल	६		५
गोस्. पो	लिप्पइ	७७	६९	
ऽगोस्. पर्. ऽग्युर्	आआसवि	३६	३४	
स्गोम्. प	गुणिज्जइ	१८	१४	
स्गोम्. प. मिन्		१२३		
स्गोम्. (? स्कोम्.) पस्	तिसिओ	११३		९१
स्गोम्. ब्येद्	भाविउ	१३	११	
ब्स्गोम्. दड. मि. ब्स्गोम्	चित्ताचित्त	९६	१२३	
ब्स्गोम्स्	साहअ	१६	१७	
ब्स्गोम्स्. न.	साघअ	"	"	
द्गोस्. प.	वज्जइ	९३		७६
गोस्. सो	लिप्पइ	७७	६९	
र्ग्य. छे. व.	उआहरणे	६८		
र्ग्यब्	पच्छे	२९	५२	
बर्ग्य. ल.	पुण्ण	११५		९५
र्ग्य. शिड	संचरइ	२६	४९	
र्ग्यन्. सिद्		१०७		
र्ग्यस्	फुल्लिअउ	१३	१०	
गि. य. न.	एवहि	२		१
गि. यन्. म्छोन्	कहिअउ	७१	६४	
र्ग्यु	कारण	२४	२३	
र्ग्युद्	तन्त	२८, ८०		२३

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
र्ग्युद्. दे.	बहइ	८०		३६
स्ग्यु. मडि. नॅल्. ऽब्योर्.	जोइणि मात्र	८०		३६
		११६		८६
स्ग्यु. मडि. रङ्क. ब्शिन्.	मात्रामत्र	६३	६०	
र्ग्यु. म्छन्	कारणे	११३		११०
र्ग्युग्. ब्येद्. चिङ्क	धाविउ	११	१०	
र्ग्युन्. दु	णिरन्तर	११०, (?) १२३	८६, १०३	
ग्युन्. दु. ग्त्स्. प.	णिरन्तर	१२६	०	१०६
ग्युर्	होइ	१४	१२	
ऽग्युर्	होइ	७		६
		४३		६६
	अत्थि	८		७
स्ग्यु. लुस्. ऽद्र. व	मात्राजाल	३४	८६	
ऽग्रम्. दु	तड	१२०		१००
ब्स्रिम्स्. ते	भक्ति (?)	७१	५७	
गुब्	सिज्झइ	२२	२०	
गुब्. ऽग्युर्. ते	सिद्धि जाइ	२६	४८	
गुब्. म्थऽ.	सिद्धान्त	६६	१२८	
स्गुब्. पडि. नॅल्. ऽब्योर्	सिद्ध जोइणि	१०७		८७
स्गुब्. प	साहइ	११३		६१
स्गुब्. यिग्.	सिद्धिरत्थु	१११		६०
ऽग्रो	जाइ	१५	१३	
	जग	४८	१२८	
	भमउ	६५	६३	
ग्रोग्स्. दग्	हले	३१	२६	
		११६	६६	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ग्रीग्स्. पो		६२		
ग्रीग्स्. मो	भट्ठी (?)	१०५		
ग्रीड	गाम	८०	६७	
ग्री. डोड	आवइ जाइ	१०१		८२
ग्रील्	मुत्ति	७		६
	सिद्धि	८		७
	मुच्चअ	२०	१८	
ग्रील्. ज्युर्	मुक्कइ	७३	६६	
ग्रील्. बर्. ज्युर्	मुक्को	११०		८६
ब्रिग्द्. चिड	भमइ	७७	६६	
ज्यो. मि		४, ८८२		
ज्यो. कुन्	जग	६५	१२८	
ज्यो. नर्मस्	जण	४१	२४	
ज्यो. ब.	जग	४, २४, १०८	३, २२, २५	
ज्यो. ब. चोम्	धावइ	५२	४३	०
ड. मो	करहा	५३	४३	
ड. यिस्	मई	१२२		१०२
डल्. ब		८२		
डस्	लअ जाइ	३१	३०	
डस्. नि. ब. ग्तोग्स्		५३		
डङ्गस्	मन्त	२४	२३	
डुल्	अणु	७४	६७	
डुल्. ब्रल्		७४	६७	
डेस्	मण्णहु	१२२		१०२
डेस्. पर्. तौग्स्		५०		
डेस्. पर्. ग्शन्. मेद्. दे	अणुअरं, अणूणं	४१	३४	४०

तिब्रवती	अपभ्रंश	तिब्रवती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
म्डोन्. दु. ग्युर्	पच्चक्ख	२१	१६	
म्डोन्. पडि. ड. ग्यल्	अहिमाण	६३	६०	
ऽडोन्. ल. सोग्स्		६१	५१	
डो. छ. मेद्	णिलज्ज	८३	७५	
डो. म्छर्. छे	भन्तिअ ?	६३	७६	
डो. बो. जिद्. कियस्. दग्. प	सहावे सुद्ध	१२६		१०६
डो. शेस्	मुणिअइ	१००		८१
द्डोस्. गुब्. दम्. प	सिद्धि	११६		६६
द्डोस्. दड्. द्डोस्. मेद्	भावाभाव	३३,७२	८८,६५	
द्डोस्. पो	भाव	२२	१६	
द्डोस्. पो. नम्. स्पड्स्	भावरहिअ	६४	६१	
द्डोस्. पो. मेद्	अभाव	२२	१६	
द्डोस्. पोर्	भवहि	६४	६१	
चल्. चोल्. गूतम्	आलमाल	६५	६३	
ग्चद्. पर्. ब्योस्		५४		
बूचस्		१२४		
चि	कि	१४		१२
चि. द्गोस्	कि	१४		१२
चिग्. तु. व्य. ब. स्ते	अेक्क करु	२७	५०	
चिग्. शोस्		१०१		४१
चिग्. सोग्स्	अेक्कवि	१४		११
चिड	हउ (भूत)	११		१०
चि. व्येद्	कि	६३	६१	
चि. व्यर्		६६		
चि. शिग्	कहि (क्यों)	६४	६१	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
चि. रुङ्ग		६४		७७
चि. स्ले	जो, को	११४		६८
चिस्		७		
ग्चिग्. क्यङ्	अक्कवि, कोइ	४१ १०८	३६ २५	
ग्चिग्. गि. नैम्. प	अकाआरे	६५	६३	
ग्चिग्. तु	णेहुअँ ?	३४	८८	
ग्चिग्. पु		६६	१२१	
ग्चिग्. सोस्	अक्कु खाइ	६६		८०
ब्चिङ्. बर्. ग्युर्		८६		
ब्चिङ्. ग्युर्. ते	बज्झइ	४१	२४	
ब्चिङ्. प	बद्धो	५२	४३	
ब्चिङ्. पस्	बज्झें	४३		४२
ब्चुम्. ते	णिवेसी	५		४
ब्चु. ब्शि. प. यि. स. ल	चद्दहभुवणें	११०		८६
ग्चेर्. बुस्	णग्गाविअ	७		६
ग्चेस्. पर्. ब्यस्		६१		
छग्. दङ्. छग्. ब्रल्	राअ-विराअ	१०५		८५
छग्. प	राग ?	१०४		८४
छग्. ब्योस्	रज्जह	५५	४४	
छद्		१०३		
छद्. नस्		८२		
छद्. पर्. ब्येद्	बक्खाण	११		१०
छद्. चिङ्		६१		
ऽछद्. ते	तुट्टइ	७६	७२	
ऽछद्. प	बक्खाणिज्जइ	१८		१४



तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ऽछद्. प. यिस्	बक्खाणअ	८२	७४	
ऽछद्. पर्. व्येद्. प ब्रिन्	उज्जोअ करेइ	११७		६७
ऽछद्. पर्. योद्. प		५१		
ऽछिङ्	मरइ	३१	३०	
छिङ्. ऽग्युर्	मारी	७८	७१	
	बज्झंति	८८	६१	
छिङ्. दङ्. प्रोल्. ब		५०		
छिङ्. दङ्. ब्रल्	बिबन्धे	१२८		१०५
ऽछिङ्. ब	बन्धण	५६	६४	
	काल करेइ	८०		६६
	बज्झइ	६३	६१	
ऽछिङ्. ब. स्ते	बन्धा	३३	८८	
ऽछिङ्. बर्. व्येद्. चिङ्	बन्ध करु	८६		७१
ऽछिङ्स्		५२		
ऽछिङ्स्. ग्युर्	बज्झइ	४३	६१	
ऽछि. यङ्	मरइ	११३		६०
ऽछि. बर्. सद्	मरिब्वो	८६	४४	५६
छु	पाणि	२		१
छुग्स्	बाज्झइ	७८	७१	
छुङ्. पस्		८२		
छुङ्. म. दग्. दङ्	भाज्जे (भार्या) सहिअउ	२०	१८	
छुद्. पस्		८२		
छु. बुर्		१२७		१०३
छु. ऽजग्		१०७		

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहाँक	तालपत्र दोहाँक	बागची दोहाँक
छु. यिस्	पाणी	७७	६६	
छु. ल. छु	जलेहि जल	३४	८८	
छेद्. दु	उबसे	७		६
म्छेद्. पडि		६०		
छोस्	धम्म	४		३
छोस्. मिन्	अधम्म	४		३
म्छोग्	उत्तिम	१६	१६	
म्छोग्. तु	पर	६४, ११७	६७	७७
म्छोग्. तु. तोग्स्	परम कलु	६३		५३
म्छोग्. तु. ब्दे. ब. छेन्. पो	परममहासुहे	११६		६६
म्छोड		६१		
म्छोद्. प	पुडिञ्जअ ?	७८	७१	
ऽजिग्. तेन्	लोअ	२३, ३७	२०, ३४	
ऽजिग्. तेन्. फरोल्	परलोअ	२६	४८	
जि. ल्तर	की	२३	२०	
	जेत्तइ	८६	७७	
	जिम	६३, १०१, ११७	७६, ८६, ६७	
जि. सिद्	जाउ	८०	६७	
	ताव	१०८	२५	
ऽजुग्		४६		
	पइसइ	८१		६७
ऽजुग्. प. मेद्		१२६		
ऽजुग्. पर्. ऽग्युर्	पइसइ	४०	३६	
ऽजुग्. पर्. ऽग्युर्. ब	पबेस	२६	४६	
ऽजुर्. बुस्		५१		
बर्जोद्. क्यड	कहिअउ	३६	३८	

तिब्बती	अपमंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ब्र्जोद्. दु. मेद्	अवाअ	२३	२२	
ब्र्जोद्. दु. योद्. मिन्	अवाच्चें	३५	८६	
ब्र्जोद्. पर्. ग्युर्	विसरअ	१११		६०
ब्र्जोद्. मिन्	ण बाअें	६७	७७	
ब्र्जोद्. यिन्. ते	कहिअअ	६५	१२७	
ञ	मीण	८७		७१
जम्स्		५०,१०६	४१	
जम्स्. पर्. ज्युर्	ठिउ	३०	२६	
म्ज.म्	तुल्ले	४,४६		३
म्जाम्. जिद्		३३,४५		
म्जाम्. लदन्	आअर	६०	७६	
म्जाम्. पर्. म्थोङ्		६८		
स्जाम्. पडि. सेम्स्		६१		
जल्. ब		१०१		
जिद्	हि	२		१
जि. म	रवि	२६	४६	
जि. सेर्	दुट्ठ	८६		७३
ग्जिस्. पो	वेण्णवि	१६	१७	
ग्जिस्. मेद्	अद्दअ	१३०		१०७
ग्जिस्. सुर. ज्युर्. ब	वेण्णवि	११५		६५
स्जिङ्	हिअहि	१६,८६	१५	७२
	पुराण	१८,७२	१४,६५	
स्जिङ्. जे	करुणा	१५	१६	
स्जिङ्. ल	हिअहि	४०	३६	
स्जिम्. प		५०		
ग्जुग्. मडि	णिअ	१६	१६	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
गञ्जुग्. मडि. जाम्स्.	णिअ संवेअण	११६	६६	
गञ्जुग्. मडि. यिद्.	णिअ मण	३४	८८	
गञ्जुग्. मडि. रङ्. ब्रुशिन्.	आभासें ?	७६	७२	
जोद्. दम्.	पावइ	१६, ११३	६६	६१
जोद्. प.	"	१६	१६	
	बुज्जइ	७७, ८६		६६
जोन्. ब्यस्.	लइउ	७७	६६	
जो. बडि. गतस्.	उअपिट्ठ	५८	६६	
जो. बर्. स्क्ये. व.	उवज्जइ	६२	५२	
जो. बर्. जगस्. ज्युर.		५६	६४	
	अत्थमणु जाइ	५६	६४	
जोस्. प.	दोसअ	४०	६०	
गञ्जोस्. पो.		६०		
मञ्जोस्. प.	मुसारिउ	१०६	४१	
जोद्. प. यिन्. ते.	पावइ	१६	१६	
जोर्ग. प. मेद्. प.	णिक्कलंक	१००		८१
जोर्गस्. ब्रुशिन्.	धावइ ?	११३	६१	
जोन्. चोद्. प.	रसण	६१	५१	
रुज्जोम्स्.		६६		
तं.	तुरंग	६		८
ब्रुतङ्. नस्.	जाली ?	५४		
तर्ग. तु.	आलिउल ?	२५	४८	
तर्ग. पर्.	णिरन्तर	१२५		१०३
ब्रुर्तगस्. न.	णिहालु	११६		६६
गृतङ्.		७०		
ब्रुतङ्.		६६		

तिब्वती.	अपभ्रंश	तिब्वती	तालपत्र	वागची
		दोहांक	दोहांक	दोहांक
वर्तन्. पर्. ग्नस्.	ठाइ	५२, ६७	४३	
ल्ल. चिग्.		१०२		
ल्ल. व. डन्. प.	कुदिट्ठ	११६		६६
ल्ल. बु.	दिट्ठ	१८	१५	
ल्ल. बर्. ध्योस्.	पेक्खह	८७		७१
ग्तम्.	कहाणो	४७, ६५	१२७	
ब्ल्तस्. पर्स. तोंग्स्. प.	समिट्ठउ	५८	६६	
ब्ल्तस्. शिङ्. ब्ल्तस्. शिङ्.	चाहन्ते चाहन्ते	३५	३४	
ब्ल्तन्.	भावे	१५	१२	
ब्ल्तन्. प.	उएसैं	३		२
ब्ल्तन्. चिङ्.	कहइ	७६	६६	
ब्ल्तन्. ब्चोस्.	सत्थ	१८	१४	
ब्ल्तन्. चोस्.	(शास्त्र)	११		१०
ब्ल्तन्. ब्चोस्. दोन्.	सत्थत्थ	६६	४४	
ब्ल्तन्. ते.	कहिज्जइ	८८		७३
ब्ल्तन्. नस्. प्रो.	कहिहउ जाइ	३२	३०	
ब्ल्तन्. नुस्.	कहिज्जइ	७२	६५	
ब्ल्तन्. प.	उवएसैं	८४	६६	
ब्ल्तन्. पर्. नुस्. प.	कहण सक्कइ	६२		५०
ब्ल्तन्. पस्. तोंग्स्.	कहिज्जइ	६४	६२	
ब्ल्तन्. व्य.	रमइ	८४		७०
तिल्.	तिल	६२		
गृति. मुग्.		३२		
वर्तेन्.		१०१		
वर्तेन्. पर्. ग्युर. प.	णिच्चल	५५		४५
वर्तेन् पर्. ऽोस्.	सेउ	१२८		१०५

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
व्स्तेन्. पर्. ब्य.		६७	७७	
व्स्तेन्. पस्.	रमन्ते	७७	६६	
	पडिवण	१२५		१०२
ग्तेर्.	ठविअ	१६	१५	
	धणो	८४		६६
स्तेर्. ब.	दीअउ	१३५		११२
स्तेर्. बर्. व्येद्. प. यि.	देइ	४३	२३	
तोंग्. स्पङ्ग. ते.	कप्परहिअ	६२		५२
व्तोग्स्. पस्.	उपाडणें	८		७
ग्तोद्.				
ग्तोद्. प.		१०२		
तोंग्स्.	बोहें	७६, ६६		६६
तोंग्स्., म.	विणु	६७	७२	
तोंग्स्. नस्.	मुणेवि	४१, ८३	३६	
तोंग्स्. प.		४८		
तोंग्स्. पर्. ग्युर्. न.	परिआणहु	१७	१४	
तोंग्स्. सो.	जाणअ	८२	७४	
लतोस्.	पेक्खु	५३	४३	
	पेक्खइ	१६	१५	
स्तोङ्ग. प.		८४		७०
स्तोङ्ग. प. ङि. द्.	सुण्णहि	१५, ६१, १२३	१६, ०, ०	
स्तोन्.	बेसैं	६		५
	पडिअउ	१११		६०
लतोस्.	पेक्खइ	१६	१५	
थग्.		५४		
थग्. प. नग्. पो.		८५		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
थङ्.	थल	६६	४४	
थ.स्ञ.द्.		१२४		१०४?
थ. दद्.		३३, १०२		
थव्स्.		१०७		
थव्स्. किय. व्दे. व.	उवाज्जुह	११५		९५
थम्स्. चद्.	सव्बइ	१७	१४	
	सअल	२४, ८२	५०, ७४	
	सव्बरुअ	९३, ९९		७७, ८०
थम्स्. चद्. क्यङ्.	सव्बवि	७६	६९	
मथऽ.	अन्त	२८	५१	
मथऽ. यि. छोग्स्.		६१		
थर्. प.	मोक्ख	७, ९, १४, ४१	१२, २४	६, ८
थल्. वस्.	च्छारे	४		३
थिम्. ऽग्युर्.		९७		
थिम्. पर्. ऽग्युर्.		१२७		१०४
थिम्. पर्. ल्तर.		९७		
मथिल्. दु.	हन्थो	१९	१५	
थुङ्.	पीवन्ते	२५	४८	
ऽथुङ्.	पिज्जइ	१०५		८६
	पिअउ	१२०		१००
ऽथुङ्. व.	पिविअउ	६६	४४	
ऽथुङ्स्. पस्.	पिवन्ते	१११		९०
थेग्. छेन्. ल.	महाजाणे	११		१०
थे. छोम्.	सन्देह	४३, ५१	९१, ०	
थौग्.	आइ (आदि)	२४	५१	
थोङ्.	मुच्चहु	१७	१३	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
थोब्.	लब्भइ	१४	१२	
थोब्.ऽग्युर्.	पावअ	१६	१७	
थोब्.पर्. ऽग्युर्.	पाविसि	७३	६६	
म्योङ्.	देक्खउ	६५	६२	
	दीसइ	१००		८१
म्योङ्.ऽग्युर्.		६०		
म्योङ्.ङो.	गाहिब	४१	३६	
	चाहिउ	४१		३६
म्योङ्.स्ते.		१०३		८४?
म्योङ्.ऽद्र.	दीसइ	१६	१५	
म्योङ्.ब.	जोअमि	२६	५२	
	दिट्ठि	३५	३४	
	विअत्त	३८	२८	
म्योङ्. ब. चम्.		८५		
म्योङ्. वर्.	लक्खिअ	१६	१६	
म्योङ्. वर्. ऽग्युर्.	विअत्त	३६	३७	
म्योङ्. स्ते.	दीसइ	८१	६७	
म्योन्. पोस्.	कड्ढिअ ?	२३	१६	
थोस्.	सुणउ	६५	६२	
थोस्. प.	सुणइ	८८		७३
दग्.	(बहुवचन प्रत्यय)	२		१
	सुद्ध	१२६		१०६
दग्. दङ्. ल्हन्. चिग्.	सहिअउ	२०	१८	
दग्. प.	असमल	२५		२३
	सुद्ध	१२६		१०६
	विसुद्ध	३५	३४	



तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	वागची दोहांक
ब्दग्.	अप्पाण	७		६
	अप्पाण	२६	५१	
[ ब्दग्. गिस्.	मइ	५३, ७१	४३, ६४	
ब्दग्. जिद्.	अप्पा	७६	६६	
	अप्पउं	७८	७१	
ब्दग्. दङ्. ब्रशन्.		६८		
दङ्.	(च)	२		१
दङ्. ऽद्र.	सरिस	५६	६७	
दङ्. पो.	पढमे	१११		६०
दङ्. बर्.		१२६		
ग्दङ्. व्सिल्. व.		६६		
दङ्. व्रल्.	रहिअ	१०, १५		६, १६
स्दङ्. ब.		८५		
द. ल्तर्.	अइसे	८१		६७
व्स्वद्. प. रुङ्.	वरु	१३५		१११
ऽदब्. ल्दन्.	पुडअणि	५६	६७	
ऽदब्. म.	हरन्त ?	७७	६६	
दब्. ऽर्लव्स्. मेद्.	णित्तरंग	१००	८१	
दम्. प. सेम्स्.	परमपउ ?	१०६	४१	
दम्. पऽि. स्विङ्.	णिक्करुण	१३१		१०६
ऽदि.	से	५७	६५	
	अहे	१३५		११२
स्दिग्. प.	पावें	७७	६६	
	दुरिअ	११७		६७
ऽदि. ल्त. बुस्.	एवहि	२६	४८	
ऽदि. ल्तर्.	एवँ	४१, ८३, ११८	३६, ०, ००, ०, ६८	

तिव्वती	अपभ्रंश	तिव्वती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ऽदि. ऽद्र.		६		५
ऽदि. ल.	एहु !	२६	५१	
दु.	हि (में)	५		४
दुग्.	विसग्र (? विस)	७८	७१	
दुग्. गि. ऽड्ग्स्. चन्.	विसग्र रमन्तो	७८	७१	
दुग्. व्रल्.		८५		
ऽदुग्. व्स्डल्.	वेग्रणु (वेदना)	६२		७५
ऽदुग्. व्स्डल्. स्तङ्क. व्येद्.	दुक्खदिवाग्र	११८		६८
ऽदुग्. नस्.	वइसी	५		४
ऽदुग्. प.	वईसउ	६५	६२	
ऽदुग्. पर्. ग्युर्.	ग्रच्छन्त	१००		८१
ग्दुङ्क. वर्. व्येद्. चिग्.	झगड	२५		२३
ग्दुङ्क. बस्.	हव्वामें	७७	६६	
ग्दुङ्कस्. पडि. ऽन्नस्. बु.		६०		
बुद्दु. चि.		४६		
बुद्दु. चिडि. छु.	अभिग्ररस	६६	४४	
म्दुन्.	अग्गे	२६	५२	
दु. व.	धूम	३		२
दु. मर्. ल्दन्	विचित्त	१३१		१०७
दुल्.	धूलि	८६		७३
दुल्. चम्.	”	४०		
दुस्.	खण ?	११६		६६
दुस्. थब्स्.		१२५		
दुस्. सु.	कालो	३६	३४	
ऽदुस्. प. ल.		५५		४५
ऽदुस्. सु.		४६		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक
देः	सो	३०	२६
दे. खो. न. जिद्:	तत्त्व		
दे. जिद्.	तफ	२२	२०
	तत्त, तात्त	३६, ३८	०, २८ ३५, ०
	स	१०७	८७
		१२३	
दे. जिद्. नस्.	तहा	१२१	१०१
दे. जिद्. ब्रल्. ऽग्युर्.	तत्तरहिअ	११०	९
दे. ल्त. बु. जिद्.	ऐसैं	३६	३४
दे. ल्तर.	एमइ	७४	६७
	अइसैं	९२	७६
दे. दे. जिद्.	सोवि	२९	५२
दे. ऽब्रस्.	तहवि	७९	७२
दे. बस्.		१३५	१११
दे. चम्.	एत्तवि	७८	६८
दे. छे.	तब्बें	४०	३६
	ताव	७३, १०२	६६, ० ०, ८३
	तहि	९३? १९८	७७?
दे. ब्शिन्.	तिम	४९, ११०	०, ८९
दे. यिन्.	सोवि	१८	१४
दे. यिन्. ते.	सोवि	१७	१४
दे. यिस्.	सा	५५	४५
	सो	११०	८९
दे. रिङ्.		४९	
दे. रु.		८१	
दे. र्.	तहि	;	५१

तिब्रवती	अपभ्रंश	तिब्रवती दोहांक	तालपत्र दोहांक	ब.गची दोहांक
दे. ल.	तहि	११, १३२		१०, १०६
दे. स्. नि.	सो	१६	१६	
दे. सिद्.	तावइ	८०	६७	
	तत्तइ	८७	७२	
ब्दे.	सुह	२५	२३	
ब्दे. छेन्.	महासुह	११७		६७
ब्दे. छेन्. म्छोग्.	परममहासुह	२२, ४७	२०, ०	
ब्दे. छेन्. ग्नस्.	महासुहट्ठाणे	६५	१२७	
ब्दे. न. नुस्.		११४		६४
ब्दे. व. छेन्. पो. म्छोग्.	परममहासुह	२६	५१	
ब्दे. बडि. ग्नस्. म्छोग्.	सुहठाणुवर	६२		५२
ब्दे. बर्.	साच्चें	३५	८६	
ब्दे. बर्. ग्शेग्स्. प.	सुगति	३३	८८	
ब्दे. ग्सड्.		६६ ?		
दो.	सो	६६	१२८	
ल्दोग्. पर्. ऽग्युर्. प.	गिस्सरि जाइ	१२१		१०१
ग्दोड्. बब्. प.		६१		
ग्दोड्. नस्.	पढमें	३५		३४
स्दोड्. पो.	तरुअरह	१३०, १३१	१०७, १०८?	
स्दोड्. पो. दम्. प.	तरुवर	१३१		१०८
म्दो. दे.	सुत्तन्त	११		११
ग्दोद्. नस्.	अणवर ?	७४	६७	
ग्दोद्. नस्. स्क्ये. मेद्.	वेइविवजिज्जअ	६४	६२	
	विणिणिविवजिज्जअ	६४		५४
ऽदोद्.		४६		
ऽदोद्. छग्स्.	रागं	२८	५०	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ऽदोद्. प.	इच्छें	६८		७६
ऽदोद्. प. चन्. गि्य.	अत्थी अण स्क्ये. बो.	१३४		१११
ऽदोद्. प. पो.	अत्थी	१३५?		११२?
ऽदोद्. पडि. ऽन्नस्. बु.	इच्छाफल	४३	२३	
दोन्.	कज्ज	३		२
दोन्. दम्	परमत्थ	१३	११	
दोन्. दम्. पडि. यि. गे.	परमत्थ वण्ण	?		
दोन्.	पढे	२		१
दोन्. पस्.		१०६		
स्वोन्. प.	संवर	१०७		८७
दोम्स्. पर्.	धवहि	६६	४४	
ऽदोर्. रो.	च्छड्डइ	१०१		८२?
ऽग्दोल्. ब.	रुअणे	११२		६१
दोल्. पडि. खियम्.		६८		
दो. ह. म्जोद्.	दोहाकोश			
ऽद्र.	रूअ	४३	२३	
द्रन्. प.		६५	६२	
द्रि.	गंध	५७	५६	
	पुच्छअ	७५	६८	
द्रिन्.	पसाअं	११५		६५
द्रि. बर्. व्य. ऽो.	पुच्छमि	३०	५२	
द्रि. म.		६८		
द्रि. म. दग्.		१२६		१०६?
द्रि. मस्.	मलिणें	६		५
द्रि. मेद्.	विमल	६४		६६
द्रि. मेद्. दोन्. दम्.		७४		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती	तालपत्र	वागची
		दोहांक	दोहांक	दोहांक
ट्रि. म. मेद्.	णिम्मल	१२२		१०२
ट्रिल्. बु.	घंटा	५		४
ट्रि. स.		८३		
ट्रिस्. ल.	पुच्छ	१२०		१००
ट्रुङ्. ट्रु.		५४		
स्नग्. छं.	मसि	१०३	४१	
नग्स्.	वणें	१२८,६०		१०४,०
नग्स्. सु. म. ऽग्रो.	म जाहि वणें	१२५		१०३
नङ्.	अब्भन्तरु	११०		८६
स्नङ्. व.	पडिहाइ	६१,१०५		०,८७
नद्. ग्शन्. दग्.		७०		
नम्. म्खऽ. ऽद्र. व.		४४		
नम्. म्खऽि. यिद्. चन्.	खबणेहि	७		७
	खबणाण	६		८
नम्. म्खऽि. रङ्. ब्शिन्.	ख-सम	८८	७६	७२
नं. बर्.	कर्णेहि	५		४
नंम्. गग्स्.	विणासइ	६३	६०	
नंम्. श्रोल्.	विमुक्क	१३४		११०
नम्. तोंग्.		१६७		
नंम्. पडि. स्ङ्. ब्शिन्.		१२४		१०४
नंम्. पर्. ग्युर. प.		८३		
नंम्. पर्. श्रोल्. व.	विमुक्कउ	१२६		१०५
नंम्. पर्. ऽछद्. पर्. ऽग्युर.	तुट्टइ	१५६	६४	
नंम्. पर्. ऽछिङ्.		४५		
नंम्. पर्. स्पङ्स्.	विरहिअ	२२२		१०२
नंम्. पर्. स्पङ्स्. नस्.		१६६		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
नैम्. पर्. रोल. प.	विलास	११४		६४
नैम्. ऽफ्रोस्. प.	विष्फुरइ	८७	७५	७२
नम्. यङ्.	किम्पि	६		८
		४६ ]		
नैम्. ग्सुम्. गिय.	तिष्णवि	३७	२७	
नम्स्. क्यङ्.	अवस्स	६२ ]		७५
स्म. चर्.	णासगृग	५४	४४	
स्न. छोग्स्.	वित्तित्त	०२	६२	
	विविह	१३१		६०
न. रे.	भणइ	६		८
नैल्. दु. म्छोन्. प.				
नैल्. ऽव्योर्.	जोई	३४,५१,१०५	८८,०	
नैल्. ऽव्योर्. स्प्योद्. प.]	जोइणिचार]	१०४		८४
नैल्. म.	णाल	५६	६७	
ग्नस्.	ठाणो	४७	१२७	
	बइसी	५		४
	ठिअउ	११०		८६
ग्नस्. मि-		१०६		
ग्नस्. ऽग्युर्.	वसअ	३८	२७	
ग्नस्. बर्तन्.	त्थविर	१०		६
ग्नस्. बर्तन्. प.	थाक्कइ	७३	६६	
ग्नस्. न.	आयत्ता ?	११६		६६
ग्नस्. प.	पविट्ठ	१४	१२	
	अत्थि	८१		६७
ग्नस्. प. मेद्.	णउ ठिउ	१२८		१०४
ग्नस्. पडि. ग्तेर्.	ठविअउ	१६	१५	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ग्नस्. शिङ्.	बइसी	२		१
	वसन्ते	२०	१८	
	अच्छन्त	२५	२३	
नुब्.	विलम्ब जाइ	३८, १०६	२७, ४१	
नुब्. ग्युर् चिङ्.	विलम्ब गउ	३०, ८६	२६, ०	०, ७३
नुब्. प.	अत्थ गउ	११८		६८
नुस्. ल्दन्.		४६		
नुस्. प.	साक्कअ	१६	१७	
	सक्कइ	६२	५२	
ग्नोद्.	डहाविअ	३		२
ग्नोद्. ब्येद्. लम्.	विडम्बिअ	७		६
स्नोम्. ख्यम्.	जिग्घउ	६५	६२	
	परीसउ	६५		५५
नोर्. बु.		१०७		
पद्म.	कमल	११४		६४
पद्मडि. स्तोङ्. पो.	दलु कमल	५६	६७	
दपल्.	सिरि (श्री)	७६		६६
दपल्. ल्दन्.	सिरि	७६		६६
दपल्. ल्दन्. बूल. म.	सिरिगुरुणाहे	६४	६२	५४
स्पु.	लोम	८		७
दूपे. दङ्. ब्रल्. प.	विसरिस	१०४, १०६?		८४, ८६?
पोङ्गस्. स्प्यर्.		१०३		६४?
स्प्यद्. पर्. व्य.	चरेइ	८४		७०
स्प्यर्. पर्. व्य.	अविआर?	१०३		६४
स्प्योद्.		६६, १०४		
स्प्योद्. दे.		६६		



तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
स्पृब्. दि. ल.		१०६		
प्र. य. घ.	पन्नाग	५८	६६	
स्पृल्. बर्. स्पृल्.	णिम्मिअउ	११८		६८
स्प्रीद्. क्यि.	सुरअ	२५	४८	
फग्.		६३		७६?
फन्. पर्. ब्येद्. प.	हरेइ	११७		६७
फम्. ग्युर. प.	मरेइ	६३	६०	
फुन्. सुम्. म्छोग्स्.		४६		
ऽफ्रुर्. बडि.	उड्डी	८५		७०
फोर्. गियस्.		६६		
फ्यग्. गं यस्.	मुद्दें	२४		२२
फ्यग्. ऽछल्. लो.	पणमह	४३	२३	
फिय्. गोर्. बोर्. ब.	खणु ?	१३४		१११?
फियन्.	जन्त	१००		८१
फियन्. ते.	भसिअ	५८	६६	
फिय. नस्.	पुणु	६४	६१	
फिय. म.	परत्त	१३१		१०८
फिय. रोल्.	वाहिरें	७५,६	६२,०	०,८०
	वाहिर	११०		८६
फिय. रोल्. से. म्स्. ल.	मणु बाहिरे	१०६		८६
फिय. लेब्.	पअङ्गम	८७	७६	७१
फ्योग्स्. ब्चु. रु.	दस दिसें	२६	५२	
फूद्.	पाबहु	१०१		८२
फोब्.	विफुरति	४२	२३	
बग्. छग्स्. ग्सुग्स्.	वासिअ	६३		७६
दबङ्ग.		६८		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती	तालपत्र	वागची
		दोहांक	दोहांक	दोहांक
द्बङ्. गिस्.	आयत्ता	११६		६६
द्बङ्. ब्स्ग्युर्. ब.		१०७		
द्बङ्. छेन्.		४६		
बङ्. दु.	कोलें	३४		८६
द्बङ्. नॅम्स्. ब्स्कुर्. शिङ्.	दिक्खिज्जइ	६		५
द्बङ्. पो.	इन्दिअ	३०,१२१	२६,०	०,१०१
द्बङ्. पो. ल्तोस्. शिग्.		५३		
द्बङ्. पो. युल्. गिय्. ग्रोङ्.	इन्दिविसअगाम	८०		६७
द्बङ्. फ्युग्. मछोग्.	परमेसुरु	१००		८१
द्बङ्. फ्युग्. दम्. प.	परमेसर	७२		६५
ऽबद्.		६८		
बन्दे. नॅम्स्. नि.	बन्देहिअ	१०		६
ऽबब्.	पडेइ	८५		७०
ऽबब्. स्तेग्स्.	तित्थ	१५	१३	
बब्. प.		६१		
ऽबऽ. शिग्.	केवल	१०,१६,८४	०,१७,०	६,०,७०
बर्.	एहि (सप्तमी)	५		४
	मज्झ	११४		६४
ऽबर्.		१०६		
बा. रा. ण. सी.	वाराणसी	५८	६६	
वल्. ब. ब्येद्.	उपाडिअ	६		५
स्वस्. प.	लुक्को	११०		८६
बु. ख्येद्. नॅम्स्.		५३		
बुङ्. ब.	भमर	८७		७१?
बु. छुङ्.	बाल	७०	६४	
बु. दे.	पर ?	१०४		८४

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
द्बु. मर्. शुग्स्.		१०५		
बुद्. मेद्.	जुबइ	८		७
द्बुस्.	मज्झ	२८	५१	
द्बुस्. न.		५६	६७?	
द्बुस्. न. ल्ह.		११२		
बुस्. प. न्मस्.		१०३		
ऽबोद्. पर्. ब्येद्.	कड्ढिअ राव	२२	१६	
बोर्.	च्छड्डहु	१७	१३	
बोर्. नस्.	च्छड्डहु	१३५		१११
बोर्. ब.	(त्यक्त)	१३४?		१११?
बोर्. बर्. ब्यस्. न.	च्छड्डहु	१३५		११२
ब्य.	करिज्जअ	७८	७१	
	किज्जइ	१५	१२	
ब्यग्.	चमरह	८		७
ब्यङ्. छुब्. ग्नस्.	बोहि ठिअ	१२७		१०३
स्ब्यङ्स्. ग्युर्. प.	सोहिअ	४०	३६	
ब्य. व. ब्येद्.		५०		
ब्य. रोग्.	काउ	८५		७०
व्यर्. योद्.	कीअइ	२३	२२	
ब्यस्.	(भूतकालिक सहायक क्रिया)	३		२
ब्यस्. प.		१०३		
ब्यिन्. नस्.	दिज्जअ	७८		७१
ऽब्यिन्. चिङ्.	दत्त	३६	३५	
स्ब्यिन्. प.	दाण	१३५		११२
स्ब्यिन्. स्त्रेग्.	हीम	३		२

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	वागची दोहांक
ब्बिस्. प.	बालें	१६	१६	
द्ब्यु. गु.	(एक) दंडी	३		२
द्ब्युग्.ग्.सुम्.लग्स्.ल्दन्.	त्रिदंडी	३		२
व्युग्स्. नस्.	उद्दुलिअ	४		३
ऽव्युङ्. व.		१२४		१०४
ऽव्युङ्. बर्.	होइ	७१	५७	
व्ये. ग्रग्.	विशेषा, वेणिण	६०	६७	
व्येद्.		३		
व्येद्. ङ्युर् न.	करिज्जअ	६४		७७
व्येद्. चिग्.	करहु	३३	४४	
व्येद्. चिङ्.	करु	८६		७१
ऽव्येद्. पर्.	करु	२७	५०	
व्येद्. पर्. ङ्युर्.)	करिज्जइ	६३		७७
व्येद्. पर्. सद्.	करइ	६२		७३
द्ब्येः व.		६६, १२२		०, १०२
	बेट्ठिअउ ?	१२८		१०५
व्ये. ब्रग्.	विसेस	२७, ६८	५०, ०	
द्ब्युर्. प.	भिज्जइ	१०२		८३
द्ब्येर्. मेद्.	अभिण्ण	१३३		११०
स्व्योर्. ब्शि.		४७		
स्व्योर्. बर्.	जोडण	१६	१७?	
स्व्योर्. बर्. नुस्.	जोडण साक्कअ	१७	१७	
व्योल्. स्रोग्.	पशु ?	२३	२०	
ब्रम्. स.	बाम्हण	५७	६५	
ब्रल्.	च्छाडी	१३	११	
ब्रल्. व.	रहिअउ	७१	६४	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ब्रल्. बस्.	बाहिअ	२३		२२
ज्रस्. बु.	फल	१२३		११०
मै.	मोरह	८		७
मङ्. म्य. ड्स्. गिञ्.	मरुत्थलहिं	६६	४४	
म. ङ्हुग्. चिग्.	म बंदह	५४	४४?	
म. ङ्हुग्. प.	म अक्कु	१२५		१०३
मन्. डग्.	उअसे	२७	४६	
	आअसेह	३८	२८	
	वअण	६६	४४	
मग्. डग्.	वअण	६६	४४	
	उवअसें	६६		५६?
द्मन्. पडि. रिग्स्.	सुद्द	५७	६५	
स्मन्.		७०		
म. यिन्. ते.	णउ	२२,११६	१६,०	०,६६
मर्. मे.	दीवा	५		४
	दीपे	१४	१२	
मर्. मे. छु. दङ्.		१०१		
म. लुस्.	सअल	२२		२२
	असेस	२८	५०	
	सअलवि	३७,६८,१०८	३४,२५,०,०,६११०३	
		११३,१२५	०,०,	
म. लुस्. ट्रि. भेद्.	णिककोली	७५	६१	
मि.	न	२		१
	णउ	१७	१७	
	मा	२७	५०	
मिगस्. शिङ्. ङ्छि. बर्.		८३		६६

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
मिग्.	अक्खि लोअण	३ ७६		२ ६६
मिग्. ग्सुम्.	तइलोअ	६०	६६	
स्मिग्. ग्युडि. छु.	मिअतिसणे	११३		६१
द्मिग्स्. दङ्ग. ब्चस्.	(सालंबण)	१२३		१०३?
द्मिग्स्. ब्चस्. द्मिग्स्. मेद्.		१२४		१०४?
द्मिग्स्. पर्. ब्येद्. प.	आलमाल करह	१३२		१०६
मिङ्ग.	णाम णाउ	१११ १३१		६० १०७
मि. लंग्.		४६		
मि. तोंग्. प.	अक्किल	१२८		१०४
मि. म्थुन्. फ्योग्स्.		१२६		१०६
मिऽ. ब्युङ्ग.		१०६		
मि. ग्यो.	णिच्चल	५२,७३,६९,७७	०,६६	८३,०
मि. शेस्. प.	गाहइ ?	११३		६१
मि. शेस्. प. दग्.	बढ	२७	४६	
मु. ग्नस्.	तित्थ	५६	६७	
मुन्. तग्. छेन्. पो.	बोरान्धारें	११७		६७
मुन्. प.	अंधार	२१	१६	
मे.	अग्गि	२, १०६		१,०
मे. ल्चे.		६०		
मे.तोग्.	फुल्ल	१३०		१०७
मेद्.	विरहिअ णाहि	३ २६		२ ४६
मोंङ्गस्. ङ्ग्युर्.	मोहिअ	३७	३४	
मोंङ्गस्. नैम्स्.	बढ	३६	३७	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
मोंडस्. प.		३२,५२,६०		
	बढ	८६,११६		७१,६६
मोस्. प.	सन्तुट्ठ	१४	१२	
स्मोस्. सु.		६४		७७
म्य. डन्. ऽदस्.	णिब्बाणें	१३,१७	११,१७	
	परमणिब्बाण	४२	२४	
	०	७०		
म्युर्. दु. श्रोल्.	परिमुचन्ति	४४	६१	
म्युर्. दु. स्पोङ्. ब.		४६?		
म्योङ्.	दिट्ठो	११		१०
म्योङ्. बर्. शेस्.	जाण	११६		६६
सम्न.	भणइ	२०	१६	
सम्न. रु. मि. ब्तङ्.	भणइ ण जाइ	७२	६४	
सम्नस्. प.	बुत्त	१६	१५	
चर्. ब.	मूल	३७,७८,१३२	२७,७१,०	१०६
चर्. ब. ब्रल्.	मूलरहिअ	३८	२८	
चम्.	केवल	१०		६
	मत्त	६२		७५
चर्द. मो. व्य.		१०३		
छग्स्.		८२		
छङ्गस्. प.	वाम्ह (ब्रह्मा)	६०	६६	
छद्. म.	(प्रमाण)	११		१०
मूछद्. मर्. ऽजिन्. प.		६८		
मूछ्मस्. सु.	कोणहि ?	५,३२		४,०
छिग्. गिस्.	अण्णें	३६	३८	
छुल्. दु.	अच्छहु	७०	६२	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
म्छोन्.		५१		
म्छोन्. ते.	लक्खिअइ	३७	२७	
म्छोन्. दु. ऽओ.		६७		
म्छोन्. नुस्.	लक्खिअउ	३६	३५	
	लक्खिअ	३७	३४	
म्छोन्. प.	लक्खइ	१८, ६६	१५, ०	
म्छोन्. प. मिन्.	ण लक्खइ	१८	१५	
म्छोन्. मेद्.	दुल्लक्ख	१०६		८६
म्छोर्. रो.		५०		
छोल्.	पुच्छइ	७५	६२	
	लोडइ	६६		८०
ऽज्जग्.		१०१		
ऽज्जग्स्. प.		५०		
म्जद्. प.				
ऽज्जिन्.	गहिउ	७७	६६	
ऽज्जिन्. दङ्क. स्गोम्. पइ.	शुणिज्जइ	१८	१४	
ऽज्जिन्. प. यिन.	धरिज्जइ	६४		७७
म्जुग्स्. स्पु	पिच्छी	८		७
वर्जुन्.	अलीका	१७	१३	
गर्जुन्. प. जिद्.	मिच्छेहिं	४		३
ऽज्जम्स्.	णिमिस	७६		६६
म्जेस्.	रज्जइ	६४, १०२, १०४	७७, ८३, ८४	
जोग्स्. पर्. ऽय्युर्.	पूरइ	११४		६४
व. सोग्स्.	सिआल	७		६
व्शग्.	मिलन्ते	३४	८८	
ब्शग्. न.	पइसइ	८६	७८	७७



तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ब्रशग्. नस्.		१०४		८४
ग्शन्.	अण्ण	६,५६,६६	०,६७,०	५
	पर	२६	५६	
ग्शन्. न्मस्. ङगल्.	परविरुद्धो	६६	१२१	
	अण्ण०	६६		८०
ग्शन्. प.	अण्ण	१८	१४	
ग्शन्. पडि. सेम्स्.	परचित्त	१३२		१०८
ग्शन्. मेद्.	णउ पर	११६		६६
ग्शन्. ल. फन्. प.	परउआर	१०३		१०७
शल.	(मुख)	१६		
ग्शि.		१०१		
ब्रशि.	चार	२		१
ब्रशि. प.	चउट्ठ	११६		६६
शिङ्ग.	खेत्त	५८	६६	
ब्रशिन्.	सरीसों	६३		७६
ग्शिर्. ङ्युर्.	विलीणउ	६०	६६	
शुग्स्.	बइट्ठ	११		१०
शुग्स्.	लग्गा	१५	१६	
शुग्स्. प.	न्हाइ	१५	१३	
	पर्ईसइ	१६	१५	
ग्शुङ्गस्. लुग्.		११		
शेन्. प.	धन्धा	१७,७४	१३,०	
	आसत्ति	८६		७१
शेन्. पर्. ब्रशिन्.		७२	६५	
शेस्.	(इति)	२०		
शोग्. चिग्.	वसउ	१२०		१००

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	व. गची दोहांक
ग्शोन्. नु. म.	कुमारी	७२	६५?	
सः	खाहु	६५		५५
सग्. पः		११२		
सग्. मेद् ग्सुम्.		११२		
सः बस्.	भोग्रणे	६		८
सब्. पः.	गम्भीरइ	११६		६६
ग्स्ऽ. दङ्क. म्ज्. म्. दु.		११८		६८
सः शिङ्क.	खाग्रन्ते	२५	४८	
	खज्जइ	१०५		८६
ग्सिङ्कस्.	बोहिअ	८५		७०
सुग्. डुस्.	विसल्लता	६२		७५
ग्सुग्स्.	बेसें	७		६
ग्सुग्स्., रङ्क गि-		१०२		
सोस्. नस्.	खज्जइ	१०३		८४
सोस्. प. यिस्.	खाइ	४०		६०
स्. ल. ब.	ससि	२६	४६	
	चान्द	५८, १०७	६६, ०	
स्. ल. ब. गं. य. म्छो.	सोबणाह	५७	६५	
स्. ल. ब. नोर्. बु.	चन्दमणि	११७		६७
बस्. लस्. ब्जोर्. द्.	जाया ?	७६	६६	
डोङ्क		८२, ६१		
डोङ्कस्. पडि. छे.	ठीअउ ?	१३४		१११
डोङ्कस्. शिङ्क.		६०	६७	
डोन्. क्यङ्क.	बि	१६, ६८	१५, ०	
डोन्. ते.	अहवा	१६	१७	
डोस्.	सेउ ?	१२८		१०५

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
व्यग्.	चमर	८		७
यङ्. दग्. म्थोङ्.	दिट्ठउ	५६	?	
यङ्. दग्. ग्न्स.	सुसंण्ठिअ	६१	५१	
यङ्. दग्. सद्. पर्. ङ्ग्युर्		६१		
यङ्. दङ्. यङ्. दु.	बहलहु	२५	४८	
यङ्. दङ्. स्पङ्.	पडिपज्जह	५५	४४	
यङ्. न.	अहवा	११५		६५
यङ्. पो.	फुड	६८		७६
यन्. दु. छुग्.	विअप्प	१२०		१००
यन्. लग्.		३१,६६		
यि. गो.	अक्खर	७१,१२८	६४,२५?	
यि. गो. ग्चिग्.	अक्खरमेक्क	१११		
यि. गो. मेद्.	णिरक्खर	५१,१०८	०,२५	
यिद्.	मण	३१,६४	३०	७७
यिद्. कियस्.		१२३		
यिद्. छेस्. पर्.	पत्तिजइ	३५	८६	
यिद्. दु. ङोङ्.		६१		
यिद्. म. यिन्. प.	अमणु	६४		७७
यिद्. ब्रिन्. नोर्. बु.	चिन्तामणि	४३,६३	२३	७६
यिन्. प.	अच्छहु	६४	६२	
युल्.	विसअ	२०	१८	
	देस	७७	७०	
युल्. ग्जिस्.		८६		
युल्. गिय. म्छोन्. पस्.		६६		
युल्. गिय. गूलङ्. पो.	विसअगअन्दे	१२१		१०१
युल्. न.	देसहि	१०३		८४

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहांक	तांलपत्र दोहांक	व.गची दोहांक
युल्. नंम्. पर्. दग्. स्ते.	विसअविसुद्धे	८४		७०
युल्. नंम्स्.	विसअ	७७	६६	
युल्. ल. शेन्. प.	विसआसत्ति	८६		७१
ग्यो.	चल	८०		६६
ग्यो., मि-	णिच्चल	८०		६६
ग्योग्स्.	वेसे	६		५
योङ्स्. सु. ब्चद्. प.	परिच्छिण्णउ	७२	६५	
योङ्स्. सु. ब्त्तंग्स्.	वाणी ?	७६	६६	
योङ्स्. सु. स्पङ्स्. प.		६६		
योङ्स्. सु. शेस्.	परिआणसि	४५,७३	०,६६	
	परिआण	२५	१०३	
	परिआणिअ	६५	१२७	
योङ्स्. सु. शेस्. ब्य.		३२		
योङ्स्. सु. ब्स्गोम्.	परिभावइ	१२८		१०५
योद्. दे.		४८		
योद्. प.	वसन्त (रहते)	८२	७४	
योद्. प. म. यिन्.	न भावइ	६		८
योन्. तन्.	गुण	७१,६०	६४,७८	
योन्. ग्त्तन्.	गुण	४०	३६	
ग्यो. ब.		४६		
रङ्. द्गऽ. बर्.	सइच्छे	१२०	१००	
रङ्. गिस्. रङ्. ल.	अप्पउ अप्पा	७४	६७	
रङ्. गि. डो. बो.	अप्प सहाव	३०	२६	
रङ्. गं युद्. प्रोल्. न.	मणमोक्खेण	४२	२४	
रङ्. प्रोल्. ङ्ग्युर्.	विमुच्च	११६		६६
रङ्. जिद्.	अप्पाण	५४,८०		

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
रङ्ग. द्बङ्ग. स्नङ्ग. बर्. ङ्ग्युर्. पडिहाइ		१२१		१०१
रङ्ग. द्बङ्ग. मेद्.		१०७		
रङ्ग. ब्शिन्.	सहाव	१९	१६	
	सरूअ	८७, ८८	७५, ७३	७२
	सहजे	१०४		८४
रङ्ग. ब्शिन्. चिग्. स्क्येस. प. सहजसहाबें		९४		७७
रङ्ग. रिग्.	सएसंवित्ति	३३	४४	
रङ्ग. ल. छेद्. ते.		५३		
रङ्ग. ल. रङ्ग. रिग्.		६३		७६
रङ्ग. गुसल्.		१०१		
रब्. तु. गं. यस्.	विफुरइ	८०	६७	
रब्. तु. त्तोग्स्.	पडिवण्ण	१२२		१०२
रब्. तु. थिम्.		४५		
रब्. तु. थिम्. पर्. ङ्ग्युर्.	विलीणउ	७२	६५	
? थिम्. प.	लीण	७२	६५	
रब्. तु. स्पङ्गस्.	परिहरहु	७०	६४	
रब्. व्युङ्ग. नस्.	पब्वज्जिउ	१०		९
रब्. तु. ङ्ग्युङ्ग. व. मेद्.	पब्वज्जेहि रहिअउ	२०	१८	
रब्. तु. ब्ल्. मेद्.		१२४		१०४
रब्. तु. शेस्.	घोलिअइ	१०८	२५	
रब्. ङ्गबद्.	भक्ति	७१	६४	
रल्. प.	जडा	४		३
रिग्.	संवित्ति	३३	४४	
		६५	६२	
रिग्. ब्येद्.	जोहि ?	११२		९१
रिग्स्. ब्येद्.	वेद	२		१

तिब्रती	अपभ्रंश	तिब्रती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
रिग्स्. मेद्.		६१		
रिङ्.	दीह	६		
रि. दग्स्.	हरिणह	८७		७१
रि. बो. छु.	गिरिणई	१२०		१००
रुङ्.	वरु	१३५		११२
रेग्. ब्रिन्.	चछुप्पइ	७७	६६	
रे. ब.	आस	११४		६४
रे. ब. मेद्.	गिरास	१३४		१११
रो.	रस	४६,६१	०,५१	
रो. म्जाम्.	समरसु	५७,८६	६५,७७	
रोल्.		६८		
ल.	(२ विभक्ति)	२		१
लग्. तु.		१०२		
लग्. पडि. म्थिल्. दु.	हत्ये	१६	१५	
लग्. पस्.	करें	१२१		१०१
क्लग्. तु. मेद्.	खीणु	१०६	४१	
ब्लग्स्.		१३४		१११
ब्लर्ग.		८६		७३
ग्लङ्. छेन्.	करि	८७,७६		७१,७६
ग्लङ्. पो.	करिह	६		८
ग्लङ्. पो. स्क्योङ्.	कबडिआर	१२१		१०१
ब्लङ्. वस्.	गहणे	८		७
लङ्स्. ते.	उंछ	६		८
ब्लङ्स्. नस्.	लइ	२२	२०	
	गहिअ	१२१		१०१
ब्लङ्स्. प.ङ्.	साहिउ	२४	२२	

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहां क	तालपत्र दोहां क	बागची दोहांक
ब्ल्. दे.	खरडह	२५	२३	
लन्.	ववहारें?	६५	६३	
लन्. छब्.		६७		
र्लब्स्.	तुरंग (? तरंग)	५५	४५	
र्लब्स्. दग्.	तरंग	८८	७६	७२
ब्ल. म.	गुरु	८४	६६	
ब्ल. म. दम्. प.	वरगुरु	३५	८६	
ब्ल. मडि. द्विन्.	गुरुपसाए	१३५		६६
? द्विन्.	पसाअें	११५		६६
ब्ल. मडि. शल्.	गुरुपाअ	१६, ३१	१५, २६	
ब्ल. मडि. योन्.	दक्खिणा	६		५
ब्ल. मडि. लुङ्.	गुरुअण	७१	५७	
ब्ल. मडि. ब्स्तन्. प.		८४	६६	
ब्ल. मेद्.		४५, ४६		
ब्ल. मेद्. लुस्.	दोहाणुत्तर	७३	६६	
लम्.	मग्ग	१६	१६	
लम्. म्छोग्.	उत्तिम मग्ग	१६	१६	
स्लर्. यङ्.		६६, ८५		०, ७०
	जइ	११५		६५
ल. ल.	कोवि	११	१०	
लस्.	कम्प	४१	२४	
लस्. क्रियस्.	कम्मणेण	४१	२४	४०
लस्. मेद्.	अ-काम	८०	६७	
लस्. सिन्. प.		५४		
लस्. लस्. श्रोल्. न.	कम्मविमुक्केण	४१	२४	
स्लु.	बाहिंअ	७		६

तिव्वती	अपभ्रंश	तिव्वती	तालपत्र	वागची
लुङ्.	पवण	दोहांक	दोहांक	दोहांक
		२६,३१,४५	४९,३०	०,६६
		५५,७९	०,४५	
लुङ्. नैम्स्.		९८		
लुङ्. ब्चिङ्ग्स्. प.		५४		
ब्लुन्. पो.	जड	४४,६८	९१,०	
	णिककोली ?	७६	६८	
स्लु. बर्. व्येद्.	धंधी	५		४
ग्लु. लेन्. ते.	गाइव	४?	३६	
लुस्.	देह	४		३
	कात्रा	१०		९
	तणु	३१	२९	
लुस्. दङ्. डग्. यिद्.	कात्रवात्रमणु	१०२		८३
लुस्. दङ्. ड्र.	देहासरिस	५९	९७	
लुस्. मेद्.	असरीर	११०		८९
लुस्. ल.	देहहिं	८२	७४	
व्स्लुस्.	वाहिअ	२०,२४	१६,१२	
	बुज्झइ	३६	३४	
लेग्स्. पर्. शेस्. व्य.	बुज्झइ	७४	६७	
लेन्.		१०१		८२
ब्लो.	बुद्धि	६३	६०	
क्लोग्. प.	पठिज्जइ	१८	१४	
ब्लो. गोस्.	मति	८४		६९
स्लोङ्. न.		६९		
लो. ऽदब्. मेद्.	साह	१३२		१०९
ग्लोद्.		५१		
स्लोब्. द्पोन्.	गुरुं	३१	३८	



तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
स्लोब्. म.	सीस	६७	७७	
लोब्स्. नस्.		८२		
ल्ह.	देव	७८	७१	
ल्हुन्. ग्यिस्. गुब्.		६६, १३१		१०८
ल्हुङ्.		८०		
ल्हुङ्. बस्.		१३३		१०९
ल्ह. ब्शेस्.	णेवज्जे	१४	१२	
ल्हन्. चिग्.	सहिअ	२०	१८	
ल्हन्. चिग्. स्. क्येस्.	सहज	१३, २१, ३७	११, १९, २७	
ल्हन्. चिग्. स्. क्येस्. द्गऽ.	सहजाणन्द	११६		९६
ल्हन्. चिग्. क्येस्. प.				
व्दुद्. चिडि. रो.	सहजअमिअरस	६७	७७	
ल्हन्. चिग्. ब्योस्.		९१		
ल्हन्. चिग्. ल.		९८		
ब्शद्. दु. योद्.	बखाणं	२३	२२	
शर्.	उवइ	११८		९८
शर्. चिङ्.		१०९	४१	
शि. ग्युर्.	बाज्जइ	२२	२०	
शिङ्.	(क्स्वार्थे)	२		१
	(वदर्थे)	६		५
शिङ्.	कट्ठ	५४	४४	
शिङ्. गि. नल्. ऽब्योर्.	कट्ठजोइ	५४	४४	
शिङ्. तु. द्कऽ.	विसम	८१		६७
शिन्. तु. फ्र. व. नल्. म.	वर-णालें	५९	९७	
शिन्. तु. मि. सुन्.	सुचंचल	५५	४५	
?मि. सुन्.	चंचल			

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	ता.ल.पत्र दोहांक	दागची दोहांक
शुग्स्.		१०५		
शुग्स्. प.	पइसइ	१६, ४७	१५, ०	
शुन्. प.	तुस	६२		७५
शुब्. शुब्.	खुसखुसाइ	५		४
शेस्.	जानन्त	२		१
शेस्. प.	परिआण	२१	१८	
	अवेज्ज	६१		५१
शेस्. पर्. ऽग्युर्.	जाणइ	११५		६५
शेस्. पर्. नुस्.	जाणिउ	६१	५१	
शेस्. पर्. ब्य.	जाण	१०७		८७
शेस्. पर्. ब्योस्.	मणहु	३४	८५	
	जाणहु	३६, ७६	०, ६६	३७, ०
शेस्. पर्शिङ्ग.	जाणिअ	४		३
शेस्. ब्यस्.	जाणी	७६	६६	
शेस्. सोइ.	जाणमि	१११		६०
शोङ्ग.		१०१		
शोङ्ग. ङो.		४७		
स.	मट्टि	२		१
ग्सङ्ग. ङ्ङ्गस्.	मन्तह	१५	१२	
सङ्ग. दङ्ग. ग्शन्.		४६		
सङ्ग. न. मेद्.	अपुव्व	१०१		८२
सङ्ग. न.	पुव्व	१०१		८२
ब्सङ्गस्.		५०		
सङ्गस्. ग्ग्यस्.		१०२		?
स. स्तेङ्ग.		३१		
स. बोन्.	बीअ	४२	२३	

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहांक	तालपत्र दोहांक	वागच दोहां.
स. बोन्. ग्चिग्.	एक्कोम्बीए	१३३		११०
सम्. दड. क्ये.		८१		६७
ब्सम्. -	चित्त	७०	६४	
ब्सम्. गियस्. मि. ख्यव्.	अचित्त	४८	१२८	
ब्सम्. ग्तन्.	ज्ञाण	१४,३४,६३; १२,४१,६१		
	धारण	२४,७६		२३,६९
ब्सम्. ग्तन्. ऽग्युर्.	धाहिज्जइ	१००		८१
ब्सम्. ग्तन्. ब्यस्. प.		९८		
ब्सम्. ग्तन्. मेद्. चिड.	ज्ञाणहीण	२०	१८	
ब्सम्. दु. ग्युर्.	विचिन्तेज्जइ	१०५		८६
ब्सम्. प.		४९,११७		९७
ब्सम्. पर. ब्येद्.		९६		
ब्सम्. पस्.	चित्ते	४८	१२८	
ब्सम्. ब्य.	धेअ (चेतसिक)	२४,७६ ७०	२३,६९ ६४	
ब्सम्. मेद्.	अ-चित्त	९५	१२८	
स र ह (म्दऽ. ब्स्मुन्.)		९		८
ग्सल्. बर्.	फुड	३१,३८	२९,२७	
ग्सल्. बर्. स्. नड.	पडिहासइ	९८		७९
ब्सल्. ब्येद्.	दिवाअर	५८	९६	
स. ग्सुम्.	तिहुअण	१०६,११४		८७,९४
ग्सुड. ब्य.		४४		
सुन्. ब्यिन्.	बाहिउ	४८		१२८
सु. ल.	कोवि	३०	५२	
	कासु	७२	६५	
सुस्. क्यड.	केणवि	२४,९५	२२,१२८	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
सेम्स्.	कोवि	३७,६०	३४,०	
	मण	२६	४६	
	चित्त	३७,६०,१०७,०	२७,७८	८७
	चित्तउ	७४	६७	
सेम्स्. किय. डो. बो.	चित्तरुअ	३६	३७	
सेम्स्. किय. चै. ब.		६१		
सेम्स्. किय. छुल्. ऽजिन्.	चित्तेकरुअ	११	१०	
सेम्स्. किय. ग्लङ्क. पो.	चित्तगअन्द	१२०	१००	
सेम्स्. स्क्ये.	चित्तह	५४	४४	
सेम्स्. ज्. म्स्. प.		१०५		
सेम्स्. जिद्. ग्चिग्. पु.	चित्तेक	४२	२३	
सेम्स्. प.	चिन्तइ	३८	२८	
	मुणइ	१३३		६०?
सेम्स्. ल.	चित्ते	१०५	६५	
सोङ्क. नस्.	गड	६६		८०
ग्सोद्. प.	मारड	१२१		१०१
ग्सन्. प.		८३		
सोन्. मो.	णख	६		५
स्.	(तृतीया)	३,४		२,३
स्रङ्क. खडि.		६६		
स्रिद्.	भव	२६	५१	
स्रिद्. दङ्क. म्ज्. म्. शिङ्क. भवसम		८८	७६	७२
स्रिद्. प.	भव	२४,७०	२२०	
स्रिद्. पडि. स्न. चैर्.	भवगन्ध	५५	४४	
ब्र्सेग्.	हुणन्त	२		१
स्रोग्. छग्स्.		४८		

( ४५८ )

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	नागची दोहांक
अ. थङ्क.		१०३		
अ. म.	माइये	१०४		८४
उत्पल.	उअल	७७	६६	
ए. म. हो.	अरे	५५	४४	
ए. र.	अइरि	४		३

## परिशिष्ट ५

### दोहों की तुलना

स.स्कय बिहार से मिली हमारी तालपोथी यही नहीं, कि अब तक मिले हस्तलेखों में सबसे पुरानी है, बल्कि इसमें दोहा की संख्या सबसे अधिक—१६५ है, जिनमें आधे से ऊपर न भोट अनुवाद में मिलते हैं, न डा० प्रबोधचन्द्र बागची और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री की पुस्तकों में ही। इसके लिए निम्नस्थ तालिका को देखिए—

### स.स्कय तालपोथी से तुलना

स.स्कय तालपोथी	भोट-अनुवाद	बागची	हरप्रसाद शास्त्री विशेष
०	१	०	०
०	२	१	२
०	३	२	३
०	४	३	४
०	५	४	५
०	६	५	६
०	७	६	७
०	८	७	८
८ घ	९	८	९
९	१०	९	१०
१०	११	१०	११
१२	१४	१४	१४
१३	१५ १७ क ख	१५	१५ ख ग १७ ख ग
१४	१७ ग घ १८ क ख	१६ ग घ १७ क ख	१७ घ १८ ख ग
१५	१८ ग घ १९ क ख	१७ ग घ १८ क ख	१९ क ख ग

सं.स्वय तालपोथी	भोट-अनुवाद	बागची	हरप्रसाद श.स्त्री विशेष
१६	१६ ग घ १५ ग घ	१८ ग घ ००	१६ घ १५घ १६क
१७	१६	०	१६ ख ग घ १७क
१८	२०		२० ख ग घ २१क
१९	२१		२१ ख ग घ २२क
२०	२२		२२ ग घ २३ क ख
२१			२३ ग घ ००
२२			
२३	४१ ग घ ४२ क ख	४१	
२४	४२ ग घ ४१ क ख	४०	
२५	१०७	८८	
२६			
२७	३६ ग घ ३७ क ख	३६	
२८	३७ ग घ ३८ क ख	३७	
२९	३०	२९	
३०	३१	३०	
३१-३२			
३३	३४ ग घ ३५ क ख	३४	
३४	३५ ग घ ३६ क ख	३५	
३५			
३६	३९ ग घ ४० क ख	३९	
३७-४०			
४१	१०८		१०९
४२	२३	२२	२४
४३	२४	२३	२५
४४-४७			
४८	२५	२४	२५ ग घ २६ क ख
४९	२६	२५	२६ ग घ २७ क ख

स.स्कय तालपोथी	भोट-अनुवाद	बागची	हरप्रसाद शास्त्री विशेष
५०	२७	२६	२७ ग घ २८ क ख
५१	२८	२७	२८ ग घ २९ क ख
५२	२९	२८	२९ ग घ ३० क ख
५३			३० ग घ ००
५४-५५			
५६	६० ग घ ६१ क ख		६२
५७-६०			
६१	६२ ग घ ६३ क ख	५३ ग घ ५४ क ख ६३	
६२	६३ ग घ ७४ क ख	५४ ग घ ५५ क ख	
६३	६४ ग घ ६५ क ख	५५ ग घ ५७ क ख	
६४	७०	५७ ग घ ५८ क ख	
६५	७१	५८ ग घ ५९ क ख	
६६	७२	५९ ग घ ६० क ख	
६७	७३	६० ग घ ००	
६८	७४	६१ ग घ ६२ क ख	
६९	७५	६२ ग घ ६३ क ख	
७०	७६	६३ ग घ ००	
७१	७७	६४ ग घ ००	
७२	७८	६५ ग घ ००	
७३			७३
७४		००६८ क ख	७४ क ख ००
७५	८१ ग घ ८२ क ख	६८ ग घ ७२ क ख	
७६	८७	७२ ग घ ००	
७७	६६ ग घ ००	००७४ क ख	
७८	८९	७४ ग घ ००	
७९-८७			
८८	३२ क ख ००	३२	



स.स्वय तालपोथी	भोट-अनुवाद	वागची	हरप्रसाद शास्त्री विशेष
८६	३३	३३	
९०	३४ क ख ००		
९१	३९ क ख ४२ ग घ	४२	
९२	४३ क ख ५१ ग घ	४३	
९३	५२ क ख ५३ ग घ	४४	
९४	५४	४५ ? ४६ क ख	
९५	५५ ग घ ५६ क ख	४६ ग घ ४७ क ख	
९६	५६ ग घ ५७ क ख	४७ ग घ ४८ क ख	
९७	५७ ग घ ५८ क ख	४८ ग घ ४९ क ख	
९८	५८ ग घ ५९ क ख	४९ ग घ ५० क ख	
९९	५९ ग घ ६० क ख	५० ग घ ००	
१००-१०२			
१०३	६२	००५२ क ख	
१०४	६१ ग घ ००	५२ ग घ ५३ क ख	
१०५-१२०			
१२१	९७ ग घ ९८ क ख	८०	
१२२-२६			
१२७		००७८ क ख	
१२८	४६ ग घ ४७ क ख	७८ ग घ ००	
१२९-१६४			

इस तालिका से मालूम होता है, कि स.स्वय के निम्नांकित दोहों का न अनुवाद है, और न दूसरी पोथियों में पता है—

२१ ग घ २२, २६, ३१, ३२, ३५, ३७-४१, ४४-४७, ४३-६०, ७६ ग घ, ७७, ७८ ग घ, ७९-८७, ८८ ग घ, ९०, ९९ ग घ, १००-१०२, १०३ क ख, १०५-१२०, १२१ ग घ, १२२-१२६, १२७ क ख, १२८ ग घ, १२९-१६४.

भोट अनुवाद में १३४ दोहे मिलते हैं। यद्यपि डा० वागची के संस्करण में ११२ ही दोहे हैं, लेकिन दोनों का क्रम एक जैसा है, जिससे मालूम होता है,

कि दोनों किसी पुरानी एक जैसी प्रति के विस्तृत और संक्षिप्त रूप हैं। तुलना के लिए यहाँ हम भोट-अनुवाद, बागची और स.स्वय की प्रतियों के दोहों को देते हैं—

भोट	बागची	स.स्वय
१	०	०
२	१	
३	२	
४	३	
५	४	
६	५	
७	६	
८	७	८
१०	९	९
११	११	१०
१२	११	
१३	१२	११
१४	१३	१२
१५	१४	१३, १६
१६	१५	१७
१७	१६	१७, १३, १४
१८	१८	१४, १५
१९	१९	१५, १६
२०	२०	१२७
२१	२१	१८, १९
२२	२२	१९, २०
२३	२३	४२
२४	२४	४२, ४३

भोट	वागची	स.स्वय
२५	२५	४३,४८
२६	२६	४८,४९
२७	२७	४९-५०
२८	२८	४०,५१
२९	२९	५१,५२
३०	३०	५२,२९
३१	३१	२९,३०
३२	३२	३०,८८
३३	३३	८८
३४	३४	८९
३५	३५	३३
३६	३६	३३
३७	३७	३४,२७
३८	३८	२७,२८
३९	३९	२८,२९
४०	४०	२९,३६
४१	४१	३६,२४
४२	४२	२४,२३
४३	४३	२३,२१
४४	४४	२२
४५-४६		
४७	१२८	१२८
४८		१२८
४९-५१		
५२	४३	९२
५३	४४	९३
५४	४५	९३

( ४६५ )

भोट	वागची	स.स्वय
५५	४६	८४
५६	४६, ४७	८५
५७	४७, ४८	८५, ८६
५८	४८, ४९	८६, ८७.
५९	४९, ५०	८७, ८८
६०	५१	८८
६१	५२	
६२	५२, ५३	५६
६३	५३, ५४	६१
६४	५४, ५५	६२
६५	५५, ५६	६३
६६	५६	४४
६७		७७
६८-६९		
७०	५७	४६
७१	५८	६४, ६५
७२	५९	६५
७३	६०	६६
७४	६१	६७, ६८
७५	६२	६८
७६	६३	६९
७७	६४	७०
७८	६५	७१
७९	६६	७२
८०	६७	
८१	६७, ६८	
८२	६८	७५

भोट	बागची	स.स्वय
८३	६९	
८४	७०	
८५		
८६	७१	
८७	७२	७६
८८	७३	७६, ७५
८९	७४	७८
९०		७८
९१	७५	
९२	७६	
९३	७७	
९४	७८	
९५		१२८
९६	४६	
९७	४६	१२०
९८	८०	
९९	८१	
१००	८२	
१०१	८३	
१०२	८४	
१०३	८४, ८५	
१०४	८५, ८६	
१०५	८६, ८७	
१०६	८७, ८८	
१०७	८८	
१०८	४१	४१
१०९	९८	

भोट	बागची	स.स्वय
११०	६०	
१११		
११२-१२१	६१-१०२	
	६४	
१२२-१२३		
१२४	१०३	
१२५		
१२६-१३४	१०४-११२	
१२८	१०४-१०५	
१२९	१०५, १०६	
१३०	१०६, १०७	
१३१	१०७, १०८	
१३२	१०८, १०९	
१३३	१०९, ११०	
१३४	११०, १११	
१३५	१११, ११२	

---

## परिशिष्ट ६

### पण्डित अद्वयवज्र

सिद्धों के ग्रन्थों के टीकाकारों और पंजिकाकारों में अद्वयवज्र का प्रमुख स्थान है। सिद्धों की सरल भाषा अपने रहस्यवादी रूप के कारण दुरूह हो जाती है, जिसको खोल कर रखने में अद्वयवज्र बहुत ही सिद्धहस्त हैं। सौभाग्य से सरहपाद के सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ 'दोहाकोशगीति' की अद्वयवज्रकृत पंजिका मूल संस्कृत में मिल चुकी है, और नागरी अक्षरों में डॉक्टर पी० सी० बागची द्वारा संपादित होकर छप भी चुकी है। अद्वयवज्र विद्वान् ही नहीं थे, बल्कि वह सिद्धों के संपर्क में आकर सिद्धचर्या के अभ्यासी भी थे। पर, वह सिद्ध नहीं बन सके, यद्यपि अभी (ग्यारहवीं सदी के प्रथम पाद में) सिद्धों की चौरासी की सूची पूरी नहीं हुई थी। वह दीपंकर श्रीज्ञान के विद्या-गुरु थे, जो ग्यारहवीं सदी के मध्य में तिब्बत गये और वहाँ से फिर भारत नहीं लौटे। दसवीं सदी के अन्त में वह मौजूद थे; संभव है ग्यारहवीं सदी के प्रथम पाद में भी जीवित रहे हों।

उस समय जीवनियों के लिखने की परिपाटी थी, जो अद्वयवज्र की इस अत्यन्त संक्षिप्त जीवनी से मालूम होगा। यह जीवनी नेपाल में सन् १९३४ या १९३६ ई० की यात्रा में मुझे मिली थी। मूल पुस्तक किसके पास है, यह स्मरण नहीं। पुस्तक में दो पन्ने थे। किस लिपि में थी, यह भी नहीं कह सकता। मन किसी नेपाली मित्र को उतारने के लिए कह दिया, जिनकी लिखी प्रति मेरे पास मौजूद है। भाषा अशुद्ध है, जो शायद लिपिकरों के प्रमाद के कारण ही। मैंने उसके शुद्ध पाठ को देने की कोशिश नहीं की, क्योंकि उससे समझने में कठिनाई नहीं है। स्थानों के नाम कुछ जाने जा सकते हैं, पर उनका जन्म-स्थान कपिलवस्तु के पास जिस गाँव में था, वह बहुत समय तक घोर जंगल बन गया था, इसलिए उसके नाम का कोई गाँव शायद ही मिल सके। जीवनी इस प्रकार है—

“नमः श्री सवरेश्वराय । इह खलु मध्यदेशे पदम (!) कपिलवस्तुमहानगर-

समीपे झोतकरणी नाम पल्लिकाऽस्ति (१) तस्मिन्स्थाने ब्राह्मणजातिर्नानूको नाम ब्राह्मणी च साविती नाम प्रतिवसति स्म । तदा च कालान्तरेण दामोदरो नाम तत्पुत्रो बभूव । स चैकादशवर्षदेशीयः कुमारः सामार्द्धवेदको गृहान्निष्क्रम्य मर्तवोधो नामैकदण्डोभूत् । ततः पश्चाल्लीकटी-सत्रे पाणिनिव्याकरणं श्रुतं, श्रुत्वा सप्तवर्षपर्यन्तेन सर्वशास्त्रमधिगम्य विंशतिवर्षपर्यन्तं नारोपाद-समीपे प्रमाणमाध्यमिकपारमितादिशास्त्रं श्रुतं । तदनु मन्त्रनयशास्त्रज्ञेन रागवज्रेण सहावस्थितः पञ्चवर्षपर्यन्तं । पश्चात् महापण्डित-रत्नाकरशान्ति-गुरुभट्टारक-पादानां पार्श्वे निराकारव्यवस्थां वर्षमेकं यावत् । पश्चाद् विक्रमशील (!) विक्रमशिलां गत्वा महापण्डितज्ञानश्रीमित्रपादानां पार्श्वे तत्प्रकरणं (तेन) श्रुतं वर्षद्वयं यावद् ।

ततो विक्रमपुरं (विक्रमशिलां) गत्वा संमंततीय (?सम्मिती) निकाये (प्रब्रज्य) मैत्रीगुप्त नाम भिक्षुर्बभूव । सूत्राभिधर्मविनयञ्च श्रुत्वा वर्षमेकं यावत् (अतिष्ठत्) । पञ्चक्रम ताराम्नायेन मन्त्रजापं कृत्वा कोटिमेकं चतुर्मुद्राऽर्थसहितेन । भट्टारके(न) स्वप्ने गदितं-‘गच्छ त्वं खसर्पणं’ । तत्र (ततः) विहारं परित्यज्य खसर्पणं गत्वा वर्षमेकं यावन्निषीदति । पुनरपि गदितं-‘गच्छ त्वं कुलपुत्र दक्षिणापथे मनभङ्गचित्तविश्रामौ पर्वतौ तत्र सवरेश्वरस्तिष्ठति । स तत्रा (? तवा) नुग्राहको भविष्यतीति । तत्र च सागरनामा मिलिष्यति । स च राढदेशवासी राजपुत्रस्तेन सार्द्धं गच्छ’ । पश्चाद् गते सति सागरेण मिलितं ।

उददेशपर्यन्तेन (? न्तं) मनभंगचित्तविश्रामयोर्वार्ता न श्रुतवान् । श्री धान्य ०धान्यकटकं) वर्षमेकं स्थितः पश्चाद् वाकुत्पडु (?) देशे स्वाधिष्ठानतारां साधयितुमारब्धवान् । मासैकेन स्वप्नोऽभूत्-‘गच्छ त्वं कुलपुत्र वायव्यां दिशि पर्वतौ तिष्ठन्तौ । पञ्चदशदिनेन प्राप्येते’ । भट्टारिकाया वाक्येण वायव्यां दिशं संघातैः सार्द्धं गच्छति प्राप्तपर्यन्तं पुरुषेणौकेनोक्तम्) । “परम् (? पर) दिने नभङ्गचित्तविश्रामौ प्राप्येते लग्नौ । तत्र सुखेन वस्तव्यं” ।

इति श्रुत्वा पंडितपादो हृष्टोऽभूत् । अपरदिने प्राप्तं (? प्राप्तौ) तत्र पर्वते (? पर्वतौ) । दिने-दिने दश-दश मण्डलानि कृतवान् । कन्दमूलफलाहंरं कृत्वा दिनदश-पर्यन्तं शिलातलपय्यर्द्धकमारुह्य एकाग्रचित्तेन उपवासं कर्तु-



मारब्धः । सप्तमे दिवसे स्वप्नदर्शनं भवति । दशमे दिवसे ग्रीवां छेत्तुमा (र)ब्धः । तत्क्षणात् साक्षाद् दर्शनं भवति सेकन्ददाति अद्वयवज्रना (मा)ऽभूत् । पंचक्रम-चतुर्मुद्रादिव्याख्यानं कृतं द्वादशदिनपर्यन्तं । पुनरप्युपदेशेन पञ्चदिनं यावत् । सर्वधर्मदृष्टान्तेन वीणां वादयति तत्र पद्मावली ज्ञानावली । सवरेश्वरेण आज्ञा दत्त्वा (? दत्ता) 'प्राणातिपातादिमायां दर्शय त्वं' । तदनन्तरं सागरः कायव्यूहं दर्शयते । पण्डितपादेनोक्तः—“भगवन् किमप्यहं कायव्यूहं निर्मयितुमशक्तः ।” सवरेश्वर आह—“विकल्पभूतत्वात् ।” पण्डित आह—“तर्हि किं कर्तव्यं, मम ज्ञापयंतु पादाः ।” सवराधिप आह—“तवेह जन्मनि सिद्धिर्नास्ति देशना-प्रकाशनाः कुरु” । अद्वयवज्र आह—‘अशक्तोऽहं भगवन् कर्तुं कथं करिष्याम्यहं’ ।” आह—“इह वज्रयोगिनि-उपदेशात् करिष्यसि त्वं फलं च फलिष्यतीति” इहोपदेश (? इममुपदेश) मित्यु (? अयं उपदेश इत्यु) क्त्वा भट्टारकपादोऽन्तर्धानोऽभूत् ।

“नेदन्धनुर्न च मृगो न वराहपोतः  
संपूर्णचन्द्रवदना न च सुन्दरीयं ।  
निर्मर्माणनिर्मिततयार्थिजनस्य हेतोः  
सन्तिष्ठते गिरितले सवराधिराजः ।”  
अमनसिकारे यथाश्रुतक्रमः समाप्तः ।

संक्षेप में अद्वयवज्र की जीवनी निम्न प्रकार है—

कपिलवस्तु (वर्तमान तिलौराकोट, तौलिहवा, नेपाल पश्चिमी तराई) के पास झोतकरणी नाम का एक गाँव था । जहाँ ब्राह्मण नानूक और उसकी पत्नी सावित्री (सावित्री) रहते थे । उनको एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम उन्होंने दामोदर रखा । बालक दामोदर ने अपने वेद साम का आधा पढ़ लिया था, जब कि वह ग्यारह वर्ष की आयु में किसी एकदंडी का शिष्य हुआ और उसका नाम मर्तबोध (अमृतबोध) रखा गया । इसके बाद अपने पंडितों के लिए प्रसिद्ध लीकटी नामक गाँव में जा मर्तबोध ने पाणिनि व्याकरण का अध्ययन किया और वहाँ सात वर्ष तक रह १८ वर्ष की आयु में तरुण ने (ब्राह्मणों के) सभी शास्त्रों को पढ़ लिया । (बुद्ध की जन्मभूमि में रहनेवाले तरुण का बौद्ध

धर्म और भिक्षुओं के सम्पर्क में आना स्वाभाविक था। इस प्रकार) वह बौद्ध शास्त्रों के अध्ययन के लिए नारोपाद के पास (संभवतः विक्रमशिला पहुँचे। दो वर्ष तक सिद्ध पंडित से उसने दिङ्नाग, धर्मकीर्ति के प्रमाण (न्याय) शास्त्र, नागार्जुन के माध्यमिक शास्त्र और प्रज्ञापारमिता-संबंधी शास्त्र को पढ़ा। फिर (वहीं के कलिकालसर्वज्ञ) महापंडित सिद्ध रत्नाकर शान्ति के पास साल भर तक निराकारव्यवस्था (विज्ञानवाद?) पढ़ी। फिर विक्रमशिला गये। उक्त दोनों पंडित विक्रमशिला के थे, पर नारोपा फुलहरी बिहार में भी रहा करते थे, इसी प्रकार रत्नाकर शान्ति सिंहल द्वीप तक का चक्कर मारते थे, इसलिए हो सकता है, तरुण विद्यार्थी ने इन दोनों विद्वानों से विक्रमशिला से बाहर शिक्षा प्राप्त की हो।) विक्रमशिला में दो वर्ष रहकर प्रसिद्ध प्रमाणशास्त्री (नैयायिक) ज्ञानश्री मित्र से उनके प्रकरण-ग्रन्थ पढ़े।

नारोपा के पास पढ़ते समय तरुण के हृदय में मन्त्रशास्त्र की जिज्ञासा उत्पन्न हुई और वह पाँच वर्ष तक पढ़ते रहे। वह पच्चीस वर्ष के हो गये थे, जब वह कलिकालसर्वज्ञ सिद्ध महापंडित रत्नाकर शान्ति के पास जा साल भर तक निराकारव्यवस्था (विज्ञानवाद?) पढ़ते रहे। प्रमाणशास्त्र (न्याय) में अपने समय के अद्वितीय विद्वान् ज्ञानश्री मित्र उस समय विक्रमशिला में रहते थे। उनके अपने लिखे अनेक प्रमाणशास्त्र-संबंधी (क्षणभंगाध्याय आदि) प्रकरण-ग्रन्थों को पढ़ने के लिए वह ज्ञानश्री के पास गये। (ये प्रकरण-ग्रंथ इन पंक्तियों के लेखक को तिब्बत में मिल गये हैं, जिन्हें पटना का जायसवाल इण्टीट्यूट प्रकाशित करने जा रहा है।) अब वह सत्ताईस वर्ष के हो गये थे। अभी तक वह नियमपूर्वक उपसंपन्न भिक्षु नहीं बने थे। अब विक्रमशिला में जा वे सम्मतीयनिकाय (संप्रदाय) की परिपाटी के अनुसार भिक्षु बने; नाम मिला मैत्रीगुप्त। एक साल तक वह इस निकाय के सूत्रपिटक, अभिधर्मपिटक और विनयपिटक का अध्ययन करते रहे। २८ वर्ष के हो जाने पर मैत्रीगुप्त की इच्छा सिद्धों का पदानुसरण करते हुए सिद्धि लाभ करने की हुई। पंचक्रम तारापद्धति के अनुसार 'चतुर्मुद्रा' सहित एक करोड़ जप किया, तब भट्टारक (संभवतः अमर सिद्ध शबरपाद) ने स्वप्न में कहा—“जाओ खसर्पण (अत्रलोकितेश्वर) के पुनीत स्थान में।” एक साल तक वह खसर्पण में रह अनुष्ठान करते

रहे। फिर स्वप्न हुआ—“जाग्रो दक्षिणपथ (दक्षिण भारत) में। वहाँ मनभंग और चित्तविश्राम नाम के दो पर्वत हैं, जहाँ शबरेश्वर रहते हैं, वह तुम पर कृपा करेंगे, रास्ते में राट (पश्चिमी बंगाल) देश का राजपुत्र सागरदत्त नाम का साथी तुम्हें मिलेगा।”

दक्षिणापथ जाते समय राट (पश्चिमी बंगाल) देश में ही गायद सागरदत्त मैत्रीगुप्त को मिले। दोनों आगे बढ़े। उड़ीसा तक उन्हें दोनों पर्वतों का पता नहीं लगा। वह धान्यकोटक (धरनीकोट, जिला गुन्तूर, आन्ध्र) जा एक साल तक रहे। अब मैत्रीगुप्त ३० वर्ष से अधिक के हो गये थे। उन्होंने वहाँ से वाकुत्पट्टु (?) देश में जा तारा की साधना आरंभ की। महीने भर बाद स्वप्न में कहा गया, कि यहाँ से पश्चिमोत्तर (वायव्य) दिशा में मनभंग और चित्तविश्राम पर्वत हैं। एक यात्रीसमूह के साथ पन्द्रह दिन जाने पर एक आदमी ने कहा, कि अगले दिन पर्वत-युगल मिलेंगे। अगले दिन पण्डित मैत्रीपाद लक्ष्य स्थान पर पहुँच कर हर्षित हुए। प्रतिदिन दस-दस मंडल (मिट्टी के स्तूप या धर्मवाक्यांकित मुद्राएँ) अर्पित करते शिला के ऊपर आसन मार एकाग्रचित्त हो, कन्द-मूल-फल मात्र का आहार करते उपवासव्रत करने लगे। सातवें दिन स्वप्न में (शबर) का दर्शन हुआ। पर, उतने से साधक को सन्तोष नहीं हुआ। जब दसवें दिन मैत्रीगुप्त ने गला काट आत्महत्या करनी चाही, तो जाग्रत अवस्था में शबरपाद का साक्षात् दर्शन हुआ। उन्होंने स्वयं साधक को अभिषेक दे अद्र्यवज्र नाम रखा और वारह दिन तक ‘पंचक्रम’ और ‘चतुर्मुद्रा’ का व्याख्यान किया। फिर और पाँच दिन तक उपदेश दिया। उस समय पद्मावली गौर ज्ञानावली नामक योगिनियाँ सभी धर्मों के दृष्टान्त के साथ वीणा बजाती थीं। महासिद्ध शबर ने कायव्यूह नामक सिद्धि प्रदर्शित करने लिए कहा। सागरदत्त ने कर दिखलाया पर अद्र्यवज्र असमर्थ रहे। उन्होंने सिद्ध से अपनी असमर्थता का कारण पूछा, तो जवाब मिला—“तुम्हारा मन (संकल्प-) विकल्पमय है। इस जन्म में तुम्हें सिद्धि नहीं मिलेगी। सिद्धों की देशना को स्पष्ट करके प्रकाशित करना। इसमें वज्रयोगिनी तुम्हें रास्ता बतलायगी।” यह कह कर भट्टार (शबर) पाद अन्तर्धान हो गये।

शबराधिराज (सिद्ध सरहपाद के प्रधान-शिष्य शबरपाद) गिरितल

पर साधकों (हित) के लिए रहते हैं। (शवर=शिकारी होने पर भी) न (वहाँ) धनुष है न हरिन न शूकर-शावक, एवं न (उनके पास) सम्पूर्ण-चन्द्रानना सुन्दरी (उनकी शवरी) ही है। वह सिद्धि-निर्मित रूप में वहाँ रहते हैं।

अज्ञात लेखक के इस आख्यान से हमें अद्वयवज्र के ३० वर्ष के जीवन की कुछ बातें मालूम होती हैं। अद्वयवज्र राजगृह (मगध) में एकान्तवास कर रहे थे, जब कि तरुण दीपंकर श्रीज्ञान उनके पास विद्याध्ययन के लिये गये थे। दीपंकर का जन्म ६८२ ई० में हुआ था और वह १०४२ ई० में तिब्बत में जा वहीं १०५२ ई० में मरे। तिब्बती परम्परा के अनुसार नारोपा का देहान्त १०३६ ई० में हुआ। अद्वयवज्र ग्यारहवीं सदी के प्रथम पाद में मौजूद रहे होंगे। उन्होंने कितने ही ग्रन्थों की टीकाएँ लिखीं, साथ ही सिद्धचर्या के पक्षपाती होने से कितनी ही कविताएँ देशभाषा (अपभ्रंश) में भी की थीं, जिनमें से निम्नलिखित तिब्बती महान् संग्रह स्तन्.ग्युर में तिब्बती अनुवाद के रूप में मौजूद हैं—

‘अबोध-बोधक	स्तन् तंत्र	४७-३६
‘गुरुमैत्रीगीतिका’	” ”	४८-१३
‘चतुर्मुद्रोपदेश’	” ”	४७-३७
‘चित्तमात्र दृष्टि’	” ”	४६-४५
‘दोहातत्त्वनिधितत्त्वोपदेश’	” ”	४६-३३
‘चतुर्वज्रगीतिका’	” ”	४८-१२

# परिशिष्ट ७

## पारिभाषिक शब्द

अवधूती—योगिनी, गुणुम्ना

एवंकार—शून्यता-कारणाभिन्न महामुद्रा

करी—चित्त, चित्त-गजेन्द्र

करुणा—दया

कुन्दुरुह—द्वीन्द्रप्रसमापत्ति, मैथुन

गिरि—पर्वत, नितम्ब

गृहिणी—पत्नी, महामुद्रा, दिव्यमुद्रा, ज्ञानमुद्रा

चक्र—मेरुर्वाह्यप्रदेशे शशि-मिहिरशिरे सव्य-पक्षे निषण्णं ।

मध्ये नाडी सुशुम्ना त्रितयगणमधी चंद्रसूर्या निरूपा ॥—षट्चक्र-निरूपण १

तरुणी—युवति, महामुद्रा

निरंजन—निर्मल, सहजकाय

पद्म—भग, कमल

बुद्धत्व—चन्द्रसूर्योपरागेषु प्रज्ञावज्रप्रयोगतः ।

विलीनं अद्वयं ज्ञानं बुद्धत्वमिह जन्मनि ॥

—कुट्टालिपाद

बोधिचित्त—शुक्र, बोधिमत

रवि—रज, पिंगला

रसना—जिह्वा, पिंगला

ललना—स्त्री, इडा,

ललना प्रज्ञा स्वभावेन रसनोपायसंस्थिता ।

अवधूती मध्यदेशे ते ग्राह्यप्राहकवर्जिता ॥

—हे वज्रतंत्र

ललना-रसना नाड़ी प्रज्ञोपायश्च मेलकः ।

आधारावधूती स्यात् समरसं यत्र तत्रगः ॥

—बौद्धगान

वज्र-शून्यता—

दृढं सारं अशौषीर्यं अच्छेद्याभेदलक्षणम् ।

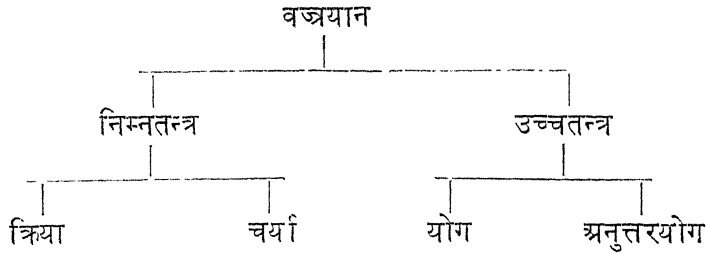
अदाही अविनाशी च शून्यता वज्र उच्यते ।

—योगरत्नमाला

वज्रधर—काय-वाक्-चित्त, स्वामी, लिंगशून्य

नरावज्रधराकारा योषितो वज्रयोषितः ।

वज्रयान—मंत्रयान



विन्दु—पुरुष, अनाहत, वज्रधर

विन्दुः परुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिः स्मृतः ।

पुं प्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत् ॥

शशी—शुक्र, चंद्र, इडा, पिंगला, वामनासापुट,

समरस—चित्तनिरोध, मैथुन

सूर्य—रज, पिंगला, दक्षिणनासापुट

हुंकार—वज्रधर

—————

## पुस्तक-सूची

१. 'बौद्ध गान ओ दोहा' (म. म. हरप्रसाद शास्त्री),
  २. चर्यापद (श्री मणीन्द्रमोहन बसु, कमला बुक डिपो, १५ वंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता)
  ३. 'दोहाकोश' (डाक्टर प्रबोधचन्द्र बागची, कलकत्ता-संस्कृत-सिरीज, १९३८ ई०)
  ४. प्राकृतपैंगलम्: (त्रिबलिओथिका इण्डिका, कलकत्ता, १९०२ ई०)
  ५. उक्तिव्यक्तिप्रकरण (संपादक, मुनि जिनविजय जी, भारतीय विद्या भवन, बंबई १९५३ ई०)
  ६. 'पउमचरिउ' (कविराज स्वयंभू, भारतीय विद्या-भवन, बंबई; १९५३ ई०)
  ७. 'पउमसिरिचरिउ' (धाहिल कवि, भारतीय विद्या-भवन, बंबई १९४८ ई०)
  ८. 'हिन्दीकाव्यधारा' (राहुल सांकृत्यायन, किताव महल, इलाहाबाद, १९४५ ई०)
  ९. 'पुरातत्त्वनिबन्धावलि' (राहुल सांकृत्यायन, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, १९३७ ई०)
  १०. 'Les Chants Mystiques....'Les Dohakosa et les Carya, par Dr. M. Shahidullaha Adrien Maisonneuve, Paris.
-